भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष और हिन्दी उपन्यास

(सन् १८८५ — १९६० ई०)

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद - विश्वविद्यालय
(१९७६)

निर्देशक :
डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता
देवीदत्त तिवारी
शोध-अध्येता

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष और हिन्दी-उपन्यास' की नियोजना मेरी अपनी है । इसका कोई भी अंश किसी भी उपाधि के लिए अन्यथा प्रस्तुत एवं प्रकाशित नहीं किया गया है ।

निर्देशक

(लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय.

प्रस्तुतकर्ता

(देवीदत्त तिवारी)

<u>प्राक्कथन</u>

मनुष्य स्वपरिवेश की उपज है । अपने चारों ओर विद्यमान वातावरण एवं परिस्थितियों का प्रभाव उसके जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों में पड़ता है । कल्पना साहित्यकार का अमोघ अस्त्र है । वह युगीन राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना को, अपनी कृति में कल्पना के सम्मिश्रण के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है । किन्तु आदर्श-वाद और यथार्थवाद की पूर्ण उपेक्षा साहित्यकार के लिए संभव नहीं है । वह उन्हीं तत्वों को ग्रहण करता है जिनमें 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का भाव विद्यमान होता है । साहित्यकार अपनी कृति रूपी सृष्टि का ब्रह्मा होता है । सामाजिक मर्यादा की रेखाओं से घिर कर भी वह स्व-अनुभव की कूँची से महत्वपूर्ण युगीन घटनाओं को एक नवीन रूपा-कार में प्रस्तुत करता है ।

समाज तथा राष्ट्र के संदर्भ में कुछ तत्व ऐसे भी होते हैं जो मनुष्य के जीवन-मूल्यों से प्रत्यक्ष संबद्ध होते हैं । व्यक्ति की राजनीतिक स्वाधीनता भी एक ऐसा ही समाज सापेक्ष तत्व है । किसी भी राष्ट्र अथवा व्यक्ति को सर्वदा के लिए पराधीनता एवं शोषण के पाश में आबद्ध नहीं किया जा सकता । जब-जब ऐसा हुआ है, तब-तब उस राष्ट्र ने स्वाधीनता के संघर्ष का बिगुल हमेशा बजाया है । पराधीनता की शृंखला को काटने के लिए स्वाधीनता की प्रबल भावना के कारण जन आन्दोलनों ने जन्म लिया है । स्वाधीनता व्यक्ति-विकास की एक अनिवार्य आवश्यकता है ।

साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से प्रसुप्त राष्ट्रजनों को जागरित करता है । नवीन जन-आन्दोलन को जन्म देता है । भारतवर्ष में भी उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही विभिन्न जन-आन्दोलन चलाये गये । जिनका एकमात्र उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक तथा ब्रिटिश पराधीनता से व्यक्ति को मुक्त करना था । सन् १८८५ ई० में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना राजनीतिक स्वाधीनता के संग्राम का ही शुभारंभ था । लगभग बासठ वर्ष के संघर्ष के उपरान्त देश को ब्रिटिश पराधीनता के चंगुल से

मुक्त किया जा सका । देश के प्रत्येक नागरिक ने उस महायज्ञ में अपना सर्वस्व अर्पण किया था । साहित्यकार भी उस संघर्ष में किसी से पीछे न था ।

उत्सुकता मानव-मन की एक सहज प्रवृत्ति है । प्रश्न उठता है क्या हिन्दी-उपन्यासों में राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन का प्रभाव पड़ा है ? क्या जन नेताओं की ही तरह उपन्यासकार भी लेखनी रूपी तलवार को हाथ में लेकर स्वातंत्र्य-संघर्ष में सम्मिलित हुआ ? क्या स्वातंत्र्य-संग्राम की चेतना का यथार्थ अंकन उपन्यासों में हुआ है ? यदि हाँ तो उसका स्वरूप क्या था ? विभिन्न आन्दोलनों -- गांधीवादी, समाजवादी तथा आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलनों के प्रति जन-सामान्य की धारणा कैसी थी ? आदि अनेक प्रश्नों ने मुझे जिज्ञासावश प्रस्तुत शोध-प्रबंध की ओर प्रवृत्त किया । प्रस्तुत शोध-अध्येता ने उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान खोजने का प्रयास अपने इस प्रबंध में किया है ।

इससे पूर्व भी अनेक शोध-अध्येताओं ने इस विषय पर शोध-प्रबंध लिखे हैं । यथा -- 'हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन,' 'हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन,' 'भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति,' 'भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य' आदि । किन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबंध में भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष को उसके ऐतिहासिक विकास के परिप्रेक्ष्य में परख कर हिन्दी-उपन्यासों में उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति को खोजा गया है ।

भारतवर्ष यद्यपि सन् १९४७ में स्वाधीन हो गया था फिर भी स्वातंत्र्य संघर्ष का प्रभाव उस पर दस-पंद्रह वर्षों तक बनी रहना, स्वाभाविक था । अतः इसलिए सन् १८८५ ई० से लेकर सन् १९६० ई० तक के हिन्दी-उपन्यासों का विवेचन आवश्यक समझा गया है । स्वातंत्र्योत्तर राजनीति को ग्रहण नहीं किया गया । उपन्यासों में चित्रित स्वातंत्र्य-संघर्ष के चित्रण को ऐतिहासिक संदर्भ में परख कर उसकी संगति का यथार्थ विवेचन किया है । उपन्यासों में अंकित राष्ट्रीय घटनाओं के विवेचनार्थ मात्र इतिहास की पुस्तकें पर्याप्त नहीं हैं । इसी लिए 'अभिलेखागारों' में संयोजित एवं सुरक्षित गोपनीय दस्तावेजों, पत्रों, पत्रावलियों, समाचारपत्रों, राष्ट्रीय नेताओं की

व्यक्तिगत डायरियों -- पत्रों तथा लेखादि का अध्ययन आवश्यक है। मैंने भी इस शोध-प्रबन्ध में उपलब्ध मूल सामग्री का प्रयोग किया है।

शोध-प्रबंध के `फुटनोट` (पाद टिप्पणियां) में उक्त उपलब्ध सामग्री को मूल रूप में दिया है। कुछ अंग्रेजी शोध-संकेतों को यथारूप में प्रयोग करना पड़ा है क्योंकि ऐसे संकेतों का प्रचलन हिन्दी शोध-ग्रंथों में प्राय: नहीं मिलता है। यथा -- आप० सिट०, लाक० सिट० आदि के लिए कोई निश्चित हिन्दी पारिभाषिक शब्द प्रचलन में नहीं आये हैं। कुछ संकेतों का हिन्दी अनुवाद करके मैंने प्रयोग किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में विषय-प्रवेश के रूप में विदेशियों द्वारा भारत में वाणिज्यवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद आदि की स्थापना की प्रक्रिया तथा उनके द्वारा शोषण की गाथा वर्णित की गई है। विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों में भारत में भी `सांस्कृतिक पुनर्जागरण` की लहर आई, राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ, विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों ने कालान्तर में राष्ट्रीय संग्राम के लिए जो भूमि परिपक्व की थी उनके महत्त्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास को संक्षेप में समझाया गया है ताकि उपन्यासों में अंकित राजनीतिक घटनाओं को सहज ही समझा जा सके। गांधीवादी आन्दोलन, क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा मुस्लिम लीग की राजनीतिक गतिविधि का उल्लेख किया है।

तृतीय अध्याय में स्वातंत्र्य संघर्ष की विभिन्न घटनाओं को लेकर जिन उपन्यासों की रचना हुई है, उनके राजनीतिक स्वरूप पर विचार किया गया है। इसके लिए उपन्यास की मूल रचना तिथि अथवा उसका प्रथम-संस्करण को ही आधार बनाया है। प्रत्येक कृति का विवेचन तिथ्यानुसार किया है। इसके अतिरिक्त साहित्य, समाज, व्यक्ति, राजनीति तथा उपन्यास के पारस्परिक संबंधों को भी विवेचित किया है।

चतुर्थ अध्याय में उपन्यासों में वर्णित, चित्रित एवं उल्लिखित स्वातंत्र्य-संग्राम की विभिन्न घटनाओं का [illegible] विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत किया है। राजनीतिक 'वाद'— गांधीवाद, आतंकवाद, समाजवाद के अतिरिक्त देश-विभाजन तथा उससे उत्पन्न समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को भी विवेचन का विषय बनाया है। ऐतिहासिक कसौटी पर कल्पना और यथार्थ को परख कर उनके अन्तर को उपन्यास के संदर्भ में स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया है।

उपसंहार में 'राष्ट्रीय आन्दोलन' का हिन्दी उपन्यास पर पड़े प्रभाव तथा उसकी गतानुगति का संक्षिप्त मूल्यांकन किया है। अस्तु।

मैंने यह कार्य सर्वप्रथम डा० (श्रीमती) निर्मला जैन दिल्ली विश्वविद्यालय के दिशा-निर्देशन में लगभग सवा साल तक किया। परन्तु अपनी विवशताओं के कारण मैं चाहते हुए भी दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्य जारी न रख सका। डाक्टर निर्मला जैन का मैं बहुत आभारी हूँ क्योंकि विषय को समझने तथा कार्य को वैज्ञानिक ढंग से करने का जो सुनिर्देशन उनसे मुझे मिला, उस सबका विशेष महत्त्व है।

परन्तु जब मैं अपनी विवशताओं से घिरा, परेशानी में खो रहा था तब जो आशीर्वाद मुझे आदरणीय प्रोफेसर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मिला उसका मैं आजन्म ऋणी हूँ। बिना उनके आशीर्वाद के प्रस्तुत शोध-प्रबंध का लिखा जाना कभी भी संभव नहीं था। उदारमना प्रोफेसर वार्ष्णेय के दिशा निर्देशन में पुनः मैंने अपना अधूरा शोधकार्य पूरा करना आरंभ कर दिया। उनकी कृपा, आशीर्वाद तथा स्नेह, सुयोग्य निर्देशन का ही फल है कि आज मैं शोध-प्रबंध को पूरा कर पाया हूँ। जीवन के घात-प्रतिघातों को सहने की समय-समय पर जो प्रेरणा मुझे आदरणीया श्रीमती प्रोफेसर वार्ष्णेय से मिली उनका प्रतिदान चुकाना मेरे वश की बात नहीं है। न मुझ में सामर्थ्य ही है।

मैं उन समस्त पुस्तकाध्यक्षों का भी निश्चय ही आभारी हूँ जिनका अमूल्य सहयोग शोध-सामग्री एकत्र करने में मुझे मिला । विशेषकर राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली के उन कर्मचारियों का भी मैं बहुत आभारी हूँ जिन्होंने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक फाइलों, पुस्तकों, माइक्रोफिल्म फिल्मों, आदि सामग्री को सुलभ करने में योग दिया । इसके अतिरिक्त, नेहरू स्मारक पुस्तकालय तीन मूर्ति नई दिल्ली, गांधी स्मारक पुस्त-कालय राजघाट नई दिल्ली, केन्द्रीय ग्रंथागार नई दिल्ली, मारवाड़ी पुस्तकालय, हर-दयाल पुस्तकालय, दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, नागरीप्रचारिण सभा काशी तथा स्टेट अभिलेखागार लखनऊ के सहयोगी कर्मचारियों का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ ।

अन्त में, उन सभी गुरुजनों, मित्रों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य सहयोग समय-समय पर मुझे प्रदान किया । विशेषकर डा० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी (वरिष्ठ प्राध्यापक) दिल्ली विश्वविद्या अपने मित्र श्री राधेश्याम (नेहरू विश्वविद्यालय तथा श्रीमती मधु तिवारी का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिनके हार्दिक सहयोग और सद्भावना के कारण मैं प्रस्तुत शोध-प्रबंध का कार्य समाप्त कर रहा हूँ । अन्य उन सभी लोगों का भी मैं धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने मेरा हाथ बँटा कर मेरा साहस बढ़ाया ।

इलाहाबाद

— देवेन्द्र तिवारी

जुलाई १९७६

विषयानुक्रमणिका

तृतीय अध्याय : राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की चेतना तथा हिन्दी उपन्यासों में उसका स्वरूप

(य) स्वभाषा जागरण -- जीवन और साहित्य -- समाज और साहित्यकार -- इतिहास और उपन्यास -- राजनीति और साहित्य -- राजनीति और उपन्यास ।

(र) प्राक् गांधीयुगीन राजनीतिक उपन्यास (१८८५-१९१७) ।

(ल) गांधी युगीन हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप (१९१८-१९४८) -- सेवासदन -- प्रेमाश्रम -- वरदान -- रंगभूमि -- कायाकल्प -- गबन -- कर्मभूमि -- गोदान -- मंगल सूत्र -- प्रतिशोध -- रक्तमंडल -- सुफेद शैतान -- जागरण -- मनुष्यानंद -- सरकार तुम्हारी आँखों में -- चन्द हसीनों के खुतूत -- माई -- सत्याग्रह -- घर बाहर -- सुनीता -- त्यागपत्र -- कल्याणी -- प्रत्यागत -- अजय मेरा कोई -- विदा -- बयालीस -- अलका -- कुल्लीभाट -- आत्मदाह -- वचन का मोल -- मेरा देश -- राम रहीम -- गांधी टोपी -- पुरुष और नारी -- जीने के लिए -- भागो नहीं बदलो -- दादा कामरेड -- देशद्रोही -- पार्टी कामरेड -- शेखर : एक जीवनी -- संन्यासी -- निर्वासित -- लज्जा -- मुक्तिपथ -- जययात्रा -- विष -- स्वाधीनता के पथ पर -- पथिक -- पहली भूल -- नई इमारत -- उल्का -- दो पहलू -- निमंत्रण -- पैरोल पर -- विसर्जन -- निर्देश -- विषाद मठ -- टेढ़े-मेढ़े रास्ते -- गिरती दीवारें -- महाकाल ।

(व) गांधी युगोत्तर उपन्यासों का स्वरूप (१९४९-६०)-- स्वराज्यदान -- देश की हत्या -- स्वतंत्र भारत -- हरिजन -- मनुष्य के रूप -- अनबुझी प्यास -- मुक्ति के बंधन -- बयालीस के बाद -- संक्रान्ति -- संग्राम -- पूरब और पश्चिम -- युगसंधान -- सीधा-सादा रास्ता -- चलते चलते --

(घ) सविनय अवज्ञा आन्दोलन -- नमक सत्याग्रह --लगानबंदी -- गोलमेज सम्मेलन -- गांधी-इर्विन समझौता ।

(च) स्वातंत्र्य संघर्ष की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन -- कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन -- नरमदली भावाभिव्यक्ति -- रॉलट एक्ट एवं जलियांवाला बाग -- स्वराज्य पार्टी -- साइमन कमीशन -- स्वराज्य की व्याख्या -- क्रिप्स-आगमन -- अगस्त आन्दोलन -- बंगाल का अकाल -- आजाद हिन्द फौज -- नाविक विद्रोह -- शुद्धि-आन्दोलन -- भारत पाक विभाजन -- साम्प्रदायिकता -- गांधी जी की हत्या -- स्वाधीनता का आलोक --

पंचम अध्याय : उपसंहार

सहायक ग्रंथ-सूची --

(१) अंग्रेजी

(२) हिन्दी

(३) उपन्यास

(४) परिशिष्ट

संकेत-सूची

हिन्दी

१- अनु०	-	अनुवादक
२- इति०	-	इतिहास
३- हस्ता०	-	हस्ताक्षर
४- जि०	-	जिल्द
५- ति० न०	-	तिथि नहीं
६- पृ०	-	पृष्ठ
७- भा०	-	भारतीय
८- रा० पा०	-	राजपाल
९- वि०	-	विक्रमी
१०- सम्पा०	-	सम्पादक
११- सं० न०	-	संस्करण नहीं
१२- सं०	-	सम्वत् / संख्या

English:-

Cofi.	-	Confidential
Comp.	-	Compositor
C.R.	-	Confidential Report.
edi/ed	-	Edition/editor
F.	-	File
Govt.	-	Government
(I)	-	Internal
Ibid	-	the same
Loc. Cit.	-	the place Cited
N.D.	-	N. date
N.E.	-	No edition
No/Nos.	-	number/numbers
N. Delhi	-	New Delhi
Op. Cit.	-	the Work, previously Cited.
P./pp.	-	page/pages
Progs:	-	Proceedings
Poll.	-	Political
Supra	-	above
Vide	-	see

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना

'भारतवर्ष संसार में हमारा सबसे बड़ा बाजार है। हम वहाँ व्यापारी की हैसियत से गये हैं। यदि भारतवर्ष को हम छोड़ दें तो लंकाशायर के एक करोड़ बीस लाख प्राणी भूखों मर जायेंगे। आखिर हमें जिन्दा रहना है।'

-- ह्वाइट

'क्रान्ति' के सौजन्य से

(क) वाणिज्यवाद से उपनिवेशवाद तक

उपनिवेशवाद की स्थापना

अंतिम मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारतवर्ष में राजनीतिक अराजकता और शैथिल्य व्याप्त हो गया था। औरंगजेब के वंशज राजदंड संभालने में अक्षम सिद्ध हुए।[१] परिणाम यह हुआ कि देश में पारस्परिक कलह और फूट के वातावरण में पुर्तगाली फ्रान्सीसी, डच अंग्रेज आदि व्यापारियों ने देश में अपने केन्द्र स्थापित कर लिए। वे आये थे व्यापारियों के रूप में किन्तु ईसा की अठारहवीं शताब्दी की भारतीय राजनीतिक अराजकता से लाभ उठाकर उन्होंने यहां की राजनीति में भाग लेना आरंभ किया। भारत की अतुल सम्पदा के कारण विदेशियों की लार टपकती रहती थी।[२]

यूरोप में धर्म का स्थान तर्क ने ग्रहण कर लिया था। नया पूंजीवाद विश्व में अपने पैर फैला रहा था तथा नये बाजार तलाश कर रहा था। क्योंकि 'अपने उत्पादन के लिए लगातार बढ़ती हुई बाजार की आवश्यकता समस्त भू-मंडल पर बुर्जुवाजी का पीछा कर रही थी।'[३] यूरोपीय पूंजीपति-वर्ग व्यापारी होने के साथ-साथ चतुर राजनीतिक पंडित भी था। यूरोप से आई हुई इन जातियों में और भारतीय राजनीतिक सत्ताओं में संघर्ष प्रारंभ हुआ। अन्तिम परिणाम क्या हुआ यह इतिहास प्रसिद्ध है क्योंकि

१- विस्तृत अध्ययनार्थ द्रष्टव्य है --

(१) ताराचंद, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास.

(२) मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास

(३) रजनी पामदत्त, आज का भारत.

2. "It was indeed the wealth of India that attracted hordes of foreign adventures to her shores." Jawahar Lal Nehru, Unity of India, (London: 1941) P. 12.

3. Karl Marx and F. Engels, Maniferto of the Communist Party (Moscow: 1971) PP. 35-36.

अंग्रेज अपनी कूटनीति, सामुद्रिक सामरिक शक्ति और सैनिक संगठन के कारण देश में अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हुए ।

कितनी विडम्बना है भारतीय इतिहास की । व्यापारी ने अंगुली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लिया । तम्बू कारखाने में, कारखाना किले में, किला जिले में और जिला प्रान्त में परिवर्तित हो गया । मुगल साम्राज्य के ध्वंशावशेषों में ब्रिटिश कचहरी सजने लगी । सच तो यह है कि वह सौदागरवाद से धीरे धीरे औद्योगिक पूँजीवाद को पार करता हुआ सशक्त साम्राज्यवाद के रूप में परिणत हो गया । स्वर्गीय भूलाभाई देसाई ने वित्त-विधेयक पर बोलते हुए[1] ब्रिटिश साम्राज्यवाद के योगदान का उल्लेख किया था । उनका कथन पूर्ण सत्य था ।

`ईस्ट इंडिया कम्पनी` अपने हितों को सेना के द्वारा भारतीय राजाओं को आपस में लड़ाकर धीरे-धीरे फैलाने लगी । लार्ड क्लाइव द्वारा रखी गई ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तारवाद की नींव शनैः शनैः भरी जाने लगी । `लार्ड वैल्जली ने गवर्नर जनरल की हैसियत से अपने सात वर्ष के कार्यकाल में कम्पनी के प्रदेशों का बहुत विस्तार किया`।[2]

प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्पूर्ण भारत में कम्पनी का डंका बजने लगा । परन्तु राज्यस्थापना के बाद भी उनकी वणिक वृत्ति नहीं गई । इसीलिए `भारत में ब्रिटिश शासन की आरंभिक अवधि का इतिहास भारतीय हस्तशिल्प और उसके उत्पादनों के विध्वंस, लूट, दमन और विनाश की ही करुण कथा कहता है`।[3]

१- The Builders of British Indian Empire have patiently built its four pillers - the European interests, the Army, the Princes a nd the Communal Division." Legislative Assembly Debates, (Govt. of India, 19th Nov., 1940) Vol. V No. I. P.300.

२- गुरमुख निहालसिंह, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, अनु० सुरेश शर्मा, पृष्ठ - ५३.

३- ताराचन्द, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास- भाग १, पृ० ३४३.

भारत उपनिवेशवाद के विस्तारवाद की प्रयोगशाला बनता चला गया । तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए कार्ल मार्क्स कहते हैं -- "भारत में अंग्रेजी राज का इतिहास अर्थशास्त्र के असफल प्रयोगों का इतिहास है । किसी अन्य देश में ऐसे बेतुके प्रयोग न मिलेंगे जैसे भारत में ब्रिटिश राज के इतिहास में"।[१]

भारतीय अर्थव्यवस्था को गन्ने की नाईं पूर्ण निर्दयता के साथ पेरा जाने लगा । "व्यापार और वाणिज्य के नाम पर वे भारत की सम्पदा को नितान्त निर्लज्जता से लूटते थे ।"[२] अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अंग्रेजों ने कोई भी हथकंडा शेष न छोड़ा था। एक समय ऐसा आया कि भारत मात्र खेतिहर उपनिवेश बनकर रह गया और जिसका कार्य केवल ब्रिटेन को कच्चा माल भेजना था । ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रारंभिक काल भारत के उद्योग धंधों की बर्बादी का काल था । जो धीरे-धीरे अंगद का पांव बन गया । भारतीय जनता पर जुल्म अत्याचार होने लगे । उन्हें पशुवत जीवन जीने को बाध्य किया गया ।[३] क्योंकि परम्परागत व्यवसाय धन्धे अपनी मौत के आंसू बहा रहे थे । किसान और मजदूर अपने-अपने भाग्य का रोना रो रहे थे । "करघा और चरखा भारतीय समाज के आधार थे । बर्बर अंग्रेज ने भारत के करघे और चर्खे को तोड़ डाला ।"[४]

राज्य पहले भी बदलते रहे परन्तु ऐसा कहर किसी ने न ढाया था । ब्रिटिश "भारत के मैदानों में जुलाहों की सफेद हड्डियां" बिछी पड़ी थीं ।[५]

१- Karl Marx, Capital, (Moscow: 1971), Vol.III Chapter XX, Part III, P. 333.

२- के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ० ३४२.

3. "Ninety percent of them never had two square meals a day, or decent cloth and house fit for human beings." R.C. Majumdar, British Paramountcy and Indian Renaissance, (Bombay: 1970), P.373.

4. Karl Marx, Op. Cit, Vol. I, Chapter XIV, Part V, P. 406.

5. Karl Marx, Loc. Cit, PP. 333-34.

ब्रिटिश-शासन ने स्वहित-साधन के लिए भारत में नवीन भूमि प्रणाली -- जमींदारी और रैयतवारी को जन्म दिया । जिससे प्रतिकूल प्रभाव भारतवासियों पर पड़ने लगा । परम्परागत कृषि व्यवस्था चरमरा उठी ।[१] परिणामत: `इंग्लैंड ने भारतीय समाज के पूरे ढांचे को ही तोड़ डाला ।`[२] जब भारत का परम्परागत ढांचा ही खण्ड-खण्ड हो गया तब वह उपनिवेशवाद, वाणिज्यवाद और साम्राज्यवाद की चक्की में सदियों तक पिसता चला गया `और फिर ये गांव जो सब तरह से साधनहीन थे, तरह तरह के बोझों से लदे हुए थे सहसा संसार के बाजारों के मुकाबले में डाल दिए गए और इधर से उधर धक्के खाने लगे ।`[३] `गायन्ति देवा किल गीत कानि` का भारत निर्दय शोषकों की `आर्थिक-कालोनी` बन गया ।

शोषण और लूट का व्यापार दिन दूना और रात चौगुना होने लगा । स्वेज नहर के खुल जाने से तथा यूरोप में विशेष अवकाश नियमों के बन जाने से यूरोप-निवासी रोजगार की तलाश में `आर्थिक कालोनी`-- भारत में आने लगे । राज्य-विस्तार में संलग्न -- ईस्ट इंडिया कम्पनी को शिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता थी । भारतीय उनकी दृष्टि में योग्य न थे ।

<u>यातायात के साधनों का विस्तार</u>

उपनिवेशवाद देश में दो प्रकार की शक्तियों -- विध्वंसात्मक तथा निर्माणात्मक का निर्माण कर रहा था । फैलते हुए राज्य की सीमा की रक्षा के लिए सुगम यातायात की सुविधा अनिवार्य आवश्यकता बन गई इसके अतिरिक्त फौज का आवागमन

१- "----the old communal life of the village was disrupted---------- and the whole pattern of India agriculture began to change xxx agriculture began to get commercialised and specialised." DR. Karan Singh, Prophet of Indian Nationalism (Bombay: 1967) pp. 8-9.

२- कार्ल मार्क्स, भारत में ब्रिटिश शासन, अनु० रमेश सिन्हा, भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम (नई दिल्ली १९५३) - पृ० १०.

३- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी (नई दिल्ली १९५१) - पृ० ३६४.

तथा डाक-तार व्यवस्था भी आवश्यक हो गई थी । अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए 'भारत में अंग्रेजों ने अनेक नेक काम भी किये । उन्होंने सड़कों की मरम्मत कराई, नहरों का निर्माण किया, तब्बारों द्वारा डाक-प्रेषण की व्यवस्था की, मुद्रा का सुधार किया, नाप-तौल के बाट-बट्टों को नवरूप दिया, भूगोल और खगोलशास्त्र के साथ-साथ चिकित्सा पद्धति को नवीन कलेवर प्रदान किया । भारतीयों की भौतिक-दशा का विकास किया ।'[1]

शनै: शनै: उपर्युक्त परिवर्तनों से भारतीय गाँव भी अपने को अछूते न रख सके । ग्रामीण ठहराव में आलोड़न के चिन्ह प्रकट होने लगे ।[2] गाँव का नाता रेलों और पुलों द्वारा शहर की मंडियों से जुड़ने लगा । 'रेलवे और आधुनिक परिवहन ने कृषि के क्षेत्र में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी ।'[3] अशोक और अकबर के बाद जो औपनिवेशिक राज्य की तस्वीर भारत में स्पष्ट होती जा रही थी वह राजनीतिक दृष्टि से बड़ी ही महत्त्वपूर्ण थी । क्योंकि सदियों के बाद प्रथम बार भारतीय इतिहास में पुराना संयुक्त भारत, एक राजनीतिक प्रशासन एक इकाई के रूप में उभर रहा था । सुचारु शासन व्यवस्था की आवश्यकता ने ही दूर संचार साधनों के प्रसार को जन्म दिया था ।

नवीन पाश्चात्य शिक्षा

यद्यपि व्यापार और राजनीति का युद्ध भारत हार गया था । उपनिवेशवाद के साथ उसका युद्ध शिक्षा के क्षेत्र में जारी था । परन्तु वह उसमें भी विजय न पा सका । भारत में आंग्ल शिक्षा का प्रारंभ वारेन हेस्टिंग्स, डंकन तथा लार्ड कार्नवालिस अठारहवीं

---

1. B.R. Ambedkar, Pakistan or The Partition of India,(Bombay: 1940) P. 29.
2. "The economic isolation of the village the main cause of its social and cultural stagnation, brokedown." A.R. Desai, Social Background of Indian Nationalism,(Bombay: 1948) PP. 116-17.
3. Railways and modern Roads created a veritable revolution in the agriculture area." A.R. Desai, Ibid. P. 116.

शताब्दी के अन्त में कर चुके थे ।[1]

अंग्रेजों के सम्पर्क में आने से मध्यम वर्ग भी इसी भावना से अनुप्राणित था । आंग्ल शिक्षा की प्यास तथा सरकारी नौकरी की चाह उनके मन में भी जागने लगी । यद्यपि वैलेजली ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना अंग्रेज युवक कर्मचारियों के ज्ञान में सुधार के लिए की थी ।[2] भारतीय बुद्धिजीवियों ने नयी शासन व्यवस्था का स्वागत किया क्योंकि उन्हें राहत की प्रतीति हो रही थी । यह वर्ग भी उसी तरह सोचता था जिस तरह उनके स्वामी अंग्रेज सोचते थे । यहां तक कि यह वर्ग पूरा अंग्रेज बनता गया ।[3]

यह एक नवीन सामाजिक वर्ग का जन्म था जो पाश्चात्य भावों, आचार-विचारों तथा रहन-सहन से प्रभावित होता जा रहा था । कालान्तर में वकील, अध्यापक, व्यापारी वर्ग, सरकारी कर्मचारी और उद्योगपति इसी पाश्चात्य शिक्षा की उपज थे । अपने धर्म के प्रचार के लिए ईसाई मिशनरीज भारत के कोने-कोने में जाने लगे । भारतीय शिक्षित वर्ग भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सका । पाश्चात्य विचारों के आगे भारतीय चिन्तन ने अपने हथियार डाल दिए । 'कैरी' और 'डफ' ने अठारहवीं शताब्दी में मिशनरी के क्षेत्र में विशेष कार्य किया ।[4] शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में उन्होंने एक क्रांति

---

1. "In 1781 Warren Hastings founded the Calcutta Madrasah. The Sanskrit College at Benares was established by Duncan---- with the assent of Lord Cornwallis, in 1792." The Interim Report, Indian Statuary Commission (Govt. of India: 1930) Chapter II, P.10.
2. Tara Chand, Op. Cit. Vol. I, P. 310.
3. "They wanted to be like their English masters in every way. x-x-x-x- He took his dress, he took his chiroot and pipe." Lajpat Rai, young India (1916) (Govt. of India: 1960) Reprint, P. 105.
4. "The enthusiasm kindled in first half of the last century by two great missionaries, like Carey and Duff, who had made distinguished converts among the highest classes of Hindu Society------------ the superiority of Western ethics." Valentine Chirol, Indian Unrest (London: 1910), PP. 24-25.

शताब्दी के अन्त में कर चुके थे ।[1]

अंग्रेजों के सम्पर्क में आने से मध्यम वर्ग भी उसी भावना से अनुप्राणित था । आंग्ल शिक्षा की प्यास तथा सरकारी नौकरी की चाह उसके मन में भी जागने लगी । यद्यपि 'वेलेजली' ने कलकत्ता फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना कौमिक युवक कर्मचारियों के स्तर में सुधार के लिए की थी ।[2] भारतीय बुर्जुआवर्ग ने नयी शासन व्यवस्था का स्वागत किया क्योंकि उसे राहत की प्रतीति हो रही थी । यह वर्ग भी उसी तरह सोचता था जिस तरह उसके स्वामी अंग्रेज सोचते थे । यहाँ तक कि यह वर्ग पूरा अंग्रेज बनता गया ।[3]

यह एक नवीन सामाजिक वर्ग का जन्म था जो पाश्चात्य भावों, आचार-विचारों तथा रहन-सहन से प्रभावित होता जा रहा था । कालान्तर में वकील, अध्यापक, व्यापारी वर्ग, सरकारी कर्मचारी और उद्योगपति इसी पाश्चात्य शिक्षा की उपज थे । अपने धर्म के प्रचार के लिए ईसाई मिशनरीज भारत के कोने-कोने में जाने लगे । भारतीय शिक्षित वर्ग भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका । पाश्चात्य विचारों के आगे भारतीय चिन्तन ने अपने हथियार डाल दिए । 'कैरी' और 'डफ' ने अठारहवीं शताब्दी में मिशनरी के क्षेत्र में विशेष कार्य किया ।[4] शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में उन्होंने एक क्रांति

---

1. "In 1781 Warren Hastings founded the Calcutta Madrasah. The Sanskrit College at Banaras was established by Duncan---- with the assent of Lord Corn Wallis, in 1792." The Interim Report, Indian Statuary Commission (Govt. of India: 1929) Chapter II, P. 10
2. Tara Chand, Op. Cit. Vol. I, P. 310.
3. "They wanted to be like their English masters in every way. x-x-x-x- He took his dress, he took his chiroot and pipe." Lajpat Rai, young India (1916) (Govt. of India: 1960) Reprint, P. 106.
4. "The enthusiasm kindled in first half of the last century by two great missionaries, like Carey and Duff, who had made distinguished converts among the highest classes of Hindu Society------------ the superiority of Western ethics." Valentine Chirol, Indian Unrest (London: 1910), PP. 24-25.

ही की थी । `निस्संदेह ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भारत में कई क्षेत्रों में बहुत अच्छे कार्य किए, विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरीज को अपने कार्य के लिए मैकाले की शिक्षा पद्धति से विशेष बल मिला । क्योंकि १८ वीं शताब्दी में शिक्षा के क्षेत्र में जो वैचारिक संघर्ष 'Orientalists' और 'Angeicists' के मध्य चल रहा था उसमें मैकाले को विजयश्री मिली थी । उसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को बना दिया था ।[२]

फलतः भारतीय संवेदनशील मस्तिष्क ने उसे बिना किसी बाधा के ग्रहण किया `पाश्चात्य विचारों को भारतीय भूमि में बोने का प्रयत्न किया गया ।`[३] इसका दूसरा परिणाम यह निकला कि `पाश्चात्य साहित्य ने भारतीय मस्तिष्क का पूर्ण काया पलट कर दिया ।`[४] यद्यपि मैकाले की शिक्षा पद्धति के पीछे `उसका उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना को जगाना नहीं था बल्कि जड़ से उसका नाश कर देना था ।`[५] परन्तु भारतीयों ने `सार सार को गहि लहै थोथा देय उड़ाय` उक्ति के अनुसार पाश्चात्य साहित्य से `सत्यं शिवं सुन्दरम्` को ही ग्रहण किया । वे अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से रेकन, डारविन, स्पेन्सर, लाक, जॉन मिल, स्मिथ, रस्किन, रिकार्डो आदि के सम्पर्क में आये जिसने ज्ञान का नवीन द्वार खोल दिया ।

छापे का आविष्कार

विश्व में छापे का आविष्कार एक चमत्कार था । भारत की राष्ट्रीयता के लिए तो यह निश्चय ही एक वरदान सिद्ध हुआ । देसाई के शब्दों में `भारत में छापे की

---

1. Jawahar Lal Nehru, Op. Cit. P. 15.
2. K.L. Dutt, congress cyclopaedia (N. Delhi: 1973) P. 3.
3. S. Ghose, - Renaissance to Millitant Nationalism In India, (Bombay: 1969) P. 75.
4. Valentine Chirol, Op. Cit. P. 136.
5. Rajani Palmdutt, India Today Tr. Ramvilash Sharma, (Hindi) Bombay: 1948), P. 279.

मशीन का आरंभ भारतीय जनजीवन के लिए एक महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी घटना थी ।"[1] जिसने वैचारिक पुनर्जागरण के द्वारा आने वाली पीढ़ी के लिए नव-संसार का निर्माण किया ।[2] शिक्षित भारतीयों का पाश्चात्य शिक्षा से जीवन नितान्त विस्तृत हुआ और वे उस प्राप्त पाश्चात्य साहित्यिक ज्ञान को भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारत में प्रचारित करने लगे । क्योंकि सन् १८५८ के बाद भारत में छापेखानों की संख्या तेजी से बढ़ी । सन् १८९० तक समाचारपत्रों की संख्या ६४४ हो गई थी ।[3] भारत में जो राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ उसके पीछे प्रेस और पाश्चात्य शिक्षा का विशेष हाथ था । जन-जागरण को जगाने में समाचारपत्रों की भूमिका बड़ी ही महत्वपूर्ण थी । इनके माध्यम से 'प्रतिक्रियावादी शासन की गतिविधि, विचार स्वातंत्र्य पर अंकुश, न्यायाधिकरण की प्रथा का अन्त (Trial of Jury) भयंकर प्लेग, स्थानीय शासन के अत्याचार, जाति, वर्ण, धर्म आदि अनेक अत्याचारों की मार्मिक कहानी जनता के सामने आने लगी ।[4] इस प्रकार जनता में जो एक नई चेतना जन्म ले रही थी उसका एकमात्र कारण बताते हुए श्री बी० एन धर ने कलकत्ता कांग्रेस १९११ में कहा था कि 'अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे मस्तिष्क को प्रभावित तथा निर्देशित करने के साथ नवीन आशाओं और उमंगों को जन्म दिया'।[5]

निर्विवाद रूप से यह तो मानना ही पड़ेगा कि उपनिवेशवाद की क्रोड़ में जो नवीन राष्ट्रीयता के अंकुर उभर रहे थे उसका श्रेय पश्चिमी शिक्षा और वहाँ के नागरिकों को जाता है । यह ब्रिटिश शासन तथा पाश्चात्य सभ्यता की ही देन थी, जिसने शान्ति की स्थापना की तथा राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता के लिए परिस्थितियों को

---

1. A.R. Desai, Op. Cit. P. 205.
2. "This opened a new world to each generation in India in its turn, and brought with it a renaissance in thought." C.F. Andrews and G. Mukherjee, The Rise And Growth of Congress In India, (Calcutt: 1967.) P. 44.
३- गुरुमुख निहालसिंह, आप० सिट ० पृ० ६३.
4. Henry Cotton, New India (London: 1904), P. 6.
5. Natesan: (Comp.) Congress Presidential Addresses, (Madras: 1934), from the silver to the Golden Jubli, Second Series, P. 11.

जन्म दिया । सुरक्षा तथा कानून की स्थापना की, आधुनिक विचारों का प्रसार करके आर्थिक स्रोतों का विकास किया ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाणिज्यवाद और उपनिवेशवाद जहाँ एक ओर अपने स्वार्थ की पूर्ति में संलग्न थे वहीं दूसरी ओर भारतीय जनमानस में नवीन चिन्तन विचारों के रूप में अंकुरित कर रहे थे । अमरीकी स्वाधीनता तथा फ्रांस की राज्य-क्रान्ति उसे एक नई दिशा का आभास दे रही थी । पुनर्जागरण और पुनरुत्थान के कदम एशिया की ओर पग बढ़ा रहे थे । मनुष्य स्वाधीन है, सब समान हैं, सब भाई-भाई हैं, भाव जनता में जागृति फैला रहे थे एशिया जाग रहा था ।

(ख) सांस्कृतिक पुनर्जागरण

ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारतीय जनता को एक ऐसे चौराहे पर खड़ा कर दिया जहाँ उसकी स्थिति इटली के दुमुंहे देवता 'जेनस' की भाँति हो गई थी । एक ओर उसके सामने अपार प्राचीन गौरव था दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा से उपलब्ध नवीन क्षितिज । मानव की एक प्रवृत्ति होती है "जिसमें अतीत से नाता तोड़ लेने की कोशिश नहीं होती, उसे वह मुकाम समझा जाता है जहाँ से तरक्की की मंजिल शुरू होती है"।[२] नदी जिस विशाल सागर का निर्माण करती है उसका कारण उसका पुराना मूलस्रोत ही होता है । प्रत्येक राष्ट्र की अपनी प्राचीन विरासत होती है । उसका अपना विशेष इतिहास होता है, उन महान अतीत के भग्नावशेषों के ऊपर ही उज्ज्वल और नवीन भविष्य विनिर्मित होता है । भारतीय शिक्षित वर्ग के सामने भी ऐसी ही एक समस्या आ खड़ी हुई । विश्व का आयतन नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण सिकुड़ता जा रहा था । सामन्तवाद और उपनिवेशवाद के जुए को उतार फेंकने का मुक्ति-आन्दोलन विश्व में चल रहा था । स्वराष्ट्र निर्माण की भावना बलवती हो रही थी ।

१- F. Hertz, Nationality In History And Politics, (London: 1951), P. 120.
२- जवाहरलाल नेहरू - हि० कहानी (नई दिल्ली : १९६०) - पृ० १९७.

व्यापार की बढ़ती भरती आकांक्षा व्यक्ति को साहसिक कार्यों की ओर उन्मुख कर रही थी । धर्म की जकड़न में शिथिलता आ गई थी । राष्ट्रीयता की प्रबल आकांक्षा के कारण ही हारे हुए बोअर लोग स्वराज्य पा गये थे । यूरोपीय नवजागरण विश्व में अपनी पताका फहरा रहा था । चौदहवीं शताब्दी में इटली में एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसकी धारा इंग्लैंड, फ्रांस, रूस होते हुए लगभग उन्नीसवीं सदी में एशिया महाद्वीप तक जा पहुँची । `अंग्रेजी में इस धारा को `रिनेसां` ( Renai--ssance) कहते हैं जिसका इतिहास में रूढ़ अर्थ `सांस्कृतिक पुनर्जागरण` है`।[1]

पुनरुत्थान व पुनर्जागरण

पुनरुत्थान और पुनर्जागरण दो अलग अलग सोपान हैं । इन्हें क्रमश: (Revivalism) और (Reformism) के नाम से भी पुकारा जाता है । मूलत: पुनरुत्थानवादी आस्था, विगत इतिहास तथा प्राचीन परम्पराओं से प्रेरणा लेते हैं जबकि पुनर्जागरणवादी तर्क और पाश्चात्य सामाजिक अनुभवों पर विश्वास करते हुए आगे पग बढ़ाते हैं । उन्हें प्राचीनता से लोभ नहीं होता केवल उसके उचित अंश की चाह होती है । विश्वनाथ नरवणे ने पुनर्जागरण की व्याख्या इस प्रकार की है ।[2] पुनर्जागरण के संदर्भ में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है । `पाश्चात्य चिन्तन के अनुसार पुनर्जागरण एक क्रान्ति से कम नहीं है । यह अतीत के पुनरुत्थान की अपेक्षा उससे सम्बन्ध विच्छेद है । जहाँ तक भारतीय चिन्तन का प्रश्न है --`यह लगभग विगत डेढ़ शताब्दियों से दर्शन, विज्ञान और संस्कृति को आधुनिक धाराओं के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता आया है । आज के वर्तमान युग में आधुनिक का सही अर्थ है --पाश्चात्य।[3]

१- शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी गद्यसाहित्य (नई दिल्ली : १९५४) पृ० २७.

२- "पुनर्जागरण का अर्थ है नवीन आलोक, भविष्य की ओर बढ़ने की एक क्रान्तिकारी प्रेरणा, घिसे-पिटे रीतिरिवाजों की जंजीरों से मुक्ति"।

-- विश्वनाथ नरवणे, माडर्न इंडियन थाट (बम्बई : १९६४) - पृ० ८.

३- वही - पृ० ८.

भारतीय मनीषियों ने इसे `सांस्कृतिक पुनर्जागरण` का नहीं अपितु `राष्ट्रीय जागरण` का नाम दिया है । क्योंकि प्रत्येक देश की भौगोलिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । पाश्चात्य सांस्कृतिक पुनर्जागरण में राष्ट्रीय उत्थान एवं जागरण की भावना अन्तर्निहित रही है और भारत में इसके विपरीत राष्ट्रीय जागरण में ही `सांस्कृतिक जागरण` की प्रवृत्ति और संभावना विद्यमान थी । साधारणतया पुनर्जागरण का अर्थ पुनर्जन्म होता है ।[1] आज के प्रारंभिक युग का यह मुख्य विषय रहा है । साइमोन्ड्स ने इसे मानव मन में परिवर्तन की प्रवृत्ति का कारण कहा है । महायोगी अरविन्द के अनुसार --`पुनर्जागरण भारतीय आत्मा का एक नव-शक्ति के रूप में अपने आन्तरिक तथा प्राचीन प्राणों का ही एक पुनर्जन्म है । यह पूर्ण प्रज्ञा है ।[2] पुनर्जागरण में सामूहिक भावना का विकास विद्यमान होता है जिसमें राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष छिपा होता है । `जो पुराण और धर्मशास्त्रों से प्रेरणा तो ग्रहण करता है किन्तु उसे नव-सूझ-बूझ के साथ नई रोशनी में पढ़ा जाता है ।`[3]

भारतीय पुनर्जागरण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसकी जड़ें अपनी ही धरती में थीं । पाश्चात्य विचारों ने उन जड़ों में खाद का कार्य अवश्य किया । भारतीय शिक्षित वर्ग आँख मूँदकर उन्हें ग्रहण नहीं कर रहा था । क्योंकि पाश्चात्य विद्वान विशेषतः जर्मन दार्शनिक भारतीय चिन्तन से बहुत प्रभावित हुए जिनके माध्यम से कालरिज, कार्लाइल, इमर्सन तथा इंग्लैंड और अमेरिका में रोमांटिक आन्दोलन के `पायनियर` भी अपने को अछूते न रख सके ।[4] प्रत्येक पुनर्जागरण के विभिन्न आयाम--

---

१- धम्माप्रसाद, `पुनर्जागरण,` हिन्दी विश्वकोष (वाराणसी : १९६६), खण्ड सात, पृ० ३४०.

२- अरविन्दो घोष, दि रिनैसां इन इंडिया (चन्द्रनगर : १९२०) पृ० ६८.

3. H. Kohn, The Idea of Nationalism (New York: 1951) P. 120.

4. H.G. Rawlinson, India A Short Cultural History, (London: 1952) P. 400.

धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक और राजनीतिक होते हैं और आधुनिक भार-तीय पुनर्जागरण निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता की देन है।`[1]

किन्तु भारतीय पुनर्जागरण पाश्चात्य पुनर्जागरण से भिन्न रूप में विकसित हुआ है। स्वराष्ट्र, स्वधर्मोत्थान की भावना पुनर्जागरण में उसी प्रकार विद्यमान रही है जिस प्रकार सीपी में मोती निहित होता है। राष्ट्रीयता का मोती पुनर्जागरण की सीपी में ही जन्म लेता है। देशभक्ति, जन-एकता, तथा जन-संस्कृति की अनुपस्थिति में `राष्ट्रीयता`[2] की कल्पना असंभव है। ये तीनों उसके अनिवार्य पार्श्व हैं। प्रो० सुधीन्द्र के शब्दों में `राष्ट्रवाद (नेशनेलिज्म) एक व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत चेतना है जिसकी दृष्टि `समूह` या `सर्व` के अभ्युदय और प्रगति पर है`।[3] डाक्टर अम्बेदकर ने इसे एक `सामाजिक चेतना` कहा है।[4] जिसमें ऐक्य की भावना का प्राधान्य होता है। इसी एकता की भावना के बल पर पराधीनता के बंधनों पर प्रहार किया जाता है। किसी भी पराधीन राष्ट्र के लिए यह `एक जबरदस्त अस्त्र है`।[5]

राष्ट्रीय चेतना के दो रूप होते हैं एक मूर्त अथवा बाह्य चेतना। दूसरा अमूर्त अथवा आभ्यांतरिक चेतना। मूर्त भावमें भूमि राष्ट्रीय भाषा, राज्य, सभ्यता और उसका इतिहास तथा अमूर्त भाव में राष्ट्रीय जनजागरण की भावना का उन्मेष होता है। इतिहास को मानवमन के विकास की कहानी कहा गया है जिसके प्रगति चरण बौद्धिक अनुशासन की आधारशिला पर टिके होते हैं। राष्ट्रीयता के विकास में ऐतिहासिक परि-वर्तन पाया जाता है। इसीलिए राष्ट्रवाद के चारों ओर लक्ष्मण-रेखा खींचना संभव

१- A.C. Majumdar, Indian Evolution(Madras: 1917) P. 377.

२- द्रष्टव्य है --(१) प्रेमचंद, विविध प्रसंग - पृ० २७५ (२) राजेन्द्र प्रसाद, खंडित भारत - पृ० ९०.

३- प्रो० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर (दिल्ली, १९५०) - पृ० २३०.

४- बी० आर० अम्बेडकर, आप० सिट०, पृ० १३.

५- आचार्य नरेन्द्र देव, राष्ट्रीयता और समाजवाद(बनारस : २००६ सं०) पृ० १९२.

नहीं है । क्योंकि यह तो मात्र ऐतिहासिक रंगमंच पर विकसित सामाजिक और बौद्धिक तत्वों की देन है ।[1] काल और देश के आधार पर इसके भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण किए जाते रहे हैं ।[2] यथा ब्रिटिश उदारपंथी इसे स्वतंत्रता तथा मुक्ति का प्रेरक कहते हैं और जर्मन-नाजीवादियों के लिए यह प्रजातंत्र के विरुद्ध आक्रमण का प्रबल हथियार रहा है तथा रूसी साम्यवादियों के अनुसार बुर्जुआवर्ग की कब्र को खोदने की यह एक कुदाल है ।

नव-जागरण की भावना जब किसी राष्ट्र में करवट बदलने लगती है तब शासक और शासित के संबंध सूत्रों का पुनर्मूल्यांकन होता है । `अठारहवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता की लहर पश्चिमी यूरोप से उठकर धरती के चप्पे चप्पे में फैल गई । यह जहाँ भी पहुँची उसने वहाँ मानव-मन को और समाज को अपने प्रभामंडल से नवीन रूपमें रूपायित किया ।[3]` सोये हुए राष्ट्र को जगाया । `क्या थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी ?` का घोष निनादित किया । यही कारण है कि अठारहवीं शताब्दी के राष्ट्रवाद में `मानवमात्र के प्रति प्रेम और विश्वबंधुत्व की जो भावना थी वह बीसवीं सदी के राष्ट्रवाद में राष्ट्रीय आन्दोलनों और संघर्षों के रूप में उभर कर सामने आई ।`[4] एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों का मुक्ति आन्दोलन इसका प्रमाण है ।

राष्ट्रीयता और धर्म

राष्ट्रीयता के भावोन्नयन में धर्म की भूमिका विशेष होती है । उसका स्वरूप समन्वयात्मक होता है । समन्वय की पीठिका में ही राष्ट्रीय भाव जन्म लेते हैं ।राष्ट्रीय

---

1. H. Kohn, Op. Cit. P. 6.
2. "A Complicating factor is that the meaning of nationalism changes the course of history. Another is that it means different things to different peoples." L. Louis Snyder, The meaning of Nationalism (New Jersey: 1954), P. 4.
3. H. Kohn, Op. Cit. P. VII - (Preface).
4. H. Ko. "Nationalism" Encyclopaedia of Britannica, (Chicago: 1972) Reprint. Vol. XVI, P. 61.

भाव व्यक्तियों के भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पर्यावरण से जो अनेक रूप ग्रहण करते हैं, जिनकी उद्भावना एक देश से दूसरे देश में तथा एक काल से दूसरे काल में भिन्न होती है। परन्तु धर्म उन्हें एकसूत्र में पिरोने का काम करता है। धर्म से मेरा आशय रूढ़ अर्थ में नहीं है। राष्ट्रवाद का विकास शिक्षित वर्ग में धार्मिक पुनरुत्थान से हुआ। धर्मनिरपेक्ष शिक्षा ने ही उसे प्रगति के पथ पर अग्रसर किया[1]। कतिपय विद्वानों ने इसे मानवमन की प्रथम और अन्तिम मानसिक दशा कहा है। स्वर्गीय चितरंजन दास के अनुसार 'राष्ट्रवाद स्वानुभूति में स्वविकास तथा स्व-संतोष की एकमात्र प्रक्रिया है'[2]।

भारतीय राष्ट्रवाद का स्वरूप

भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के उष:काल में जिस सांस्कृतिक पुनर्जागरण का बीजवपन हुआ वह धार्मिक न होकर सामाजिक था। जागरण, सुधारवाद और क्रान्ति ये इतिहास के तीन सोपान हैं। यदि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में उन्हें परखा जाय तो ये खरे उतरेंगे। ब्रिटिश उपनिवेशवाद से पूर्व 'राष्ट्रीयता' को कोई जानता भी न था वह तो पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा तथा उनके संसर्ग की उपज है[3]। आधुनिक भारतीय चिन्तन को पाश्चात्य सांचे में ढाला गया। 'भारतीय शिक्षित वर्ग जब अपनी प्राचीन सभ्यता और आचार-विचारों का अपने वैज्ञानिक ज्ञान तथा दर्शन का प्रत्यवलोकन अपनी आधुनिक शिक्षा के प्रकाश में करने लगा तो उसे अनुभव हुआ कि अवश्य ही सर्वप्रथम अपना ध्यान सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों पर लगाना चाहिए'[4]। भारत न केवल चीजों

---

1. G.T. Garratt, An Indian Commentary, (London: 1928), P. 125.
2. P.C. Ray, Life And Time of C.R. Das, (London: 1927), P. 256.
3. Haridas And Uma Mukherjee, The Growth Of Nationalism In India, (Calcutta; 1957), P. V (Forward).
4. K.P. Karunakaran, Continuity And Change In Indian Politics, (N. Delhi : 1964), P. 22.

की दासता का शिकार हो गया था अपितु धार्मिक आडम्बरों ने उसे लुंज-पुंज कर दिया था । "उठता हुआ मध्यम वर्ग राजनीतिक प्रवृत्ति वाला था और उसे धर्म की कोई खास तलाश नहीं थी । उसे एक सांस्कृतिक नींव की जरूरत थी - - - - - जो उस मायूसी और हीनता को दूर करती । हर एक देश में राष्ट्रीयता की तरक्की के साथ धर्म के अलावा एक ऐसी तलाश होती है और गुजरे जमाने पर ध्यान देने का रुझान होता है"।[1] रानाडे जैसे प्रसिद्ध समाज सुधारक भी "राजनीतिक जागरण के लिए सामाजिक सुधारों को अनिवार्य मानते थे"।[2] क्योंकि बिना सामाजिक जागृति के राजनीतिक जागृति का कोई मूल्य नहीं होता है । भारत में "राष्ट्रीयता की ज्योति सबसे पहले बंगाल में प्रज्वलित होती दिखाई दी । प्रारंभ में धार्मिकता का जामा पहनकर उसका उदय हुआ था - - - - - पश्चिमी ज्ञान की नवीन ज्योति प्राप्त बंगाली हिन्दू अपने आचार-विचार में परिवर्तन करके भारत का नव-निर्माण करने का प्रयत्न करने लगे"।[3] यह वर्ग भारतीय समाज में पूर्ण क्रान्ति का अभिलाषी था और "इसके लिए उनका यह दृढ़ विश्वास था कि सबसे पहले धार्मिक आचार-विचार में क्रान्ति होनी चाहिए फिर सामाजिक और अन्त में राजनैतिक"।[4]

भारत में जिस राष्ट्रीयता ने जन्म लिया था उसमें धर्म और राजनीति में दोस्ती हो गई थी । वैलेन्टाइन शिरोल का भारतीय संदर्भ में यह कथन कितना तथ्यपूर्ण है ।[5] पुनर्जागरण की क्रोड़ में जो विभिन्न सुधार आन्दोलन उभर रहे थे उन्हें श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है । वे कहती हैं --"भारतीय

१- जवाहरलाल नेहरू, भाप0डि0 - पृ0 ४६५-६६.

२- V.B. Kulkarni India & Pakistan (Bombay: 1973), P. 136.

३- बाबूराव जोशी : भा0 नवजाग0 इति0 (नई दिल्ली : १९५४) - पृ0 १९

४- वही - पृ0 १९.

५- "The mixture of religion with palitics has always produced a highly explosive compound." Valentine Chirol - Op. Cit. P.XV.

सुधार आन्दोलन के चार रूप थे । वे हैं -- शैक्षिक सुधार, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सुधार ।[1] सामाजिक सुधारों के अन्तर्गत विदेश-यात्रा, बालविवाह का अन्त, विधवा विवाह, जातिप्रथा का अन्त, रंग, धर्म, छुआछूत का अन्त आदि मुख्य विषय थे । समाज में एक नवीन परिवर्तन आ रहा था । 'जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन का चिह्न दिखाई दिया वह था -- एक नये वर्ग का संगठन । यह नया वर्ग जातिवाद के बंधनों को तोड़ते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मण और 'परियाह' को एक ही आँख से देखने लगा'।[2] धर्म ने परिवर्तित युगीन परिस्थितियों के आगे घुटने टेक दिये । उसकी नयी व्याख्या हुई । 'धर्म जीवन का एकांश नहीं अपितु वह उसकी एक सम्पूर्ण इकाई है जिसके अन्तर्गत नागरिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आदर्शों के साथ-साथ राष्ट्रवाद का वैचारिक भाव भी आता है ।'[3] किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक सभी सुधार एक दूसरे के पूरक होते हैं । किसी एक के विकास हेतु सबका विकास अनिवार्य है । यदि किसी समाज के धार्मिक विचार निम्न तथा तुच्छ हों तो वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में उन्नति नहीं कर सकता । बिखरावपूर्ण समाज में एक सुदृढ़ आर्थिक परम्परा दूभर है । निम्न सामाजिक स्तर उच्च राजनीतिक उपलब्धि में बाधक होता है ।[4]

अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप देश में जो राष्ट्रवाद की चेतना सामाजिक सुधार आन्दोलनों के रूप में अंकुरित हुई उसका उन्मेष राष्ट्रीय जन-जागरण, सांस्कृतिक उत्थान, राष्ट्रीय साहित्य और कला के विकास के रूप में संभव हुआ । ब्रिटिश शासन काल में

---

1. Annie Besant "United India", The Indian Review (Madras: 1913) No. X, P. 760.
2. K.M. Pannikar, The Foundation of New India,(London: 1963) P. 96.
3. B.C. Pal, Swadeshi And Swara j, (Calcutta: 1954), P. 201.
4. R.C. Majumdar, An Advance History of India, (London: 1949) Reprint, Part. III, P. 802.

विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन भारतीय जनता के उभरते हुए राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक थे ।[1] डा० पट्टाभिसीता रामय्या राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में राष्ट्र और समाज का अस्तित्व पृथक नहीं मानते । वे कहते हैं --"यद्यपि हम समाज और सरकार को दो पृथक वस्तुओं के रूप में समझते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि समाज पर नैतिक और धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप में विदेशी सरकार का प्रभुत्व होने से वास्तव में एक ही शक्ति का सामना करना है ।"[2] जहाँ तक भारतीय राष्ट्रवाद का उद्देश्य है "उसका उद्देश्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज का सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक पुनरुत्थान करना था ।"[3] इन्हीं तत्वों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव को परिपक्व किया । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जिन सामाजिक सुधार आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ था उनका प्रभाव बीसवीं शताब्दी के चतुर्थ दशाब्दी में देखने को मिलता है । इन आन्दोलनों ने "सामाजिक रूप विधान के नव-निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया ।"[4]

(ग) सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन

भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास को जानने के लिए भूमिका के रूपमें उन विभिन्न सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलनों का संक्षिप्त विवेचन अप्रासंगिक न होगा जो ज्वालामुखी का रूप धारण करने से पूर्व धरती की क्रोड में हलचल मचाने वाले तप्त लावे की भाँति भारतीय समाज में फूट रहे थे । शिक्षित वर्ग की विवेचन और विश्लेषण-शक्ति कार्य करने लगी थी । समाज से धीरे धीरे मूक मंथरता का पिंड छूट रहा था । अपनी दीनता और हीनता के कारणों पर उसकी दृष्टि ठहरने लगी थी । इन सब नवीन विचारों ने उसकी प्राचीन धार्मिक नींव को एक ही झटके में तोड़कर रख दिया

१- ए० आर० देसाई, आप० सिट०, पृ० २२१.
२- पट्टाभिसीतारामय्या, महात्मा गांधी का समाजवाद (इलाहाबाद :१९४६)पृ०२२.
३- पी० डी० कौशिक, दि कांग्रेस आइडियोलोजी एण्ड प्रोग्राम (बम्बई :१९६४)पृ०६३.
४- सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास(नई दिल्ली : १९६५), पृ० ३६.

बूट और टोप उसे लुभाने लगे थे । समुद्र पार की अबाधी यात्रा के लिए मन लालायित हो उठा । ईसाई मिशनरी छात्रवृत्ति का लोभ दिलाकर लन्दन का टिकट नवपीढ़ी के हाथ में थमाने लगे । कालान्तर में `पिकनिक` का यह आवागमन सर्व सामान्य हो गया ।

ब्रह्म समाज

उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय दशाब्दी में कतिपय मांगों को लेकर इंग्लैंड में `ब्रिटिश सुधार आन्दोलन` चला । उस आन्दोलन की सफलता का प्रभाव राजाराम मोहन राय पर पड़ा । उस आन्दोलन के व्यापक प्रभाव का ही कारण था कि अंग्रेजों के रुख में भारत के प्रति नम्रता दिखाई देने लगी । राजाराम मोहन राय इंग्लैंड से एक नवीन विश्वास लेकर भारत वापस आये । भारत में `ब्रह्म समाज` की स्थापना का मूल कारण `ब्रिटिश सुधार आन्दोलन` की सफलता से प्राप्त प्रेरणा ही थी । `जिस प्रकार [illegible] रूप में पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का आरंभ अरिस्टोटिल से माना जाता है उसी प्रकार आधुनिक भारत में राजनीतिक विचारों का इतिहास महामना राजाराम मोहन राय से प्रारंभ होता है ।`[1] दीनबंधु एण्ड्रूज ने उक्त आन्दोलन के काल को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के भवन की नींव कहा है ।[2] `आत्मीय सभा` तथा `उपासना सभा` ब्रह्म समाज में परिणत हो गये । सामाजिक कुरीतियों -- मूर्तिपूजा, बहु विवाह प्रथा, सती प्रथा, तीर्थ-व्रतों का ढकोसला आदि के विरुद्ध विश्वव्यापी सामाजिक संघर्ष की घोषणा कर दी थी । `उनकी मान्यता थी कि किसी भी श्रेष्ठ धर्म में इन कुरीतियों की स्वीकृति नहीं हो सकती । वेद भी इनका समर्थन नहीं करते । भारतीयों का वेदान्त से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन्होंने वेदान्त के खास ग्रन्थों का अनुवाद किया और उन्हें वितरित कराया । जिससे धार्मिक अंधविश्वास समाज से

---

1. विमनबिहारी मजूमदार, हिस्ट्री ऑफ इंडियन सोशल एण्ड पालिटिकल आइडियाज (कलकत्ता : १९६७), पृ० २२.
2. C.F. Andrews And G. Mukharjee, Op. Cit. P. 4.

नष्ट हो सके ।[1] वे भारतीय समाज की काया में आच्छादित मैल को धोकर उसे कंचन करना चाहते थे । इसीलिए पाश्चात्य सभ्यता के साथ संधि का हाथ बढ़ाया गया था । ब्रह्मसमाज ने भारतीय समाज में आधुनिक नागरिक की भूमिका निभाई तो आर्यसमाज ने आधुनिक सैनिक की । एक 'सांस्कृतिक उद्भावक' था और दूसरा 'समाज सुधारक'।

भारतीय पुनर्जागरण का विकास दो मुख्य धाराओं में विभक्त दिखाई देता है । एक धारा का प्रतिनिधित्व ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज द्वारा हुआ और दूसरी धारा का आर्यसमाज रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि के द्वारा ।[2]

आर्य समाज ने हिन्दू-जाति को एक नवीन संजीवनी शक्ति प्रदान की । दयानंद सरस्वती ने समाज में विद्यमान अंधविश्वासों, रूढ़ियों, मूर्तिपूजा और बाल-विवाह का विरोध किया तथा 'वेदों की ओर लौट चलो' के साथ-साथ आर्यावर्त आर्यों के लिए[3] का नारा दिया । जिसकी परोक्ष ध्वनि 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सुनाई दी । आर्य समाज सामाजिक जागृति का अगुवा था । जातिप्रथा के विरोध के अलावा स्वामी दयानंद ने नारी-समानता की गुहार लगाई और राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली का समर्थन किया ।[4]

आर्यसमाज

आर्यसमाज जहाँ ऊपरी सतह पर सामाजिक क्रान्ति कर रहा था वहीं राष्ट्रीय क्रान्ति के बीजों को भी परोक्ष रूप में भारतीय जन-मानस में बो रहा था । डा० कर्ण-सिंह का कथन है कि 'आज इसमें किंचित भी संदेह नहीं है कि 'स्वदेशी आन्दोलन'(१९०५)

---

1. G. Ghose, Op. Cit. P. 18.
2. P.D. Kaushik, Op. Cit. PP. 7-8.
3. Hiren Mukerjee, India's Struggle For Freedom, (Calcutta:1962), P. 101.
4. S.P. Sen, Dictionary of National Biography, (Calcutta: 1973), Vol. I, P. 408.

के पीछे आर्यसमाज के धार्मिक राष्ट्रवाद का ही हाथ था ।[1] जिसने देशप्रेम की लहर सारे देश में उत्पन्न कर दी थी । इसी समाज के प्रभाव से देश की अधोगति के प्रति असंतोष, विदेशी शासन के प्रति मूक विरोध की भावना जनता में उत्पन्न हुई । बीसवीं शताब्दी में उसका स्वरूप गुप्त रूप से राजनीतिक हो चला था । `क्रान्तिकारी आन्दोलन` के बहुत से देशभक्त आर्यसमाज की स्वदेश प्रेम की भावना की ही देन थे। `बिस्मिल` कहते हैं -- `मैंने `सत्यार्थ प्रकाश` पढ़ा, उससे तख्ता ही पलट गया । 'सत्यार्थप्रकाश' के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया ।`[2]

आर्यसमाज ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, समाजवादी, क्रान्तिकारी आदि दलों की भाँति किसी राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात नहीं किया था परन्तु उसका प्रत्येक सदस्य एक `बौद्धिक सिपाही` अवश्य था । उसके भावी रूप से ब्रिटिश सरकार भी घबराती थी । एक गोपनीय दस्तावेज में कहा गया है -- `आर्यसमाज शीघ्रातिशीघ्र एक उग्र राजनीतिक संस्था बनता जा रहा है जिसके सदस्य विभिन्न शाखाओं के माध्यम से उग्र विचारों के प्रसार की मशीनरी का काम कर रहे हैं - - - - ।`[3] राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में स्वदेशी, स्वभाषा, स्वराष्ट्र आदि की गूंज को प्रचलित करने का श्रेय इसी समाज को जाता है । `सुधारवादी आन्दोलनों का ध्येय - - - राष्ट्रवादी था, इसीलिए आर्यसमाज का आन्दोलन अपनी ऐतिहासिक भूमिका सम्पूर्ण कर राष्ट्रीय आन्दोलन में घुल-मिल गया ।`[4]

---

1. Karan Singh, Op. Cit. P. 22.
2. Ram Prasad 'Bismil', Kakori Ke Shaheed, (Delhi: N.D.) Hindi, P. 47.
3. "The Arya Samaj is rapidly becoming nothing but a political society of the extreme type. XXX There is ample evidence that the branches have been used for this purpose." Progs: Govt. of India, Home Deptt., Poll. Confl. F. Ns.(B) 40-49, Oct. 1907.

४- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएं(दिल्ली :१९७२) - पृ० ४२-४३.

थियोसोफिकल सोसाइटी

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में लगभग पच्चीस-तीस वर्षों के बाद विभिन्न सामाजिक सुधारों की दुंदुभि देश के कोने-कोने में बज रही थी । उदारचेता विदेशी भी भारतीय समाज को एक नवीन रूप देना चाहते थे । सन् १८७५ में एक रूसी महिला मादाम ब्लावात्स्की ने 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की स्थापना की । भारत में इसका प्रभाव श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के नेतृत्व में खूब फूला और फला ।[1] ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज की ही तरह इस संस्था ने भी भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आत्मा को जगाया । हिन्दू आदर्शों के प्रति विश्वास और प्राचीन गौरव के प्रति लगाव इसकी विशेषता थी । स्वामी विवेकानंद ने इसे 'अमरीकी अध्यात्मवाद की भारतीय कलम'[2] की संज्ञा दी थी । इसके मुख्य उद्देश्यों में विश्वबंधुत्व की स्थापना करना, आर्य साहित्य और दर्शन के अध्ययन को आगे बढ़ाना और प्रकृति के अज्ञात नियमों तथा मानव में छिपी किन्तु संभव भौतिक शक्तियों की खोजबीन करना था ।[3] इस संस्था ने हीनता बोध से पीड़ित भारतीय समाज को बड़ी राहत पहुँचाई । श्रीमती बेसेन्ट ने 'आत्म सम्मान' और 'आत्म निर्भरता' के भावों का खूब प्रचार देशवासियों में किया । प्राचीन भारतीय गौरव का स्मरण दिलाया । होमरूल आन्दोलन ने देश की काया पलट कर दी । ब्रिटिश शासन की वह कट्टर आलोचक थीं ।[4]

१- पी० स्पियर, माडर्न इंडिया (लन्दन : १९६५), पृ० २८८.

२- के० दामोदरन, आप० सिट०, पृ० ३१०.

३- सी० पी० रामास्वामी अय्यर, ऐनीबेसेन्ट (भारत सरकार : १९७०), पृ० ४१.

४- "There were four great Auto cracies at the beginning of the war: The Tsar over Russia, the Australian Emporor over Austria, the Kaiser over Germany, the British Emporor over India. Two have fallen, one is falling, is the fourth to remain, to be the amusement of, and menace to, a world set free." Progs: Govt. Home Deptt. Poll. Cof. F. Nos. (B) 150-130 of Feb. 1919.

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण परमहंस का सामाजिक सुधार आन्दोलन अपने आप में एक आश्चर्य-जनक वस्तु थी । क्योंकि उन्होंने जो आन्दोलन आरंभ किया उसकी प्रेरणा उन्हें अंग्रेजी के ककहरे से न मिली थी । कोई भी सामाजिक सुधार आन्दोलन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें सरकार का सहयोग न हो । जातिवाद, वर्णवाद, छुआछूत, गरीबी आदि समस्याओं के निवारण के लिए स्वदेशी सरकार का होना वांछनीय था । परि-णामत: सामाजिक आन्दोलन का रूप राजनीतिक आन्दोलन के रूप में प्रकट होने की संभावना थी । उन्होंने जो सामाजिक आन्दोलन का आरंभ किया उसमें राजनीति की गंध लिपटने लगी थी ।[1]

परमहंस ने दासता के लिए स्वयं भारतीयों को दोषी बताया । उन्हें दासता-पूर्ण जीवन जीने के लिए अभ्यस्त होने पर फिड़कियां सुनाईं । विदेशियों की दृष्टि में उन्हें घृणा का पात्र तथा तुच्छ-हीन समझे जाने के कारणों का भावाबोध कराया ।[2]

स्वामी विवेकानंद

रामकृष्ण परमहंस के कार्य को उनके शिष्य विवेकानंद ने आगे बढ़ाया । उन्होंने साम्राज्यवाद के बूटों से कुचले हुए भारतीय आत्मसम्मान को पुन: स्थापित किया । भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रचार से भारतीय जनमन भी मन बड़े क्षुब्ध थे । उनके धर्म पर की जाने वाली चोटों से वे तिलमिला उठे थे । वे भी अद्वैतवाद की ओर उन्मुख हुए जिसमें मूर्तिपूजा, अवतारवाद, जातिवाद तथा अंधविश्वासों के लिए कोई स्थान न था ।[3]

स्वामी विवेकानंद भी वेदान्त के द्वारा ही मानव कल्याण संभव मानते थे । क्योंकि वेदान्त एक ओर आध्यात्मिक है तो दूसरी ओर तर्कसंगत भी । वैज्ञानिकजगत की

---

1. C.F. Andrews And G. Mukharjee, Op. Cit. P. 19.
2. Ibid. P. 20.
3. S. Ghose, Op. Cit. P. 12.

लोगों से सहज ही उनका सामंजस्य बैठाया जा सकता है । 'मानव में ईश्वर दर्शन ही सच्चा ईश्वर दर्शन है ।'[१] यही वेदान्त का सार है ।

हिन्दू पुनर्जागरणवाद के इतिहास में स्वामी विवेकानंद का मिशन 'शिकागो धर्म सम्मेलन'[2] में एक अनोखी महत्वपूर्ण घटना रही है । उसकी व्यापक प्रतिक्रिया सम्पूर्ण देश में हुई । देश में उन्होंने एक सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया । देश के पतन का कारण उन्होंने भी परमहंस की भाँति स्वयं देशवासियों को ही माना । उनका कथन था कि 'साधुओं, संन्यासियों तथा ब्राह्मणों के वर्ग विशेष ने देश को विनाश के कगार पर फेंक दिया है । ये लोगों से दक्षिणा भी लेते हैं और हमें मत छुओ, हमें मत छुओ का उद्घोष भी करते हैं ।'[3]

विवेकानंद दीन में ही दीनबंधु को मानते थे । उनका कहना था कि आज जिस रूप में हिन्दू धर्म को माना जाता है वह न तो वेदों में है न पुराणों में और न मुक्ति में तथा न भक्ति में है, वह तो आज भोजन के बर्तनों में प्रवेश कर गया है । हिन्दू धर्म में न तो ज्ञान रह गया है और न तर्क शक्ति । यह केवल छूतवाद बन कर शेष रह गया है ।[4] उन्होंने प्रत्येक प्राणी को यह संदेश दिया था कि 'वह तो परब्रह्म सेवकों के सेवक का सेवक है ।'[5] और 'आत्मवत सर्वभूतेषु' ही उनका उपदेश था ।

देश की गरीबी से निजात पाने का एकमात्र उपाय स्वतंत्रता बतलाते हुए वह कहते हैं -- 'गुलाम दूसरों को गुलाम बनाने के लिए ही शासनतंत्र चाहता है । बहादुर व्यक्ति अकेला ही महान्कार्य करता है, कायर व्यक्ति नहीं' । मैं ऐसे ईश्वर में विश्वास नहीं करता जो मुझे एक जून रोटी भी न दे ।'[6]

१- जवाहरलाल नेहरू, आप० सिट० - पृ० ४५५.

2. Valentine, Chirol, Op. Cit. P. 20.

3. Ramanand Chatterji, ed. The Modern Review, (Calcutta:1919) Vol. 25, P. 305.

4. Ibid P. 551.

यद्यपि स्वामी विवेकानंद कोई राजनीतिक नेता न थे फिर भी भारतीय राजनीति पर उनका बड़ा मार्मिक प्रभाव पड़ा । "समाजवादी परंपरा पर विचार करने वाले वह प्रथम गणमान्य भारतीय नेता थे ।"[१] पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी एक पुस्तक में उनके उपर्युक्त भाव को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि स्वामी जी कहते थे कि --"मैं समाजवादी हूँ लेकिन इसलिए नहीं कि मैं उसे एक (दोषहीन) व्यवस्था समझता हूँ बल्कि इसलिए कि पूरी रोटी न मिलने से आधी रोटी मिलना ही बेहतर है ।"[२] विवेकानंद की समाजवादी धारणा के पीछे भारतीय गरीबी, साधुओं और ब्राह्मणों द्वारा जनता का शोषण ही एक मात्र कारण था ।[३]

<u>महायोगी अरविन्दो</u>

महायोगी अरविन्दो[४] राजनीति से अध्यात्म की ओर उन्मुख हुए थे । अरविन्दो के विचारों ने भारतीय राजनीतिक संघर्ष में तूफान खड़ा कर दिया था । उनकी मान्यता थी कि हमारा वास्तविक शत्रु कोई बाह्यशक्ति नहीं है । हमारी कमजोरी, हमारी कायरता, हमारा स्वार्थ, दकियानूसी, हमारे अंध-विश्वास ही हमारे शत्रु है ।"[५] देश की स्वाधीनता के लिए इन सब अवगुणों का शमन वह आवश्यक मानते थे । मातृभूमि के बारे

१- K.P. Karuna Karan, Modern Indian Political Tradition (New Delhi: 1962), P. 123.

२- Jawahar Lal Nehru, Discovery Of India (N. Delhi: 1960) Hindi edi., P. 461.

३- "A Country where millions of people lived on the flowers of the Mahua tree, and a million or two of Sadhus and hundred million or so of Brahmins suck the blood out of these poor people, is that a country or hell? Is that a religion or a devils dance?" Ramanand Chatterjee,(ed), Op. Cit. P. 330.

४- कीता उच्चारण.

५- कर्णसिंह, आप० सिट० - पृ० ६४.

में उनका एक विशेष दर्शन था । वह मातृभूमि-- भारत को "माँ दुर्गा" के रूप में मानते थे ।"[1] स्वदेशी ही उनका मूलमंत्र था और वह परतंत्रता से पूर्ण मुक्ति के प्रबल पक्षपाती थे ।

सामाजिक सुधार आन्दोलनों की परम्परा में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रानाडे, सर सैयद अहमद खाँ, बंकिमचंद्र, 'टैगोर' तथा महात्मा गांधी आदि के योगदान ने भारतीय जनों को झिंझोड़ कर जगाया । सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन के लिए एक टानिक का कार्य किया । उनका राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम से प्रत्यक्ष संबंध न होने पर भी परोक्ष प्रभाव पड़ा । कोई धर्म को माने या न माने किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने देश में एक नवीन वातावरण की सृष्टि की । पद-दलित एवं पराधीन देशवासियों ने उनके माध्यम से धर्म की नवयुगानुकूल नव-व्याख्या सुनी । उन सुधार आन्दोलनों की एक विशेषता यह भी थी कि वे "धार्मिक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय भी थे । जिन्होंने भारतवासियों को अपने महान उत्तराधिकार (स्वशासन) के प्रति सचेत किया ।"[2] भारत में जो राष्ट्रीयता विकसित हो रही थी "उस भारतीय राष्ट्रीयता की डोर में ये आन्दोलन कितने ही धागों के समान थे ।"

सभी सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने भावी भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के लिए समतल भूमि तैयार की थी जिस पर स्वातंत्र्य संघर्ष का बिगुल बजाया गया था । यदि ये सामाजिक सुधार आन्दोलन न हुए होते 'भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष' का युद्ध लम्बा लड़ना पड़ता । उन्हीं आन्दोलनों ने राजनीतिक संघर्ष के बीजों को भारतीय भूमि पर बिखेरा था । कालान्तर में उर्वरक मिलते ही उनमें अंकुर फूटने लगे ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय में उन्हीं स्वातंत्र्य संघर्ष के बीजांकुरों के विकास का विवेचन विवेच्य विषय है ।

१- के० पी० करुणाकरण, वाप० सिट० - पृ० १६७.

२- गुरुमुख निहालसिंह, वाप० सिट० - पृ० ११०.

द्वितीय अध्याय

पृष्ठभूमि | स्वातंत्र्य संघर्ष के विभिन्न सोपान

"पूर्ण स्वाधीनता भारत को चाहिए हो, क्योंकि उसकी स्वाधीनता पर सारे संसार का पुनरुद्धार निर्भर है। यह स्वयं एक साध्य नहीं, प्रत्युत एक उद्देश्य का साधन है, और वह उद्देश्य है साम्राज्य-सत्ता और सैनिक आधिपत्य का संहार और सब लोगों के रहने को एक नये अच्छे संसार की सृष्टि।"

— रासबिहारी बोस

संघर्ष की ओर : राजनीतिक चेतना का बीजांकुर

सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना के फलस्वरूप भारतीय नव-शिक्षित वर्ग धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़ियों के अतिरिक्त राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति अनिवार्य मानने लगा। ब्रिटिश अत्याचारों[1], बाढ़, सूखा और अकालों[2] का भारी भरकम बोझ जनता से उठाये न उठता था। भारतवासियों के मन में धीरे-धीरे कटुता और घृणा का भाव उत्पन्न होने लगा। जिसके अनेक कारणों में पाश्चात्य राजनीतिक आदर्शों से प्रेरणा, सांस्कृतिक पुनर्जागरण से भारतीय प्राचीन वैभव के प्रति अनुराग, देशभाषा साहित्य का प्रचार, संचार साधनों का द्रुतविकास, ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त एवं घोषित आश्वासनों की बार-बार अवहेलना आदि प्रमुख थे। शासक और शासित की दूरी दिन दूनी रात चौगुनी कटुता के कारण बढ़ती ही गई। सामाजिक सुधार आन्दोलनों की विविध समस्यायें शासनतंत्र से प्रत्यक्ष सम्बद्ध होती हैं। 'बिना आर्थिक विकास तथा राजनीतिक कानूनों को प्राप्त किए सामाजिक समस्याओं का समाधान संभव नहीं होता है।'[3] व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए स्वशासनतंत्र की अनिवार्यता अनुभव की जाने लगी क्योंकि किए गये सुधारों का वांछित लाभ प्राप्त नहीं हो रहा था। ब्रिटिशशासन का रुख असहयोगपूर्ण तथा उदासीन था। भारतीय सोचने लगे थे कि 'बिना स्वाधीनता के सुख संभव नहीं है'[4] और राष्ट्रीय स्वाधीनता सामाजिक स्वाधीनता पाने की प्रथम सीढ़ी है[5]। किसी भी समाज का जब तक भौतिक आधार परिवर्तित नहीं होता तब तक उस समाज में पिछड़ापन विद्यमान रहता है। 'जब एक शक्तिशाली

१- विलियम डिग्बी, इंडिया फार दि इंडियन्स(लन्दन : १८८५), पृ० २६०.

२- (क) रिपोर्ट आन नेटिव न्यूजपेपर्स (बंगाल : १९००) अक्तूबर-दिसम्बर, गोपनीय रिपोर्ट संख्या ५१, पृ० १५२१
(ख) आर० सी० मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्टसी एण्ड इंडियन रेनेसां (बम्बई : १९७०) भाग-प्रथम, खण्ड-नौ, पृ० ६१६.

३- रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स (बंगाल :१९०९), मई-जुलाई, गोपनीय रिपोर्ट, संख्या २३, पृ० ९८९.

४- रामानंद चटर्जी(सम्पा०), दि माडर्न रिव्यू(कलकत्ता: १९१९), खण्ड-२५, पृ० १.

५- रजनी पामदत्त 'आज का भारत', अनु० रामविलास शर्मा (बम्बई : १९४८) पृ० ५८.

जनआन्दोलन साम्राज्यवादी और सामन्तवादी जुएं को उतार फेंकता है तभी एक साथ भौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति संभव होती है ।'[1] शासकों की प्रतिक्रिया-वादी हरकतों के कारण ही जन-आन्दोलन जन्म लेते हैं । स्वशासन और स्वाधीनता द्वारा ही सामाजिक समस्याओं का समाधान संभव होता है । 'भारतीय नेता भी राज-नीतिक सत्ता को सामाजिक और धार्मिक सुधारों को गति प्रदान करने के लिए आवश्यक मानने लगे थे ।'[2]

भारत में ब्रिटिश राज्य उस विशाल वटवृक्ष की तरह था जिसके नीचे कुछ भी विकसित नहीं होता । यदि कुछ विकसित होता भी है तो वह उसकी अपनी ही लम्बमान विभिन्न जड़ें होती हैं जो धरती का स्पर्शमात्र करती हैं । ब्रिटिश शासन ने अपनी नींव को सुदृढ़ करने के लिए ही वटवृक्ष की जड़ों के समान भारत में अनेक नवीन वर्गों को जन्म दिया । जिनमें जमींदार भूमिपति, जोतदार, मजदूर, व्यापारी और साहूकार मुख्य थे । दूसरी ओर शिक्षित नवयुवक जब विदेशों से स्वदेश लौटते उन्हें यहां का दासता-पूर्ण जीवन कचोटने लगता । वे नैराश्य के महासागर में गोते खाने लगते । उनके साथ अंग्रेजों द्वारा किसी भी स्तर पर समानता का व्यवहार नहीं होता था । परिणाम-स्वरूप एक राजनीतिक असंतोष का अंकुर उनके हृदय में अंकुरित होने लगा ।[3] जिनमें विशेष-कर पेशेवर वर्ग -- वकील, डाक्टर, अध्यापक तथा सरकारी कर्मचारी थे ।

इसी राजनीतिक असंतोष ने भारत में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं को जन्म दिया जिनमें 'जमींदारी एसोशियेशन कलकत्ता,'[4] 'ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी'[5] सन् १८५७ के

१- रजनी पामदत्त 'आज का भारत', अनु० रामविलास शर्मा (बम्बई : १९४८), पृ० ४८.
२- ए० आर० देसाई, सोशल बैकग्राउण्ड आफ इंडियन नेशनेलिज्म (बम्बई : १९४८), पृ० २२२.
३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग, राजनीतिक (ब) गोपनीय पत्रावली संख्या ३९-१९७, जुलाई १९०७.
४- बी० बी० मजूमदार, इंडियन पालिटिकल एसोसिएशन एण्ड रिफार्म आफ लेजिस्लेचर (कलकत्ता : १९६५), पृ० २३.
५- बिरेन मुकर्जी, इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम (कलकत्ता : १९६२), पृ० ६२.

विप्लव से पूर्व ही स्थापित हो चुके थे। यद्यपि इन संस्थाओं के आन्दोलन का स्वरूप वैसा न था जैसा स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों की संस्थाओं का था। ये संस्थाएं मात्र वैधानिक मांगों तक ही सीमित थीं।

<u>१८५७ का विप्लव</u>

ब्रिटिश भारत के इतिहास में १८५७ के विद्रोह ने एकदम देश की कायापलट ही कर दी। शासकों और शासितों के सम्बन्धों में आमूलचूल परिवर्तन हो गया।[१] इसके अतिरिक्त महारानी `एलिजाबेथ की घोषणा` से भी मनोमालिन्य कम न हुआ। महात्मा गांधी का कहना है `१८५७ की घोषणा बलवे के अन्त में लोगों में शान्ति कायम रखने के लिए की गई थी। जब शान्ति हो गई और लोग भोले दिल के बन गये तब उसका अर्थ बदल गया।`[२] उस विप्लव का महान योगदान यह था कि वह भारतीय जन-जन की चर्चा का विषय बन गया। तथाकथित सुधार भार स्वरूप लगने लगे।[३] अमानुषिक अत्याचारों के जख्मों को जनता भुला न पाई। पुनः बिखरे हुए सूत्र एकता का रूप ग्रहण करने लगे। `एकता में बल है` की धारणा और पकड़ने लगी। प्रान्तीयता ने अपना चोला त्याग कर अखिल भारतीयता का स्वरूप धारण कर लिया। उच्चशिक्षा के विस्तार ने इसमें चार चांद लगा दिए।

<u>विभिन्न राजनीतिक संस्थाएं</u>

कुछ लोगों की यह धारणा है कि भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष का प्रारंभ `भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से हुआ। यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसे पल्लवित किया किन्तु राजनीतिक संघर्ष का प्रच्छन्न बीजारोपण उससे पूर्व हो गया था। लाला लाजपत राय की मान्यता है कि `भारत में महान विप्लव (१८५७) के बाद बीस वर्षों के भीतर ही राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म हो चुका था।`[४] पं० जवाहरलाल नेहरू

१- गुरुमुख निहालसिंह, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, अनु० सुरेश शर्मा, (दिल्ली : १९६०)पृ०११

२- महात्मा गांधी, `हिन्द स्वराज्य` (अहमदाबाद : १९४८) पृ० ५७.

३- पी० स्पियर, माडर्न इंडिया (लन्दन : १९६१), भाग-३, पृ० २७४.

४- लाजपतराय, यंग इंडिया (भारत सरकार-प्रकाशन : १९४८), पृ० १०८.

का कथन उपर्युक्त मान्यता को पुष्टि करता है -- 'ज्यों-ज्यों गदर के आतंक के बाद लोग धीरे-धीरे पनपे उनके दिमाग में एक [illegible] और [illegible] भरने के लिए किसी चीज़ की जरूरत थी'।[1] इस [illegible] की पुष्टि [illegible] नाना राजनीतिक विचारों का प्रस्फुरण होने लगा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से पूर्व देश के विभिन्न भागों में अनेक राजनीतिक संस्थाओं ने कार्यारंभ कर दिया था।

इन संस्थाओं में ऊपर उल्लिखित संस्थाओं के अतिरिक्त 'इंडियन एसोशिएशन', 'बाम्बे एसोशिएशन', 'सार्वजनिक सभा',[2] और 'हिन्दू मेला'[3] आदि प्रमुख हैं। उपर्युक्त संस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण संस्था बंगाल के [illegible] सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा संस्थापित 'इंडियन एसोशिएशन' स्वातंत्र्य संघर्ष की भूमिका के संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है। अखिल भारतीय स्तर पर एक राजनीतिक इकाई के रूप में राष्ट्रीय-[illegible] आन्दोलन के प्रारंभ का श्रेय भी इसी संस्था को है। इस संस्था की स्थापना के बारे में स्वयं बनर्जी महोदय का कहना है कि 'एक विचार जो मेरे मन में [illegible] रहा था वह यह था कि यह संस्था एक अखिल भारतीय आन्दोलन का मुख्य केन्द्र होनी चाहिए।'[4] सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर मेजिनी के विचारों का गहन प्रभाव था। उन्हीं विचारों से अनुप्राणित होकर एक बार उन्होंने कहा था 'कैसे भी हो हमारी भी एक राजनीतिक संस्था होनी ही चाहिए, जो आपको पसंद हो पर वह गुप्त न हो।'[5] बाद में 'इंडियन एसोशिएशन'

१- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (नई दिल्ली : १९६०), पृ० ४६७-६८.

२- ए० आर० देसाई, आप० सिट, पृ० २६२.

३- हरिदास एण्ड उमा मुकर्जी, दि ग्रोथ आफ नैशनेलिज्म इन इंडिया (कलकत्ता : १९५७) पृ० ३९-४१.

४- सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, अ नेशन इन मेकिंग (कलकत्ता : १९६३), पृ० ३८.

५- रामचंद्र पालित, स्पीचेज आफ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१८७६-८०), (कलकत्ता : १८८४), खण्ड एक, पृ० ७.

एक राजनीतिक संस्था बनी जिसकी विभिन्न शाखाएं सम्पूर्ण भारत में थीं ।[1] जिसका उद्देश्य[2] सभी भारतवासियों को एक मंच पर एकत्रित करना था । इस कार्य के लिए उन्होंने [illegible] से लेकर लाहौर तक एक तूफानी दौरा किया ।[3] 'सिविल सर्विस आन्दोलन' ने एक नवीन जागृति पैदा करदी थी । राष्ट्रवाद की भावना में नव-यौवन के चिह्न प्रगट होने लगे । 'इल्बर्ट बिल' प्रतिवाद ने भी भारतीयों में एकता की भावना को केवल उत्पन्न ही नहीं किया अपितु उसे परिपक्वता भी प्रदान की । इसी एकता के परिणाम-स्वरूप 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का जन्म संभव हो सका ।

उदय (१८८५-१९०७ ई०)

स्वतंत्रता एक सकारात्मक धारणा है जिसमें पराधीनता की अनुपस्थिति अनि-वार्य है । इसकी प्रक्रिया का इतिहास रोमांचक होता है । यह जीवन की प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक दशा है । आवागमन स्वतंत्र धाम से होता है और परतंत्रता के बंधनों में फँसने के बाद पुनः स्वतंत्रता की ओर पग बढ़ाता है ।[4] मुक्ति और स्वर्ग की प्राप्ति उसके जीवन का लक्ष्य है । पराधीनता में मुक्ति क्या ? परतंत्र राष्ट्र तो उस कैंसर के रोगी की भाँति है जो चिन्ताकुल होकर केवल पुनः स्वस्थ होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचता । ठीक उस कैंसर के रोगी की तरह भारतीयजन भी अपनी चतुर्दिक उन्नति के लिए चिन्ताकुल हो उठे । सभी प्रकार की उन्नति हेतु स्वशासन की आवश्यकता अहर्निश

१- रिपोर्ट ऑव दि रायल कमीशन (१९००), सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गवाही दिनांक २७ मई, १८९७, (लन्दन : १९००), पृ० २६६.

२- सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आप० सिट०, पृ० ४१.

३- रामानंद चटर्जी (सम्पा०) दि माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १९३६), खण्ड ५९, पृ० ७९.

४- हरिभाऊ उपाध्याय, स्वतंत्रता की ओर (नई दिल्ली : १९४८), पृ० ६.

सड़ते हुए दाँत के समान निरन्तर दर्द कर रहा था । उस दर्द से पिण्ड छुड़ाने का सरल एकमात्र उपाय उसे उखाड़कर फेंक दिया जाना था । किन्तु वह शीघ्र उखाड़ा न जा सकता था ।

लार्ड ह्यूम

एलन आक्टेवियन ह्यूम ब्रिटिश अनुभवी सरकारी अधिकारी थे । उन्होंने तत्कालीन विस्फोटजन्य परिस्थितियों पर खुफिया पुलिस द्वारा भेजी गई रिपोर्टों के विशाल 'सात जिल्दों'[1] को देखा । परिस्थिति की गंभीरता को अपने अनुभव की कसौटी पर परखा और भारत के वायसराय लार्ड डफरिन को एक 'सेफ्टी वाल्व'[2] की योजना सुझाई । ह्यूम द्वारा सुझाई गई 'नई युक्ति'[3] ने 'भारतीयों पर विश्वास करो और उन्हें राजकाज में सहभागी बनाओ' ने उठते हुए उफान पर शीतल जल बिन्दुओं का कार्य किया ।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

आर्थिक-विपन्नता, बौद्धिक उन्नयन, परिवर्तित विश्वपरिवेश आदि का चिन्तन और मनन करने के उपरान्त एलन ह्यूम ने 'कलकत्ता स्नातकों' के नाम भारतवासियों के सामाजिक, नैतिक तथा राजनीतिक उत्थान के लिए किसी अखिल भारतीय संस्था की स्थापना हेतु एक गश्तीपत्र लिखा ।[4] जिसके द्वारा ब्रिटेन की भाँति भारतीय शासन की खामियों को दूर करने के सुझाव दे सकें । ह्यूम महोदय की अपील व्यर्थ नहीं गई तथा

---

1. Hiren Mukerjee, Op. Cit. PP. 68-69.
2. William Wedderburn, Op. Cit., P. 27.
3. "Trust in the Indian people xxxxxx that the path of safty lies in trusting them a nd in associating them in the management of their own affairs." W. Wedderburn, Loc. Cit. P. 2.

४- आर० सी० मजूमदार, एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया (लन्दन : १९४६), भाग-३,

सन् १८८५ ई० में कतिपय मित्रों और अधिकारियों के सहयोग से 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का जन्म हुआ।[1] इस संस्था के कुछ 'उद्देश्य'[2] निश्चित किए गये। कांग्रेस का प्रारम्भिक स्वरूप राजनीतिक न होकर सामाजिक सुधारपरक ही था। स्वयं ह्यूम महोदय की भी यह धारणा थी कि भारतीयों को राजनीतिक प्रश्नों की अपेक्षा अपने सामाजिक सुधार की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। परन्तु समय की गति के साथ कांग्रेस भी शनैः शनैः सामाजिक मांग से राजनीतिक मांग की पथिक बनती चली गई।

सन् १८९५ ई० तक कांग्रेस के भीतर यह विवाद चलता रहा कि क्या सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन के अतिरिक्त राजनीतिक आन्दोलन को भी अपनाना चाहिए। इसी प्रश्न को लेकर पूना कांग्रेस (१८९५) में दरार के चिह्न उभर आये थे परन्तु[3] दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के सफल प्रयत्नों ने कांग्रेस को बचा लिया था।

प्रत्येक अधिवेशन में भारतीय राजनीतिज्ञ देश के किसी नगर में एकत्रित होकर राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार विमर्श करने लगे। विनीत तथा राजभक्ति-पूर्ण भाषा में लिखित प्रस्तावों का अनुमोदन होने लगा। देश की जनता भी उनका ध्यान आकर्षित करती थी।

ब्रिटिश पूँजीवाद भारतीय-विपदाओं की जान-बूझकर अनदेखी करती थी। एक के बाद एक भयंकर अकाल[4] नियमित रूप से पड़ते जा रहे थे। 'भूखा और बाढ़' का

१- एनीबेसेन्ट, हाउ इंडिया रौट फार फ्रीडम (अडयार-मद्रास : १९१५), पृ० १-२.

२- के० ईश्वर दत्त, कांग्रेस साइक्लोपीडिया (नई दिल्ली : १९७३), भाग -एक , पृ० १५.

३- ए० हेमिल्टन, माडरेट्स एन्ड एक्स्ट्रीमिस्ट्स (बम्बई : १९६७), पृ० ७०-७१.

४- वी० ए० स्मिथ, दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया (आक्सफोर्ड : १९२३), पृ० ७५८.

साँइस मुख्य लोगों का जीवन-यापन दूभर किये हुए था । हैजा, प्लेग और महामारी[1] जनता का पीछा नहीं छोड़ती थी । फिर भी भारतीय मुद्रा का ह्रास अपनी चरम सीमा पर था । ब्रिटेन की ओर भारतीय 'मुद्रा का बहाव'[2] एक ऐसा 'मर्ज मुलहिक' असाध्य रोग बन गया था कि ज्यों-ज्यों उसकी दवा-दारू की जाती थी त्यों-त्यों वह बढ़ता ही जाता था । सच पूछिये तो इस बिउटा डोजन पर भी न जाने कितना रुपया भिन्न-भिन्न द्वार से प्रतिवर्ष विलायत ढोया जाता था ।[3] 'आर्थिक शोषण'[4] के परिणामस्वरूप ही भारत में मृत्युदर '१०८ प्रतिशत'[5] हो गई थी ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ऐसा आर्थिक शोषण के विरुद्ध बार-बार अपनी विनम्र आवाज उठाते रहे और बार-बार प्रस्ताव पारित करते रहे किन्तु मन की मौज आरामपसन्द वाले ब्रिटिश साम्राज्य के लिए करोड़ों मनुष्य भारतीय जनता का कोई महत्व नहीं था । यही कारण है कि 'रायल कमीशन'[6] की स्थापना का भी कोई वांछित फल न निकला ।

'ब्रिटिश-संसद' में जब भी भारतीय समस्याओं -- विशेषकर वित्तीय विषयों पर प्रश्न उठाये जाते उस समय 'संसद' में मुट्ठी भर सदस्य ही बचे रह जाते थे । श्री मार्टिन का कामन सभा में दिया गया यह 'वक्तव्य'[7] उस उपेक्षा का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

१- Govt. of India the Report of 'Census of India 1921'. Part I, Vol. I, P. 14.

२- Dadabhai Nauroji, The Poverty And UnBritish Rule In India. (London: 1901), P. 206.

३- हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८८५, जिल्द ८, संख्या-३, पृ० ९८.

4. 'Hansard Parliamentary Debate' (House of Commons) (London: 4th August 1901), Column No. 1338.

5. B.M. Bhatia, Famines In India (Bombay: 1963), P. 334.

6. Romesh Dutt. The Economic History of India (London: 1906), P.556.

7. "Every one knows that to bring it (Indian Budget) forward in the dog days, as was the case last night is practically a farce. There were only a handful of members here to consider it———— ——Every year attemps are made to dispose of Indian questions

रूस-जापान युद्ध

विश्व का घटनाचक्र बड़ी द्रुतगति से परिवर्तित हो रहा था । दक्षिणी अफ्रीका में 'बोअर' जाति की वीरतापूर्ण और साहसिक विजय पराधीन राष्ट्रों को आशा का नव-सन्देश दे रही थी । एशियायी राष्ट्र जापान ने शक्तिशाली यूरोपीय राष्ट्र रूस को थल और जल युद्ध में करारी मात देकर उसे घुटने टेकने को बाध्य कर दिया था । जापानी विजय के वीरतापूर्ण समाचार से सम्पूर्ण भारत विद्युत्प्रकाश की भाँति जगमगा उठा ।[1] एक नवीन प्रेरणा पराधीन भारतीय जनों को मिली कि यदि जापान जैसा छोटा, विशाल बलशाली रूस को पराजय के मुख में ढकेल सकता है तो भारत भी अपनी पराधीनता की शृंखलाओं को काटकर मुक्ति पा सकता है । जापान-विजय भारत के गाँव-गाँव में चर्चा का विषय[2] बन गई यूरोपीय अजेयता आकाश से मानो मूर्छित हो गई ।

बंग-भंग भू-तल में विद्यमान तीव्र [illegible] ज्वालामुखी विगलित करके ही दूसरे नवीन [illegible] को स्थापित करता है । 'बंग-भंग' ने तो मानो राष्ट्रवाद के यज्ञ में आहुति डालने वाली समिधा का कार्य किया । लार्ड कर्जन ने भारत की पावन धरती पर पग धरते ही प्रेस पर प्रतिबंध, कलकत्ता कार्पोरेशन एक्ट, भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम तथा प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने के अधिकार का हरण कर लिया । जनता की आर्थिक

---

without adiquate consideration and without proper debate."
- Hansard Parliamentory Debate (House of Commons). Revenue Accounts, (London: 5th August 1901), Column No. 1330.

1. R.P. Das, The Impact of Russo Japanese (1905) War In India (Delhi: 1968), for ward by Tara Chand M.P. P.(vii).
2. "Even the remote village lattceed over the victories of Japan as they sat in their circles and passed round the 'Hugga' (Indian pipe) at night." Ibid, P. 25. (Quoted from 'Renaissance In India', by C.F. Andrews (London: 1912), P. 4.)

विपन्नता के प्रति आँखें मूँद कर 'दिल्ली दरबार'[1] का आयोजन किया । सबसे बड़ा कहर जो उसने भारतीयों पर ढाया वह था बंगाल का विभाजन ।[2] बंग की एकता को भंग करके लार्ड कर्जन अपने भाषणों में भारत को 'असम्बद्ध जातियों का राष्ट्र'[3] कहकर प्रचार करने लगे । इस अपमान को बंगाल सह न सका । 'बंग-भंग' के कारण एक प्रबल तूफान देश में विशेषकर बंगालमें उठ खड़ा हुआ । लार्ड कर्जन का बनावटी पुतला जलाया गया, श्राद्ध किया गया ।[4] एक सशक्त जन-आन्दोलन का प्रारंभ ज्वार की भाँति उमड़ने लगा । गांधी जी का कहना है कि 'जिसे आप सही जागृति मानते हैं वह तो बंग-भंग से हुई ।'[5]

स्वदेशी आन्दोलन

सम्पूर्ण बंगाल में 'स्वदेशी आन्दोलन' और 'वंदे मातरम' की धूम मच गई । 'लाल-बाल' और 'पाल' के नेतृत्व में सर्वत्र 'सुजलते बंगला' की ध्वनि बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी के कंठों से निःसृत होने लगी ।[6] बंग-भंग को माँ महाकाली का अपमान माना गया ।[7] स्वदेशी आन्दोलन के सहयोगी अरविन्द कट्टर समर्थक थे । ब्रिटिश-शासन का पूर्ण बहिष्कार किया गया । 'स्वदेशी-आन्दोलन' पर टीका करते हुए 'हितवाद'(१९०५) ने लिखा था कि 'मारवाड़ी और मुसलमान व्यापारियों की दुकानों में विदेशी वस्त्रों की नाशात्मक बिक्री को देखकर कौन अपने अश्रुनिपात को रोक न सके ।'[8]

१- Ronald Shay, The life of Lord Curzon (London: 1928),Part II,P.238

२- Lajpat Rai, Op. Cit. P. 146.

३- Haridas And Uma Mukharjee, India's Fight For Freedom.(Calcutta: N.D), P. 36.

४- Progs: Govt. of India, Home Deptt. Poll.(A) Confidential File Nos. 120-136 of June 1906.

५- महात्मा गांधी, वाप० सिट०, पृ० १०.

६- अभ्युदय (साप्ताहिक), (प्रयाग : जनवरी ११,१९३०), पृ० १४.

७- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य(इलाहाबाद:१९४८),पृ० ८७.

८- रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स बंगाल १९०५ सितम्बर-दिसम्बर, गोपनीय रिपोर्ट संख्या ४०, पृ० ६८२.

जब कोई जन-आन्दोलन धर्म से अपनी मैत्री कर लेता है तब वह अपना नया कलेवर धारण करने लगता है। स्वदेशी आन्दोलन में पूर्ण बहिष्कार के कारण देशी कल-कारखानों की स्थापना होने लगी। राखी-बंधन[1] एकता का परिचायक सूत्र बन गया।[2] प्रत्येक वर्ष उपवास रखकर बंग-भंग विरोध दिवस मनाया जाने लगा।

स्वदेशी आन्दोलन की उग्रता ने आंग्ल जाति के प्रति घृणा के भावों का प्रसार किया। परतंत्रता में जीने की अपेक्षा मरण की इच्छा तीव्रतर होने लगी। बंग-भंग से उत्पन्न नव-उमंग को बनाये रखने के लिए भारत से बाहर विदेशों में भी भारतीय नेता काम करने लगे। श्याम जी कृष्ण वर्मा के प्रयासों से सन् १९०५ में लन्दन में 'इंडिया होमरूल सोसाइटी' की स्थापना[3] का उद्देश्य भी यही था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में स्वातंत्र्य संघर्ष के इतिहास में कई नये रंग उभरते दिखाई देते हैं। यथा -- कांग्रेस का विभाजन, स्वराज्य के लिए घोषणा, मुस्लिम लीग की स्थापना[4] के साथ साथ क्रान्तिकारी आन्दोलन का आरंभ।

सूरत-कांग्रेस

'भारतीय-राष्ट्रीय कांग्रेस' के कई नेताओं में भी स्वदेशी-आन्दोलन की लहर समाविष्ट थी। 'बहिष्कार' के प्रश्न को लेकर सन् १९०५ में ही बनारस कांग्रेस में विभाजन के बादल घिर आये थे।[5] क्योंकि जब कोई पराधीन जाति जगने लगती है तब उस जागरण को कोई भी कठोरनीति व्यर्थ नहीं कर सकती।[6] इसी जागरण के फलस्वरूप सन् १९०७ में सूरत में कांग्रेस दो भागों -- गरम और नरम दलों में विभाजित हो गई।[7]

१- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार -गृहविभाग, राजनीतिक गोपनीय पत्रावली संख्या २-६, दिसम्बर १९०७.

२- वही - संख्या ६३-७०, नवम्बर १९०८.

३- आर० सी० मजूमदार, स्ट्रगल फार फ्रीडम (बम्बई : १९६९), पृ० २०५.

४- बी० बी० मजूमदार, आप० सिट०, पृ० २०९.

५- आर० सी० मजूमदार, आप० सिट०, पृ० ७८.

६- शचीन्द्रनाथ सान्याल, बंदी जीवन (दिल्ली : १९६३), पृ० १४९.

७- बी० एहकिन, इंडियन नेशनलिज्म (लन्दन : १९१४), पृ० ६५.

यह भावना बलवती हो उठी कि भारत का शासन लन्दन से न होकर दिल्ली से भार-तीयों द्वारा होना चाहिए। लोकमान्य तिलक की सिंह गर्जनाने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दो-लन को एक नये पथ की ओर मोड़ दिया। उनका उद्घोष था कि प्रत्येक व्यक्ति को समय के अनुसार बदलने को ढालना चाहिए। राजनीतिक भिक्षा-वृत्ति में उनकी आस्था नहीं थी। उनके साथ अरविन्द घोष, विपिनचन्द्रपाल और लाला लाजपतराय थे।[1]

गरम और नरम दल

गोखले 'नरम' थे और तिलक गरम। 'गोखले का अखाड़ा था कौंसिल भवन तो तिलक की अदालत थी गांव की चौपाल।'[2] नरमदली सरकार से टक्कर लेने और कानून-भंग से हमेशा बचने का प्रयत्न करते थे। पं० जवाहरलाल नेहरू कहते हैं -- 'उन्हें नरम बनते बनते इतना पीछे हटना पड़ा कि उनकी और सरकार की विचारधारा में फर्क जानना मुश्किल हो गया।'[3] दोनों दलों के राजनीतिक आदर्श भी भिन्न थे।[4] कांग्रेस के विभाजन पर कटाक्ष करते हुए लार्ड कर्जन ने कहा था 'कांग्रेस खतम हो रही है।.... मेरी सबसे बड़ी इच्छा यह है कि मैं उसे शान्ति से दफनाने में मदद करूँ।'[5]

प्रथम विश्वयुद्ध

लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी के उपरान्त सन् १९१४ तक भारतीय स्वा-तंत्र्य संघर्ष के रण में सन्नाटा छाया रहा और कांग्रेस उसी पुरानी राह पर लौट चली। प्रथम महासमर के काले मेघ भयंकर गर्जना करने लगे। दुनिया विनाश के कगार पर खड़ी थी। महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से ख्याति प्राप्त कर भारत लौटे और अहमदा-

---

१- के० पी० करुणाकरण, माडर्न इंडियन पालिटिकल ट्रेडीशन्स (नई दिल्ली : १९६२) पृ० १३६.

२- पट्टाभिसीतारामय्या, आप० सिट०, खण्ड एक, पृ० ८४.

३- जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी (नई दिल्ली : १९६१), पृ० ५५४.

४- आर० के० मूर, दि क्राइसिस आफ इंडियन यूनिटी (दिल्ली : १९७४), पृ० ११.

५- रोनाल्ड डे, आप० सिट०, भाग-दो, पृ० १५१.

बाद में 'साबरमती आश्रम' में रहकर भारत की भावी राजनीतिक रणनीति की रूपरेखा पर चिन्तन और मनन करने लगे। संकट की घड़ी में ब्रिटिश सरकार का साथ देने की इच्छा से वशीभूत होकर उन्होंने [illegible] का [illegible] को एक पत्र यह कहकर लिखा कि "जिस साम्राज्य में आगे चलकर हम सम्पूर्ण रूप से साझेदार बनने की इच्छा रखते हैं, संकट के समय उसकी पूरी मदद करना हमारा धर्म है।"[1] लखनऊ कांग्रेस १९१६ में ब्रिटिश जनता को विजय कामना का प्रस्ताव पारित किया गया था।

होमरूल आन्दोलन

कारागार की कालकोठरी से मुक्त होकर लोकमान्य तिलक ने श्रीमती एनीबेसेन्ट के सहयोग से होमरूल आन्दोलन का श्रीगणेश किया।[2] कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में श्रीमती बेसेन्ट ने भारत के लिए 'स्वशासन' की माँग करते हुए कहा था कि स्वाधीनता प्रत्येक राष्ट्र का आजन्म अधिकार है।[3] होमरूल आन्दोलन का प्रचार भारत के कोने-कोने में हुआ और लन्दन में इसकी शाखा स्थापित की गई। इस आन्दोलन ने राजनीतिक नेताओं को एकता के लिए प्रेरित किया। क्योंकि एकता के अभाव में 'स्वशासन' की माँग करना बहरे के आगे ढोल पीटना मात्र था। इसी एकता की आवश्यकता ने 'लखनऊ समझौते'[4] को जन्म दिया। फलत: 'कांग्रेस' और 'मुस्लिमलीग' में पुन: गठबंधन हो गया।

जलियाँवाला बाग

आशा जीवन की संजीवनी है। जिस आशा, निष्ठा और विश्वास से भारतीय जनता ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता की, वह फलवती न हुई। इन सबके बदले

१- महात्मा गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (अहमदाबाद : १९५७), पृ० ३८८.
२- राजाराम, 'दि जलियाँवाला बाग मसाकर' (चंडीगढ़ : १९४०), पृ० २१.
३- बी० ए० नाटेसन (सम्पा०) कांग्रेस प्रेसीडेन्शल एड्रेसेस, सिलवर टू दि गोल्डन जुबली) (मद्रास : १९३४), सेकंड सिरीज, पृ० ३३१.
४- पट्टाभिसीता रामय्या, आप० सिट०, खण्ड-प्रथम, पृ० १०६.

जो उपहार भारतवासियों को प्रदान किया गया वह उन्हें न भाया । 'मित्र राष्ट्रों द्वारा 'युद्ध-उद्देश्य-पत्र' में पराधीन-राष्ट्रों को स्वनिर्णय के जिस अधिकार की घोषणा की गई थी उसे भारत में लागू नहीं किया ।[१] अपितु 'रॉलट एक्ट' की गई सेवा का प्रतिदान था । विप्लववाद के दमन के बहाने भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की भावना को धूलधूसरित करने के लिए 'रॉलट कमेटी'[२] की स्थापना की गई थी । उस नये कानून के द्वारा ब्रिटिश-शासकों को भारत में राजनीतिक आन्दोलन को दबाने का बेलगाम अधिकार दिया गया था । देश के सभी वर्गों ने उस कानून का तीव्र विरोध किया । पग-पग पर अपमानित भारतीय जनता को जगाने में इस कानून का विशेष महत्व प्रतिरोध के रूप में रहा है । सारा देश 'काले कानून' के विरोध में चट्टान की तरह उठ खड़ा हुआ । गांधी जी ने विरोध-दिवस की तिथि निश्चित कर दी परन्तु जनता के धैर्य का सागर अपने तटों का अतिक्रमण करने पर उतर आया । निर्धारित तिथि से पूर्व ही अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया ।[३] दो भिन्न जीवन पद्धतियों ने संघर्ष का रूप ग्रहण कर लिया । भारतीय राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद में घात-प्रतिघात आरंभ हुआ । प्रतिशोध एवं घृणा की भावना हिंसा और अहिंसा का आवरण ओढ़कर भी मैदान में कूद पड़ी । निहत्थे शान्त एवं अहिंसाप्रिय लोगों की विशाल सभा पर जनरल डायर की गोलियों की बौछार मेघ की बौछार के समान सभी को रक्त-स्नान कराकर चुप हो गई । मानवता उस क्रूर दृश्य को देखकर सिहर उठी । जनरल डायर ने १६५० गोलियां चलाईं और 'हंटर कमीशन' के समक्ष स्वयं उसने मृतकों की संख्या सरकारी आंकड़ों से तिगुनी अधिक स्वीकार की थी ।[४] नौकरशाही का दमन-

---

१- बी० आर० नन्दा, सोशलिज्म इन इंडिया (दिल्ली : १९७२), पृ० ४५.

- J. Coatman, India: The Road to Self Government (London:1941), 46.

३- Raja Ram, Op. Cit., P. 67.

४- "In view of General Dyer's evidence to the Hunter Committee that the wounded at the Jalian Wala bagh might have been three or four times the number killed, (The number killed has been put at 379 by the local Government.)" - Progs. Govt. of India, Home Deptt. Poll. (A) Confidential file Nos. 317-18, April 1920.

बन्द और तेज हो गया। लोगों को सजा दी गई। मृत्युदण्ड दिया गया और देश-निकाला दिया गया।

गांधी जी का राजनीति में प्रवेश

दासता के क्रूर दमन से मोक्ष पाने के लिए भारतीय जनता वैचारिक भिन्नता के कारण अनुनय-विनय के मार्ग को त्यागकर एक नये नेतृत्व में युद्धकला की नवीन योजना नई पद्धति की खोज करने लगी। कभी-कभी किसी राष्ट्र के जीवन में एक ऐसा भी समय आता है जब किसी व्यक्ति विशेष के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन बंध सा जाता है। संपूर्ण राष्ट्र उस व्यक्ति के पीछे-पीछे चलने लगता है। ऐसा नेता युगधर्म को प्रेरणा देता है और 'युग-धर्म' जनता के हृदय की पीड़ा की पुकार है। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के अनुसार -- "ऐसी निराशापूर्ण राजनीतिक तमभिशा को चीरते हुए एक नवीन आस्था के प्रकाश से सारा विश्व-चकाचौंध में पड़ गया।"[1] स्वाधीनता संघर्ष के डगमगाते चरण संभलकर पुनः नये इतिहास के नव-निर्माण हेतु बढ़ चले। एक 'अर्धनग्न फकीर' के नेतृत्व में 'नरम पंथी' तमसावृतनिशा का सर्वदा के लिए अन्त हो गया। 'साबरमती आश्रम' 'सत्य के प्रयोगों' की राजनीतिक प्रयोगशाला बन गया। सत्याग्रह का अहिंसात्मक अस्त्र शहर से लेकर गांवों तक तेज होने लगा तथा 'अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन'[2] की सारे भारत में धूम मच गई।

असहयोग आन्दोलन

हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी कदम-से-कदम मिलाकर 'खिलाफत आन्दोलन'[3] की पताका थामे चल पड़े। गांधी जी ने उस आन्दोलन को 'धार्मिक-युद्ध'[4] कहा था।

१- शचीन्द्रनाथ सान्याल, आप० सिट०, पृ० ७८.

२- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली संख्या २१५/१९२१.

३- वही - गोपनीय पत्रावली संख्या १०६, जुलाई १९२०.

४- महात्मा गांधी, आप० सिट०, पृ० ३६८.

उन्होंने भारत के जन-जन के मन में ऐसा मंत्र फूंका था कि सारे भारत में 'हिन्दू-मुस्लिम जिन्दाबाद',[1] 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'परचम ऊँचा रहे हमारा' आदि गगन-भेदी नारों से ला स्वराज-धाम की प्राचीरें कम्पायमान हो उठीं। 'कंसत्व के प्रतीक आंग्ल-प्रशासन के कारागार से बंदिनी भारत मां को विमुक्त करने के लिए मानो कृष्ण के रूप में मोहनदास करमचन्द गांधी का अवतार हुआ'।[2] 'महात्मा गांधी के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन का राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक बहिष्कार को असहयोग आन्दोलन के नाम से पुकारा गया।'[3] अदालत, विद्यालय तथा कालेज, सरकारी उपाधियों का पूर्ण बहिष्कार किया गया।[4] विदेशी के स्थान पर स्वदेशी का प्रचार होने लगा। धरना, हड़ताल, जुलूस, सामाजिक बहिष्कार,[5] स्वराज्य के प्रति स्नेह, अन्यान्य रूपों में असहयोग आन्दोलन अपने यौवन पर चढ़ चला। ब्रिटिशशासन के प्रति जो स्वाभाविक घृणा जनता के हृदय में विद्यमान थी उसके कारण अहिंसात्मक आन्दोलन हिंसा के क्षेत्र में पदार्पण कर गया। फलतः चौरी-चौरा[6] जैसी अप्रत्याशित घटना घटित हो गई।

चौरी-चौरा जैसी हिंसात्मक घटना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनकार ने तुरन्त ही सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर दिया।[7] असहयोग आन्दोलन को लेकर कांग्रेस के नेताओं में आपसी मतभेद पहले से ही था। कौंसिल प्रवेश के प्रश्न को लेकर 'अपरिवर्तनवादी' और 'परिवर्तनवादी' दो दलों में पुनः कांग्रेस विभाजित हो गई।[8] असहयोग सत्याग्रह और खिलाफत आन्दोलन के सूत्रों से बंटी हुई

१- जवाहरलाल नेहरू, आप० बि०, पृ० ११४.
२- प्रो० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएं (दिल्ली : १९७२), पृ० ५८.
3. Report of the 'Simon Commission' (London: 1930), Part III Chapter VI, P. 247.
4. Progs: Govt. of India - Home Deptt. Political Confidential file No. 178 of 1921.
5. Supra, Political Cofidential file No. 29 of 1922.
6. Supra., Political Cofidential file No. 433 of 1921.
7. Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle (Calcutta: 1964), P. 73.
8. H.N. Mitra (ed) The Indian Annua l Register (Calcutta: 1923), Vol. II, PP. 143 a nd 212.

एकता की रज्जु के सूत्र एक-एक कर खुलने लगे और टूटने लगे । हिन्दू-मुस्लिम दंगों के रूप में भाई-भाई के रक्त से अपनी प्यास बुझाने लगा । 'फूट डालो और राज्य करो' के [illegible] शिकंजे में भारतवासी अपने को बचा न पाये ।

रचनात्मक कार्यक्रम

महात्मा गांधी अपने राजनैतिक सत्य के प्रयोगों में लगे रहे । हिंसा के आगे वे नहीं झुके । मानवहृदय में विद्यमान देवत्व को वह प्रेम और स्नेह के जलकणों से सींचकर फूलते और फलते देखना चाहते थे । उन्होंने धार्मिक अज्ञान, सामाजिक रूढ़ियों और जातिवाद की शिकार भारतीय जनता को रचनात्मक कार्य की ओर अग्रसर करने का बीड़ा उठाया । ताकि अहिंसात्मक सत्याग्रह के अस्त्र द्वारा परतंत्रता के पाश को सरलता से काटा जा सके । हिंसा से उपलब्ध स्वाधीनता को वह नकारात्मक वस्तु मानते थे । स्वातंत्र्य संघर्ष के लिए आत्मिक बल की शुचिता आवश्यक थी । जिसके "द्वारा वे संगठनात्मक और क्रियात्मक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियों को जन्म देना चाहते थे ।"[1] रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत अछूतोद्धार, चर्खा और करघा, हिन्दू मुस्लिम एकता, मद्यपान-निषेध के अतिरिक्त नारी उत्थान, खादी का प्रचार, स्वभाषा उन्नति, राष्ट्रीय शिक्षा, ग्रामीण उद्योगधंधों का विकास, स्वदेशी का प्रचार तथा विदेशी का बहिष्कार, कृषक तथा मजदूर संगठनों की स्थापना, आर्थिक समानता आदि विषय मुख्य-मुख्य थे ।[2]

साइमन कमीशन

ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय जन-जागरण को कुचलने में अपने को असमर्थ पाकर, उठते हुए राजनीतिक तूफान को शान्त करने के लिए 'साइमन-कमीशन' की नियुक्ति

१- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आप० सिट०, पृ० ५७.

२- द्रष्टव्य हैं -- (१) पट्टाभिसीतारामय्या, महात्मा गांधी का समाजवाद, पृ० १६८-६९.
(२) महात्मा गांधी, ग्राम-स्वराज्य, पृ० १३०.

की थी । जिसमें जनता की आत्मनिर्णय की माँग का कोई उल्लेख नहीं था । एक नया विधान लादने का प्रयत्न किया जाने वाला था ।[1] उस कमीशन में कोई भी भारतीय न था । जनता का क्रोधित होना स्वाभाविक था । सारे भारत में 'साइमन गो बैक'[2] के नारे लगाये गये । जहाँ-जहाँ कमीशन गया वहाँ-वहाँ काले झंडों से उसका स्वागत हुआ । भारत की सभी राजनीतिक पार्टियों ने कमीशन का बहिष्कार 'जलूस'[3] और 'हड़तालों'[4] द्वारा किया । पंजाबकेशरी लाला लाजपतराय पर विरोध प्रदर्शन के समय लाठियाँ बरसाई गईं और उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा । उनकी 'भविष्यवाणी'[5] अक्षरशः सत्य हुई ।

पूर्ण स्वराज्य

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, साइमन कमीशन द्वारा सुझाये जाने वाले नवीन संवैधानिक प्रस्तावों का बहिष्कार करके कई पग आगे निकल गया था । 'सर्वदल सम्मेलन'[6] के 'औपनिवेशिक स्वराज्य'[7] को तिलांजलि देकर 'पूर्ण स्वराज्य' की माँग से ब्रिटिश-सरकार में खलबली मच गई । सुभाषचन्द्र बोस आदिनेताओं ने 'औपनिवेशिक-स्वराज्य' का खुलकर विरोध किया ।[8] 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'(१९२९) ने रावी के तट पर

१- यशपाल, सिंहावलोकन (लखनऊ १९५४), भाग-प्रथम, पृ० १३५.

२- जवाहरलाल नेहरू आप० सिट०, पृ० २५३.

३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग, राजनीतिक गोपनीय पत्रावली सं०१३०/१९२८

४- एन० एन० मित्रा,(सम्पा०) दि इंडियन क्वाटरली रजिस्टर (कलकत्ता :१९२८), खण्ड-२, पृ० ११.

5. "Every blow that they hurled at us, drove one more nail in to the Coffin of the Empire." - Quoted by Shyam Sunder and Savitri Shyam, 'Political Life of Pandit Govind Ballabh Pant' (Lucknow: 1960) P. 112.

6. Hiren Mukharjee, Op. Cit., P. 177.

7. N.N. Mitra (ed.) The Indian Annual Register (Calcutta: 1930), Vol. 1st, P. 81.

8. J.S. Bright, Speeches of Subhas Chandra Bose (Lahore: 1947), P. 50.

`पूर्ण स्वराज्य` की प्राप्ति का लक्ष्य घोषित किया। प्रतिज्ञा पढ़ी गई । पताका फह-
राई गई । नागरिकों के `मूल अधिकार` एवं `राष्ट्रीय आर्थिक कार्यक्रम` के सिद्धान्त
को स्वीकार किया गया था । सम्पूर्ण देश में `स्वाधीनता दिवस`[1] मनाया गया ।

नमक-सत्याग्रह

`आर्थिक मंदी` ने भारतीय कृषक की रीढ़ तोड़ दी थी । नमक जैसी महत्व-
पूर्ण सर्वसुलभ वस्तु को भी कर के बोझ से दुर्लभ कर दिया था । नमक पर कर का कानून
सभी को अप्रिय था । दमन और अन्याय से एक अजीब बेचैनी छाई हुई थी । अन्याय के
आगे घुटने टेकना बापू ने सीखा न था । एक दशाब्दी बाद पुनः नमक कर आदि के
विरोध में `सविनय अवज्ञा आन्दोलन` आरंभ कर दिया । `असहयोग` और `सविनय
अवज्ञा` सत्याग्रह रूपी वृक्ष की ही दो भिन्न-भिन्न शाखायें हैं । `सत्याग्रह` बापू का
`ब्रह्मास्त्र` था । `ईश्वर ही सत्य है और सत्य की खोज ही सत्याग्रह है`[2]। इस जीवन
दर्शन ने उन्हें `साबरमती आश्रम` के पश्चिमी तट की ओर डांडी-पदयात्रा के लिए प्रेरित
किया । नमक-कानून का विरोध करने के लिए बापू चल दिए । उनकी प्रसिद्ध `डांडी-
यात्रा`[3] उसी भांति एक ऐतिहासिक यात्रा थी जिस भांति मर्यादा पुरुषोत्तम राम
का लंका की ओर प्रस्थान । डांडी-ग्राम पहुंचकर उन्होंने नमक बनाकर सत्याग्रह आरंभ
किया ।[4] सारे भारत में नमक तोड़ो आन्दोलन फैल गया । वायसराय ने गांधी जी
को आमंत्रित किया । परन्तु बातचीत का कोई परिणाम न निकला । गांधी जी ने
आन्दोलन में आर्थिक प्रश्न को भी जोड़ दिया । जिससे व्यापारी वर्ग, ट्रेड यूनियन
संस्थाओं, मजदूर एवं कृषकों का सहयोग बहुतायत से सुलभ होने लगा । रचनात्मक कार्य

१- जवाहरलाल नेहरू, कुछ पुरानी चिट्ठियां (नई दिल्ली : १९६०), पृ० १०७.

२- बी० ए० नाटेसन, आप० सिट०, पृ० ७५५.

३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग राजनीतिक पत्रावली सं० २३/३९/१९३०.

४- सुभाषचन्द्र बोस, आप० सिट०, पृ० १८०-८२.

भी साथ-साथ चलता रहा । नारियों द्वारा सत्याग्रह में धरना का दिया जाना,[1] सरकारी भवनों पर राष्ट्रीय पताका का फहराया जाना,[2] आंग्ल-शासन परस्तों का, धोबी, नाई, आदि के द्वारा सामाजिक बहिष्कार[3] किया जाना आदि अनेक रूपों में सत्याग्रह आन्दोलन द्रोपदी के दुकूल की तरह बढ़ता ही चला गया ।

लगान बंदी-आन्दोलन

राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्र रूप से भयभीत होकर द्वितीय गोलमेज-सम्मेलन का आयोजन लन्दन में किया गया । लन्दन जाने से पूर्व वायसराय से समझौते का द्वार खुल गया था । परन्तु लन्दन से महात्मा गांधी अपमानित होकर 'रीते हाथ वापस भारत लौटे'।[4] स्थगित आन्दोलन भारत के खेत और खलिहानों 'लगान बंदी' आन्दोलन के रूप में प्रारंभ हो गया । किसान कांग्रेस के पीछे चल पड़े । जमींदार और महाजन अपने खाली खजानों को देखकर तिलमिला उठे । किसान दमनचक्र की चक्की में पीसा जाने लगा । फिर भी अन्नदाता ने अन्याय के आगे शीश न झुकाया । लगानबंदी आन्दोलन ने उन्हें निश्चय करा दिया कि स्वराज्य युद्ध का अर्थ ही उनका कल्याण है ।[5]

साम्प्रदायिक-निर्णय

वायसराय लार्ड इर्विन तथा गांधी जी में पत्रों का आदान-प्रदान हुआ । अंतत: दोनों में एक समझौता हुआ जिसे गांधी-इर्विन समझौता कहा गया ।[7]

१- Progs: Govt. of India - Home Deptt. Political Confidential file No. 33/12/1931.

२- Supra., Political Confidential file No. 14/21/1931.

३- Supra., Political file No. 33/24/1931.

४- वी० वी० कुलकर्णी, इंडिया एण्ड पाकिस्तान (बम्बई : १९७३), पृ० २२८.

५- अभ्युदय (साप्ताहिक) किसान अंक (प्रयाग : ८ मई १९३१), संख्या १३, पृ० २१.

७- एस० के० मजूमदार जिन्ना एण्ड गांधी (कलकत्ता : १९६६), पृ० १३४.

क्रिप्स-प्रस्ताव

भारत को पूर्ण स्वाधीनता दिये बिना युद्ध क्षेत्र में विजय श्री प्राप्त करना ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए असम्भव प्रतीत हो रहा था। भारतीय जनता का ध्यान स्वातंत्र्य संघर्ष से हटाने के लिए 'क्रिप्स योजना'[1] का नाटक रचा गया। क्रिप्स महोदय भारत के विरोधी दलों तथा भारतीय राजनीतिज्ञों को भी कठपुतली खिलौने में कुशल रहे थे। वे 'काला कानून', हथकण्डे, विश्वासघात और दुरंगी चालों से काम ले रहे थे।'[2] उनकी योजना को सभी भारतीय दलों ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।[3] क्रिप्स की अपेक्षा स्वयं ही एक प्रवंचना मात्र थे। वह जैसे भारत आये थे वैसे ही अपने साथ योजनाओं का पुलिन्दा वापस ले गये। विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने पर औपनिवेशिक स्वाधीनता का आश्वासन भारत को दिया गया था। परन्तु यह आश्वासन केवल कागजी था। 'सब [illegible] कहा जाता था कि जब तक यह आश्वासन अधर में लटकता रहेगा।'[4]

अगस्त-क्रान्ति

राष्ट्रीय-आन्दोलन के कर्णधार हाथ पर हाथ धरे बैठे न रहे। ब्रिटिश-साम्राज्यवाद की घोर उपेक्षा का प्रत्युत्तर 'भारत छोड़ो प्रस्ताव' के रूप में दिया गया। जिसका सार यह था कि मित्रराष्ट्र संघ की सफलता एवं भारत के हित के लिए भारत से ब्रिटिश शासन का शीघ्र अन्त एक अनिवार्य आवश्यकता है।[5] महात्मा गांधी ने अपनी एक अपील में कहा -- 'इस देश में अंग्रेजी राज्य को अन्त करने का सवाल, एक महत्वपूर्ण और जरूरी

1- रामानंद चटर्जी, (सम्पा०) दि माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १९४४), खण्ड ७५, पृ० २८६.

2- पट्टाभिसीता रामय्या, आप० सिट०, पृ० ३८४-८५.

3- राममनोहर लोहिया, दि मिस्ट्री आव सर स्टैफोर्ड क्रिप्स (बम्बई : १९४२), पृ०

4- एम० सुब्रमण्यम, ह्वाई क्रिप्स फेल्ड (नई दिल्ली : १९४२), पृ० ७.

5- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग, परमगोपनीय राजनीतिक पत्रावली संख्या ३०।३३।१९४२.

सवाल है जिस पर युद्ध का भविष्य आजादी तथा लोकतंत्र की सफलता निर्भर करती है।[1]"
क्रिप्स वार्ता के असफल हो जाने तथा परिवर्तित परिस्थितियों से बाध्य होकर कांग्रेस के कतिपय नेता कुछ कर गुजरना चाहते थे। मानवेन्द्र नाथ राय की इस टिप्पणी पर टीका करते हुए गांधी जी ने कहा था —'मौलाना और नेहरू का सहज मुकाबला करने में समर्थ हैं और मैं इसमें यह जोड़ दूं कि बहुतेरे कांग्रेसजन भी ऐसा ही मानते हैं।... जहां तक मुझसे सम्बन्ध है... मैं तो 'कार्य' या आध्यात्मिक देह या [illegible]'... मानता हूं।'[2] गांधी जी की आत्मा ब्रिटेन के अत्याचारों से कराह उठी। युद्ध-विजय के लिए बंगाल के कृत्रिम 'महाकाल'[3] ने हजारों देशवासियों को काल के गाल में ढकेल दिया था। अगस्त प्रस्ताव के अनुमोदनार्थ और उसी कार्यान्वयन की घोषणा के लिए बम्बई में 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का अधिवेशन हुआ। गांधी जी ने देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा था —'वह अपने को आजाद समझे (क्योंकि) मैंने कांग्रेस को बाजी पर लगा दिया है, वह करेगी या मरेगी।'[4] 'करो या मरो' तथा 'भारत छोड़ो' के मूलमंत्र ने देश में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। क्योंकि सभी बड़े-बड़े नेताओं को जेलों में ठूंस दिया गया। नेतृत्वविहीन जनता स्वयं ही पथप्रदर्शक बन गई। 'क्रान्ति जिन्दाबाद', 'स्वतंत्र भारत जिन्दाबाद', 'महात्मा गांधी जी की जय', 'भारत माता की जय', 'करेंगे या मरेंगे' तथा 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आदि जन उद्घोषों[5] का स्वर सात समुद्र पार लन्दन तक पहुंचने लगा। ब्रिटिश राज्य की समाप्ति के लिए कटिबद्ध जनता ने हिंसा और अहिंसा का भेद त्यागकर रेल की पटरियों को उखाड़ना, जंजीरों को खींचना,

---

१- महात्मा गांधी, अंग्रेजों से मेरी अपील (नई दिल्ली : १९४२), पृ० ८१.

२- महात्मा गांधी - यथोपरि, पृ० ६५.

३- द्रष्टव्य है — मणिलाल नानावटी प्राइवेट पेपर्स - बंगाल का अकाल १९४२ (राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में उपलब्ध).

४- पट्टाभि सीता रामय्या, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० ४०६.

५- अम्बा प्रसाद, दि इंडियन रिवोल्ट आफ १९४२ (दिल्ली : १९५८), पृ० ६१.

से सारा छूटा हुआ सम्मान और खोई हुई स्वाधीनता पुनः प्राप्त किये जा सकते हैं।[1] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व तक वे भारतीय राष्ट्रीय एकता के प्रबल समर्थक थे। 'हिन्दू' और 'मुसलमान' शब्दों को केवल धार्मिकता का परिचायक मानते थे।[2] परन्तु 'थियोडोर बेक'[3] के घनिष्ठ सम्पर्क में आने के कारण उनके विचारों में [illegible] अन्सार परिवर्तित हो गया। कुछ इतिहासकारों ने उनके विचारों की परिवर्तनशीलता का कारण बताते हुए कहा है कि भारतीय 'पुनरुत्थानवाद का उदय धर्म और राष्ट्रीयता के सम्मिश्रण से हुआ था। हिन्दू वेदों से लेकर अशोक साम्राज्य की कल्पना में निमग्न थे तो मुसलमान कुरानशरीफ से अकबर तथा दिल्ली सल्तनत की ओर उन्मुख होने लगे थे।[4]

साम्प्रदायिकता का बीजांकुर

चतुर राजनीतिज्ञ अंग्रेजों ने कुलीन मुस्लिम वर्ग में विद्यमान प्रभाव का मनोवैज्ञानिक लाभ उठाया। सन् १८९२ के 'भारतीय परिषद-अधिनियम' में मुसलमानों को प्रथम बार पृथक-प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।[5] यहीं से साम्प्रदायिक-चेतना का बीज भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की राजनीति में अंकुरित होना आरंभ हुआ था। 'शिवाजी उत्सव' 'स्वदेशी आन्दोलन,' 'वन्देमातरम्' तथा भारतीय इतिहास की आंग्ल व्याख्या[6] के कारण हिन्दू और मुसलमानों का पार्थक्य गहरा हो गया। कुछ प्रगतिशील मुसलमान

---

1. A Nizami, Sayyid Ahmed Khan, (Govt. of India: 1966), P. 129.
2. Ibid, P. 145.
3. The Principal of A.M.O. College Aligarh and fast friend of Sir Sayyid Ahmed Khan.
4. K.P. Karunakaran, Continuity And Changes In Indian Politics. (New Delhi: 1964), P. 37.

५- भूपेन्द्रनाथ सान्याल, साम्यवाद की ओर (इलाहाबाद : दि० सं०), पृ० १००.

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ थे । परन्तु शेष 'अलीगढ़ की राजनीति' से प्रेरित होकर 'लार्ड मिन्टो'[1] से सन् १९०६ में अपनी 'पृथक चुनाव-प्रथा' तथा विशेष प्रतिनिधित्व की मांग साम्राज्य की सेवाभाव के प्रतिदान के रूप में मनवाने में सफल हो गये । उसी वर्ष भारतीय मुस्लिमलीग की स्थापना की गई । जिसके तीन उद्देश्य थे -- ब्रिटिश राज के प्रति भक्ति, मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा, अन्य जातियों के प्रति सद्भावना बनाये रखना ।[2]

साम्प्रदायिक झगड़े

राजनीति भी कितनी विचित्र वस्तु है । आरती और नमाज का झगड़ा धीरे-धीरे राजनीतिक झगड़ा बन गया । 'लखनऊ-समझौते' ने एक बार पुनः कांग्रेस और मुस्लिमलीग को साथ मिलाने के लिए बाध्य किया । साम्प्रदायिक सद्भाव पनपने लगा । 'खिलाफत आन्दोलन' में दोनों सम्प्रदाय ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष के मैदान में उतर आये थे । धर्म और राजनीति का ग्रंथिबंधन हो गया था । कालान्तर में भयंकर परिणाम दृष्टिगोचर हुआ । असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था । जो मरने और मारने को मैदान में निकल आये थे वे शान्त कब कैसे रहते ? मुसलमान खिलाफत के बाद क्या करते ? कोहाट के मामले को लेकर गांधी जी का अली बंधुओं द्वारा विरोध किया गया था । अलीबंधु कांग्रेस से अलग हो गये ।[3] मालाबार (दक्षिण) का 'मोपला विद्रोह' जो मात्र कृषक विद्रोह था उसे साम्प्रदायिकता की हवा दी गई । मंदिर और मस्जिद को लेकर आपसी झगड़े होने लगे । हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना की गई ।[4] शुद्धि और संगठन पर जोर दिया जाने

१- Johan Buchan, Lord Minto, (New York: 1924), P. 244.

२- Bolitho Hector, Jinnah The Creator of Pakistan (London: 1954), P. 43.

३- अभ्युदय (साप्ताहिक)(प्रयाग : १८ जनवरी १९३०) सं० ६, पृ० १२

४- एच० एन० मित्रा (सम्पा०), दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १९२४), खण्ड-दो, पृ० ६९.

पाकिस्तान का जन्म

साम्प्रदायवाद को लेकर 'हिन्दू-महासभा' तथा 'मुस्लिमलीग' दोनों के नेता भारतीय राष्ट्रवाद के पेट में धर्म की छैनी से छेद करने लगे। एक हिन्दू राष्ट्र का आलाप करने लगा और दूसरा मुस्लिम राष्ट्र का नारा लगाने लगा था। सन् १९३० से साथ 'पाकिस्तान'[1] की मांग उठने लगी थी। द्विराष्ट्र के सिद्धान्त का अनुमोदन बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मुस्लिमलीग ने विधिवत् कर दिया था। एक ओर अलग राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान के समर्थन में नारे लगते थे तो दूसरी ओर एक राष्ट्र के लिए 'पाकिस्तान मुर्दाबाद', 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' के नारों से उसका विरोध किया जाता था।[2]

भारतीय कांग्रेस से सम्प्रदायों का जिन्ना सर्वाधिक विरोध करते रहे। वह 'कराची से लेकर कलकत्ता तक के चौड़े गलियारे'[3] की अपनी मांग पर चट्टान की तरह स्थिर रहे। ब्रिटिश सरकार का वरदहस्त 'कायदेआजम' के सिर पर था। देश विभाजन की समस्या को तूल देकर देश को गृह-युद्ध की ओर धकेला जा रहा था।[4] देश का वातावरण बड़ा ही विषैला बन गया था। पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार बनाई गई परन्तु लीग ने उसका बहिष्कार कर गांधीवादी नीति के अनुकरण पर 'काला-दिवस' मनाने की घोषणा करदी।[5] अन्ततः बाध्य होकर गांधी जी ने देश-विभाजन की मांग मानली। मुस्लिम लीग को विश्वास न आया। 'पाकिस्तान-दिवस' को लेकर सारे भारत में प्रतिशोध की भावना से 'पाकिस्तान के दुश्मनों का नाश हो, हम पाकिस्तान चाहते हैं, स्वाधीनता चाहते हो तो बटवारा करो' आदि नारे लगाये गये थे। देखते ही देखते हिन्दू-मुस्लिम दंगों की भयंकर लपटें नोआखाली, कलकत्ता को लीलती हुई बिहार जा पहुँची।[6] भारत के नगरों के परनालों से रक्त बह रहा था। धर्मपरिवर्तन, लूटपाट,

---

1. PAKISTAN = P = Pakistan, A=Afganistan, K=Kashmir, S=Sindh.
2. Progs. Govt. of India Home Deptt. Secret file No. 222 of 1942 Poll.(I)
3. Mohmed Alijinnah, Legislative Assembly Debate, (Delhi: 19th November 1940), Vol. V, No. I, P. 823.
4. Ramanand Chatterjee (edi) The Modern Review (Calcutta: 1944) Vol. 75, Nos. 1-6, P. 240.
5. Bolitho Hector, Op. Cit. P. 100.
6. S.P. Sen, Dictionary of National Biography(Calcutta:1973), Vol. II, P. 19.

अराजकता, व्यभिचार के कारण नोआखाली ने पुन: राजपूताना जौहर की यादें ताजा कर दी थीं। सैकड़ों औरतों ने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए आत्महत्या कर ली थी। कहा जाता है पांच हजार से अधिक लोग मारे गये तथा पचास हजार से अधिक प्रभावित हुए।[1]

देश-विभाजन

पूर्वी भारत के अलावा अहमदाबाद, दिल्ली, बम्बई तथा पश्चिमी भारत के अनेक अन्य नगर साम्प्रदायिकता से बच न सके। देश का विभाजन कर दिया गया। हजारों हिन्दू और मुसलमान रक्त से लाल, जलते धुंए से धूमिल शवों पर मंडराते गिद्ध और चीलों से कलुषित, विनाश और डायन मृत्यु के यथार्थ कहाह को अपने पीछे छोड़कर अपने घर और नगर से अकेली अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए। दंगों का सिलसिला विभाजन के बाद भी चलता रहा। 'पंजाब में अपने घर, खेत और खलिहान लुटाकर हिन्दू-सिख शरणार्थी ज्यों ही दिल्ली पहुंचे अपने को गृह-विहीन पाकर शीघ्र ही वे मुसलमानों को उनके घरों से खदेड़ने में लग गये। यही बातें पाकिस्तान में हो रही थीं'।[2]

शरणार्थी समस्या देश के बंटवारे की ही देन थी। दोनों ओर आने जाने वालों की कितनी संख्या थी इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता था। अजगर की तरह लम्बी कतार में रेंगता हुआ[3] काफिला बढ़ता ही चला आया था। अनुमानत: एक करोड़ शरणार्थी भारत आये।

बापू का प्रयाण

महात्मा गांधी का एकता का स्वप्न भंग हो गया। मानवता की प्रेम और सद्भावना का पाठ सिखाने के लिए उन्होंने साम्प्रदायिकता की लपटों की परवाह न

१- एच० एन० मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन अनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १९४६), खण्ड दो, पृ० १९६.

२- फ्रैंक मोरेस, जवाहर लाल नेहरू : जीवनी (इलाहाबाद : लि० न०), पृ० ३१३.

३- महात्मा गांधी, अनुपम सूक्ति सम्पा० डा० राजेन्द्र प्रसाद (अहमदाबाद : १९४९), पृ० ६ (प्रस्तावना).

करके भारत के गांवों की पदयात्रा की । देश को परतंत्रता की कारा से मुक्त किया । परन्तु साम्प्रदायिकता के जहर का नशा मनुष्य पर इतना चढ़ गया था कि वह विवेक शून्य हो गया । विक्षिप्त नाथूराम गोडसे ने प्रार्थना स्थल की ओर गम्यमान बापू पर गोली दाग दी । वह 'हे राम' कहते हुए भूमि पर गिर पड़े । एक युगपुरुष इस धरा से सर्वदा के लिए उठ गया । साम्प्रदायिकता धरती की ओर आँखें गड़ाकर शर्म से सिसक उठी ।

क्रान्तिकारी आन्दोलन

ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत से समाप्त करने का आन्दोलन दो भिन्न-भिन्न राजनीतिक दर्शनों—हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक रूपों में देश में चल रहा था । भारतीय नवयुवक हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा 'सरफरोशी की तमन्ना' का गीत गा-गाकर 'एक हाथ में शस्त्र और दूसरे में गीता'[1] थामकर पराधीनता से पीड़ित जनता की मुक्ति का प्रयत्न कर रहे थे । साधन दोनों का भिन्न-भिन्न था परन्तु साध्य एक था । एक पूर्ण अहिंसावादी था और दूसरा हिंसावादी तथा क्रान्ति का पोषक ।

विप्लववाद

क्रान्ति, विप्लव आदि स्वयं भी बड़े डरावने और भयानक शब्द हैं । इन शब्दों से अधिकांश लोग भय खाते हैं । 'क्रान्ति' को सत्य की ध्वनि कहा गया है जो न्याय का निर्दोष मार्ग है । [illegible] की भाषा में उसे इन्कलाब और प्रकृति की भाषा में उसे आँधी की संज्ञा दी गई है । उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार ने उसे 'दबी हुई भावनाओं का फूट पड़ना'[2] कहा है । भावनाओं को दबाने या कुचलने से ही क्रान्ति के बीजों का वपन

१- हरिदत्त शर्मा (पत्रकार), लेनिन भारत के संदर्भ में (दिल्ली : १९७०), पृ० ४४.

२- जैनेन्द्र कुमार, प्रस्तुत प्रश्न (दिल्ली : १९५३), पृ० १५२.

युगों से चलता आया है । मानव जीवन की धारा का सरल और सुगम बहाव शोषण आदि के कारण जब अवरुद्ध हो गया तब चैतन्यावस्था में आकर वह अधीर तथा उतावला होकर फूट पड़ा । उसका क्रान्ति, विप्लववाद, आतंकवाद या आतंक आदि विभिन्न संज्ञाओं से नामकरण कर दिया । भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के क्रान्तिकारी आन्दोलन को पूँजीवाद और साम्राज्यवादी शक्तियों ने आतंकवाद का नाम दिया । यद्यपि भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन व्यक्ति की वीरता और आत्मोत्सर्ग की भावना पर आधारित था । प्रथम स्वातंत्र्य की आग की लपटों को बुझा देने के बाद भी उसकी चिनगारियाँ बराबर कहीं न कहीं सुलगती रहीं । क्रान्ति की धधकती ज्वाला को दमन की राख से दबाया तो जा सकता है परन्तु पूर्णतः बुझाया नहीं जा सकता । यह किसी भी दुःशासन-व्यवस्था के दुष्परिणामों का प्रतिफलन होती है । जिसका आधार विचारधारा न होकर अवसर की उपयोगिता होती है । जिनके उदर में रोटी का टुकड़ा नहीं, तन पर वस्त्र नहीं और जो यावत जीवन अभावों में जी कर दिन-रात तरसते रहते हैं ऐसे ही लोग आगे आकर क्रान्ति का आह्वान करते हैं ।

भारतीय-राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से लगभग दस वर्ष पूर्व वासुदेव बलवन्त फड़के ने स्वाधीनता का स्वप्न देखा था ।[1] परन्तु आतंकवादी-क्रान्तिकारी आन्दोलन का उग्र रूप 'कामिन' के उपरान्त ही स्पष्ट हुआ था । 'अन्य देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों की भाँति भारतीय-राष्ट्रीय आन्दोलन को पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से बड़ी प्रेरणा मिली तथा क्रान्ति की पश्चिमी विचारधाराओं के सम्पर्क में आने का सुअवसर मिला ।'[2]

विप्लववाद का प्रारंभ

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में लगभग १८९६ ई० के आसपास दक्षिण में भयंकर

१- [illegible] सरदाय, वामिक स्ट्रगल फार फ्रीडम (पूना : १९५८), पृ० ६१.

२- रामकिशोर चतुर्वेदी, 'मनुष्य की जययात्रा', हिन्दी विश्वभारती (लखनऊ : १९६४), खण्ड-१०, पृ० ३८०५.

[illegible] पड़ा । लोग [illegible] करने लगे । [illegible] होने लगीं । तिलक ने 'स्वराज्य-
[illegible]' का आन्दोलन शुरू[1] किया था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में वैधानिक तरीकों को
[illegible] 'भारतीय [illegible]' [illegible] आन्दोलन [illegible] ने रैण्ड नामक एक अंग्रेज
को मार डाला था ।[2] राजनैतिक वातावरण गरम हो उठा । मराठी और चापेकर
बन्धुओं ने जिस मार्ग को अपनाया था उसकी जड़ों ने भविष्य में सम्पूर्ण बंगाल में एक
नये क्रान्ति-युग का सूत्रपात कर दिया । 'राजनीति के क्षेत्र में लोकमान्य तिलक का सिद्धान्त
यह था कि लक्ष्य के न्यायपूर्ण होने पर उसके लिए सब साधन न्यायपूर्ण होते हैं । उनकी
दृष्टि में देश की स्वाधीनता के लिए प्रत्येक उपाय उचित था ।'[3]

लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से ही महाराष्ट्र में धार्मिक तथा ऐतिहासिक
उत्सवों के रूप में गणपति और शिवाजी उत्सव का आयोजन किया जाता था ।[4] 'श्रीमद्
भगवद्गीता' [illegible] की निष्काम कर्म और लोक संग्रह की नवीन व्याख्या की
गई । बंगाल में उसने [illegible] किया । [illegible] शक्ति का प्रतीक
बन गया ।[5] महायोगी अरविन्द के क्रान्तिकारी विचारों का प्रभाव जनता पर पड़ा ।
देश की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हिंसा का प्रयोग अनुचित न मानते थे ।[6]

क्रान्तिवाद का विकास

बंग-भंग का प्रबल विरोध किए जाने पर भी उसका कोई वांछित परिणाम
न निकला तब नव-युवकों की निराशा शनैः शनैः जोर पकड़ने लगी । वे भारत की मुक्ति

१- वैलन्टाइन शिरोल, इंडियन अनरेस्ट (लन्दन : १९१०), पृ० ४८.

२- रिपोर्ट आव दि सेडीशन कमेटी (भारत सरकार : १९१८), अध्याय१ ,पृ० ३.

३- गुरुमुख निहालसिंह, आप०सिट०, पृ० १४५.

४- रिपोर्ट आव दि सेडीशन कमेटी (आप० सिट०, अध्याय १, पृ० १.

५- मन्मथनाथ गुप्त भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास(दिल्ली :१९६०),
पृ० ६६.

६- डा० करणीसिंह, प्रोफेट आव इंडियन नेशनलिज्म (बम्बई : १९६७), पृ० ११८.

के लिए विच्छिन्न हो उठे । खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल कुमार चाकी द्वारा कलकत्ता-प्रेसीडेन्सी न्यायाधीश की हत्या से विप्लववाद का नवरूप दिखाई देने लगता है । जनता के मन में भी ऐसे देशप्रेमी नव-युवकों के लिए प्रेम था । उनको फांसी के उपरान्त 'एक मुट्ठी भस्म के लिए हजारों स्त्री-पुरुष प्रमत्त हो उठे ।'[1] ब्रिटिश शासकों के मन में भय उत्पन्न करने के लिए बमों-हथगोलों तथा पिस्टलों का प्रयोग किया जाने लगा । जिसमें न्यायाधीशों, पुलिस अधिकारियों तथा वायसराय आदि सरकारी उच्चाधिकारियों की हत्या का गुप्त आयोजन किया गया । उसके अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सरकारी कोषागारों को लूटने की योजनाएं बनाई गई थीं ।

गदर-आन्दोलन

ब्रिटिश शासन का दमनचक्र आतंकवादियों का पीछा नहीं छोड़ रहा था । इसलिए कुछ क्रान्तिकारी विदेशों में जाकर प्रचार कार्य करने लगे । श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा उनके अन्य साथी इस काम में जुट गये । लन्दन में 'इंडियन होमरूल सोसायटी' की स्थापना का उद्देश्य यही था ।[2] रोजी और रोटी की तलाश में गये भारतीयों को विदेशों में विशेषकर कनाडा और अमरीका में 'मूर्ख हिन्दू' तथा 'काले-कुली' नामों से पुकार कर पग-पग पर अपमानित किया जाता था ।[3] इस कलंक से मुक्ति का एकमात्र उपाय था स्वाधीन भारत । अतः लाला हरदयाल ने विदेशी भारतीयों का संगठन किया और 'चलो चलिए देश नू युद्ध करण' का मंत्र देकर लगभग दस हजार गदरियों को भारत भेजा । 'लाला हरदयाल के आग्रह पर 'आजादि-ए-हिन्दुस्तान' या भारत स्वातंत्र्य पार्टी का नाम 'गदरपार्टी' हुआ ।'[4] शंघाई, सैगान, टोकियो, कनाडा, अमेरिका और

१- चतुरसेन शास्त्री (सम्पा०) चाँद (फांसी अंक) (इलाहाबाद : १९२८), पृ० ११५

२- मन्मथनाथ गुप्त, आप० सिट०, पृ० २०.

३- प्रीतम सिंह पंछी, गदरपार्टी का इतिहास (दिल्ली : १९६१), पृ० २७०.

४- यथोपरि, पृ० २७१.

को प्रकट करने का कोई साधन नहीं है और विरोध प्रदर्शित करने एवं बहरों के कान खोलने और शासकों को, अन्यायकर्ताओं को समयोचित चेतावनी देने के लिए बम का विस्फोट किया है ।'[1]

लाहौर-षड्यंत्र

गिरफ्तारियों का सिलसिला आरंभ हुआ । लाहौर षड्यंत्र कांड की खाना-पूरी की गई । जघन्य, अमानुष वेदनाओं का शिकार बनाकर भगतसिंह तथा अनेक अन्य साथियों को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया था । उन्हें बचाने के लिए देश ने 'एड़ी चोटी की खाक छानी' परन्तु हाथ आया केवल शून्य । ब्रिटिश शासकों ने पूर्ण गुप्त रीति से, बड़ी ही चतुराई से शहीद क्रान्तिकारियों की भस्म को सतलज के जल में बहा दिया जिससे उस भस्म को भारतवासी अपनी ताबीज में भरकर न पहन सकें । सम्पूर्ण देश देशभक्तों की फांसी से शोकसागर में डूब गया । गांधी जी के प्रति विरोध प्रकट किया । उन्हें काले फूल भेंट किये गये । यद्यपि गांधी जी ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा था -- 'काश उनके पास जेल की कुंजियां होतीं तो उन्होंने उन्हें (भगत सिंह आदि) मुक्त कर दिया होता और गले लगाया होता ।'[2]

समाजवाद का प्रचार

'मार्क्सवाद' का प्रचार भारत में होने लगा था । अब मजदूर भी अपने शोषण को भाग्य से भिन्न मान रहा था । वह शोषण का अर्थ समझने लगा था । रूसी सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति से मजदूर की कायापलट के समाचारों ने उसे अतुल प्रभावित किया । भारत में भी औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप बुद्धिजीवियों का एक नया वर्ग तैयार हो रहा था । भारतीय मजदूरवर्ग में वैचारिक क्रान्ति के अस्त्र के रूप में समाजवाद को ग्रहण

१- वेंकटेशनारायण तिवारी (सम्पा०), अभ्युदय - भगतसिंह अंक (प्रयाग : १९३१), पृ० १७.

२- प्रोसीडिंग्स - भारत सरकार गृह-विभाग, राजनीतिक गोपनीय पत्रावली सं० ३३।

किया जाने लगा था । 'शीघ्र ही भारत के बड़े-बड़े नगरों में साम्यवादियों के स्वतंत्र संगठन बने, एक किसान मजदूर पार्टी की स्थापना हुई'[1] । यही नहीं मजदूर संघों और ट्रेड यूनियनों की स्थापना होने लगी ।[2]

<u>कानपुर तथा मेरठ षड्यंत्र</u>

भारत में समाजवादी दर्शन का प्रचार सन् १९२० से माना जाता है । परन्तु सन् १९२४ से ही 'कानपुर-षड्यंत्र'[3] के रूप में उसके अंकुर फूटते दिखाई देते हैं । 'उत्तर-भारत के विप्लव आन्दोलन पर कम्युनिज्म के आदर्श का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा ।'[4] सन् १९२९ के आसपास बम्बई में साम्यवादियों द्वारा कल-कारखानों को ठप्प-पुप्प करने के लिए हड़ताल का आह्वान किया गया था ।[5] जिसका देशव्यापी प्रभाव देखने में आया था । मजदूर वर्ग की चेतना ने एक नया रूप ग्रहण कर लिया । जिससे भयभीत होकर ब्रिटिश सरकार ने देश के प्रमुख साम्यवादी नेताओं को बंदी बनाकर मेरठ भेज दिया गया था । जिसे 'मेरठ-षड्यंत्र काण्ड'[6] कहा जाता है । उस कांड के अभियुक्तों ने अपने एक लिखित बयान में कहा था -- 'ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ने के लिए विदेशी मदद (कम्युनिस्ट इन्टर नैशनल) लेना कोई आपत्तिजनक नहीं है ।'[7] इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि भारतीय साम्यवादी कृषक और मजदूरों की मदद से ब्रिटिश शासन का भारत में अंत करना चाहते थे । 'साम्यवाद आर्थिक प्रश्नों के हलको ही संसार की मुक्ति का

१- बालाराम, 'साम्यवाद,' हिन्दी-विश्वकोष (वाराणसी:१९६६), खंड-११,पृ०४७२

२- बी० आर० नन्दा (सम्पा) सोशलिज्म इन इंडिया(दिल्ली:१९७२), पृ० ३.

३- प्रोसीडिंग्स, भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय राजनीतिक पत्रावली सं०७।७।१९

४- सत्येन्द्रनाथ सान्याल, वाप० सिट०, पृ० ३९८.

५- प्रोसीडिंग्स, भारत सरकार गृहविभाग राजनीतिक परम गोपनीय पत्रावली सं० ७।६। १९३५.

६- एच० एन० मित्रा (सम्पा०), दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता:१९३०), खण्ड-१ पृ० १९.

७- एम० एन० देसाई, दिकम्युनिस्ट रिप्लाइ (बम्बई : दि० न०) पृ० २३.

साधन मानता है । राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक हलचलों के गर्भ में कोई न कोई आर्थिक समस्या की उलझन दिखाई देगी । स्वराज्य की लड़ाई भी रोटी की लड़ाई है । साम्यवाद इस रोटी की लड़ाई का एक उपचार है ।[1]

समाजवादी दल

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन की वापसी नोंक-झोंक तथा बापू के द्वारा उसे वापस ले लिए जाने के कारण तथाकथित प्रगतिशील सदस्यों ने एक नया दल स्थापित कर लिया । जिसे 'कांग्रेस समाजवादी दल'[2] कहा गया । उक्त पार्टी का उद्देश्य भारतीय कांग्रेस को प्रगतिशील बनाना था । प्रथम महायुद्धोपरान्त तथा रूसी क्रान्ति के बाद देश में किसी न किसी रूप में सर्वश्री मानवेन्द्र राय, सुभाष, जवाहरलाल नेहरू आदि प्रभृति नेता समाजवाद का प्रचार कर रहे थे । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तो स्वयं कहा भी था कि, "मैं एक समाजवादी तथा प्रजातंत्रवादी हूँ ।"[3] साम्यवाद और समाजवाद में कोई महान अन्तर नहीं है । दोनों ही एक ही वृक्ष के दो फल हैं । भारत में समाजवादी दल के जन्म से पूर्व ये एक ही सिक्के के दो पहलू थे अथवा दूध में पानी की तरह घुले मिले थे ।[4] परन्तु धीरे-धीरे इनमें अन्तर किया जाने लगा । समाजवादी दल का अस्तित्व धीरे-धीरे विघटित होने लगा । ब्रिटिश शासन की कठोर नीति के कारण आतंकवाद और साम्यवादी आन्दोलन बिखर गया । फलतः आतंकवादी समाजवादी दल में और समाजवादी कांग्रेस दल में मिलते चले गये थे । समाजवादी दल का दूसरा नाम 'कम्युनिस्ट कांग्रेस'[5] भी था ।

१- पद्मकान्त मालवीय (सम्पा०) अनुवादक- साम्यवाद क्यों(प्रयाग:१९३६), पृ० ८

२- सुभाषचन्द्र बोस, दि इंडियन स्ट्रगल (कलकत्ता:१९६४),पृ० ३८३-८७.

३- जवाहरलाल नेहरू, इंडिया आन दि मार्च(लाहौर :१९४६), पृ० १०७.

४- यशपाल, मार्क्सवाद (लखनऊ : १९५७), पृ० १९.

५- "The tendency of terrorism is to merge with the Communism, and Communism tends to dominate the Indian National Congress."
 - The Statesman, Delhi, 11.7.1936. vide Proceedings: Govt. of India Home Deptt. file No. 33/9 of May 1936. (Poll).

सुभाषचन्द्र बोस

सुभाषचंद्र बोस और भारतीय-कांग्रेस में सैद्धान्तिक मतभेद उभरने लगे थे । उन्होंने कांग्रेस की नीतियों से नाता तोड़ कर 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की। जिस आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विकास के लिए समाजवादी मंच बना था , वह उन उद्देश्यों को गति प्रदान करने में सफल नहीं हो पा रहा था । विशेषकर आर्थिक प्रश्न वहीं का वहीं लटका हुआ था । 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना का तात्कालिक उद्देश्य भारत की स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता हीन संघर्ष करना था ।'[1] नेताजी सुभाषचन्द्र बोस एक बेचैनी अनुभव कर रहे थे । एक नई योजना उनके मस्तिष्क में जन्म ले रही थी । द्वितीय महासमर का डंका बज चुका था । नेताजी किसी तरह सकुशल क्रान्ति के लिए जर्मनी पहुंच गये । नजरबंदी सुभाष के जर्मनी पहुंच जाने के समाचार से ब्रिटिश सरकार के पैरों तले से जमीन खिसक गई । सुभाष की यह धारणा थी कि 'आधुनिक शत्रुओं का नाश आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से ही होना चाहिए ।' वह जर्मनी से जापान पहुंच गये । वहां पहुंच कर प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस द्वारा स्थापित 'आजाद हिन्द फौज' की कमान संभाल ली ।[2] उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से आजाद हिन्द फौज का संगठन किया । 'आजाद हिन्द की भावना उग्र रूप में जाग उठी जयहिन्द का नारा सारे राष्ट्र का नारा बन गया ।'[3] 'जयहिन्द' ने जातिय म्प्रदायवादी और धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीयता का मंत्र बन गई ।

आजाद हिन्द सेना

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जनता से अपील की कि 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा ।'[4] 'जयहिन्द' के जयकारे से सारा हिन्दुस्तान जाग उठा । 'दिल्ली

१- सुभाषचन्द्र बोस, आप० सिट०, पृ० ३२७.
२- मन्मथनाथ गुप्त, आप० सिट०, पृ० ५०६.
३- सत्यदेव विद्यालंकार, जयहिन्द (भूमिका भगवानदीन)(नई दिल्ली : १९४५),पृ० २२
४- "Give me blood and I promise you freedom."

- J.S. Bright, Op. Cit., P. 350.

चलो' के आह्वान के फलस्वरूप सुभाष ब्रिगेड ने फरवरी १९४४ में भारत के उत्तर-पूर्वी अंचल इम्फाल के कोहिमा बाजार पर अधिकार कर लिया । भारतीय तिरंगा कोहिमा के शिखर पर लहरा उठा ।[1] स्वाधीनता का अरुण बिम्ब प्राची-दिशा से दासता के गहन अंधकार को चीरता हुआ दूर क्षितिज पर अपनी लालिमा बिखरने लगा । परन्तु दुर्भाग्य की लम्बी छाया उसका पीछा कर रही थी । साम्राज्यवाद रूपी राहु ने उस बाल-रवि को ग्रसित कर लिया । जापान के युद्ध में घुटने टेक देने के कारण तथा साथ ही प्रकृति के वाम होने के कारण कोहिमा-शिखर पर लहराता भारतीय तिरंगा लाल किले पर फहराने से पूर्व ही उतार लिया गया । मातृभूमि के दीवाने 'आजाद हिन्द-फौज' के वीर सैनिकों पर दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले में मुकदमा चलाया गया ।[2]

देश के बड़े-बड़े नेताओं ने उन देशभक्तों को मुक्त कराने के लिए अपना खून और पसीना एक कर दिया । भूला भाई देसाई[3] की मुंहतोड़ वकालत से विवश होकर ब्रिटिश शासन को शूर-वीर [illegible] के लिए बाध्य होना पड़ा । भारतीय जनता स्वाधीनता के अग्रदूत को बचाने के लिए जागृत हो उठी । देश का कोई भी कोना शेष न बचा था जहाँ 'आजाद हिन्द-फौज' के मुकदमे को लेकर हड़ताल, जलूस, और नारे न लगे हों । झोंपड़ी से महल तक, गाँव से शहर तक सभी ने 'नेताजी जिन्दाबाद', 'चलो चलो दिल्ली चलो', 'जयहिन्द' आदि उद्घोषों के साथ सैनिकों की रिहाई के लिए 'आजाद हिन्द-फौज दिवस' मनाया ।[4]

१- Tara Chand, History of Freedom Movement In India (Govt. of India Publication: 1972), Vol. IV, P. 419.

२- प्रोसीडिंग्स, भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली सं० २१।९।१९४५

३- [illegible], आप० सिट०, पृ० २७०.

४- प्रोसीडिंग्स, भारत सरकार गृह-विभाग, अतिगोपनीय पत्रावली सं० २४।३।१९४५

नाविक-विद्रोह

जनता द्वारा 'आज़ाद हिन्द-फौज' की अपार प्रशंसा को देखकर 'ब्रिटिश भारतीय फौज' में विस्फोटों का सूत्रपात होने लगा।[1] विशेषकर 'रायल इंडियन नेवी' द्वारा ऐतिहासिक हड़ताल के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के पैर उखड़ने लगे। सेना ही किसी भी शासनतंत्र का मेरुदंड होती है। भारतीय सैनिकों के विद्रोह से ब्रिटिश शासकों का चिन्तित होना स्वाभाविक था। ब्रिटिश साम्राज्य चारों ओर से उठ रहे स्वातंत्र्य संघर्ष के प्रबल प्रहारों को झेल नहीं पा रहा था। यद्यपि द्वितीय विश्व-युद्ध में उसे विजयश्री मिल गई थी। यही नहीं उसकी पताका पहले से भी अधिक विश्व के भू-भाग में लहरा रही थी। किन्तु आर्थिक क्षेत्र में उसकी कमर टूट गई थी।[2] फलतः उसे उपनिवेशवाद से शासनतंत्र की नीति पर पुनरवलोकन करना पड़ा। भारत से भाग्यनक्षत्र भारत का साथ दे रहे थे। राष्ट्र की कालिमा मिट रही थी। परन्तु उसके प्रयास से देश की राष्ट्रीय एकता खंडित हो गई। 'लगभग साढ़े[3] तीन सौ वर्षों की आर्थिक और राजनीतिक दासता का अन्त निकट आता गया।'

उपसंहार

स्वाधीनता का आगमन

वह ऐतिहासिक और स्वर्ण विहान का दिन था पंद्रह अगस्त सन् उन्नीस सौ सैंतालिस।[4] इसी शुभ दिन स्वाधीनता की लक्ष्मी ने स्वतंत्र भारत के राजप्रासाद में प्रवेश किया। जनता आनंद में निमग्न हो गई। सौभाग्य के दीप प्रत्येक घर और आँगन में प्रज्वलित हो उठे। 'भारत माता की जय', 'महात्मा गांधी की जय' तथा 'जयहिन्द'

१- निकोलस एम० दि ट्रान्सफर आव पावर (लन्दन : १९७१), खण्ड-दो, पृ० ८०३.
२- एन० एन० मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन एनुअल रजिस्टर, (कलकत्ता : १९४६), खण्ड-दो, पृ० ६१.
३- पर्सीवल स्पियर, माडर्न इंडिया (लन्दन : १९६५), भाग-तीन, पृ० ३८८.
४- ताराचन्द, हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इंडिया (भारत सरकार : १९७१), खण्ड-चार, पृ० ५५०.

से जयजयकारों से सारा देश अटक से कटक तथा काश्मीर से कन्याकुमारी तक गूंज उठा । गांधी जी के राजनीतिक उत्तराधिकारी पं० जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र की बागडोर संभाली तथा साहित्यकार 'नवगति नवलय... ताल छन्द नव' में तल्लीन होकर नवीन साहित्यिक आशाओं की खोज में जुट गया । कुछ भविष्य की ओर उन्मुख होने लगे और कुछ राष्ट्रीय-संग्राम का पुनरवलोकन के रूप में आख्यान करने लगे ।

तृतीय अध्याय

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की चेतना
तथा
हिन्दी उपन्यासों में उसका स्वरूप

"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो -- जो हममें गति और संघर्ष की बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं -- क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"

-- प्रेमचन्द

'सांस्कृतिक पुनरुत्थान' के फलस्वरूप भारत में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सुधार आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ जिसके कारण 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' की भावना ने साहित्यिक जागरण को जन्म दिया था । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण के कारण जनता में उसके प्रति असन्तोष की सृष्टि हो रही थी । पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क ने भारतीय मनीषियों को दासता की बेड़ियों से उन्मुक्त होने के लिए स्वभाषा प्रचार की ओर उन्मुख किया । स्वामी दयानंद सरस्वती, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने निज भाषा के प्रयोग तथा सम्वर्द्धन पर विशेष बल दिया था ।

गद्य-भाषा जागरण

फोर्ट विलियम कालेज के भारतीय विद्वानों ने हिन्दी गद्य साहित्य को जो अधूरी भावुकता प्रदान की थी उसे भारतेन्दु ने नवरूप में ढालकर उसका कायाकल्प ही कर दिया था । बंगला साहित्य इस क्षेत्र में हिन्दी साहित्य का अग्रज रहा है ।[1] सांस्कृतिक नव-जागरण के विभिन्न आन्दोलनों के कारण भाषा ने रीतिकाल के दरबारी साहित्यिक वातावरण से तिलांजलि ले ली थी और अब वह जनता के चौपाल में नव-आशाओं के खोज में संलग्न हो उठी ।

जागरण के इस युग में हिन्दी साहित्य का स्वर किंचित् परिवर्तित हुआ । पाश्चात्य सम्पर्क से जनता के जीवन में नवीन जीवोदय हुआ । दैहिक पराधीनता के अतिरिक्त मानसिक पराधीनता से मुक्ति की भावना जगती हुई । किसी भी जीवन्त राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसकी अपनी भाषा तथा साहित्य होता है । जिसमें उस राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय जीवन पद्धति का आकलन सन्निहित रहता है । सभी सुधार आन्दोलनों के मूल में व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा सामाजिक समानता का भाव विद्यमान होता है जो राष्ट्रीय चेतना को गति प्रदान करते हैं ।

जीवन और साहित्य

समाज, साहित्य, व्यक्ति और राजनीति का सम्बन्ध अटूट होता है। व्यक्ति इन सम्बन्ध सूत्रों में एक कड़ी का काम करता है। स्वस्थ्य समाज के लिए स्वस्थ्य साहित्य का होना नितान्त आवश्यक है। 'जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी।'[१] व्यक्ति ही साहित्यकार होता है और साहित्यकार समाज का द्रष्टा ही नहीं स्रष्टा भी होता है।

साहित्य का मूलस्रोत मानवजीवन तथा उसकी आसंग गतिविधियाँ हैं। हडसन के शब्दों में 'साहित्य भाषा के माध्यम से मूलत: जीवन की अभिव्यक्ति है।'[२]

कला का विकास जीवन च्युत होता है। उनका सम्बन्ध 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न" के समान अन्योन्य भाव से सम्बद्ध है। साहित्यकार अपने युगीन परिवेश में विचरण करते हुए भाव और विचारों को ग्रहण कर उन्हें साहित्यिक कलेवर प्रदान करता है। अत: 'कला या साहित्य का उद्देश्य मात्र कला की ही अभिव्यक्ति नहीं मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति होती है।'[३] एक ओर जहाँ साहित्य व्यक्तिगत है वहीं दूसरी ओर वह समष्टिगत भी। इसीलिए उसमें सामाजिक यथार्थ का पुट होता है। समाज की यथार्थवादी घटनाओं की साहित्यकार उपेक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि 'साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता बल्कि वह साहित्यकार की कूँची के द्वारा चित्रित किया गया ऐसा चित्र होता है जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुन्दर रंग भरे होते हैं।'[४]

१- शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में (दिल्ली : १९५६), पृ० ६९.

२- "It is thus fundamentally an expression of life through the medium of language." W.H. Hudson, "An Introduction to English Literature" (London: 1949) P. 10.

३- डा० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास (दिल्ली : १९६५), पृ० १३६.

४- त्रिभुवनसिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद (बनारस : २०१२ वि०), पृ० ८७.

समाज व साहित्यकार

जिस प्रकार कमल के विकासार्थ कमलिनी-कुल-वल्लभ-प्रभा की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सामाजिक सभ्यता के विकास हेतु सत साहित्य भी अनिवार्य है। 'वह वर्तमान को ही प्रतिबिम्बित नहीं करता, भविष्य की संभावनाओं को भी धारण करता है।'[1] वह समाज की पताका को थामे आगे-आगे चलता है। कोई भी कलाकार अनिवार्य रूप से अपनी परिस्थितियों का परिणाम होता है। वह अपने आस-पास व्याप रहे संघर्ष का फल है।'[2] मानव एक सामाजिक प्राणी है। साहित्य अथवा कला सामाजिक प्रक्रिया का ही एक रूप है। 'सामाजिक संघटना और संस्थाएं परम्परागत धारणाओं की खोज और उनकी स्वीकृति की मूलभूत आधार है।'[3] साहित्य मानव जीवन की अनुभूतियों का चित्रांकन ही तो है। जो कल्पना और भावना के चरणों के सहारे चलकर गन्तव्य की मंजिल को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहता है। 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है -- वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।'[4] समाज विच्छेदित साहित्य शाश्वत नहीं अपितु संज्ञाहीन होता है। जन-जीवन से संपर्कहीन साहित्य में उच्च कर्तव्य-निष्ठा गौरवपूर्ण भाव-व्यंजना की क्षमता का अभाव होता है। 'जो कला जनता के जीवन में नव-प्रेरणा नहीं दे सकती वह चिरन्तन सौन्दर्य की निष्प्राण प्रतिमा की तरह व्यर्थ रहती है।'[5]

समाज में चिरन्तन सौन्दर्य की प्राणवान प्रतिमा की संस्थापना के लिए ही साहित्यकार कल्पना के पंखों पर आरूढ़ होकर वर्तमान के अतिरिक्त अतीत इतिहास के

१- जैनेन्द्रकुमार, साहित्य का श्रेय और प्रेय (दिल्ली : १९५३), पृ० ३१२.

२- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, 'त्रिशंकु' (बीकानेर : १९७३), पृ० ८०.

३- प्रेमचंद, कुछ विचार (इलाहाबाद : १९६५), पृ० २२.

४- पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी 'प्रेमचंद और सामाजिक समस्या' सं० शचीरानी गुर्टू, प्रेमचंद और गोर्की (दिल्ली : १९५५), पृ० ९६.

सागर मञ्झारों में व्याकुल शाश्वत जीवन मूल्यों के अन्वेषणार्थ भटकता रहता है । कुशल गोताखोर की तरह कोई न कोई बहुमूल्य ऐतिहासिक जीवन्त-घटना का रत्न उसे मिल ही जाता है । अनुभूतियां और घटनाएं उसके लिए मृत्तिका हैं । घटकार की भांति वह भी समाज सापेक्ष स्वमनोकूल नाना साहित्यिक प्रतिमाओं -- निबंध, कविता, कहानी, नाटक, एकांकी और उपन्यास आदि का निर्माण करता है ।

इतिहास और उपन्यास

इतिहासकार तथा उपन्यासकार भी ऐतिहासिक तथ्यों का संयोजन अपने रचना-विधान में करते हैं । इन तथ्यों का आकलन समाज की क्रोड़ से होता है । दोनों ही समाज रूपी वाटिका के दो भिन्न-भिन्न पुष्प-पादप हैं । दोनों का आधार भी एक है । फिर भी इतिहासकार और उपन्यासकार की अभिव्यक्ति में मूलभूत अन्तर है । आंग्ल-साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक हडसन ने इस अन्तर पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'कथा साहित्य में नाम तथा तिथि के अलावा सभी सत्य होता है और इतिहास में नाम तथा तिथि के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं होता है ।'[१] इतिहास यदि मानव के बाह्य कार्य-व्यापार सफलता और असफलता का आलेख है तो उपन्यास उसके आन्तरिक जगत का चित्र । अतः 'ऐतिहासिक उपन्यास मनुष्य के पारम्परिक और उनकी समस्याओं की कहानी है ।'[२]

प्रायः उपन्यासकार सम्प्रति-युग से पलायन की भावना, अतीत के प्रति मोह के साथ-साथ उसकी पुनर्स्थापना की कामना तथा सशक्त वर्तमान के नव-निर्माणार्थ अतीत से उपयोग्य अनुसंधान की आकांक्षा के कारण इतिहास की ओर प्रवृत्त होता है । वह

१- "In fiction every thing is true exceptnames and dates, in history nothing is true except names and dates." W.H. Hudson, 'An Introduction to the English Literature' (London: 1940) PP.166-67.

२- डा० शशिभूषण सिंहल 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा (आगरा : १९६०), पृ० २५.

अतीत के विलुप्त पदचिह्नों को अपने कथ्य का विषय बनाता है। किन्तु पूर्ण स्वच्छ-न्दता उपन्यास की कहानी कहते समय भी नहीं रहती, वहां भी कहानीकार जीवन के अतिरिक्त प्रोति के छूटे से भी बंधा ही रहता है। उसका नाता वर्तमान तथा अतीत दोनों से होता है। "किसी भी देश की प्रगति का यदि ज्ञान करना हो तो उस देश का उपन्यास पढ़ना चाहिए क्योंकि जीवन की यथार्थताओं को लेकर ही उपन्यास आगे बढ़ता है।"[1] प्रोफेसर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के मतानुसार "एक विराट कैन्वेस में युगीन जीवन एवं समकालीन जीवन चिन्तन के विविध पक्ष उसमें कलात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो उपन्यास और मानव-जीवन में अन्तर नहीं रह जाता।"[2] उपन्यास को मानव जीवन का गद्य कहा गया है। मुंशी प्रेमचन्द ने उपन्यास को "मानव चरित्र का चित्र मात्र" कहा है।[3] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीनेउपन्यास और जीवन का पारस्परिक विश्लेषण करते हुए कहा है कि भविष्य में उपन्यास जीवन से इतना तद्रूप हो गया कि वास्तविक जीवन में तथा उपन्यास की साहित्यिक कृति में अन्तर ढूंढ निका-लना कठिन हो गया। उपन्यास की कतिपय व्याख्याएं विद्वानों ने की हैं। किसी ने उपन्यास को "यथार्थ मानव अनुभवों एवं सत्य का आकलन" कहा है तो किसी ने जीवन और समाज के व्यापक रूपों और घटनाओं का चित्रण तो किसी ने उसे जीवन की आलो-चना।

<u>राजनीति और साहित्य</u>

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस कथन में प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु द्वारा अभिव्यक्त उस कथन को भी सम्मिलित कर दिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि मानव सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ एक राजनीतिक प्राणी भी है। समाज यदि मानव का चरण है तो राजनीति उसका मस्तिष्क। दोनों की संगति में ही जीवन की

1- त्रिभुवनसिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद (बनारस : २०१२ वि०), पृ० ४४.
2- प्रो० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियां (दिल्ली : १९७०), पृ०
3- प्रेमचन्द, विविध प्रसंग, सं० अमृतराय (इलाहाबाद : १९६२), भाग तीन, पृ० ३३

नहीं संभव है। आधुनिक युग के मनुष्य के जीवन के विभिन्न रूप-- धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला-साहित्य और राजनीति आदि परस्पर इतने संगुंफित हैं कि उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता।[1] हावर्ड फास्ट महोदय के अनुसार -- 'राजनीति सामाजिक यथार्थ का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। साहित्य का राजनीति से विच्छेद उतना ही असंगत है जितना अर्थ का स्वयं उसके शब्दों से।'[2]

जो व्यवस्था समाज के विकास में सहायक होती है उसे समाजनीति और जो राज्य का विकास करती है उसे राजनीति कहा जाता है। राज्य की उत्पत्ति का कारक स्वयं समाज की अपनी आवश्यकता रही है। जिसने एक शासनव्यवस्था का निर्माण किया। जब कभी शासनतंत्र के प्रमुख ने जनता की इच्छा के विरुद्ध समाज को अपने राजदंड से हांकने का प्रयत्न किया तब-तब उसे समूल उखाड़ने की चेष्टा में जन आन्दोलनों का जन्म हुआ है। उस जन आन्दोलन का एक सैनिक साहित्यकार भी है जो अपने साहित्यिक पांचजन्य द्वारा समाज को संघर्ष के लिए तैयार करता है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक नीत्शे (NIETZSCHE) यद्यपि साहित्यिक था परन्तु उसके राजनीतिक दार्शनिक प्रभाव की उपेक्षा संभव नहीं है। रूसी क्रान्ति का महान् नेता लेनिन राजनीतिज्ञ था फिर भी आधुनिक साहित्य पर उसकी गहन छाप है। टाल्सटाय, वाल्टेयर और रूसो के विचारों के प्रतिबिम्ब ने नवीन इतिहास का निर्माण किया है। निश्चय ही समाज यदि साहित्यकार को जन्म देता है तो साहित्यकार समाज के नव-निर्माण को। 'यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि राजनीति से उसे लगाव नहीं है अथवा राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो उसका यह कथन असंगत ही नहीं अपितु घोर अवसरवादी तथा असामाजिक भी है।'[3] गांधी जी ने एक बार

१- रामदीन गुप्त, प्रेमचन्द और गांधीवाद (दिल्ली : १९६१), पृ० ५३.

२- "Since the politics is a most important factor of the social reality, the divorce of art from politics would be as absured as the divorce of art from words themselves." Howard Fast, Literature and Reality, (LONDON: 1955) P. 86.

३- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, साहित्य की वर्तमान धारा (बांकीपुर (पटना : वि०नं०) पृ० १६८

कहा था कि राजनीति व्यक्ति को साँप की कुंडली की भाँति चारों ओर से घेरे हुए है जिससे निकलना कठिन है, निश्चय ही सत्य है । 'आधुनिक साहित्य का एक बड़ा भाग युग का इतिहास बनाने वाली घटनाओं से संबंधित है ।'[1] क्योंकि 'आज का इतिहास कल राजनीति था इसी तरह आज की राजनीति समृद्ध और ठोस बनकर कल का इतिहास बन जायेगी ।'[2] इसलिए राजनीति को इतिहास का अग्रदूत कहा गया है ।

'राजनीतिज्ञ और साहित्यकार की संघर्ष प्रक्रिया भिन्न होती है । राजनीतिज्ञ सक्रिय होकर शासन के समकक्ष से प्रत्यक्ष संघर्ष करता है लेकिन साहित्यकार विद्रोह के स्वर की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आश्रय लेता है । राजनीतिज्ञ शासन विधान की समीक्षा में रत रहता है और साहित्यकार शासनव्यवस्था के लघु से लघुतम कलपुर्जों की छानबीन करता है क्योंकि साहित्यकार का विवेचन ऊर्ध्वगामी और राजनीतिज्ञ का निम्नगामी होता है ।'[2]

राजनीति और उपन्यास

साहित्य की प्रत्येक रचना में किसी न किसी रूप में राजनीति के अणु अवश्य विद्यमान होते हैं । उपन्यासकार अथवा साहित्यकार अपने देश उत्तरदायित्व से बंधा होता है । उसके लिए अतीत और वर्तमान दोनों का समान महत्त्व है । वह युगीन जीवंत तत्वों को अपनी कृति में ग्रहण करता है । रैल्फ फाक्स उसके इसी उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालते हुए प्रश्न करते हैं -- 'क्या कोई उपन्यासकार उस दुनिया की समस्याओं से जिसमें कि वह रहता है उपेक्षा कर सकता है ? क्या वह युद्ध की तैयारियों के कोलाहल से अपने कान बन्द रख सकता है ? क्या वह अपने देश की परिस्थितियों की ओर से अपनी आँखें मूंद सकता है ? अपने चारों ओर के भयानक वातावरण से क्या वह अपने मुँह में पट्टी बाँध सकता है ?'[3] उपर्युक्त सभी प्रश्नों का प्रत्युत्तर उसकी नकारात्मक

१- रामेश्वर शर्मा - राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य (नई दिल्ली :१९५३), पृ० ५६.

२- चंडीप्रसाद जोशी, हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन (कानपुर :१९६२)पृ०१९८.

३- रैल्फ फाक्स, दि नावल एण्ड दि पीपुल (नई दिल्ली : १९५७), पृ० ७.

अभिव्यक्ति में है। क्योंकि काम, शांति और युद्ध (प्यार) वास्तव में साहित्यकार की चेतना के संवेदनशील अंग हैं। इसीलिए उपन्यास को 'व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य' कहा गया है।[1]

हिन्दी उपन्यासकार भी भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की अनदेखी न कर सका। अपनी रचनाओं में उसने स्वातंत्र्य संघर्ष के विभिन्न चित्रों को कल्पना की कूंची से यथार्थ रूप में उकेरा है। प्रस्तुत संदर्भ में हिन्दी उपन्यास के विकास का प्रसंगानुकूल संक्षिप्त विवेचन अनुचित न होगा।

भारत में उपन्यास की उद्भव-परम्परा को कतिपय विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य की 'कादम्बरी', 'दशकुमारचरितम्', हितोपदेश और पंचतंत्र से माना है।[2] इस मान्यता के पीछे एकमात्र कारण उनका पूर्वाग्रह मात्र है। जिसे आज यथार्थ में उपन्यास कहा जाता है 'वह एक पश्चिमी पौधा है जो भारतवर्ष में लगाया गया है।'[3] भारत में उपन्यास का उद्भव पाश्चात्य शिक्षा की देन है। क्योंकि आधुनिक हिन्दी उपन्यास का स्वरूप और शिल्प प्राचीन संस्कृत-कथा-साहित्य से नितान्त भिन्न है। 'गोदान' को 'कादम्बरी' की परम्परा का विकास मानना हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास को रबर की तरह खींचने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रयास का भाव नहीं दिखाई देता है।[4] 'हिन्दी में आधुनिक उपन्यास साहित्य के जन्म का श्रेय उन पाश्चात्य प्रभावों को ही दिया जा सकता है जो उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप दृष्टिगोचर होने लगे थे।'[5] आधुनिक उपन्यास निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता की उपज

१- रैल्फ फाक्स, दि नावल एण्ड दि पीपुल (नई दिल्ली : १९५७) पृ० २८.

२- गुलाबराय - काव्य के रूप (दिल्ली : १९५८), पृ० १९९.

३- प्रेमचंद विविध प्रसंग सं० अमृतराय (इलाहाबाद : १९६२), भाग तीन, पृ० ३६.

४- द्रष्टव्य है -- विश्वंभर 'मानव', उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार (इलाहाबाद : १९७०), पृ० २८.

५- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : नये संदर्भ (इलाहाबाद : १९६६), पृ० २६९.

है । रैल्फ फाक्स का यह अभिमत है कि 'उपन्यास विश्व की कल्पनापूर्ण संस्कृति को बुर्जुवा अथवा पूँजीवादी सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है',[1] उपर्युक्त कथन के संदर्भ में पूर्ण सत्यपरक है । वस्तुत: 'आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है ।'[2]

उपन्यासकार ने स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए जीवन-प्रांगण में बिखरी विविध घटना सामग्री को अपनी लेखनी के माध्यम से नवीन शिल्प प्रदान किया । वस्तु, शिल्प, शैली और स्वरूप की दृष्टि से साहित्यिक समालोचकों ने उपन्यासकार की कलात्मक दृष्टि को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया है । यथा वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, जासूसी, धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आंचलिक और राजनीतिक आदि । हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा के प्रारंभिक चरणों में राजनीतिक उपन्यास के पृथक स्वरूप का अभाव पाया जाता है । क्योंकि राजनीतिक समस्या को सामाजिक समस्या का पर्याय माना गया है । सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक जन-जीवन का जो चित्रण मिलता है उसके अन्तराल में यही धारणा काम करती रही है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस ओर इंगित करते हुए कहा है कि 'सामाजिक उपन्यासों में देश में चलने वाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलनों का भी आभास बहुत कुछ रहता है । ताल्लुकेदारों के अत्याचार, भूखे किसानों की दारुण दशा के बड़े चटकीले चित्र उनमें प्राय: पाये जाते हैं ।'[3]

सामाजिक और राजनीतिक समस्या के सम्मिश्रण का परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में राजनीतिक उपन्यासों की 'स्वस्थ परम्परा' का पृथक धारा के रूप में विकास न हो पाया । यही नहीं राजनीतिक उपन्यास की कोई, सर्वमान्य परिभाषा परि-

---

१- "Novel is the most important gift of the bourgieoes or capitalist civilisation to the world's imaginative culture" Ralph Fox, Op.Cit. P. 53.

२- लक्ष्मीनारायण सिंह 'उपन्यास' हि० वि० कोष (वाराणसी : १९६६) खण्ड पृ० ९२.

३- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (काशी : २००६ वि०)पृ० ५३५

पारिभाषित भी नहीं हुई है। शब्दकोषों में उक्त परिभाषा का अभाव इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। निश्चित परिभाषा के अभाव में किसी रचना को राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा देना महा [illegible] न्याय के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। यह तो अंधे की भाँति हाथी की पहचान बताने का ही व्यर्थ प्रयास है।

पाश्चात्य विद्वान हावे ने राजनीतिक उपन्यास का विश्लेषण करते हुए कहा है -- "राजनीतिक उपन्यास वह है जिसमें राजनीतिक विचारों का महत्वपूर्ण अभिनय निहित होता है। अथवा जिसमें राजनीतिक पर्यावरण का अति प्रभावशाली चित्रण रहता है।"[1] राजनीतिक उपन्यास की कसौटी का मापक भी वही है जो अन्य उपन्यासों के लिए है। अन्तर केवल इतना है कि युगीन राजनीतिक पर्यावरण में राजनीतिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में वह व्यक्ति के जीवन खण्डों को उद्घाटित करने में कितना सफल हुआ है अथवा उसके जीवन के नैतिक मूल्यों के उत्थान में कितना समर्थ हुआ है। यदि कोई रचना उपर्युक्त कसौटी पर खरी उतरती है तो निश्चय ही उसे राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा देने में प्रश्नचिह्न की आवश्यकता नहीं है। किसी भी देश के राष्ट्रीय संघर्ष के वैविध्यपूर्ण जीवनगत प्रवृत्तियों से प्रभावित औपन्यासिक रचना का ही दूसरा नाम राजनीतिक उपन्यास है।

प्रेमचंद युग से ही हिन्दी में राजनीतिक उपन्यासों का स्रोत फूटना आरंभ होता है। असहयोग आन्दोलन की उष्णता से साहित्यकार पूर्णतः प्रभावित हो गया था। स्वातंत्र्य संघर्ष की अनेक घटनाओं पर उसकी दृष्टि ठहरने लगी थी। बीसवीं शताब्दी राजनीतिक संघर्षों का युग है। विनाशकारी विश्वयुद्ध, बोल्शेविक क्रान्ति, लाल क्रान्ति तथा एशियाई देशों का राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन सभी प्रमुख राजनीतिक घटनाएं हैं। इन घटनाओं का प्रभाव समाज के विभिन्न कार्यकलापों पर पड़ा।

1- "By a political novel I mean a novel in which political ideas play a dominant role or in which the political milieu is the dominant setting." I. Howe, Politics And The Novel. (London: 1961), P. 17.

उपन्यास न केवल समाज का मात्र दर्पण है अपितु वह समाज का इतिहास भी है। जो उसके उत्थान-पतन और राजनीतिक गतिविधि की कहानी को अपने अन्तःस्थल में संजोये रखता है। साहित्य, समाज और राजनीति ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भाँति संरचना, संवर्धन तथा संहार की त्रिगुणात्मक प्रक्रिया में सर्वदा संलग्न रहते हैं। समाज की इकाई व्यक्ति है और उपन्यासकार उस इकाई का एक महत्वपूर्ण भाज्य है। जो गाँव की चौपाल से लेकर राजप्रासाद तक की जीवन यात्रा में जो कुछ भोगता है उस अनुभूतिपरक भोग्य को बाजारी कलाकार द्वारा आदर्श और यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस अनुभूति में उसकी स्वजीवनगत राजनीति भी है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उससे संबद्ध रहती है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन को उपन्यासकार ने किस रूप में ग्रहण किया, उसका विवेचन और विश्लेषण आगामी पृष्ठों में विवेचनीय है।

प्राक् गांधीयुगीन राजनीतिक उपन्यास (१८८५-१९१७)

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध विशेष महत्वपूर्ण है। हिन्दी उपन्यास और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उद्भव और विकास की दृष्टि से सगे सहोदर हैं। दोनों का प्रेरणा स्रोत भी यूरोपीय पुनर्जागरण का परिणाम है। ह्यूम महोदय का आशीर्वाद पाकर एक ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विकास हुआ और दूसरी ओर आंग्लसाहित्य और बंगलासाहित्य के `अनुकरण`[1] पर हिन्दी उपन्यास ने अपनी शैशवावस्था की ओर पग बढ़ाया। उपन्यास रूपी यह नवजात शिशु राजभक्ति की प्रशस्तिपरक लोरियाँ सुन-सुनकर जब किशोरावस्था के द्वार पर पहुँचा तो उसे तिलस्म, रोमांस, ऐयारी और जासूसी की भूलभुलैयों में चक्कर काटकर रह जाना पड़ा। प्रेमचन्द के हिन्दी में आगमन से पूर्व तक यह परम्परा बनी रही। महात्मा

१- `सन् १८९० तक का काल पूर्णतः अनुवादकाल रहा है।` -- हिन्दी उपन्यासकोष, डॉ० गोपालराय (पटना : १९६८), भाग १, पृ० ७२.

गांधी के राजनीति में प्रवेश से ही राजभक्ति का व्यामोह विलीन हो पाया था। इससे पहले राजनीति से उसका कोई सम्बन्ध न था। पुनरुत्थानवादी आन्दोलन — समाजसुधार आन्दोलन उपन्यास का वर्ण्यविषय बनते रहे। अंग्रेजी सरकार का दमनचक्र भी उपन्यासकार को राजनीति से कन्नी कटवाता रहा। प्रेमचन्द से पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्रण का अभाव है। कुछ मुरझाये-अंकुर खोजे जा सकते हैं। परन्तु वे सब राजभक्ति के सूत्र मात्र कहीं-कहीं मरुस्थल-नखलिस्तान की तरह हैं।[1] यद्यपि भारतेन्दुकाल में हिन्दी काव्य के क्षेत्र में आंग्ल शोषण के विरुद्ध कवि का स्वर स्फुटित होने लगा था परन्तु हिन्दी उपन्यासकार तत्युगीन आदर्शवाद और सुधारवाद के व्यामोह में मोहित था। इस काल के उपन्यासों में प्रायः युगचित्रण का अभाव खटकता है। 'चन्द्रकान्ता' जैसा प्रसिद्ध उपन्यास भी युगीन-करवट के प्रति मौन है। 'जब यह उपन्यास लिखा गया उस समय देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक अवस्था कैसी थी, इसका कोई भी ज्ञान इस रचना से नहीं होता।'[2] उपन्यासों में यथार्थवाद की अपेक्षा कल्पना का प्राधान्य है। इस युग के उपन्यास अधिकांश रूप में काल्पनिक हैं।[3] क्योंकि उस समय 'अध्ययन और लेखन का एकमात्र उद्देश्य था कौतूहल तृप्ति द्वारा मनोरंजन करना।

बीसवीं शताब्दी के लगभग अठारह वर्षों तक हिन्दी उपन्यासकार लक्ष्यहीनता, स्वतन्त्र की अस्पष्टता के कारण 'अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार औपन्यासिक कार्य कर रहे थे।'[4] राष्ट्रीय समस्या नाम की कोई समस्या उनके सामने थी ही नहीं। कौटुम्बिक के कारण बंगाल का स्वदेशी आन्दोलन सांप्रदायिकता का दामन थामकर रह गया।

१- द्रष्टव्य है प्रस्तुत प्रबंध का चतुर्थ अध्याय,

२- डा० कैलाश, प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास (दिल्ली : ति० न), पृ० २८७.

३- डा० सुरेश सिन्हा, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० ४४.

४- गुलाबराय, बाप० सिट० (पूर्वोल्लिखित रचना), पृ० १८६.

५- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी साहित्य (इलाहाबाद : २००७ वि) पृ० १३५.

वह हिन्दी उपन्यासों में स्थान न पा सका । इसका कारण संभवत: यही है कि यह युग उपन्यास का आरंभिक काल के साथ-साथ संक्रान्तिकाल रहा है । दूसरा कारण था उपन्यास लेखन के प्रति जन सामान्य की निरादर की भावना। 'उपन्यास लेखन एक ढकोसला[1] माना जाता रहा है उपन्यासकार को धन चक्कर की पदवी मिलती रही है[2]। यह मनोवृत्ति उन्नीसवीं शताब्दी में अधिक थी परन्तु समय की गति के साथ इसका ह्रास होता गया और इसका अवसान मुंशी प्रेमचन्द के आगमन पर दिखाई पड़ा । 'पुनर्जागि-रण काल ने हिन्दी उपन्यास को गहरे आदर्शवाद के रंग में डुबो दिया था । पथ-भ्रष्ट युवक के सुधार की कहानी 'परीक्षा गुरु' से जो आरंभ हुई तो सारे कथा साहित्य को धीरे धीरे उसने अपने क्रोड़ में समेट लिया ।'[3]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति के प्रांगण में एक नवीन हलचल दिखाई देने लगी । 'नरम' और 'गरम' का सम्मिश्रण एक नई आशा का संदेश लेकर आया । राजनीति की बागडोर बापू के करों में आ गई । शहर की सड़कें ग्रामों से जुड़ गईं । 'असहयोग' के आन्दोलन ने प्रसुप्त प्राणों को स्पंदित कर दिया । राजनीति का यह स्वर उपन्यासों का अंकुर बनकर नवीन शिल्प में ढलने लगा । क्योंकि 'श्रेष्ठ साहित्य उस समय उत्पन्न होता है जब समाज में उस संघट के विरुद्ध असंतोष का बीज हो । इस असंतोष को लोकजीवन से जितना ही बल प्राप्त होता है उसमें उतना ही ओज आता है और साहित्य का स्वर उतना ही ऊँचे उठता है ।'[4]

विश्व-राज्यक्रान्तियों के मूल में साहित्य का हाथ रहा है । गोयबेल्स की प्रेरणा से नाजीवाद का जन्म हुआ और फ्रान्स की क्रान्ति का पथ-प्रशस्त कर्ता रूसो

१- द्रष्टव्य है -- डा० श्रीकृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (प्रयाग : १९६५), पृ० २७२.

२- प्रो० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पूर्वोल्लिखित ग्रन्थ, पृ० २५४.

३- डा० मक्खनलाल शर्मा, हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा (दिल्ली :१९६५) पृ० २६६.

४- प्रो० नामवरसिंह, इतिहास और आलोचना (वाराणसी : १९५६), पृ० ३४.

था । रूसी समाजवादी क्रान्ति के इतिहास में गोर्की का नाम इतिहास प्रसिद्ध है । भारत में हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में वही काम मुंशी प्रेमचंद ने किया । उपन्यास साहित्य को नई दिशा प्रदान की । महात्मा गांधी जनता-जनार्दन को साथ लेकर स्वातंत्र्य संघर्ष के क्षेत्र में आगे आये वहीं प्रेमचन्द राष्ट्रीय संघर्ष की औपन्यासिक पताका को थामे हिन्दी साहित्य जगत में अवतरित हुए । महात्मा गांधी का राजनीति में प्रवेश तथा प्रेमचंद का उर्दू से हिन्दी साहित्यजगत् में प्रवेश मणिकांचन का संयोग है । 'जीवन की समग्रता को लेकर युगीन समस्याओं के विविध पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयास सर्वप्रथम प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही मिलता है । जो अपने युग के एक प्रकार से दिशा निर्देशक है ।'[1] प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के किसी भी सोपान का चित्रण प्रायः नहीं है ।

प्राक् गांधीयुगीन साहित्य कलानुगामी था किन्तु गांधीयुग में वह जीवनानुगामी बन गया । ग्रंथ खोलने के साथ अब 'जीवन की विभिन्न समस्याओं की ग्रंथियां खोलने की चिन्ता-चेतना भी आने लगी । अपनी प्रारंभिक अवस्था में हिन्दी उपन्यास साहित्य धर्मोन्मुख था फिर परिवारोन्मुख हुआ, तत्पश्चात् व्यक्ति की ओर उन्मुख होता हुआ राजनीतिक चेतना से अपना साक्षात्कार करने लगा । व्यक्ति और राजनीति एक दूसरे के पूरक बन गये । 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' की भावना उग्र से उग्रतर होती गई । भारत का मुक्त-स्वप्न विदेशी राज्य के समूल नष्ट करने में ही निहित हो उठा । फलतः उपन्यासकार भी तद्युगीन राजनीतिक आन्दोलनों के चित्रण के माध्यम से जनता को जगाने लगा । गांधीवादी आन्दोलन में उपन्यासकार पूर्णता अनुभव करने लगा । यही कारण है कि साहित्य में इसके पहले के स्वरूपों पर गांधीवाद का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता । सन् १९१७ के बाद के हिन्दी साहित्य में गांधीवाद का प्रभाव देखा जा सकता है ।'[2] गांधी जी ने जो सत्य और अहिंसा का नारा दिया था उसे साहित्यिक जगत में 'गांधी-

---

१- प्रो० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ , पृ० २४०-४१.

२- डा० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास (कानपुर : १९६५), पृ० १६३.

वाद' की संज्ञा दी गई । इस युग ने जिस साहित्य की सृष्टि की उसमें कर्मण्यता, विचारों की स्वतंत्रता और जीवन की सरलता के साथ-साथ निर्भीकता पाई जाती है । आदर्श और सिद्धान्तों के लिए बलिदान का भाव पाया जाता है ।[1]

कालगति की परिवर्तित मांगों के अनुसार वैयक्तिक आवश्यकताओं के दृष्टि-कोण में भी परिवर्तन आया । आदर्शवाद ने धीरे-धीरे 'गांधीवाद' का रूप ग्रहण किया और यथार्थवाद ने 'मार्क्सवाद' का । जहां एक ओर गांधीवाद 'कर्ममूलक' है वहीं दूसरी ओर मार्क्सवाद अर्थमूलक । राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष में दोनों की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण रही है । उपन्यासकार इन दोनों ही दर्शनों से प्रभावित हुआ है । मंजिल दोनों की एक परन्तु राह अलग-अलग । वस्तुतः राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष की प्रक्रिया के साथ-साथ गांधी युगीन 'उपन्यासों का युग दो भागों में सहज ही बंट सकता है -- एक भाग वह जो गांधीवाद से प्रभावित है, दूसरा जो समाजवाद से प्रभावित है ।'[2] परन्तु गांधी जी युग-प्रतीक हैं । क्योंकि 'राजनीति अग्नि का शोधक गुण लिए आती है और यह राजनीतिक चेतना सामाजिक संस्कारों को भी शुद्ध करती है ।'[3]

गांधीयुगीन हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप (१९१८-४८)

'गांधीवाद वह वृक्ष है जिसकी जड़ें 'रामराज्य,' 'ट्रस्टीशिप,' 'हृदय-परिवर्तन,' 'सत्याग्रह,' 'अहिंसा' और 'सत्य' में निहित हैं ।'[4] गांधीवाद के दो पक्ष हैं -- आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक । यह सत्य की प्राप्ति के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम का मार्ग अनिवार्य मानता है । 'गांधीवाद यह मानकर चलता है मानवी संबंधों की सार्थकता आर्थिक, राजनैतिक और विधिगत साधनों से नहीं, नैतिकता और धर्म से संभव है और

१- प्रेमचंद : विविध प्रसंग, सं० अमृतराय (इलाहाबाद : १९६२) भाग -३, पृ० २८४.

२- डा० सत्येन्द्र : हिन्दी उपन्यास विवेचन (जयपुर : १९६८), पृ० ६४.

३- सुरेशचन्द्र तिवारी : यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य (बनारस : १९५६), पृ० ४६

४- सीताराम रत्नाकर : प्रेमचंद : जीवन और कृतित्व (दिल्ली : १९५१), पृ० १६६.

कहीं नहीं, सत्य मानव जीवन का आधार है ।'[1] उपन्यासों में गांधीवाद दो रूपों में दृष्टिगोचर हुआ है -- राष्ट्रीय समस्याओं के रूप में और सामाजिक समस्याओं के रूप में।

प्रेमचंद ने राष्ट्रीय समस्याओं के साथ साथ सामाजिक समस्याओं को भी अपनी लेखनी का विषय बनाया । उन्होंने 'अपने साहित्य की मूल प्रेरणा तत्कालीन युग से ग्रहण की ।'[2] वे राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्णत: प्रभावित उपन्यासकार थे । राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों पर उनकी दृष्टि लगी रहती थी । श्री दयारामनारायण निगम को अपने एक पत्र में उन्होंने 'लखनऊ कांग्रेस १९१६ में सम्मिलित होने के बारे में लिखा था: फिलहाल मैं लखनऊ जाने का इरादा तो करता हूं । देखूं गैब (अदृष्ट) से मदद मिलती है या नहीं ।'[3] वे गरमदल के पक्षपाती थे । छोटे छोटे सुधारों से उन्हें संतोष न था । क्रान्तिकारियों से उन्हें सहानुभूति थी । खुदीराम बोस का चित्र उनके कमरे में टंगा रहता था ।[4]

सेवा-सदन

प्रेमचंद के उपर्युक्त मनोभावों का अंकन उनके उपन्यासों में चाहे वह प्रेमाश्रम हो या 'रंगभूमि' हो अथवा 'कर्मभूमि' किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है । राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा के फलस्वरूप उन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की थी । गांधी जी के नेतृत्व में उनकी पूर्ण आस्था थी । गांधी जी के दर्शनों के बाद उनकी पत्नी के द्वारा यह पूछे जाने पर कि आपने अपना (गुण गांधी जी के) लिए ।

'आप बोले : मैंने अपना लिए । मनवाने को कहती हो, उसी के बाद तो मैंने प्रेमाश्रम लिखा है । सन् २२ में छपा है ।'[5] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रेमाश्रम

१- राजेश्वर गुरु : प्रेमचंद एक अध्ययन (भोपाल : १९५८), पृ० १०२.

२- रामदीन गुप्त : प्रेमचंद और गांधीवाद (पूर्वोल्लिखित ग्रंथ), पृ० ७३.

३- अमृतराय - प्रेमचंद कलम का सिपाही (इलाहाबाद : १९६२), पृ० १६५.

४- यथोपरि - पृ० ९७-९८.

५- शिवरानी देवी - प्रेमचंद घर में (दिल्ली : १९५६), पृ० ९५.

में प्रेमचंद गांधीवाद के रास्ते जा रहे थे।' परन्तु इससे पूर्ववर्ती रचना 'सेवासदन' में वह सुधारवादी थे। क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष का नेतृत्व सुधारवादियों के हाथों में था। जो मात्र आवेदन और निवेदन की ही भाषा जानते थे। 'सारा कांग्रेस आन्दोलन सुधारवादी था।'[१] इस रचना को 'आर्यसमाज के सुधारवाद से प्रभावित'[२] मानना उचित न होगा क्योंकि प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आये। उनकी उर्दू रचनाओं में भी राजनीति की ज्वाला के अंगारे कहीं न कहीं सुलगते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। स्वाधीनता में 'सोये वतन' इसका गवाह है। 'सेवासदन' पर नरमदल के राजनैतिक सुधारवाद का प्रभाव मानना चाहिए भले ही वह सामाजिक ही क्यों न हो। जहाँ तक वेश्या समस्या का प्रश्न है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी समय-समय पर विदेशी सरकार का ध्यान अपने प्रस्तावों द्वारा आकर्षित करती रही है।[३] क्योंकि अंग्रेज सैनिकों के विलास हेतु यह समस्या देश में विकट रूप धारण करती जा रही थी। भारतीय समाज में विदेशी भारतीय नारी का खुलकर शोषण करने लगे थे। यह सामाजिक समस्या मात्र न रहकर राजनीतिक बन गई थी।

जब गांधी जी का आन्दोलन शहरों की परिधि को लांघ कर ग्रामों के प्रांगण में पहुँचा और सम्पूर्ण भारत 'गांधी जी जिन्दाबाद' के नारों से जाग पड़ा तब भला प्रेमचंद पीछे क्यों रहते। क्योंकि उनका कथन था कि 'दुनिया में, मैं महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों। वह इन लोगों को बढ़ाने के लिए आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिखकर के उनको उत्साह दे रहा हूँ।'[४]

१- हंसराज रहबर - पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० ८५.

२- सुषमा धवन : हिन्दी-उपन्यास (दिल्ली : १९६१), पृ० १०.

३- पट्टाभिसीतारामय्या, कांग्रेस का इतिहास (नई दिल्ली : १९४८), प्रथम खण्ड, पृ० ४८.

४- शिवरानी देवी - प्रेमचंद,पूर्वोल्लिखित रचना, पृ० ९५.

गांधीवादी आन्दोलन से प्रभावित प्रेमचंद के तीन उपन्यास विशेष महत्वपूर्ण हैं जिन पर उस आन्दोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है । 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' राष्ट्रीय आन्दोलन की औपन्यासिक त्रयी हैं । इनमें चित्रित आन्दोलन का स्वरूप पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध है । बापू भी पूंजीवाद के विरुद्ध आन्दोलन चला रहे थे । 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर 'रंगभूमि' का सूरदास और 'कर्मभूमि' का अमरकान्त जिन आन्दोलनों का सूत्रपात करते हैं वे राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतिछाया हैं । 'गतयुग के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में आर्थिक विषमताओं के जितने भी रूप संभव थे, प्रेमचंद की दृष्टि उन सभी पर पड़ी ।'[1] 'प्रेमशंकर, सूरदास और अमरकान्त' में गांधी का प्रतिबिम्ब स्पष्ट देखा जा सकता है । असत्य पर सत्य की विजय, हृदय परिवर्तन सत्याग्रह, अछूत आन्दोलन, चरखा और कर्घा, लगानबंदी आन्दोलन, गांधी इर्विन समझौता, साम्प्रदायिक मनोवृत्ति, नौकरशाही का दमन, स्वराज्य की व्याख्या, स्वदेशी की भावना, नारी जागरण, किसान और मजदूर आन्दोलन, जमींदारों का शोषण, रियासतों का अत्याचार, आदि अनेक यथार्थवादी राजनैतिक घटनाओं को उपन्यासकार ने चित्रित किया है । निश्चय ही प्रेमचन्द का उपन्यास-साहित्य अपने युग के भारत का और उसके स्वाधीनता-संग्राम का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है ।

'सेवासदन', 'काया-कल्प', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', 'गबन' यद्यपि सामाजिक उपन्यास हैं परन्तु उनमें भी सामयिक राजनीति है ।

<u>प्रेमाश्रम (१९२२)</u>

'प्रेमाश्रम' की रचना प्रेमचंद जी ने सन् १९१८-१९ के आस-पास की थी । यद्यपि प्रकाशन १९२२ में संभव हुआ था । इससे पूर्व गांधी जी चम्पारन व खेड़ा में कृषकों को सत्याग्रह के माध्यम से जगा चुके थे ।[2] प्रेमचंद ने इन आन्दोलनों से प्रभावित होकर यह

१- डा० नगेन्द्र : विचार और विवेचन (दिल्ली : सि० न०) पृ० ९२.

२- मधुरादास : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १९४.

उपन्यास लिखा । गांधी-प्रेरणा से `प्रेमाश्रम` की रचना-विधान की बात वह स्वयं स्वीकार करते हैं ।[1] `प्रेमाश्रम` शोषक और शोषित की गाथा कृषक आन्दोलन के माध्यम से चर्चित है । अमरकान्त पूर्णतः गांधीवादी पात्र है । उसका विदेश से आगमन गांधी जी के अफ्रीका से भारत आगमन में साम्य है । वह `प्रेमाश्रम` की स्थापना करता है तो गांधी जी `साबरमती आश्रम` की स्थापना करते हैं । लखनपुर का कृषक आन्दोलन भारतीय सामन्तवादी -- जमींदारी प्रथा के विरुद्ध है । इस समस्या का समाधान भी गांधीवादी है । प्रेमशंकर रामराज्य की कल्पना करता है उसके लिए अपना बलिदान करता है । हृदय परिवर्तन, रक्तहीन क्रान्ति -- अहिंसा, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, साम्राज्यवादी मनोवृत्ति, धारा सभा के चुनावों का संकेत तथा रूसी क्रान्ति द्वारा वहाँ के कृषकों की कायापलट आदि अनेक सामयिक राजनीतिक घटनाओं का संयोजन इस उपन्यास में मुंशी जी ने किया है । प्रेमाश्रम सामन्ती व्यवस्था के दुष्परिणाम और किसानों के दुर्दम साहस के साथ जाग उठने की कहानी है ।"[2]

वरदान (१९२१)

'वरदान' का हिन्दी-अनुवाद सन् १९२१ में हुआ । इससे पूर्व सन् १९१२ में `जल्वए-ईसार` नाम से उर्दू में यह लिखा गया था । इसमें प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय भाव को जागृत किया है । बंगभंग से ही भारतीय नारी के हृदय में राष्ट्रीय-प्रेम अंकुरित होने लगा था । स्वदेशी आन्दोलन जो बंगभंग का उपजीव्य था उसमें भारतीय नारी ने पूर्ण भाग लिया था । उसी राष्ट्रीय भाव को प्रेमचंद ने इसमें आंशिक रूप से दर्शाया है । सुवामा देवी से देशभक्त वीर पुत्र की याचना करती है । देश की स्वाधीनता के लिए तथा उसकी आर्थिक विकासार्थ प्रतापचंद अहिंसक नीति का मनोभाव व्यक्त करता है । वह जाति को प्राण बलिदान के लिए उत्सर्ग होने की बात भी करता है । जाति यहाँ राष्ट्र ही है । देशसेवी महात्मा जी की कल्पना उन्होंने बालाजी के रूप में की है बालाजी

१- द्रष्टव्य है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का `सेवासदन` वाला अनुच्छेद.

२- राजेश्वर गुरु : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १५५.

विवेकानंद से कथा के निकट हैं ।"[१]

रंगभूमि (१९२५)

यह प्रेमचंद का पूर्वराजनीतिक गांधीवादी परम्परा का दूसरा उपन्यास है । इसमें महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन का समसामयिक चित्र उभर कर आया है । सूरदास गांधीवाद का सजीव प्रतीक पात्र है । जो गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की चेतना से अनुप्राणित है । उसके माध्यम से उपन्यासकार ने गांधीवाद के सैद्धान्तिक पक्ष की विवेचना न करके उसके व्यावहारिक-पक्ष जन-जागरण की विवेचना की है । सूर का संघर्ष पूंजीवाद और उपनिवेशवाद द्वारा कुचली और शोषित भारतीय गरीब जनता का संघर्ष है । गांधी जी के नेतृत्व में जनता भी अपनी जान हथेली पर लेकर साम्राज्यवाद का विरोध कर रही थी । अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत थी । सूर 'गांधीवादिता में पला हुआ ग्रामीण जनता का प्रतीक है । उसके जीवन में आशावादिता तथा कर्मठता सम्मिलित है ।' वह न केवल अहिंसावादी ही है सच्चा सत्याग्रही भी है । औद्योगिकीकरण का विरोध करना उसका मूलमंत्र है । गांधी जी भी औद्योगिकीकरण के पक्ष में न थे । चरखा और कर्घा वे भारतीय जन के लिए आवश्यक मानते थे ।

जानसेवक, मिस्टर क्लार्क और राजा महेन्द्र कुमार आदि अन्य पात्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषक एजेन्ट हैं । शोषण को समूल नष्ट करना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य था । सूर और उसके साथी सत्याग्रह के द्वारा अन्याय अत्याचार और शोषण का विरोध करते हैं । भैरों और राजा महेन्द्र कुमार, जान सेवक का अन्त में हृदय परिवर्तन हो जाता है । जिसमें प्रेमचंद के गांधीवादी मन्तव्य की विजय निहित है । विनय, सोफिया, प्रभु सेवक जागरूक भारत की नई पीढ़ी के व्यक्ति हैं । विनय और प्रभुसेवक की 'सेवा समिति' कोकोनाडा में संस्थापित हिन्दुस्तानी सेवादल

१- अमृतराय : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २६५.

(१९२३) की याद दिलाती है । सोफिया का प्रारंभिक चरित्र श्रीमती बेसेन्ट से कुछ साम्य रखता है । वीरपाल   का आतंकवाद के प्रति लगाव आतंकवादी आन्दोलन का आंशिक प्रभाव ही कहा जायेगा । इसके अतिरिक्त `रंगभूमि` में नौकरशाही का स्वेच्छाचार, सत्याग्रह आन्दोलन का दमन, देशी रियासतों में व्याप्त भ्रष्टाचार, नारी जागरण, वैधानिक आन्दोलन में अनास्था, असहयोग आन्दोलन की वापसी से उत्पन्न निराशा — (जो स्वर्गीय चितरंजनदास के मन में अन्तिम दिनों में उत्पन्न हुई थी का सूर के भावों के द्वारा अभिव्यक्ति) आदि अनेक अन्य राजनीतिक घटनाओं को लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन का यत्र-तत्र सुन्दर अंकन किया गया है । डा० प्रेमनारायण टंडन का यह कथन सत्य ही है कि रंगभूमि में प्रेमचंद ने नायक सूरदास के माध्यम से गांधी-दर्शन के विविध तत्व निरूपित किये हैं ।'[1]

कायाकल्प (१९२६)

`कायाकल्प` में मुंशी प्रेमचन्द ने यद्यपि अलौकिक तथा अतिमानवीय तत्वों की संयोजना की है परन्तु वह असहयोग आन्दोलन के उपरान्त कांग्रेस-खिलाफत आन्दोलन के ऐक्य की त्रुटि के विघटन से उत्पन्न हिन्दू-मुस्लिम समस्या का चित्रांकन भुला न पाये । असहयोग आन्दोलन की वापसी से भारत में मायूसी का वातावरण छा गया था । हिंदू और मुसलमान मंदिर-मस्जिद गाय और गाजे-बाजे को लेकर एक दूसरे के रक्त से अपने करों को रंगीन करने लगे थे । आये दिन देश के किसी न किसी भाग में हिन्दू-मुस्लिम दंगा होना एक साधारण बात हो चली थी । `कायाकल्प` में इन दंगों के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है । चक्रधर का गाय के स्थान पर रक्त-उत्सर्ग गांधी जी द्वारा अभिव्यक्त भावों की ही पुनरभिव्यक्ति है । बेगार के विरुद्ध आन्दोलन की कल्पना गांधीवादी सत्याग्रह का और जगदीशपुर की रियासत सम्पूर्ण भारत का प्रतीक है । चक्रधर के नेतृत्व में चमार बेगार का बहिष्कार करते हैं । वह उनकी प्रसुप्त आत्मा को

१- डा० प्रतापनारायण टंडन : प्रेमचन्द (दिल्ली : १९६१), पृ० ३०.

बना देता है । जगदीशपुर के राजा और चक्रधर में समझौता नहीं हो पाता । केवल सत्याग्रह चौरी-चौरा की तरह हिंसा का रूप ग्रहण कर लेता है ।

गबन (१९३१)

'गबन' की कथा का प्रारंभ सामाजिक समस्या से होता है और अन्त राष्ट्रीयता की भावना में । पूँजीवादी शोषण -- नौकरशाही का नंगा नाच, पुलिस के अत्याचारों का वर्णन पढ़ना हो तो निश्चय ही 'गबन' एक ऐतिहासिक दस्तावेज है । जहाँ राजनीतिक नेताओं पर झूठे मुकदमे, झूठी गवाहियाँ, झूठे बनावटी मुखबिरों की सहायता राष्ट्रीय चेतना के दमन हेतु की जाती है । क्रान्तिकारियों को सामान्य जीवन उन्हें कड़ी यातनाएँ दी जाती हैं । 'गबन' में वर्णित मुकदमा 'मेरठ षड्यंत्र' का स्मरण कराता है । स्वराज्य की परिभाषा, उसका सामान्यजन के संदर्भ में अर्थ, स्वदेशी आन्दोलन, [illegible] का त्याग राष्ट्रीय संघर्ष के सूत्र हैं । नारी-जागरण के रूप में जालपा भारतीय नारी वर्ग का प्रतीक है । 'जालपा की भावना नारी स्वातंत्र्य की भावना है जो नर के साथ भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में देशप्रेम की ज्वाला सुलगा देती है ।'[1] जोहरा का हृदय-परिवर्तन गांधीवाद का प्रत्यक्ष प्रमाण है । 'गबन में हमें गांधीवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । जालपा के समस्त साधन गांधीवादी हैं ।'[2]

कर्मभूमि (१९३२)

'कर्मभूमि' प्रेमचंद की 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' के उपरान्त तीसरा सशक्त राजनीतिक औपन्यासिक कृति है । महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम से अनेक तत्वों-- अछूतोद्धार, कृषक-उत्थान, नारी-जागरण, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि को उपन्यासकार ने ग्रहण किया है । 'कर्मभूमि' में मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह गांधीवादी आन्दोलन की

१- कोमल कोठारी, प्रेमचंद के पात्र (जोधपुर : १९५४), पृ० १३८.

२- डा० सत्येन्द्र, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० ३४.

की देन है । बापू ने एक नारा दिया था कि 'गाँवों की ओर चलो' । अत: प्रस्तुत उपन्यास में अछूत आन्दोलन नगर की परिधि के अतिरिक्त ग्रामीण अंचल में -- दोनों में एक साथ चलता है । अमरकान्त अछूतों के लिए जीता है, अछूतों के लिए प्राण-संकट में डालता है उनको नई चेतना प्रदान कर सत्याग्रह की पंक्ति में बिठाता है । अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जीने और मरने की सीख उन्हें देता है । छूत-अछूत की गांधीवादी भावना का प्रचार करता है । 'मन्दिर प्रवेश को इस आन्दोलन का प्रारंभ ही माना जा सकता है ।'[1] लगानबंदी आन्दोलन का चित्रण भी प्रेमचंद ने उसमें किया है । गांधी-अरविन समझौते की ही तरह ही कर्मभूमि का लगानबंदी आन्दोलन भी पाँच पंचों की कमेटी बनाकर समाप्त हो जाता है । 'उपन्यास की प्रधान कथा दूसरे रूप में १९३०-३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से संबंध रखती है । अमरकान्त और उसकी पत्नी आन्दोलन के राष्ट्रीय नेता हैं ।'[2]

'कर्मभूमि' में उपर्युक्त राष्ट्रीय समस्याओं के अतिरिक्त नारी-जागरण को विभिन्न नारी पात्रों सुखदा, सकीना, पठानिन, नैना, मुन्नी, सलोनी और रेणुका देवी द्वारा सत्याग्रह आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेकर चित्रित किया है । 'सुखदा' का व्यक्तित्व भारतीय नारी के जागरण का एक सबल पक्ष है । क्योंकि 'राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ गांधी जी ने जहाँ स्वाधीनता संग्राम को नेतृत्व प्रदान किया, वहीं नारी-सुधार आन्दोलन की भी नींव डाली ।'[3] 'कर्मभूमि' के सभी नारी पात्र तत्कालीन नारी-समाज की राष्ट्रीय चेतना के जागरण का द्योतन करते हैं ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता गांधी जी के जीवन का मूलमंत्र था । अमरकान्त और सलीम की अटूट मित्रता इसका परिचायक है । सकीना, सलीम, सुखदा, अमरकान्त और पठानिन का पारस्परिक स्नेह, मित्रता हिन्दू-मुस्लिम एकता का आदर्श उदाहरण है ।

१- रामदीन गुप्त : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २८४.
२- डा० इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन (दिल्ली : सि० न०), पृ० १०१.
३- प्रो० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ (दिल्ली : १९७०) पृ० ४०.

विभिन्न पात्रों का हृदय परिवर्तन गांधीवादी आस्था का प्रतीक है ।

गोदान (१९३६)

`गोदान` के प्रकाशन से पूर्व तथा सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन की वापिसी के बाद सन् १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने `गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट` के अन्तर्गत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए चुनावों की व्यवस्था की थी । सविनय अवज्ञा आन्दोलन गांधी-इरविन समझौते की शृंखला में चक्कर खाकर रह गया था । असहयोग आन्दोलन की वापिसी की भांति देश में गंभीर प्रतिक्रिया हुई । गांधी जी ने राजनीति से संन्यास की घोषणा कर दी थी । उत्तर-भारत में सशक्त कृषक आन्दोलन चला था परन्तु फिर भी भारतीय किसान की दशा में विशेष वांछित परिवर्तन न आया । स्वराज्य की प्राप्ति के लिए कृषक का स्वावलम्बी होना आवश्यक था । चम्पारन सत्याग्रह, खेड़ा-सत्याग्रह, बारदोली-सत्याग्रह तथा लगानबंदी सत्याग्रह के बाद भी भारतीय किसान शोषण की चक्की में निरन्तर पिस रहा था । प्रेमचंद जिन्होंने किसान के हल की मूंठ देखी थी । खेत की बाल पाली थी, को एक निराशा और विषाद की दशा में डाल दिया था । `गोदान` के माध्यम से प्रेमचन्द ने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषकों की शोचनीय दशा, सामन्तवादी शोषण आदि का चित्रण कर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को नया रूप देने का प्रयत्न किया है ।

`गोदान` में राजभक्तिपरक लोगों की मनोस्थिति का भी अंकन है । राय साहब, खन्ना साहब, मिस मालती मुनीम पूंजीवादी मनोवृत्ति के पात्र हैं । `अमरपाल सिंह गाथापुर के उन जमींदारों की भांति हैं जो दोनों रकाबों पर पैर रखते थे । राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग प्रदान करने के साथ वह हुक्कामों से भी मेल रखने में ही अपना कल्याण समझता है ।`[1] मातादीन और सिलिया गांधीवाद से प्रभावित पात्र हैं । प्रान्तीय विधान-सभाओं के चुनावों की झलक उपन्यास में है । शक्कर मिल के मजदूरों का आन्दो-

---

१- डा० रा० वा० `अमरपाल सिंह`, सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी-साहित्य कोष (वाराणसी : २०२० ई०), भाग दो, पृ० १७.

इन तत्कालीन समाजवादी विचारों के प्रभाव की ओर संकेत करता है ।

सन् १९३४ में भारतीय समाजवादी दल की स्थापना हो गई थी । प्रेमचन्द पर भी समाजवाद का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था क्योंकि वे प्रगतिशील लेखक थे । 'प्रगतिशील लेखक संघ' के मान्य सदस्य ही नहीं सभापति भी थे । इसीलिए कुछ विद्वान 'गोदान' को समाजवादी चिन्तन से प्रभावित कृति मानते हैं । संभव है उनकी उक्त मान्यता में कुछ तथ्य हो क्योंकि यदि प्रेमचन्द गांधीवादी हो सकते हैं तो समाजवादी क्यों नहीं हो सकते ? 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'कर्मभूमि' तक उन्होंने अपने को किसी न किसी रूप में भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से संबद्ध किया है । सन् १९३४ के बाद का कालखण्ड राष्ट्रीय-मुक्ति-संग्राम के परिप्रेक्ष्य में गंभीर निराशाजनक बिन्दु पर जाकर ठहर गया था । निराश कांग्रेसी समाजवादी बनते जा रहे थे । गांधी जी से कांग्रेस से त्यागपत्र न दिए जाने के लिए दौड़धूप चल रही थी । ऐसी परिस्थिति में क्या एक जागरूक लेखक समाजवादी नहीं हो सकता ? जो लोग 'गोदान' को समाजवादी रचना नहीं मानते वे लोग 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' में अन्तर समझने का संभवतः प्रयत्न नहीं करते । निश्चय ही 'गोदान' की रचना का कारण समाजवादी चेतना का युगीन प्रभाव है ।

<u>मंगलसूत्र (अधूरा)</u>

'मंगलसूत्र' में यह चिन्तन और स्पष्ट हो चला है । संतकुमार पूंजीवाद का विरोध करता है । उसका कहना है कि 'एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोच कर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है । दूसरा अमीर आदमी दिन-दहाड़े दूसरों को लूटता है. . . . उसे सम्मान मिलता है. . . . यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार'। यही नहीं वह 'हथियार बांधने' की बात भी करता है । अतः इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद युगानुकूल अपने को परिवर्तित करते हुए चल रहे थे । राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन का यथार्थवादी ध्वनि सन्धान कर वह साहित्यिक आन्दोलन कर जन-जन के मन को जगा रहे थे ।

ब्रिटिश साम्राज्य क्रान्तिकारी-विप्लववादियों के गुप्त आन्दोलन से बड़ा ही बेचैन था । कांग्रेस के पूर्व से ही विप्लववादी नवयुवक अंग्रेजी नौकरशाही का विरोध हिंसा के द्वारा करने लगे थे । गुप्त रूप से विदेशियों से इनका सम्पर्क होने लगा था । अस्त्र-शस्त्र किसी न किसी रूप में भारत आने लगे थे । भारतीय नवयुवक अंग्रेज शोषकों के दिलमें एक दहशत उत्पन्न करना चाहते थे । जिससे अंग्रेज भारत में अपना शोषण बन्द कर सकें । इसके लिए समय-समय पर सशस्त्र-क्रान्ति का उपक्रम होता रहा । दुर्गाप्रसाद खत्री ने आतंकवाद की नीतियों, उनके गुप्त संगठनों और उनके विविध कार्यकलापों को प्रकारान्तर से जासूसी कथानक का आवरण देकर अनेक उपन्यासों की रचना की है । जिनमें आतंकवाद के अनेक कार्य स्पष्ट रूप से उभरकर आये हैं । खत्री जी के 'प्रतिशोध', 'सुफेद शैतान', 'रक्तमंडल' का वर्ण्यविषय भारतीय सशस्त्र क्रान्तिकारियों की ही कहानी है । 'लालपंजा' में कोई स्पष्ट राष्ट्रीय संघर्ष की घटना नहीं है ।

<u>प्रतिशोध (१९२५)</u>

'प्रतिशोध' के कथानक का चयन खत्री जी ने भारतीय आतंकवाद की गतिविधियों से किया है । उनके विभिन्न कार्यों का, उनके गुप्त आन्दोलनों का चित्रण यत्र-तत्र मिलता है । ब्रिटिश साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का भी वर्णन इसमें है । कहीं कहीं तो राजनीतिक दांव-पेचों को उपन्यासकार ने यथार्थ रूप में लिया है ।

<u>मृत्युकिरण (रक्तमंडल) १९२६</u>

'रक्तमंडल' का कथानक 'प्रतिशोध' से भिन्न नहीं है । उपन्यासों की जासूसी परम्परा को आतंकवादी भावभूमि पर स्थापित किया गया है । नगेन्द्रसिंह इस आन्दोलन का नेता है । 'भयानक चार' 'रक्तमंडल' के गणमान्य विशेष सदस्य हैं । पर्चे बांटना राष्ट्रहित के लिए दल के सदस्यों को जागरूक रखना, बम विस्फोट करना, अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करना आदि अनेक आतंकवादी कार्यों का चित्रण खत्री जी ने किया

है । ब्रिटिश शासन के प्रेस-अधिनियम के शिकंजे से बचने के लिए उपन्यास में नेपाल तथा उत्तराखण्ड की भूमि में आतंकवादी आन्दोलन दिखाया गया है । एक अन्य परिवर्तन भी लेखक ने किया है । वह यह है कि आतंकवादी रेलों, पुलों, सरकारी अफसरों को भूमि पर हाथ से बम फेंककर मारा करते थे परन्तु रक्तमंडल के 'भयानक चार' हवाई जहाज से बम गिराते हैं ।

'रक्तमंडल' में क्रान्तिकारियों की भाँति बम का बनाना, खजाना लूटना आदि अनेक कार्य रक्तमंडल के पात्र करते हैं । भारत के लिए सुंग राज्य, बड़े लाट के लिए महाराज आलिमसिंह, शिमला के लिए मानिकपुर आदि परिवर्तित नामों का प्रयोग किया गया है ।[1] खजाना लूटने की घटना 'काकोरी ट्रेन षड्यंत्र' से लिया गया लगता है ।

सुफेद शैतान (१९३४)

'सुफेद शैतान' नितान्त काल्पनिक है परन्तु कल्पना के रंग में रंगा हुआ होने के उपरान्त भी यह उपर्युक्त उपन्यासों की परम्परा से जुड़ा हुआ है । जिसमें षड्यंत्रकारी आन्दोलन का सजीव चित्रण है । भारतीय क्रान्तिकारी अपने कैदी साथी को जेल से छुड़ाने का प्राय: प्रयत्न किया करते थे । भगतसिंह आदि को मुक्त करा लेने का असफल प्रयास भी चन्द्रशेखर आजाद आदि ने किया था । उसी प्रकार का छायाभास 'सुफेद शैतान' में अजीतसिंह को कारागार से मुक्त कराने के प्रसंग में मिलता है । यहाँ आतंकवादी सफल हो जाते हैं । देश-प्रेम तथा स्वाधीनता की भावना जो क्रान्तिकारियों में थी उसको अनेक स्थलों पर पात्रों के कथोपकथनों द्वारा व्यक्त किया गया है । इस उपन्यास में क्रान्तिकारी भारत की ही मुक्ति का प्रयास नहीं करते अपितु वह सम्पूर्ण एशिया को स्वतंत्र देखना चाहते हैं ।

१- द्रष्टव्य है -- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल (वाराणसी : १९७०), खण्ड एक, (भूमिका भाग)

जागरण (१९२७)

'जागरण' सियारामशरण का गांधीवादी उपन्यास है। जिसमें गांधी जी के सत्याग्रह से प्रेरित होकर गांधीवादी मद कृपाशंकर और रूपनगरी कृषक-आन्दोलन करते हैं। ग्राम सुधार संघ की स्थापना होती है। जिसमें गांधी जी के ग्राम्य जागरण का भाव निहित है। कृषक आन्दोलन का नेतृत्व कृपाशंकर द्वारा होता है। इस उपन्यास का रचनाकाल और बारदोली सत्याग्रह की प्रारंभिक आन्दोलनात्मक हलचलों में साम्य है।

चन्द हसीनों के खुतूत (१९२५)

प्रस्तुत विशिष्ट उपन्यास में 'उग्र' जी ने पत्र-शैली में तत्कालीन साम्प्रदायिक समस्या का अंकन किया है। असहयोग आन्दोलन के स्थगन के कारण भारत में जो विषाक्त वातावरण बन गया था उसके तत्कालीन चित्र चन्द हसीनों के खुतूत में उरेहे गए हैं जिनमें साम्प्रदायिक स्थिति स्पष्ट मुखर हुई है। सम्पूर्ण कथानक हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर आधारित है।

मनुष्यानंद (बुधुआ की बेटी) १९२८

असहयोग आन्दोलन की असफलता के बाद गांधी जी ने हरिजनोद्धार का काम अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत अपनाया था ताकि हिंसावादी जनता को अहिंसक बनाकर सत्याग्रह-संग्राम पुनः छेड़ा जा सके। इसके लिए जनता का सामाजिक उत्थान आवश्यक था। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने मनुष्यानंद में हरिजनोद्धार की समस्या पर 'बुधुआ की बेटी' की रचना की है। इसका परिवर्धित नाम 'मनुष्यानंद' है। हरिजन अपने अधिकारों के लिए सत्याग्रह करते हैं। मंदिर-प्रवेश की समस्या इसमें प्रमुख है। संभव है 'मनुष्यानंद' के नामकरण के समय इसकी कुछ घटनाओं में परिवर्तन कर दिया हो। मनुष्यानंद कलौढ़ी बाबा हरिजन आन्दोलन का नेतृत्व करते हैं। आश्रम की स्थापना भी इस उपन्यास में है जो गांधीवादी दर्शन का प्रतिरूप है। कलौढ़ी बाबा और कोई

नहीं स्वयं गांधी बाबा ही हैं। उनका ग्राम्य-प्रेम, स्वच्छता के प्रति लगाव तथा हरिजनों के प्रति अपनत्व कौन नहीं जानता है। प्रस्तुत उपन्यास में गांधी जी का दर्शन 'उग्र' जी ने साकार करने का प्रयत्न किया है।

सरकार तुम्हारी आँखों में (१९३७)

'उग्र' जी ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से भारतीय-राजनीति में विद्यमान हिन्दू-मुस्लिम समस्या को उठाया है। इसके अतिरिक्त रियासती नरेशों का अत्याचार उनका शोषण इसमें वर्णित है। सामन्तवाद किस प्रकार से नारी का शोषण करता था इसके सजीव उदाहरण हैं। राजा मदनसिंह जो अपनी पाप-दृष्टि फिरोजी के साथ बलात्कार करने का पूर्ण प्रयत्न करता है। परन्तु जागरूक फिरोजी अपनी जान पर खेलकर उस अन्याय का सामना करती है और एक जघन्य पाप से बच जाती है। सन् १९३७ तक भारतीय नारी शोषण का प्याला न रह कर वह राष्ट्रीय-संग्राम में अगुवा होने लगी थी। फिरोजी के साहस में तत्कालीन नारी जागरण का भाव है।

रियासती रेजीडेन्ट की राज्यविस्तार की मनोवृत्ति का भी अंकन 'उग्र' जी ने किया है।

सन् १९२० से लेकर सन् १९३० तक गांधी जिस सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व सक्रिय रूप से कर रहे थे उससे प्रभावित होकर ऋषभचरण जैन ने 'भाई', 'सत्याग्रह', 'गदर', तथा 'हरहाइनेस' उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों में गांधीवादी सत्याग्रह को उपन्यासकार ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है।

भाई (१९३०)

'भाई' उपन्यास भी गांधीवादी उपन्यास है। भिखू का हृदय-परिवर्तन गांधीवाद का व्यावहारिक पक्ष है। सत्य की ज्योति जब उसके हृदय में जग जाती है तब वह रामसनेही के घर जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। असत्य पर सत्य की विजय होती है।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या जो शुद्धि आन्दोलन तथा तबलीग आन्दोलन के रूप में १९२० और १९३० के मध्य विद्यमान थी, जो साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की नींव पर कुठाराघात कर रही थी उसको भी अनेक स्थलों पर उपन्यासकार ने अंकित किया है।

सत्याग्रह (१९३०)

'सत्याग्रह' में ऋषभचरण जैन ने प्रतीक से काम लिया है। इस उपन्यास का कथानक तो गांधी-सत्याग्रह से लिया गया है परन्तु देश और काल गांधी जी के दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह के हैं। जिसमें भारतीय जनता पर ब्रिटिश अत्याचारों की कहानी, ब्रिटिश भारत में किए जाने वाले अत्याचारों की ही कहानी को प्रकारान्तर से उठाया गया है। गांधीवादी सत्याग्रह में सत्याग्रहकार की पूर्ण आस्था है।

जैनेन्द्रकुमार गांधी-आन्दोलन के भुक्तभोगी सत्याग्रही रहे हैं। छात्र-जीवन में उन्होंने असहयोग आन्दोलन की पुकार से प्रेरित होकर कालेज छोड़ दिया था तथा राजनीति में आ गये थे। नागपुर-झंडा-सत्याग्रह में वह बंदी के रूप में जेल गये थे। जेल की पुनरावृत्ति सविनय-अवज्ञा-सत्याग्रह में नमक-सत्याग्रही के रूप में हुई थी। इस भुक्तभोगी राजनैतिक जीवन के उपरान्त भी उनके उपन्यासों में स्वातंत्र्य-संग्राम के सत्याग्रह के व्यावहारिक पक्ष का अभाव पाया जाता है। इस अभाव की पूर्ति लगता है उन्होंने अपने उपन्यासों में गांधीवाद के सैद्धान्तिक पक्ष की स्थापना करके की है। क्योंकि उनका स्वयं का मत है कि 'देश में राजनीतिक आन्दोलन होने से किताब में उसका होना जरूरी नहीं। बाह्य आन्दोलन यदि रचना में ज्यों का त्यों उतरे तो उस रचना को मैं निकृष्ट समझूंगा।'[1]

जैनेन्द्रकुमार गांधीवादी युग की देन हैं। गांधीवाद पर उनकी पूर्ण निष्ठा और आस्था है। गांधीवाद की स्थापना के लिए उन्होंने अपने साहित्य में 'आतंकवादी

१- जैनेन्द्रकुमार, साहित्य का श्रेय और प्रेय (दिल्ली : १९५३), पृ० ४०२.

क्रान्तिकारी आन्दोलन को अपनी भर्त्सना का विषय बनाया है ।[1] इसीलिए उनके उपन्यासों में गांधीवाद का समावेश तो है ही क्रान्तिकारी राजनीतिक वातावरण का घटाटोप भी कम नहीं ।[2]

सुनीता (१९३५)

'सुनीता' का हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी है । तद्युगीन आतंकवादी दल की गतिविधियों का परोक्ष चित्रण अंशत: कहीं कहीं मिलता है । पिस्तौल की नली जो क्रांतिकारी का कवच होता है, उसकी झलक उपन्यासकार दिखाभर सका है । पिस्तौल की नली से इतना ही राजनीतिक आभास अवश्य होता है कि आतंकवादी-क्रान्तिकारी हमेश पिस्तौल साथ रखते थे । जो हिंसा का साधन है । 'इसकी मूल समस्या यही हिंसा और अहिंसा का सात्विक तथा व्यावहारिक संघर्ष ही है जिसमें अहिंसा की विजय और हिंसा की पराजय दिखाना जैनेन्द्रकुमार का परम लक्ष्य है ।'[3]

'सुनीता' में दूसरी समस्या भारतीय स्वाधीनता संग्राम में नारी के योगदान का महत्व प्रतिपादित करना है । विप्लववादी भी नारी को दल की सदस्या बनाते थे । उसकी उपयोगिता का उद्देश्य 'सुनीता' में खोजा जा सकता है । समय की गति के साथ नारी के परिवर्तित मूल्यों का मूल्यांकन राजनीतिक दृष्टि से उपन्यासकार ने करने का प्रयत्न किया है । सुनीता के सौजन्य से हरिप्रसन्न की क्रान्तिकारिता का अवसान हिंसा में अहिंसा -- गांधीवाद की विजय है ।

त्यागपत्र (१९३७)

'त्यागपत्र' जैनेन्द्रकुमार का गांधीवादी उपन्यास है । जिसमें गांधी जी के प्रेम, परपीड़ा के लिए आत्मत्याग का भाव पिरोया गया है । मृणाल में उपन्यासकार ने गांधीवाद के अहिंसक भाव की उद्भावना के द्वारा आदर्शवादी नारी पात्र की सर्जना

१- रघुनाथशरण झालानी, जैनेन्द्रकुमार और उनके उपन्यास(दिल्ली : १९५६)पृ० ११२.
२- प्रभुभूषणसिंह 'आदर्श' हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन(इलाहाबाद : १९७०), पृ० २४०.

की है । मृणाल का एक-एक वाक्य निर्माणात्मक कर्मयोग से आप्लावित है ।

कल्याणी (१९३९)

'कल्याणी' में प्रगतिशीलता है । देशोद्धार एवं राष्ट्र-कल्याण की भावना है । लाल ब्रिटेन में छात्र-जीवन में क्रान्तिकारियों के संसर्ग में आकर नौकरशाही के प्रतिनिधि की पुलिस की चुनौती को सहर्ष स्वीकारता है । इस उपन्यास की कथा सन् १९३६ के आस-पास के प्रान्तीय काँग्रेस मंत्रिमंडल के वातावरण को लेकर चलती है । डा० असरानी 'तपोवन' की स्थापना करते हैं । जिसका उद्घाटन प्रान्तीय प्रिमियर द्वारा होता है । उपन्यास की सम्पूर्ण कथा में मात्र एक राजनीतिक स्पर्श का आभास होता है । कल्याणी पति के ताड़न को प्रसाद रूप में ग्रहण करती है ।

प्रत्यागत (१९२७)

वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों में भारतीय इतिहास का गौरवगान प्रमुखता से हुआ है । परन्तु भारतीय-स्वातंत्र्य संघर्ष से संबंधित घटनाओं पर उन्होंने 'प्रत्यागत', 'अचल मेरा कोई' तथा 'अमरबेल' की रचना भी की है । 'अमरबेल' की रचना गाँधीयुगोत्तर कालावधि में हुई है । इसलिए इस उपन्यास के बारे में आगे विचार होगा ।

'प्रत्यागत' में साम्प्रदायिक-समस्या प्रमुख है । असहयोग-आन्दोलन के युग में दक्षिण भारत में जो 'मोपला' साम्प्रदायिक घटना घटी थी उसको उपन्यासकार ने लिया है । 'खिलाफत आन्दोलन' क्यों ? का विवेचन इस उपन्यास के द्वारा किया गया है ।

अचल मेरा कोई (१९४८)

प्रस्तुत उपन्यास में सन् १९४५ से सन् १९४८ तक की भारतीय राजनीतिक घट-नाओं को आधार बनाया गया है । नारी स्वतंत्रता उसका गाँधीवादी स्वरूप, सह-क्रान्तिकारियों पर झूठे मुकदमों के साथ साथ गाँधीवादी विचारधारा की स्थापना

समस्या को भी सामने लाने का प्रयत्न किया है। सबल गांधीवादी-सत्याग्रह का उन्नयन-कर्ता है। मुख्यतः 'विधवा-समस्या का गांधीनीति के अनुरूप समाधान खोजा गया है।'[1]

बिदा (१९२८)

प्रतापनारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित 'बिदा' में स्वदेशाभिमान और आत्मसंयम के भाव को विशेष महत्त्व दिया गया है। गांधीजी के स्वदेशी-भाव और विदेशी के बहिष्कार की ओर उसे परोक्ष रूप से अभिव्यंजित करना उपन्यासकार का लक्ष्य है। भारतीय वस्तुओं की, विदेशियों के मुखारविन्द से उपन्यास में जगह-जगह कराई गई है। नारी-चेतना जो राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण देश में व्याप्त हो चली थी उसका चित्रण भी 'बिदा' में नारी-पात्रों के सौजन्य से उभारने का पूर्ण प्रयत्न श्रीवास्तव जी ने किया है।

बयालीस (१९४८)

'बयालीस' का कथानक अगस्त-क्रान्ति की विप्लवी-ज्वाला से ओतप्रोत है। इसके अतिरिक्त समाजवादी-दर्शन और कुलीन साम्प्रदायिक एकता का प्रतिपादन भी उपन्यासकार का उद्देश्य है। अगस्त-आन्दोलन के विविध पहलुओं का अंकन अत्यन्त मार्मिकता के साथ किया गया है। 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन, हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, देशी रजवाड़ों का अत्याचार, तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन की गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है। रियासत के विरुद्ध रमईपुर का सत्याग्रह राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित है। साम्प्रदायिक एकता में गांधीवादी विचारों का प्रभाव है। सरमाधान सिंह शोषक प्रशासन के दमनकारी नौकरशाही के जीते जागते पुतले हैं। निश्चय ही दिवाकर के नेतृत्व में रमईपुर ग्राम का भारत छोड़ो आन्दोलन सम्पूर्ण भारत के 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन का ही छोटा रूप है।

१- अरविन्द जोशी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य और गांधी विचारधारा, सं० गंगाप्रसाद व्यास, स्वतंत्रता रजत जयन्ती अभिनंदन ग्रंथ (दिल्ली : १९७३) पृ० १९.

सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` आजीवन संघर्षमय साहित्यकार रहे हैं। जिसकी छाप उनकी रचनाओं में विद्यमान है। राजनीति के क्षेत्र में उन्हें गांधी जी का आदर्शवाद किंचित् पसंद नहीं। वे उसे भारतीय कृषकों के लिए पूर्ण हितकर नहीं समझते थे। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष के कुछ अंश घटनाओं के रूप में ही मिल पाते हैं। उनके तीन उपन्यासों `अप्सरा,` `अलका` और `कुल्लीभाट` में राजनीति अंशत: ही विद्यमान है। वह भी व्यंग्य का पुट लिए हुए है।

अप्सरा (१९३१)

एक या दो प्रसंग ही राजनीतिक हैं। शेष पूरा उपन्यास सामाजिक है। `निराला` के उपन्यास अप्सरा में भी क्रान्तिकारी दल का थोड़ा-सा उल्लेख मिल जाता है।[1]

अलका (१९३३)

`अलका` में कृषक-आन्दोलन भी प्रसंगवशात ही चित्रित है। इस आन्दोलन के माध्यम से जमींदार और किसान के आपसी संबंधों, कृषकों का शोषण, जमींदारों का अत्याचार और लगानबंदी के साथ-साथ १९३०-३२ की गिरती हुई कीमतों के प्रसंग भी इस उपन्यास में संयोजित हैं।

कुल्ली-भाट (१९३९)

`निराला` जी का यह जीवनी-उपन्यास है। जिसमें व्यंग्य का पुट भी विद्यमान है। कुल्ली- गांधी जी के सत्याग्रह-आन्दोलन से प्रभावित होकर अछूतोद्धार आन्दोलन का सूत्रपात करता है। गांधी जी में उसकी विशेष आस्था है परन्तु गांधी जी से

१- सुषमानारायण, भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति (दिल्ली : १९६९), पृ० ३००.

पत्नीत्व न मिलने पर उसकी आस्था डगमगाने लगती है । उपन्यासकार ने राष्ट्रीय-आन्दोलन के तत्कालीन घटनाओं का सुन्दर व्यंग्यात्मक चित्रण यत्र-तत्र प्रस्तुत किया है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अनेक उपन्यासों की रचना की है । जिनमें से 'आत्मदाह', 'धर्मपुत्र', 'उदयास्त' और 'बगुले के पंख' उनके राजनीतिक उपन्यास हैं । परन्तु 'आत्मदाह' और 'धर्मपुत्र' के अतिरिक्त अन्य उपन्यासों का प्रधान-कथ्य स्वातंत्र्योत्तर राजनीति है । अतः आलोच्य शोध-प्रबंध में केवल 'आत्मदाह' और 'धर्मपुत्र' को ही भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की दृष्टि से उपयोगी पाया गया है । यद्यपि 'धर्म-पुत्र' गांधीयुगोत्तर कालावधि की रचना है । जिसके स्थान पर गांधीयुगोत्तर उपन्यास शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया जायेगा ।

आत्मदाह (१९३५)

'आत्मदाह' की कथा का ताना-बाना प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर गांधी जी के असहयोग आन्दोलन तक फैला है । 'रॉलट-एक्ट' के विरोध में जलियाँ वाला बाग में जो नर संहार डायर की गोलियों से हुआ, उसका चित्रण 'आत्मदाह' में विद्यमान है । आतंकवादी क्रान्तिकारियों की विभिन्न गतिविधियाँ इस उपन्यास में हैं । राजनैतिक नेताओं को काला-पानी की जो सजा दी जाती थी उस सजा से उत्पन्न विशेष मनोभावों की भावात्मक अभिव्यक्ति के चित्र पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं । राजनीति की घटनाओं का संस्पर्श मनोहारी है ।

बचन का मोल (१९३६)

उषादेवी मित्रा का उपन्यास 'बचन का मोल' जितना सामाजिक है उतना ही राजनीतिक भी । यह समाज और राजनीति का समन्वित रूप है । इसे गांधीवादी उपन्यास ही कहा जा सकता है । क्योंकि 'बचन का मोल' में गांधी जी के रचनात्मक कार्य क्रम के विशेष अंग चर्खा और खादी को मित्राजी ने वर्ण्य-विषय बनाया है ।

बापू के आदर्शों की स्थापना खादी के प्रति स्वदेशी भावना का सृजन करके की गई है। राष्ट्रीयता के संदर्भ में उसके विशेष महत्व पर बल दिया गया है।

<u>मेरा देश (१९३६)</u>

'मेरा देश' डा० धनीराम प्रेम का पूर्णतः राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें डा० प्रेम ने गागर में सागर भर दिया है। 'मेरा देश' की कहानी दिल को छू लेती है। असहयोग-आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचित यह उपन्यास देश-प्रेम और राष्ट्रभक्ति से लबालब है। विमल नामक एक अल्पायु बालक असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर विद्यालय छोड़कर सुदूर एक गांव में गांधी जी के सिद्धान्तों का प्रचार करता है। आन्दोलन चलाता है जेल जाता है। रुग्ण मां की ममता उसे विचलित करती है। जेलर के फुसलाने में आकर बाल-स्वभाव के कारण माफी मांगकर मां के पास आता है। परन्तु देशभक्त मां की ताड़ना उसे उचित मार्ग का पथिक बना देती है। देश मां से महान है यह मंत्र लेकर वह पुनः सत्याग्रह में पिकेटिंग करता है। किशोर बालक कठोर जेल यातनाओं को सह नहीं पाता और मां के द्वारा प्रदत्त मंत्र मेरा देश का जाप करते हुए प्राण त्याग देता है। 'मेरा देश' में रचनाकार ने असहयोग आन्दोलन में विद्यालयों और कालेजों का परित्याग कर भाग लेने वाले छात्रों की भूमिका का चित्रण प्रधान विषय बनाया है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास-शिल्प में भारतीय राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन की युगीन परिस्थितियों के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया है। उनके 'राम-रहीम', 'पुरुष और नारी', 'गांधी टोपी' और 'पूरब-पश्चिम' में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्रण हुआ है।

<u>राम-रहीम (१९३६)</u>

ब्रिटिश-साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति से चिन्तित होकर ही महात्मा गांधी ने आजीवन हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया। 'राम-रहीम' भी उसी एकता के प्रयत्नों की एक कड़ी है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का आदर्श रूप

इसमें प्रस्तुत किया गया है । दोनों सम्प्रदायों को भावात्मक एकता में पिरोने का पूर्ण प्रयत्न राजाजी ने किया है । देश की उन्नति के लिए राष्ट्रीय-आन्दोलन की पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिक-सौहार्द की सृष्टि करना ही `राम-रहीम` का एकमात्र उद्देश्य है ।

गांधी टोपी (१६३८)

`गांधी टोपी` एक लघुआकार उपन्यास है । यद्यपि इसमें छ: विषयानुक्रम हैं । डा० सुरेश सिन्हा ने `हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास` में इसे उपन्यास ही माना है ।`गांधी टोपी`की विषय-वस्तु संक्षेप में सन् १६३० से १६३८ तक की राजनीतिक घटनाएं हैं । इस कालावधि में घटित राजनीतिक हल-चलों का व्यंग्यात्मक चित्र है । जिसमें सन् १६३५-३६ का कांग्रेस का प्रान्तीय चुनाव, अछूतों का मंदिर प्रवेश आन्दोलन, खद्दर का प्रचार आदि प्रमुख हैं ।

पुरुष और नारी (१६३६)

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने सुधा और अजीत के प्रेम की समस्या को स्वातंत्र्य संघर्ष की रंगभूमि में राजनीतिक अंश के रूप में उठाया है । पराधीन देश में अजीत `प्रेम भले ही करते परन्तु विवाह वह नहीं करेगा। देशसेवा ही उसका एकमात्र व्रत है । वह गांधी आश्रम `साबरमती` जाता है । एक गांव में सरिता के कगार पर आश्रम की स्थापना भी करता है । गांधी जी के नमक-सत्याग्रह की प्रक्रिया का सुन्दर संयोजन `राजा` जी ने किया है ।

कांग्रेस समाजवादी-दल की स्थापना के बाद भारत में समाजवाद की ओर झुकाव होने लगा था । राजनीतिक चेतना से जागृत भारत पूंजीवाद और फासिस्ट वाद को भविष्य में उखाड़ने पर उतारू था । साम्यवादी विचारों का संघर्ष कांग्रेस अधिवेशनों में उत्पन्न हो गया था । `फारवर्ड ब्लाक` की स्थापना में समाजवादी चिन्तन का प्रमुख हाथ था । मुंशी प्रेमचंद कहते हैं कि `साम्यवाद आजकल विचार का

मुख्य विषय है और मुझे यह मालूम होने लगा है कि देश का उद्धार किसी न किसी रूप में समाजवाद के हाथों होगा।"[1] वित्त की विषमता ही मानव समाज में अशान्ति का मूल कारण है। इस अशान्ति से पिंड छुड़ाने तथा समाज और राष्ट्र की सम्पूर्ण उन्नति के लिए दो उपाय प्रस्तुत किए गए हैं -- साम्यवाद तथा सर्वोदय अर्थात् गांधीवाद। साम्यवाद के जन्मदाता हैं कार्लमार्क्स और सर्वोदय के हैं बापू गांधी।[2] भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के मुख्यत: ये ही दो अस्त्र थे। क्योंकि दोनों ही दर्शन समता तथा शोषणहीन समाज पर विश्वास करते हैं। हिन्दी-साहित्य में साम्यवादी सिद्धान्तों की अवतारणा 'प्रगतिशील लेखक संघ'[3] के द्वारा होने लगी थी। पराधीन देशों का जनता ने साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के प्रति अपनी घृणा को प्रकट करने के लिए संघर्ष का पथ अपनाया। इस भाव से परिपुष्ट जिस 'राष्ट्रीयता' के स्वरूप का आगे चलकर जो परिमार्जन हुआ वह समाजवाद की भावना में हुआ। वर्गहीन समाज की भावना ने साहित्यकार को नई दृष्टि दी।"[4] हिन्दी उपन्यास साहित्य में इस नवीन दृष्टि की अवतारणा के सर्वप्रथम जनक थे महापंडित राहुल सांकृत्यायन। समाजवादी परम्परा का विकास करने वाले अन्य लेखक हैं -- यशपाल तथा 'अंचल'। जिन्होंने सन् १९४८ तक समाजवादी चिन्तन पर उपन्यासों की रचना की।

जीने के लिए (१९४०)

महापंडित राहुल ने 'जीने के लिए' रचना में समाजवादी तथा साम्यवादी दोनों ही जीवन-दर्शनों को पूर्णत: उभारा है। 'जीने के लिए' में रूस-जापान युद्ध में जापान की विजय से उत्पन्न भारतीय राष्ट्रीयता का भाव, कांग्रेस, क्रान्तिकारी आन्दोलन, 'गरम और नरम दल' का लखनऊ पैक्ट, गांधीवादी आन्दोलन की असफलता,

---

१- अमृतराय (सम्पा०), प्रेमचंद विविध प्रसंग (इलाहाबाद : १९६२) भाग-२, पृ० ३६५.

२- हरिभाऊ उपाध्याय, स्वतंत्रता की ओर (नई दिल्ली : १९४८), पृ० २३७.

३- सुषमा धवन, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २८५.

४- रामेश्वर शर्मा, पूर्वोल्लिखित रचना, पृ० ५१.

नमक सत्याग्रह पर अनास्था, कृषक-मजदूर आन्दोलन की आशावादिता को उपन्यास का कथानक बनाया गया है। उपन्यासकार ने सन् १९०५ से लेकर १९४० तक की भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की विभिन्न गतिविधियों का अंकन किया है। परन्तु दृष्टि साम्य-वाद पर टिकी रही।

भागो नहीं बदलो (१९४४)

राहुल जी के समाजवादी विचारों का पूर्ण विकास 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' में हुआ है। इसमें तीन या चार पात्रों के माध्यम से साम्यवाद की सुन्दर व्याख्या की गई है। साथ ही साथ स्वातंत्र्य संघर्ष की अनेक घटनाओं का भी चित्रण साथ-साथ हुआ है। दुखराम की जिज्ञासा का समाधान 'भैया' नामक पात्र द्वारा कराया गया है। डा० सुरेश सिन्हा कहते हैं कि 'उनके (राहुल) उपन्यासों में साम्यवादी भावना का प्रचार मिलता है, चाहे वे ऐतिहासिक हों या सामाजिक।'[१]

यशपाल साम्यवादी उपन्यासकार हैं। राहुल के बाद समाजवादी परम्परा को उन्होंने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के साथ आगे बढ़ाया। जिससे भारतीय सर्वहारा वर्ग अपने जनतांत्रिक अधिकारों के लिए क्रान्ति की लालपताका फहरा सके। यशपाल के १९४८ तक साम्यवादी दृष्टिकोण से लिखे गये उपन्यास 'दादा कामरेड', 'देश-द्रोही', 'पार्टी-कामरेड' हैं। 'मनुष्य के रूप' यद्यपि १९४९ की रचना है परन्तु उसका रचनाकाल १९४८ से आरंभ हो गया होगा।

दादा कामरेड (१९४१)

'दादा कामरेड' का उद्देश्य स्वयं लेखक ने व्यक्त करते हुए लिखा है कि "संसार में जो आज अनेक वादों -- पूंजीवाद, नाजीवाद, गांधीवाद, समाजवाद का संघर्ष चल

१- डा० सुरेश सिन्हा : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० ३३९.

रहा है, उन सबकी नींव में परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं में सामंजस्य ढूंढने का प्रयत्न है।"[1] यह यशपाल का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है। जिसमें आतंकवादी क्रान्तिकारियों के जीवनादर्शों को वाणी प्रदान की गई है। मजदूर आन्दोलन को महत्व प्रदान किया गया है। गांधीवाद की आलोचना और साम्यवाद की स्थापना करना लेखक का मूल मन्तव्य है। नारी की भूमिका को पूंजीवादी कामुक दृष्टि से न चित्रित कर समाजवादी स्वच्छन्द भाव से उसकी चेतना को जगाया है। नारी मात्र भोग्या नहीं वह सहभोग्या भी है। 'दादा' के रूप में यशपाल ने चन्द्रशेखर आजाद को और हरीश के रूप में स्वयं को चुना है। श्रीमती यशपाल संभवत: शैल की छाया हैं। स्वयं यशपालने 'सिंहावलोकन' में अपने संस्मरणों में यह कहा है कि 'आजाद' और उनके मध्य श्रीमती यशपाल (भूतपूर्व क्रान्तिकारी) को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गये थे। यशपाल को भी 'हरीश' की तरह शूट कर देने का आदेश 'आजाद' ने दे दिया था। यह सब चित्रण निश्चय ही दादा कामरेड में यशपाल का अपना है। घटनाओं में बहुत ही साम्य है।[2] मजदूर-हड़ताल, बम-निर्माण की विधि, डकैती आदि क्रान्तिकारी कार्यों का उल्लेख 'दादा कामरेड' में वर्णित है।

देशद्रोही (१९४३)

'देशद्रोही' भी साम्यवादी-क्रान्तिकारी विचारधारा के विकास का पूर्ण राजनीतिक विशेष उपन्यास है। सन् १९३४ का कांग्रेस विभाजन, समाजवादी दल की स्थापना, आर्थिक कार्यक्रम पर बल, दिया जाने के साथ साथ क्रान्तिकारियों का बम बनाना, उनका पकड़ा जाना तथा (शिवनाथ) का गिरफ्तार होना आदि प्रगतिशील भावों का वर्णन यशपाल ने किया है। साम्यवाद की रीढ़ मजदूर आन्दोलन का चित्रण भी देश-

---

१- यशपाल : दादा कामरेड (लखनऊ : १९४४), पृ० ६.

२- शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास (वाराणसी : २०१६ वि०), पृ० ३२३.

द्रोही में है। ब्रिटिश सरकार द्वारा साम्यवादी पार्टी पर प्रतिबंध लगाया जाना, रूस क्रान्ति में फासिस्ट विरोधी नीति, के साथ-साथ समाजवाद की व्याख्या भी उपन्यास में की गई है। साम्यवादियों के प्रति जो सामयिक घृणा पूंजीवादी वर्ग में विद्यमान थी उसी का उपचार है `देशद्रोही`। `कथा के मूल स्रोत कांग्रेस की गांधीवादी नीति तथा कम्युनिस्ट पार्टी की नीति और उनके सिद्धान्त हैं।`[1]

पार्टी कामरेड (१९४६)

`पार्टी कामरेड` के माध्यम से यशपाल कम्युनिस्ट पार्टी का दलीय अनुशासन-नियम, सिद्धान्त, उनके कार्य-कलाप, राजनीतिक दर्शन, जीवन पद्धति आदि का सामान्यजन को दिग्दर्शन कराना है। भावरिया पूंजीपति मनोवृत्ति का पात्र है। परन्तु कामरेड गीता के सम्पर्क में आकर वह नाविक सैनिक विद्रोह में सम्मिलित हो जाता है। इसके अतिरिक्त कम्युनिस्टों पर `गद्दारी` का जो लांछन द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की मदद करने के कारण लगाये गये थे, उसका उत्तर दिया गया है। उन कारणों पर प्रकाश डाला गया है जिन कारणों से भारतीय कम्युनिस्ट अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। यशपाल का प्रस्तुत `उपन्यास इस दृष्टि से कांग्रेस के विरुद्ध राजनीतिक मोर्चा है`।[2] स्वयं उपन्यासकार के शब्दों `पार्टी कामरेड` की कहानी आज की ही कहानी है, पाठक के चारों ओर मौजूद परिस्थितियों की कहानी`।[3]

शेखर : एक जीवनी (१९४०-४४)

`अज्ञेय` के `शेखर : एक जीवनी` का रचनाकाल सन् १९४० से १९४४ तक का है। पहला भाग १९४० ई० में तथा दूसरा भाग ठीक चार वर्ष बाद प्रकाशित हुआ।

१- सरोज गुप्ता : यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व (अजमेर : १९७०), पृ० ८२.

२- डा० सत्येन्द्र , पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १५४.

३- यशपाल : पार्टी कामरेड (लखनऊ : १९६३), पृ० ५.

राष्ट्रीय संग्राम के युग में हिंसा और अहिंसा को लेकर अपने-अपने तरीके से राष्ट्र को विदेशी-शासन से मुक्त कराने का सतत प्रयत्न हो रहा था। यही कारण है कि 'शेखर : एक जीवनी' के पात्र शेखर के पिता, शेखर, बाबा मदनसिंह और शशि हिंसा और अहिंसा पर अपना निजी दृष्टिकोण रखते हैं। उपन्यास का कथानक रचनाकाल के आस-पास का ही है। भारत की स्वाधीनता के लिए एक ओर गांधीवादी और दूसरी ओर विप्लववादी दोनों ही सचेष्ट थे। प्रारंभ में शेखर गांधीवादी है। बचपन में कर्णरंध्रों पर पड़े 'गांधी का बोलबाला। दुश्मन का हो मुंह काला' नारों का विशेष प्रभाव पड़ता है। गांधी जी का असहयोग आन्दोलन से अभिभूत होकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाता है। स्वभाषा-स्वदेशी का दृढ़ आग्रही है। नौकरशाही से उसे चिढ़ है। बापू की तरह हरिजनोद्धार का कार्य करता है। रात्रि-पाठशाला चलाता है। नारी के प्रति विशेष सम्मान का भाव उसमें है। कालान्तर में वह क्रान्तिकारी आन्दोलन का सदस्य बन जाता है। जेल जाता है। महान क्रान्तिकारी 'बिस्मिल' की भांति शेर भी गुनगुनाता है। 'शेखर' में मेरापन कुछ अधिक है..... उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है।[1] जहां तक 'अज्ञेय' के व्यक्तित्व का प्रश्न है वह क्रान्तिकारी आन्दोलन के सक्रिय सदस्य रहे हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिलसिले में फरार हुए और पकड़े गये। चार वर्ष जेल में रहने के साथ-साथ नजरबंद भी रहे। कृषक-आन्दोलन में भाग लिया।[2]

संन्यासी (१९४१)

इलाचन्द्र जोशी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। जोशी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थवाद को बड़ी कुशलता से संयोजित किया है। सामाजिक यथार्थवाद के अतिरिक्त उपन्यासों में राजनीतिक-यथार्थवाद का चित्रण भी मिलता है। फ्रायड और मार्क्स के चिन्तन को उन्होंने एक दूसरे का पूरक माना है। 'संन्यासी' में राजनीति

१- 'अज्ञेय': शेखर : एक जीवनी (बनारस : १९४१), पृ० १० (भूमिका)

२- कुंवर नारायण: 'अज्ञेय', सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (वाराणसी २०२० वि०), भाग-दो, पृ० १०.

अंशत: ही आई है। बलदेव राजनीतिक पात्र है। जिसकी उद्भावना के पीछे गांधीवाद का विरोध स्पष्ट है। विप्लववादी गांधी जी का विरोध किया ही करते थे। उन्हें अहिंसा में विश्वास न था। गांधी जी क्रान्तिकारियों की हिंसा का विरोध करते थे। यही ऐतिहासिक तथ्य जोशी जी ने संन्यासी में व्यक्त किया है। शान्ति पूर्णत: गांधीवादी पात्र है। बलदेव का हृदय-परिवर्तन शान्ति के सम्पर्क से होता है जो गांधीवादी विचारधारा की विजय है।

निर्वासित (१९४६)

`निर्वासित` की कथा का आयाम द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व से आरंभ होकर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के निर्माण तक फैला हुआ है। डा० प्रतापनारायण टंडन ने इस उपन्यास की रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "श्री इलाचन्द्र जोशी ने एक विशेष दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या गांधीवाद इस देश को स्वतंत्र करा सकता है, इसकी विवेचना की है।"[१] संन्यासी में तत्कालीन समाज की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है। राजनीतिक असंतोष के कारण हिंसावाद और अहिंसावाद की रस्सा-कशी का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण भी उपन्यास में है। नीलिमा तथा प्रतिमा भारतीय नारी जागरण की प्रतीक है। महीप राष्ट्रवादी है। देश-प्रेम और नौकरशाही के दमन के कारण वह अखिल भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षा का बहिष्कार करता है। साम्यवाद का विश्लेषण करते हुए `पेटी बुर्जुवाजी` से गांधीवाद की ओर उपन्यासकार अग्रसर होता है। शारदा गांधीवाद की प्रशंसक है। महीप क्रान्तिकारी हो जाता है। प्रतिमा भी महीप के दल की सदस्या बन जाती है। परन्तु महीप दल छोड़कर अहिंसावादी बन जाता है। लक्ष्मीनारायण शोषक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है।

१- डा० प्रतापनारायण टंडन - हिन्दी उपन्यास में कथाभावना (लखनऊ : १९५६), पृ० १३२.

लज्जा (घृणामयी) १९४७

श्री इलाचन्द्र जोशी ने घृणामयी (१९२९) को नवीन आकार प्रदान कर 'लज्जा' के रूप में पुनः प्रकाशित किया। सम्भव है उपन्यास की शल्य-चिकित्सा में पुरातन की जगह नवीन की स्थापना की हो। उपन्यास सामाजिक अधिक है राजनीतिक कम। परन्तु उपन्यास में नारी-जागरण को विशेष महत्व दिया गया है। राष्ट्रीय-संग्राम में एक ओर भारतीय नारी पूरक इकाई के रूप में पुरुष के साथ थी तो दूसरी ओर पाश्चात्य नैतिक मूल्यों की ओर झुकने लगी थी। इसी समस्या का मनोवैज्ञानिक धरातल पर विवेचन किया गया है। कथा स्थान राजनीतिक अंशों को भी सामाजिक समस्याओं के साथ चित्रित किया है।

मुक्तिपथ (१९४८)

जोशी जी ने 'मुक्तिपथ' में अधिकांशतः स्वातंत्र्योत्तर घटनाओं को चित्रित किया है। परन्तु उपन्यास की आधारशिला के लिए प्राक् स्वाधीनता युग को भी लिया गया है। जिसमें साइमन कमीशन का बहिष्कार, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन, क्रान्तिकारी आन्दोलन आदि समस्याएं उपन्यास के कथानक को आगे बढ़ाती हैं। राजीव क्रान्तिदल में उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार अनेक युवक स्व० लालालाजपत राय की मृत्यु के बाद क्रान्तिकारी दल में चले गये थे। शरणार्थी-समस्या जो भारत-विभाजन की देन थी, को भी उपन्यासकार ने ग्रहण किया है। 'मुक्ति-निकेत' की स्थापना के पीछे यही उद्देश्य है। राजीव पुनः हिंसात्मक आन्दोलन से अहिंसात्मक आन्दोलन की ओर लौट आता है। 'मुक्तिपथ' में स्वाधीन भारत के सुनहरे भविष्य के लिए श्रम के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

जय यात्रा[१] (१९३८)

श्री मन्मथनाथ गुप्त राजनीतिक उपन्यासकार हैं। वह स्वयं भी भारतीय

१- 'जययात्रा' का रचनाकाल हिन्दी उपन्यास कोष (गोपालराय) में १९३६ माना गया है। परन्तु यह १९३८ है। देखिये परिशिष्ट (क)

स्वतंत्रता-संग्राम में क्रान्तिकारी दल के सक्रिय सदस्य रहे हैं। `काकोरी` के क्रान्तिकारियों के साथी थे।

`जययात्रा` की कथावस्तु सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के युग में घटित हिन्दू-मुस्लिम दंगों पर आधारित है। भगतसिंह आदि को फांसी से न छुड़ा पाने के कारण कानपुर में साम्प्रदायिकता के दंगे हुए थे। स्वर्गीय `विद्यार्थी` जी को अपने प्राण गवाने पड़े थे। इन दंगों में नारियों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये थे। `जययात्रा` में बलात्कार से उत्पन्न सन्तान के प्रति नारी मनःस्थिति का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। दंगों का यथार्थ चित्रण भी उपन्यास में विद्यमान है।

जिब (१९४६)

`जिब` की रचना मन्मथनाथ गुप्त जी ने सम्वत् २००३ वि० में की थी। जिसमें उपन्यासकार ने सन् १९४२ की `अगस्त क्रान्ति` को `जिब` का आधार बनाया है। `समाजवाद` और `गांधीवाद` की व्याख्या भी उपन्यास में की गई है। अगस्त क्रान्ति में क्रान्तिकारियों की क्या भूमिका थी उस पर भी प्रकाश डाला गया है। गांधी जी ने देशवासियों को `करो या मरो` तथा `अंग्रेजों भारत छोड़ो` का नारा दिया था। इन सब राजनीतिक घटनाओं को `जिब` में उठाया गया है।

मन्मथनाथ गुप्त के शेष राजनीतिक उपन्यासों के स्वरूप पर आगे प्रस्तुत अध्याय में ही `गांधी युगोत्तर उपन्यास` शीर्षक के अन्दर पुनः विचार होगा।

गुरुदत्त जी भी आधुनिक उपन्यासकार हैं। उनके अधिकांश उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखे गये हैं। आलोच्य अवधि में उनके केवल दो उपन्यास `स्वाधीनता के पथ पर` तथा `पथिक` के राजनीतिक स्वरूप पर यहाँ विचार होगा। शेष का यथा स्थान अन्यत्र विवेचन किया जायेगा।

स्वाधीनता के पथ पर (१९५२)

श्री गुरुदत्त ने 'स्वाधीनता के पथ पर' अगर गांधी जी के असहयोग-आन्दोलन की विफलता के बाद की राजनीतिक दशा का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किया है। आतंकवादी-क्रान्तिकारी दल देश में स्थापित होने लगे थे। अहिंसावाद से पराजित व्यक्तियों का विश्वास उठ गया था। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में क्रान्तिकारियों के मध्य हिंसात्मक प्रवृत्ति को लेकर संघर्ष चला था। इसी संघर्ष काल की यह कथा है। हिंसात्मक उपाय अहिंसात्मक उपायों पर निष्पक्ष रखकर प्रकाश डालने का यत्न[1] इस उपन्यास में किया गया है।

पथिक (१९५३)

प्राक् स्वाधीनता काल का गुरुदत्त जी का 'पथिक' दूसरी राजनीतिक रचना है। 'पथिक' का कथानक भारत विभाजन की समस्या पर आधारित है। देश-विभाजन से हिन्दू और मुसलमानों के जन-जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव की सृष्टि की गई है। 'पथिक' में सन् १९३६ ई० के प्रान्तीय कांग्रेस के चुनावों से लेकर उसके उपरान्त की राजनीतिक घटनाओं को लिया गया है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के उपन्यासों में महापंडित राहुल तथा यशपाल के समाजवादी-दर्शन का विकास पाया जाता है। उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन को दृष्टि में रखकर समाजवादी भाव की व्याख्या करना ही 'अंचल' के उपन्यासों का उद्देश्य है। 'बढ़ती धूप,' 'नई इमारत' और 'उल्का' की कथावस्तु में प्रत्येक दृष्टिकोण से समाजवाद की स्थापना का प्रयत्न हुआ है।

'बढ़ती धूप' (१९४५)

'अंचल' ने 'बढ़ती धूप' में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के उपरान्त की राजनीतिक

१- गुरुदत्त : स्वाधीनता के पथ पर (नई दिल्ली : १९५५), पृ० ५.

घटनाओं को कथानक का आधार बनाया है । यह वह समय था जब देश में समाजवादी-चेतना का ज्वार राष्ट्रीय जन-जीवन में प्रबलवेग से तरंगायित हो रहा था । स्वयं उपन्यासकार ने 'चढ़ती धूप' के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मेरे उपन्यास का घटनाकाल कांग्रेस के सन् १९३२ वाले आन्दोलन के बाद का और विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडल स्थापित होने के बीच का समय है -- जब देश में जोरों के साथ समाजवादी चेतना का उदय हो रहा था ।[१] इस नवीन चेतना के परिप्रेक्ष्य में नवयुवकों की नवीन पीढ़ी के गुप्त आवेश मनोभावों का अंकन ही 'चढ़ती धूप' है । इनके अतिरिक्त पूंजीवादी बुर्जुआवर्ग अपने स्वार्थों पर समाजवाद से रक्षा के लिए समाजवादियों पर चारित्रिक पतन का आरोप लगाया करता था ताकि भारत में समाजवादी क्रान्ति को रोका जा सके । उसी आरोप का खण्डन समाजवादी दृष्टि से 'अंचल' ने इस उपन्यास में किया है ।

नई इमारत (१९४६)

'नई इमारत' की रचना के माध्यम से 'अंचल' ने 'अगस्त क्रान्ति' की ज्वाला के दर्शन कराये हैं । भारत-पाकिस्तान के निर्माण को लेकर जो साम्प्रदायिकता का विषैला विष देश की राजनीति में व्याप्त हो गया था । उसका समाधान 'नई इमारत' में खोजने का प्रयास है । महमूद और भारती, बलराज और हमीम के पवित्र स्नेह-सूत्र हिन्दू-मुस्लिम एकता रूपी माला के दो सूत्र हैं । द्वितीय महासमर में साम्यवादियों द्वारा अंग्रेजों के समर्थन की व्याख्या के अतिरिक्त, अगस्त क्रान्ति में कांग्रेस-आन्दोलन सत्याग्रहियों की भूमिका और नौकरशाही का हृदय विदारक दमन का अंकन करना ही उपन्यासकार का अभीष्ट है । उपन्यासकार आतंकवादी क्रान्तिकारी तरीकों से भारत की स्वाधीनता का समर्थक है । पर्वतपुर पर जनता का आन्दोलन में विजय होकर स्वराज्य की स्थापना कराने में यही मन्तव्य परिलक्षित होता है ।

१- अंचल, चढ़ती धूप (इलाहाबाद : १९५५), पृ० ४ (भूमिका)

उल्का (१९४७)

`उल्का` `अंचल` का सामाजिक उपन्यास है । इसमें किसी आन्दोलन विशेष का चित्रण स्पष्ट रूप में नहीं है । भारतीय नारी की आर्थिक-पीड़ा की ओर संकेत अवश्य है । `अंचल` ने कार्ल मार्क्स के वैज्ञानिक द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद की दृष्टि से पराधीनता के पाश में आबद्ध भारतीय नारी की समस्या का समाधान खोजने का प्रयत्न `उल्का` में किया है । नारी की स्वाधीनता, उसका आर्थिक-स्वावलम्बन, सामाजिक-स्तर सभी प्रश्न देश की स्वाधीनता से स्वतः जुड़े हुए हैं । क्योंकि पराधीन देश में नारी का विकास संभव नहीं है ।

दो पहलू (१९४०)

यज्ञदत्त शर्मा ने `दो पहलू` में राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन की दोनों ही धाराओं `आतंकवाद` और `गांधीवाद` को रचना का कथानक बनाया है । उपन्यास का एक पहलू `आतंकवाद` है और दूसरा पहलू `गांधीवाद` । नरेन्द्रलाल उर्फ माधव क्रान्तिकारी पात्र हैं । सुरेन्द्र और कमला गांधीवादी पात्र हैं । दोनों ही विचारधाराओं के पात्र अपने-अपने ढंग से देश को पराधीनता से मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं । उपन्यासकार ने गांधीवाद को ही प्रश्रय दिया है । स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में `दो पहलू` गांधी युग की एक देन है । इसमें सामयिकता का विशेष ध्यान रखा गया है ।. . . . उपन्यास का नायक सुरेन्द्र पक्का अहिंसावादी और शान्तिपूर्ण आन्दोलन का पक्षपाती है । उसका मित्र माधव क्रान्तिकारी विचारों का है ।[१]

निमंत्रण (१९४२)

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने बापू की छत्र-छाया में होने वाले जन-आन्दोलन की तस्वीरें अपने साहित्य में पेश की हैं । मजदूरों और भिखमंगों को भी अपने साहित्य का

१- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू (कलकत्ता : १९४०), पृ० क (भूमिका)

हीरो बनाया है।[1] 'निर्मंत्रण' गांधी जी के समाजवादी भावों से ओतप्रोत उपन्यास है। उपन्यास की कथावस्तु द्वितीय महासमर की है। आभिजात्यकुल का हृदय-परिवर्तन मालती के पाणिग्रहण को विनायक जैसे गरीब शिक्षित व्यक्ति से कराकर गांधीवादी सिद्धान्त का समर्थन किया गया है।

पैरोल पर (१९४३)

ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ द्वारा रचित 'पैरोल पर' उपन्यास का कथानक रक्तक्रान्ति की राजनीति पर आधारित है। मजदूर-आन्दोलन, उनका बढ़ता हुआ असंतोष और सशस्त्र क्रान्ति द्वारा स्वाधीन भारत की लालसा का चित्रण इस उपन्यास का मुख्य विषय है। क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थन के लिए गांधीवाद की आलोचना तथा क्रान्तिवाद का समर्थन किया गया है। 'इस उपन्यास का ढांचा एडवन्चरस लोगों की तूफानी जिन्दगी के हास-परिहास, उथल-पुथल और कशमकश की नींव पर खड़ा किया गया है, इसमें राजनीति नहीं है, राजनीति से, किसी हद तक संबंधित व्यक्ति जरूर हैं।'[2]

'पैरोल पर' की रचना का उद्देश्य इन शब्दों में और स्पष्ट हो जाता है -- 'आजादी के सपने देखने वाले और आजादी की माला लेकर चलने वाले परतंत्र देश के यात्री को जीवन भर विश्राम नहीं है। उसके सामने अन्त न होने वाला रास्ता पड़ा है -- सिर्फ अन्त न होने वाला।'[3] वह रास्ता है क्रान्ति का।

१- अमृतलाल नागर, 'कलाकार की सामाजिक पृष्ठभूमि' सम्पा० नन्ददुलारे वाजपेयी, साहित्यकार पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनंदन ग्रंथ (कानपुर : १९५३), पृ० ३४-३५

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर (लखनऊ : १९४३), पृ० भूमिका से.

३- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ 'पैरोल पर' पृ० १५२.

विसर्जन (१९४४)

पंडित मोहनलाल महतो 'वियोगी' का 'विसर्जन' समाजवादी मजदूर आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। किशोर मजदूरों का सच्चा साम्यवादी नेता है। परन्तु कुछ अनात्मप्रधापरक बनावटी साम्यवादियों के कारण आन्दोलन कमजोर पड़ जाता है। उपन्यासकार ने ऐसे ही साम्यवादी मजदूर नेताओं के भ्रष्ट चरित्र की समस्या को उपन्यास में उठाया है। चंदा इकट्ठा करना, उन्हें गुमराह करना ही साम्यवादियों का उद्देश्य बताया है। किशोर पार्टी से अलग होकर मजदूर आन्दोलन का सूत्रपात करता है। परन्तु पूँजीवादी वर्ग उसे गिरफ्तार कराकर फाँसी पर चढ़वा देता है। लेखक प्रान्तीयता से ऊपर उठकर भारतीयता के संदर्भ में सोचते हैं। उनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी है। मजदूर आन्दोलन से उन्हें भी लगाव है। मिस्टर चटर्जी और सेन पूँजीवादी वर्ग के दलाल हैं। जो राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन के जहाज के पेंदे में छेद करते रहते हैं।

निर्देशक (१९ ६)

'निर्देशक' के कथानक में 'पहाड़ी' जी ने असहयोग आन्दोलन से लेकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन की राजनीतिक घटनाओं को उपन्यास में संजोया है। विशेषकर आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन की गतिविधियों से उपन्यास का आरंभ होता है। गांधीवादी सत्याग्रह को उत्तरार्द्ध की भूमि में चित्रित किया है। गांधी जी के चरखे को तकली के रूप में स्थापित किया है। नारी जागरण उनका सत्याग्रही रूप, आश्रम स्थापना आदि अनेक स्वातंत्र्य संघर्ष की विविध घटनाओं को 'पहाड़ी' जी ने इस उपन्यास में उकेरा है। मजदूरों के शोषण, उनका जागरण भी चित्रित करना उपन्यासकार भूला नहीं है।

विषादमठ (१९४६)

रांगेय राघव ने बंगाल के अकाल को आधार बनाकर प्रस्तुत उपन्यास की रचना

की है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथावस्तु उस कृत्रिम अकाल पर ही आधारित है। जो ब्रिटिश साम्राज्य की शोषक-प्रवृत्ति का परिचायक है। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद किस प्रकार अपने हितों की रक्षा के लिए अर्ध-विकसित राष्ट्र की जनता को अपने काले कारनामों के कारण दाने-दाने के लिए मोहताज कर देते हैं, भूखी जनता चीत्कार कर उठती है। मान-सम्मान, शील और लज्जा पेट की ज्वाला में भस्म हो जाते हैं। यदि उसकी रक्षा करनी है व्यक्ति को व्यक्ति के शोषण से मुक्त करना है तो दासता के पाश को तोड़ना ही होगा। यही उपन्यास का प्रतिपाद्य है। अकाल के सजीव चित्रों के माध्यम से सुप्त जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए प्रबुद्ध किया गया है। फासिस्टवाद का विरोध साम्यवादी दृष्टि को राष्ट्रहित के रूप में अभिव्यक्ति किया गया है। 'अब अंग्रेजों का राज्य समाप्त होने आया तब फिर बंगाल की हरी-भरी धरती में अकाल पड़ा। उसका वर्णन करते हुए मैंने [illegible] इस पुस्तक को 'विषादमठ' नाम दिया।[1]

टेढ़े-मेढ़े रास्ते (१९४६)

भगवतीचरण वर्मा ने 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का निर्माण भारतीय-स्वातंत्र्य-संघर्ष के युग में विद्यमान पूंजीवाद, सर्वहारा वर्ग का 'साम्यवाद' और 'क्रान्तिवाद' के विभिन्न मतवादों की पृष्ठभूमि में किया है। डा० त्रिभुवनसिंह के अनुसार लेखक ने भारतीय राजनीति के तीन प्रमुख वादों को तीन रास्तों के रूप में चित्रित किया है।[2] रामनाथ तिवारी पूंजीवाद का समर्थक है दयानाथ कांग्रेस का, उमानाथ साम्यवाद का और प्रभानाथ क्रान्तिवाद का। इन्हीं पात्रों के माध्यम से राजनैतिक सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। गांधीवाद की ढाल थामकर प्रगतिशील चिन्तन-- समाजवादी और क्रान्तिकारी आन्दोलन को हेय सिद्ध कर प्रकारान्तर से पूंजीवाद का ही समर्थन किया गया है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में गांधी-वादी तटस्थ दृष्टि का अभाव राष्ट्रीय मुक्ति आन्दो-

---

१- रांगेय राघव, विषादमठ (दिल्ली : १९७३), पृ० दो शब्द.

२- डा० त्रिभुवन सिंह पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १२८.

गांधीवादी चिन्तन में ढाला है । यद्यपि 'विषादमठ' और 'महाकाल' का कथ्य एक ही समान -- बंगाल का अकाल है परन्तु उपन्यासकारों की दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हैं

(ब) गांधी युगोत्तर हिन्दी उपन्यासों का स्वरूप (१९४८-६०)

भारतीय-स्वातंत्र्य-संघर्ष का चरमोत्कर्ष विविध राजनीतिक उपलब्धियों के साथ सन् १९४७ में समाप्त हो गया । हर्षोल्लास और विषाद के वातावरण में एक नवीन राष्ट्र ने जन्म लिया था ।

साम्प्रदायिकता की चादर को ओढ़े भाई-भाई के रक्त से देश की गलियों व सड़कों को रंजित कर रखा था । घर उजड़ रहे थे । नारी का सम्मान खुले चौराहे प लुट रहा था । शरणार्थियों का मीलों लम्बा काफिला पूरब और पश्चिम दिशा से भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत की ओर उन्मुख था ।

देश की जन सामान्य जनता को भी 'स्वराज्य' से विशेष गुणात्मक लाभ मिला । पहले उन्हें विदेशी शासक डाँटता था तो अब स्वदेशी । दवा पुरानी ही थी केवल उसका लेबल बदल गया था । नौकरशाही के पंजे की जकड़न ढीली अवश्य हुई थी परन्तु वह छूटा नहीं था । इन सब परिवर्तनों का साहित्यकार पर भी प्रभाव पड़ा । समाजवादी और प्रगतिशील लेखकों को बड़ी निराशा हुई । गांधीयुगीन साहित्यकार जो राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर साहित्य सृजन कर रहे थे उनकी परम्परा गांधीयुगो काल में भी यथावत बनी रही । क्योंकि उनके पास अब कोई जीवन्त समस्या स्वातंत्र्य-संघर्ष के दृष्टिकोण से शेष न रह गई थी । फलतः स्वाधीनता युग के साहित्यका ने पुनरावलोकन के माध्यम से राष्ट्रीय-संग्राम की विविध घटनाओं को पुनः उठाकर उपन्यास के शिल्प के रूप में ग्रहण किया । जिससे रचनाओं में इतिवृत्तात्मकता सहज आ गई । ऐसी रचनाएं उपन्यास न होकर राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम के ऐतिहासिक ग्रंथ बन रह गये हैं यथा 'स्वतंत्र भारत,' 'इन्दुमती,' 'अब भारत जागा,' 'पूरब-पश्चिम,' 'देश की हत्या,' 'बाबा बटेसरनाथ,' 'झूठा सच' आदि ।

गांधी युगोत्तर के प्रमुख उपन्यासकार जिन्होंने स्वातंत्र्य-संघर्ष की घटनाओं को बहुलता से उपन्यासों का विषय बनाया है वे हैं -- मन्मथनाथ गुप्त । देश-विभाजन पर उपन्यासों की रचना करने वाले कथाकार हैं गुरुदत्त तथा शरणार्थी समस्या को झूठा सच में संजोया गया है । भगवतीचरण वर्मा ने भी 'भूले-बिसरे चित्र' का सहारा लिया है । स्वाधीनोत्तर काल के उपन्यासकार के पास उपन्यास के लिए उपजीव्य जुटाने की अतुल सामग्री, अवकाश तथा पूर्ण स्वच्छन्दता थी । वैयक्तिक स्वाधीनता के कारण स्वातंत्र्य-संग्राम की घटनाओं को नवीन रूपाकार में प्रस्तुत करने की पूर्ण छूट थी । स्वाधीनता-संग्राम की नाना प्रक्रियाओं से वह गुजर चुका था । कुछ को उसने सुना था, कुछ को देखा था और कुछ को स्वयं भोगा भी था । उस श्रव्य, दृश्य और भोग्य को उसने किस रूप में ग्रहण किया, इन सब तथ्यों के आधार पर गांधी युगोत्तर उपन्यासों के स्वरूप का विवेचन भी संगतपूर्ण होगा, ऐसा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध-लेखक का विश्वास है । इसी विश्वास को आधार मानकर सन् १९४८ के बाद रचित उपन्यासों पर तिथि-क्रमानुसार विचार वांछनीय है ।

स्वराज्यदान (१९४९)

गुरुदत्त ने 'स्वाराज्यदान' से पूर्व 'स्वाधीनता के पथ पर' और 'पथिक' उपन्यासों की रचना की है । 'स्वराज्यदान' की कथावस्तु का आधार प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर स्वराज्यप्राप्ति तक की घटनाएं हैं जिसमें अंग्रेजी शासन के प्रति प्रतिकार की भावना, उनकी दमननीति के चित्र प्रस्तुत किये हैं । सशस्त्र क्रान्ति के हिंसात्मक कार्यों की विवेचना, अहिंसात्मक आन्दोलन, देश-विभाजन की समस्या, आजाद हिन्द फौज नाविक विद्रोह, आदि विषयों को गुरुदत्त ने 'स्वराज्यदान' का विषय बनाया है । गांधीवाद और साम्यवाद पर भी उपन्यासकार ने विचार किया है । उपन्यासकार ने कल्पना के पंखों पर अधिक उड़ने का प्रयत्न किया है ।

देश की हत्या (१९५३)

'देश की हत्या' शीर्षक से ही उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। गुरुदत्त ने देश के विभाजन से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को उपन्यास की पृष्ठभूमि बनाया है। इससे पूर्व भी भारत-पाक विभाजन की समस्या को उन्होंने किसी न किसी रूप में 'स्वाधीनता के पथ पर' से लेकर 'विश्वासघात' तक उठाया है। प्रस्तुत विवेच्य उपन्यास में कांग्रेस को भारत के विभाजन का दोषी माना गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न, शरणार्थी-समस्या, 'किजर मंत्रिमंडल' की भूमिका, मुस्लिम लीग का 'काला-दिवस' (Direct action Day) गांधी जी की हत्या अनेक घटनाओं का चित्रण उपन्यास में किया गया है। लेखक की दृष्टि में तटस्थता का अभाव पाठक को खटकता है।

स्वतंत्र भारत (१९४९)

'स्वतंत्र भारत' की रचना 'मिश्र द्वय' (शुकदेव बिहारी मिश्र तथा प्रतापनारायण मिश्र) ने की है। यद्यपि उपन्यास पूर्ण राजनीतिक है। परन्तु यह उपन्यास कम तथा इतिहास का ग्रंथ अधिक है। जिसमें कांग्रेस-समाजवादी दल, तथा आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन का यथार्थ रूप में अंकन किया गया है। कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़मरोड़ कर भी प्रस्तुत किया गया है। यथा स्वातंत्र्य संग्राम में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के उपरान्त प्रायः आतंकवादी दल के लोग कांग्रेस-समाजवादी-दल में और फिर वहाँ से कांग्रेस दल में आये थे। परन्तु मिश्र द्वय ने कांग्रेस से आतंकवाद की ओर मधुप को मोड़ा है। मधुराघव कांग्रेस त्याग कर आतंकवादी बन जाता है। कम्युनिस्ट-सिद्धान्तों की व्याख्या में स्वस्थ दृष्टि का अभाव है। साम्यवाद को निम्नस्तर के लोगों का आन्दोलन चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

हरिजन (१९४९)

संतोषनारायण नौटियाल ने 'हरिजन' में कथा का प्रारंभ 'आतंकक्रान्ति' से किया है। उपन्यास के आरंभिक भाग में आतंकवादी कार्यकलापों का सुन्दर भावा-

सफल संयोजन हुआ है । यथा बम बनाना, रेल का पुल उड़ाना, [illegible] की हत्या करना आदि । दिलीप और जयराम द्वारा रेलगाड़ी को उड़ाने का कार्य '[illegible] रिवोल्युशनरी पार्टी' के कार्यों की याद तरोताजा कर देता है ।

रमेश गांधीवादी पात्र है । जो अन्त्यजों की बस्ती में जाकर झोंपड़ी बनाकर रहता है । हरिजन पाठशाला के माध्यम से हरिजनोद्धार का काम करता है । परन्तु उसकी गांधीवादिता धीरे-धीरे लड़खड़ाने लगती है । [illegible] (चमारिन) से प्रेम भी करता है उसे लेकर गांव छोड़ देता है परन्तु उसे अपना नहीं पाता । परंपरागत कुल-[illegible] का भाव उसे उद्वेलित करता रहता है । उपन्यासकार ने इस घटना के चित्रण द्वारा मानवीय गुणों की स्थापना पर गांधीवादी दृष्टिकोण से बल देने का प्रयत्न किया है ।

मनुष्य के रूप (१९४९)

यशपाल की साम्यवादी आस्था 'मनुष्य के रूप' में मुखर हुई है । 'इसीलिए 'मनुष्य के रूप' में गांधीवाद, समाजवाद आदि पर कटु व्यंग्य करने की कमजोरी या साहस भी इसमें मिलता है ।'[1] उपन्यास के कथानक में द्वितीय महायुद्ध, अगस्त क्रान्ति आजाद हिन्द सेना, पुलिस का दमनचक्र, पूंजीवाद की नारी के प्रति कामुकता, अनैतिकता और अत्याचारों का सजीव चित्रांकन इसकी विशेषताएं हैं । 'समाज में समता और समान अवसर, सहृदयता और हृदय परिवर्तन के उपदेश से नहीं उत्पादन के साधनों पर सब लोगों का समान रूप से होने से ही हो सकता है ।'[2] यशपाल का यही जीवन-दर्शन 'मनुष्य के रूप' में स्फुरण पा सका है । धनसिंह आजीवन संघर्षशील सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है । जो पूंजीवादी सभ्यता के घात-प्रतिघातों में इधर से उधर भटकता फिरता है । ब्रिटिश-साम्राज्य भी पूंजीवाद के रूप में 'सोमा' और 'धनसिंह' का ही शोषण नहीं कर रहा है परन्तु सम्पूर्ण भारत का शोषण इसी प्रक्रिया से होता रहा है ।

१- डा० सत्येन्द्र : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १५९.

२- यशपाल : बात-बात में बात (लखनऊ : १९५४), पृ० ३६.

अतः उपन्यासकार को शोषक का अन्त ही अभीष्ट है ।

अनबुझी प्यास (१९५०)

दुर्गेश्वर मेहता द्वारा रचित 'अनबुझी प्यास' की भूमिका में अम्बिका प्रसाद जी ने लिखा है कि यह उपन्यास सन् १९२०-२१ से लेकर सन् १९३०-३१ के राष्ट्रीय आन्दोलन का ग्रामीण अंचल में सम्पन्न हुए आन्दोलन का सजीवचित्र है। मेहता जी ने असहयोग आन्दोलन की अनेक घटनाओं, कृषक जागरण, 'स्वराज्य' की व्याख्या, कांग्रेसी पात्रों की चारित्रिक विशेषता, उनकी जेल जाने की अनिवार्यता आदि का वर्णन उपन्यास में किया है । गांधीवाद की सुन्दर व्याख्या भी इसमें है ।

मुक्ति के बन्धन (१९५०)

गोविन्दवल्लभ पन्त का 'मुक्ति के बन्धन' पूर्णतः राजनीतिक उपन्यास है । इसके कथानक का विस्तार प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर देश की स्वाधीनता तक फैला हुआ है । लगभग तैंतीस वर्षों के राजनीतिक घटनाक्रम को पन्त जी ने मुक्ति के बंधन में समेटा है । उपन्यास का प्रारम्भ आतंकवाद की गुप्त बैठकों से होता है । स्वामी जी नवयुवकों को आतंकवादी आन्दोलन के द्वारा पराधीनता से देशमुक्ति के लिए प्रेरणा देते हैं उन्हें तैयार करते हैं । विशालसिंह, कुमार और लक्ष्मी कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन का संचालन कुमाऊँ की पर्वतीय उपत्यका में करते हैं । उपन्यासकार ने गांधीवादी सत्याग्रह की सभी प्रवृत्तियों का चित्रण किया है । उपन्यास गांधीवादी परम्परा की ही एक कड़ी है ।

बयालीस के बाद (१९५०)

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने 'बयालीस के बाद' में अपने पूर्वलिखित उपन्यासों की ही भाँति राष्ट्रीय-संग्राम को दृष्टि में रखकर द्वितीय महायुद्ध के आसपास घटी घटनाओं को कथानक की पृष्ठभूमि बनाया है । इसमें सर्वहारा वर्गवाद और पूंजीवाद का संघर्ष चित्रित किया गया है । गांधीवाद का विश्लेषण भी साथ-साथ है । ब्रिटिश

पूँजीवाद, उसका शोषण और दमन राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में उठाया गया है। आजाद हिन्द-सेना का अंडमान द्वीप समूह पर अधिकार का चित्रांकन भी उपन्यास में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास को 'विसर्जन'(विसर्जी) नाम से भी नवीन रूप में प्रकाशित किया गया है।

संक्रान्ति (१९५१)

'संक्रान्ति' की कथावस्तु का निर्माण कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक तथा मुस्लिम लीग की राजनीति गतिविधियों से किया है। गांधी जी जिस साम्प्रदायिकता के कारण मारे गये थे उसकी भूमिका को उपन्यासकार ने उठाया है। देश के विभाजन से शरणार्थी-समस्या से उत्पन्न परिस्थितियों को भी उपन्यास में स्थान मिला है। पाकिस्तान का भारत पर आक्रमण उसकी स्वाधीनता की रक्षा आदि अन्य विषय भी 'भिक्खु' को अभिप्रेत रहे हैं।

इंसान (१९५१)

'इंसान' के कथानक का प्रारम्भ यज्ञदत्त शर्मा जी ने देश की प्रमुख समस्या भारत विभाजन[1] से किया है। साम्प्रदायिकता के कारण जो रक्त की धारायें भारत में बह रही थीं उसका यथार्थ चित्रण उपन्यास में मिलता है। परन्तु धीरे-धीरे कथावस्तु विभाजन की समस्या से हटकर साम्यवाद की आलोचना पर आने लगती है। साम्यवाद की स्तरहीन आलोचना में 'इंसान' भी 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का पथिक बन जाता है। कांग्रेस का समर्थन तो मात्र एक बहाना है। उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर राजनैतिक घटनाओं का चित्रण किया गया है। इसे कम्युनिस्ट-विरोध का प्रचारवादी राजनैतिक उपन्यास कहा जाय तो यही सत्य होगा।

१- यज्ञदत्त शर्मा : इंसान (दिल्ली : १९५१), पृष्ठ दो शब्द.

पूरब और पश्चिम (१९५१)

राधिका रमण सिंह ने प्रस्तुत उपन्यास में मदाम ब्लावत्स्की के जीवन-चरित्र को मीनी के रूप में चित्रित किया है। मीनी अंग्रेजी राज्य के अत्याचारों पर अपना आक्रोश प्रकट करके उसके पतन की कामना करती है। उपन्यास में गांधी जी के प्रशंसात्मक चित्र भी अंकित किए गए हैं।

हृदयमंथन (१९५१)

सीताचरण दीक्षित ने प्रस्तुत उपन्यास में गांधी जी के हरिजनोद्धार आन्दोलन को उपन्यास की कथावस्तु के रूप में ग्रहण किया है। हरिजनों की सामाजिक हेयता का कारण स्वयं समाज और धर्म है। दीक्षित जी ने हरिजन बालिका चंपा के हरिजनत्व की हेयता से उत्पन्न मनोभावों का चित्रांकन उपन्यास में प्रतिपादित किया है। गांधीवादी दर्शनानुसार आत्म-स्थापना, हरिजन-शिक्षा की व्यवस्था, नारी के उत्थान का सतत प्रयास आदि अनेक युगीन समस्याओं को उपन्यासकार ने उपन्यास की माला में विभिन्न मनकों के रूप में पिरोया है। हरिजनोद्धार ही उपन्यास का एकमात्र लक्ष्य है।

सीधा-सादा रास्ता (१९५१)

डा० रांगेयराघव ने 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' से गुजरकर उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप साम्यवाद की यथार्थवादी तत्वोंरप्रस्तुत करने के लिए 'सीधा-सादा रास्ता' से नई राह का निर्माण किया है। इस तथ्य को स्वयं उपन्यासकार ने स्वीकारा है। और उपन्यास की रचना के कारण को भूमिका भाग में स्पष्ट किया है। सीधा-सादा रास्ता के कथानक और पात्रों को साम्यवादी दृष्टि प्रदान की है। इस उपन्यास के राजनीतिक स्वरूप के बारे में अधिक कुछ न कह कर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसमें 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का उत्तर देने का पूर्ण प्रयास राघव ने किया है।

चलते-चलते (१९५१)

‘चलते-चलते’ उपन्यास की कथा में सामाजिकता निहित है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी जी ने स्वातंत्र्य संग्राम को अंशतः कहीं-कहीं पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करने के लिए लिया है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीति के लिए गांधीयुगीन राजनीति को मात्र भूमिका प्रदान की गई है।

पतवार (१९५२)

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की ‘पतवार’ में आकर सैद्धान्तिक धारणा में परिवर्तन परिलक्षित होता है। क्योंकि ‘पतवार’ में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि ‘मेरी यह धारणा अब धीरे धीरे दृढ़ हो गई है कि एक स्थायी विश्वशान्ति और मानवमात्र का कल्याण सत्य और अहिंसा द्वारा ही संभव है। ‘पतवार’ में मानवतावाद के दर्शन होते हैं। प्रेम, त्याग, सत्य और अहिंसा की भावनाएं कठिनाइयों के अंतराल से मुक्ति प्रदान करने लगती है। दिलीप, त्रिभुवन और दादा गांधी जी के आदर्शों पर चलते हैं और उनके सत्य, अहिंसा प्रेम और त्याग से ओतप्रोत बातों का स्मरण भी करते हैं। दिलीप गांधीवादी विचारधारा से अनुप्राणित पात्र है। नारी पात्रों में प्रतिभा, दीदी आदि भी गांधीवादी हैं। डा० भगीरथ मिश्र इस उपन्यास की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ‘यह उपन्यास गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत मनोविश्लेषण-प्रधान सामाजिक उपन्यास है।’[१]

मशाल (१९५१)

भैरवप्रसाद गुप्त द्वारा रचित ‘मशाल’ साम्यवादी विचारों से पूर्ण राजनीतिक उपन्यास है। उपन्यास का कथानक द्वितीय विश्वयुद्ध से लेकर ‘आज़ाद हिन्द फौज’

१- डा० भगीरथ मिश्र, ‘पतवार : एक समीक्षण’, सम्पा० नन्ददुलारे वाजपेयी, साहित्यकार पं० भगवती प्रसाद वाजपेयी अभिनंदन ग्रंथ (कानपुर : १९५३), पृ० ६२.

तक की घटनाओं में फैला हुआ है। नरेश उपन्यास का पात्र द्वितीय विश्वयुद्ध में भरती होता है परन्तु परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों के कारण वह 'आजाद हिन्द सेना' का सिपाही बनकर वापस अपने गांव आता है । नौकरशाही के दमनचक्र के कारण उसे उजड़ा हुआ गांव, टूटा हुआ परिवार वहां मिलता है । वह पुन: मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व करता है । पूंजीवाद के विरुद्ध सर्वहारावर्ग को वह नई चेतना साम्यवादी विचारों के द्वारा प्रदान करता है । उपन्यासकार ने उपन्यास में वर्णित मजदूर आन्दोलन को कानपुर के मजदूर आन्दोलन से लिया है । भूमिका में यह तथ्य उसने स्वयं स्वीकार किया है । भारतीय मजदूर वर्ग में चेतना जगाना ही उपन्यास का एकमात्र उद्देश्य है ।

सती मैया का चौरा (१९५९)

भैरवप्रसाद गुप्त ने 'सती मैया का चौरा' में सन् १९४२ की क्रान्ति के यथार्थवादी चित्रों को उभारा है । साम्यवाद की व्याख्या व प्रचार करना उपन्यासकार का उद्देश्य है । उपन्यास में मुस्लिमलीग, कम्युनिस्ट पार्टी, जनसंघ, पार्टियों के राजनीतिक दर्शन का खंडन और मंडन किया गया है । साम्प्रदायिकता की समस्या, भारत का विभाजन और उसके कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है । मन्ने एक सजीव पात्र है । 'सती मैया के चौरा' उपन्यास में परम्परागत रूढ़िवाद पूंजीवाद और प्रगतिशील तत्वों के आपसी संघर्षों की संयोजना का सफल प्रयास किया गया है । प्राक्‌स्वातंत्र्यकाल गांधीयुगीन राजनीति के साथ स्वातंत्र्योत्तर राजनीति भी उपन्यास में ली गई है ।

इन्दुमती (१९५२)

'इन्दुमती' के कथानक ने सन् १९१६ के लखनऊ पैक्ट की ऐतिहासिक राजनीतिक घटना से लेकर सन् १९५० तक विस्तार पाया है । भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की मुख्य-मुख्य सभी घटनाओं को उपन्यास में स्थान मिला है । लखनऊ का मुस्लिम लीग और कांग्रेस का समझौता, महात्मा गांधी का असहयोगआन्दोलन, व्यक्तिगत सत्याग्रह, पुलिस का सत्याग्रहियों पर नृशंस अत्याचार आतंक क्रान्ति की गतिविधियां, क्रिप्समिशन का भारत

आगमन, उसकी रूपरेखा, भारत की स्वाधीनता आदि अनेक घटनाएँ इतिवृत्तात्मक रूप में ज्यों की त्यों वर्णित की गई हैं। अधिकांश घटनाएँ गोविन्ददास जी की स्व-भुक्त-भोगी हैं। ऐसे स्थल बड़े ही भावपूर्ण हैं।

बीज (१९५२)

अमृतराय के 'बीज' में 'युद्धकालीन १९४२ के बाद भारत की राजनीतिक, सामाजिक गतिविधि का चित्रण है।'[1] परन्तु उपन्यास के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। क्योंकि उपन्यासकार ने द्वितीय महासमर के पूर्व के गांधीवादी आन्दोलन तथा -- व्यक्तिगत सत्याग्रह को उपन्यास में चित्रित किया है। भारत छोड़ो आन्दोलन की सन् १९४२ की ऐतिहासिक ध्वनि के साथ-साथ आजाद हिन्द सेना, आतंकवादी कार्यकलापों का अंकन भी उपन्यास में उपलब्ध है। 'स्वराज्य' तो मिला पर जन सामान्य को भी कुछ मिला या नहीं? स्वराज्य के बारे में साधारण जनता का जो भाव था वह कहाँ तक पूरा हुआ। इस तथ्य का निरूपण अमृतराय ने 'बीज' के उत्तर भाग में करने का प्रयत्न किया है। गांधीवाद और आतंकवाद का विरोध करके साम्यवाद को प्रश्रयदिया गया है।

बलचनमा (१९५२)

'बलचनमा' उपन्यास की रचना के द्वारा नागार्जुन ने भारतीय सामन्तवाद का पर्दाफाश करके ग्रामीण कृषक के यथार्थवादी जीवन पर प्रकाश डाला है। उपन्यास की कथावस्तु सन् १९३० के पूर्व की है। जमींदारों का शोषण, उनके अत्याचारों की करुण कहानी 'गोदान' के बाद 'बलचनमा' में मुखर हुई है। गांधी जी के नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा कृषक-आन्दोलन ही इस उपन्यास का मुख्य विषय है। राष्ट्रीय-स्वातंत्र्य-संघर्ष की घटनाएँ जीवन्त होकर उपन्यास में उभरी हैं। 'बलचनमा'

१- शिवनारायण श्रीवास्तव, पूर्वोल्लिखित रचना, पृ० ४१४-१५.

एक राजनीतिक उपन्यास है। बलचनमा शोषितवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। फूल बाबू तथा हरिबाबू गांधीवादी सत्याग्रह आन्दोलन के प्रमुख पात्र हैं। बाबू भैया सामंतवाद के प्रतीक हैं। उपन्यासकार ने आन्दोलन का नेतृत्व सोशलिस्ट पार्टी के हाथों में सौंपा है जो उपन्यासकार के व्यापक परंपरायुक्त दृष्टिकोण का सूचक है।'[1]

<u>बाबा बटेसरनाथ (१९५४)</u>

नागार्जुन के उपन्यास साहित्य को हिन्दी समालोचकों ने समाजवादी वर्ग में स्थान दिया है। किन्तु उनका उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रभावित रचना है। 'बलचनमा,' 'रतिनाथ की चाची' आदि अन्य रचनाओं में समाजवादी चेतना विद्यमान है। बाबा बटेसर पुराने बरगद के समान है, जो भारतीय कृषक का प्रतिनिधि रहा है। पुराने स्मरणों के सहारे एक विदेशी जैकसन की आंग्ल-साम्राज्य की शोषक-वृत्ति, सामन्तों की निरंकुशता के साथ-साथ भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में रत अनेक राजनीतिक दलों के साथ कांग्रेस-आन्दोलन के इतिहास की कथा के रूप में सुनाता है। कांग्रेस-आन्दोलन में गांधी जी के असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा व्यक्तिगत सत्याग्रह की राजनीतिक घटनाओं को विशेष रूप से लिया गया है। इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में नागार्जुन ने 'गांधीवाद' की आलोचना और 'साम्यवाद' के प्रति आस्था प्रकट की है।

<u>सुखदा (१९५३)</u>

जैनेन्द्र कुमार की औपन्यासिक परम्परा गांधी युग से लेकर उत्तर गांधी युग तक बनी रही। मूलतः जैनेन्द्र जी गांधीवादी उपन्यासकार हैं। परन्तु 'सुखदा' की कथावस्तु में विप्लववादियों के कार्य-कलापों और उनके चिन्तन का संगुंफन है। सुखदा

१- डा० मक्खनलाल शर्मा : पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २०४.

पारिवारिक असंतोष, भावुकता, महती महत्त्वाकांक्षा के कारण सार्वजनिक आन्दोलन की ओर आकृष्ट होती है।[1] घर और बाहर में सामंजस्य स्थापित करके भारतीय नारी को राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित करती है। राष्ट्रहित की दृष्टि से घर और बाहर दोनों का समान महत्त्व है। `सुखदा` में गांधीवाद का वैचारिक रूप अभिव्यक्त हुआ है। जैनेन्द्र जी की मान्यता है कि अहं के विसर्जन से ही सत्य का दर्शन संभव है। उसके लिए आत्मपीड़न आवश्यक है।[2] सन् १९३४ के बाद आतंकवादी क्रान्तिकारी दल का विघटन आरम्भ हो गया था। क्योंकि समाजवादी-चेतना राष्ट्र में व्याप्त हो गई थी। `सुखदा` का पात्र हरीश के दलभंग में तत्युगीन चेतना की स्पष्ट छाप है। `सुखदा` गांधीवाद से उतना प्रभावित उपन्यास नहीं है जितना समाजवादी चेतनासे अनुप्राणित है।

विवर्त (१९५३)

`सुखदा` की परम्परा में जैनेन्द्र कुमार ने `विवर्त` के कथानक को भी स्थापित किया है। विवर्त की कथा भी क्रान्तिकारी घटनाओं के ताने-बाने में बुनी हुई है। परन्तु उपन्यास का अन्त गांधीवादी है। जिसमें जितेन जो क्रान्तिकारी दल का प्रमुख सदस्य है, मोहिनी के सम्पर्क में आकर उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। पुलिस के आगे उसका आत्मसमर्पण करवाकर उपन्यासकार ने अहिंसा का मंडन और हिंसा वृत्ति का खंडन किया है। उपन्यास में आतंकवाद की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में यह कहना उचित होगा कि क्रान्तिकारियों की घटना-संयोजना में कल्पना का पुट अधिक है जिससे उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा न कर पाया।

जयवर्द्धन (१९५७)

`जयवर्द्धन` के कथानक में स्पष्ट राष्ट्रीय-संग्राम की घटना का अभाव है। उपन्यास में रचनाकार हिंसा और अहिंसा के झंझावात में फँस कर रह जाता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र जयवर्द्धन हिंसा का परित्याग कर अहिंसक बन जाता है। आचार्य गांधीवादी

१- शिवनारायण श्रीवास्तव, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २९७.
२- अरविन्द जोशी, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १६.

पात्र हैं।

जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के अध्ययन के बाद पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कला की कसौटी पर जहाँ एक ओर व्यक्तिवादी हैं वहाँ दूसरी ओर राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि से गाँधीवादी उपन्यासकार हैं। व्यक्तिवाद से आवृत्त इन उपन्यासों में क्रान्तिकारियों को स्थान मिला है। उपन्यास के कथानक का जहाँ तक प्रश्न है उसमें अभिव्यंजित कथ्य का स्वरूप कुछ ऐसा लगता है जैसे मानो किसी खद्दर-धारी गाँधीवादी व्यक्ति ने लाल टाई गले में बाँध ली हो।

अमर बेल (१९५३)

वृन्दावनलाल वर्मा मूलत: ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष पर लिखे उपन्यासों की संख्या प्राय: नगण्य ही है। 'अमर बेल' में वर्मा जी ने गाँधीवादी सत्याग्रह को आधार बनाकर मरणासन्न सामन्तवादी प्रथा और भू-पतियों के विरुद्ध कृषक-आन्दोलन की सृष्टि की है। उपन्यास में गाँधीवाद पर व्यंग्य भी है और क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रशंसा भी है।

धर्मपुत्र (१९५४)

आचार्य चतुरसेन ने 'आत्मदाह' के उपरान्त राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम की पृष्ठभूमि में 'धर्मपुत्र' की रचना की है। धर्मपुत्र गाँधीवादी राजनीति का वाहक है। उपन्यासकार ने गाँधी जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता के स्वप्न को इसमें साकार किया है। 'धर्मपुत्र' का कथानक सन् १९३५ से लेकर सन् १९४७ तक की घटनाओं को अपने में लिए हुए है। देश की राजनीति में साम्प्रदायिकता का जहर बढ़ता चला जा रहा था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा मुस्लिम लीग ने देश के विभाजन को लेकर अशान्ति उत्पन्न कर दी थी। 'धर्मपुत्र' में राष्ट्रीय-स्वयं-सेवक-संघ के कार्यकर्ता साम्प्रदायिकता की भावना में रंग कर मुस्लिम परिवार के रंगमहल में आग लगा देते हैं। अमृतराय और अरुणा अपनी जान पर खेलकर हुस्नबानू के प्राणों की रक्षा करते हैं। हिन्दू-परिवार

द्वारा मुस्लिम परिवार की रक्षा करना साम्प्रदायिक एकता का सूचक है। कुन्नबाबू के जारज पुत्र को अमृतराय द्वारा गोद लेना व्यक्ति के विशाल हृदय का प्रतीक है। जहाँ धर्म से महान है व्यक्ति और उसकी मानवीय संवेदनाएँ। साम्प्रदायिक-समता के अतिरिक्त यशपाल ने अगस्त क्रान्ति, आजाद हिन्द सेना की गतिविधियों का भी अंकन उपन्यास में किया है।

मैला आँचल (१९५४)

'धनकुबेरी व्यास' की परम्परा में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने ग्रामीण अंचल में विकसित राजनीति को 'मैला आँचल' की कथावस्तु का आधार बनाया है। 'मैला आँचल' की कथावस्तु का आधार भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की नींव पर खड़ा किया है। सन् १९४२ के आन्दोलन के बाद भारतीय राजनीतिक दलों का स्वरूप स्पष्ट होने लगा था। उनके उसी स्वरूप को गांधीवाद, समाजवाद आदि रूपों में व्याख्यायित किया गया है। उपन्यास में ग्रामीण वातावरण में राजनीतिक चेतना का अंकन करना ही 'रेणु' का अभिप्रेत है। बावनदास गांधीवादी है और कालीचरन समाजवादी। प्रतिक्रियावादियों की राजनीति के कारण साम्प्रदायिकता के शिकार बापू हत्याकाण्ड का चित्रण भी समसामयिक ही है। भूमिपतियों, अधिकारियों, और अवसरवादियों पर यत्र-तत्र कटाक्ष के चित्र चित्रित किये गये हैं।

भँवरजाल (१९५४)

कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु' ने 'भँवरजाल' का कथानक क्रान्तिकारी आन्दोलन की भूमि पर निर्मित किया है। आतंकवादी क्रान्तिकारी गुप्त संगठन बनाकर जनता से विराट सहयोग पाने तथा जन-जन में स्वराज्य की भावना को जगाने के लिए उपन्यास में प्रयत्नशील होते हैं। ब्रिटिश-शासन की न्याय व्यवस्था के भ्रष्ट तरीकों का भी भंडाफोड़ किया गया है। ऐसी भ्रष्ट न्याय व्यवस्था को समूल नष्ट करने की भावना बलराज के माध्यम से व्यक्त की गई है। नारी जागरण को सरला के द्वारा मुखरित किया गया है। गांधी जी के आन्दोलन का एक ओर महत्त्व प्रतिपादित करने का प्रयत्न है तो दूसरी

और निशि का गांधी के आन्दोलन में अविश्वास व्यक्त हुआ है । नारायण के पुत्र की हत्या आतंकवादी आन्दोलन की छाया है ।

झुकते दीप (१९५५)

दयाशंकर मिश्र ने 'झुकते दीप' में साम्यवादी-दम्भियों को झुकाने का प्रयास किया है । उपन्यास का कथानक साम्यवादी-मजदूर वर्ग के नेता के चारों ओर चक्कर लगाता है। सुधि बाबू मजदूर नेता हैं । नीलिमा उनकी सहयोगी है । मिश्र जी ने उपन्यास में पूंजीवादी द्वारा मजदूरों के शोषण के चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । साम्यवादियों के चरित्र पर आक्षेप की ध्वनि प्रस्तुत होती है । यह उपन्यास कहीं-कहीं जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों की याद दिलाता है ।

निशिकान्त (१९५५)

'निशिकान्त' की कथा में विष्णुप्रभाकर ने स्वतन्त्रता आन्दोलनों को उपन्यास का रूप दिया है । उपन्यास की कथावस्तु 'असहयोग-आन्दोलन' से प्रारम्भ होकर 'व्यक्तिगत-सत्याग्रह' में समाप्त होती है । 'निशिकान्त' १९५६ ई० से पूर्व 'ढलती रात' के रूप में प्रकाशित हो चुका था । विष्णुप्रभाकर स्वयं भी इसे राजनीतिक उपन्यास मानते हैं । जिसमें एक ओर व्यक्ति है दूसरी ओर समाज । दोनों के संघर्ष में व्यक्तिवाद की विजय होती है । 'इसमें एक ऐसे युवक की कहानी है जो चाहता तो है देश की सेवा करना परन्तु उसे करनी पड़ती है विदेशी सरकार की सेवा ।'[1] 'निशिकान्त' के माध्यम से उपन्यासकार ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या, गांधी जी के बहिष्कार आन्दोलन आदि समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है ।

ज्वालामुखी (१९५६)

अनन्त गोपाल शेवड़े ने 'ज्वालामुखी' के कथानक के लिए सन् १९४२ की अगस्त क्रान्ति को आधार रूप में लिया है । पूरे उपन्यास में अगस्तक्रान्ति आन्दोलन को अनेक

१- विष्णु प्रभाकर, निशिकान्त (दिल्ली : १९५७), पृ० दो शब्द (भूमिका)

रूपों में चित्रित किया गया है। सेठ जी ने 'करो या मरो' के मंत्र को गांधीवाद के आदर्श पर उतारा है। भारतीय जनता की दासता से मुक्ति की छटपटाहट 'ज्वालामुखी' के विस्फोट में साकार हो उठी है।

गांधी चबूतरा (१९५७)

'गांधी चबूतरा' यथानाम तथा गुण से संयोजित है। गांधीवादी उपन्यासों की परम्परा में यह एक और कड़ी है। श्री प्रताप जी ने 'गांधी चबूतरा' के प्रथम भाग में भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की घटनाओं को और उत्तर भाग में स्वातंत्र्योत्तर राजनीति को उपन्यास के कथानक के रूप में लिया है। गांधीवाद और समाजवाद के विश्लेषण को भी उपन्यासकार ने करने का प्रयत्न किया है।

हुजूर (१९५७)

डा० रांगेय राघव ने प्रस्तुत उपन्यास में किसी 'वाद' विशेष का प्रत्यक्ष विश्लेषण न करके सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के उपरान्त की विभिन्न राजनीतिक घटनाओं को प्रसंगवश 'हुजूर' में चित्रित किया है। पूंजीवाद तथा नौकरशाही को व्यंग्य के रूप में लिया है। एक कुत्ते की आत्मकथा के रूप में सामाजिक शोषण, विषमता, दैन्यता के अलावा बदलते हुए मानव-जीवन-मूल्यों का मौलिक अंकन उपन्यास में किया गया है। 'नया-हिन्द', 'झूठ-मैया की लूट', 'बढ़ती-मंहगाई', देशभक्त-पुलिस पर स्वाधीनता के वातावरण में विचार हुआ है।

भूले-बिसरे चित्र (१९५९)

भगवतीचरण वर्मा के 'भूले-बिसरे चित्र' की कहानी का आरंभ शिवलाल की पीढ़ी से प्रारंभ होकर नवल वर्मा की चौथी पीढ़ी में अन्त होता है। सन् १८८० से सन् १९३० तक की राजनीतिक घटनाओं को कथानक के रूप में लिया गया है। सामन्तवाद और पूंजीवाद द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन और पराजय ही कथानक का

मुख्य भाव है। यह उपन्यास पूर्ण राजनीतिक उपन्यास है।

रूपा जीवा (१९५९)

उपन्यासकार ने `रूपाजीवा` में स्वातंत्र्य संघर्ष की घटनाओं का वर्णन अख-बारी रिपोर्ट के रूप में किया है। कांग्रेस-आन्दोलन जवाहरलाल का सभापति चुना जाना, श्रीमती कमला नेहरू का देहान्त, द्वितीय विश्व का प्रारंभ, नवयुवकों का योग-दान आदि घटनाओं का चित्रण उपन्यास का मुख्य विषय है।

डा० शैफाली (१९६०)

`डा० शैफाली` की कथा का आधार क्रान्तिकारी आन्दोलन है। भारतीय नव-युवतियों का योगदान, उनका क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेना, गुप्त रूप से देश सेवा का काम करना आदि प्रसंगों को रचना में उठाया गया है। क्रान्तिकारी नव-युवकों से साम्राज्यवाद से टक्कर लेने में नव-युवतियां भी पीछे नहीं हैं यही उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है। डा० शैफाली का कथाभाग प्रसिद्ध क्रान्तिकारी `दीदी` से साम्य रखता है।

शेष-अशेष (१९६०)

`भट्ट` जी के इस उपन्यास का विषय भी क्रान्तिकारी आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि से निर्वाचित किया गया है जिसमें देश की स्वाधीनता के लिए साधुओं के भेष में क्रान्तिकारी आन्दोलन की संयोजना है। देशभक्त ब्रिटिश सरकार को उखाड़ने के लिए साधु-भेष में ऋषिकेश की सुरम्य-पर्वत उपत्यका में स्वामी हरिहरानंद के नेतृत्व में योजना बनाते हैं। चिदम्बर, कल्पानंद आदि स्त्री और पुरुष साधुओं की एकता के माध्यम से आंग्ल-प्रशासन की समाप्ति का प्रचार करते हैं। इश्तहार, लघु पुस्तिकाओं और कथा प्रवचनों को अपना हथियार बनाते हैं। जिससे जनता जाग्रत हो। परन्तु अंत में आन्दोलन ब्रिटिश-दमनचक्र से समाप्त हो जाता है और चिदम्बर हंसते देश की स्वाधीनता के लिए फांसी के तख्ते पर अपने प्राणों का विसर्जन कर देता है।

झूठा-सच (१९५८-६०)

स्वाधीनता प्राप्ति के लगभग डेढ़ दशाब्दी तक भी साहित्यकार के मानस में द्वितीय-विश्वयुद्धोत्तर भारतीय-राजनीतिक-घटनाएं मनन और चिन्तन का विषय बनती रहीं। क्योंकि स्वाधीनता की प्राप्ति में विषाद के विकट रूप ने हर्षातिरेक को धर-दबोचा था। साम्प्रदायिकता ने मानवीयता को पाशविकता की ज्वाला में भस्मीभूत कर दिया था। पिटा हुआ मनुष्य-समुदाय, उजड़ा हुआ परिवार देश-विभाजन की पीड़ा से परेशान था। शरणार्थी-कैम्पों की बाढ़, काश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण, पाकिस्तान का पावना, बापू का अनशन, उनकी हत्या और कांग्रेस के चुनाव, गांधीवाद की आलोचना आदि अनेक अन्य राजनीतिक प्रश्नों को यशपाल ने 'झूठा सच' में अपनी कल्पना के माध्यम से औपन्यासिक रूप में गढ़ा है। उपन्यास के दोनों ही भागों-- 'देश का भविष्य' तथा 'वतन और देश' में राजनीतिक तथा सामाजिक समस्या का व्यापक-चित्रफलक प्रस्तुत किया गया है। भारत-विभाजन उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है। उसकी आसंग समस्याएं उसके चारों ओर चक्कर लगाती हैं। भारत-विभाजन के साथ साम्प्रदायिक समस्या को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है। उपन्यास में प्रलेखित अधिकांश समस्याएं ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य हैं। 'यशपाल ने उपन्यासों में जिन राजनीतिक तिथियों और घटनाओं की संयोजना की है वे राजनीतिक पुस्तकों के आधार पर सत्य सिद्ध होती हैं।'[१] परन्तु एक बात यशपाल के उपन्यासों के बारे में महत्त्वपूर्ण यह है कि 'सामान्यतः पूरे उपन्यास में राजनीतिक प्रश्नों पर यशपाल का मतामत मोटे तौर पर कम्युनिस्ट-पार्टी के विचार का समर्थक है।'[२]

यशपाल के बाद स्वातंत्र्य संघर्ष की घटनाओं को उपन्यास की कथावस्तु के रूप में ग्रहण करने वाले उपन्यासकार मन्मथनाथ गुप्त हैं।[३] गुप्त जी के साठोत्तरी

१- सरोजगुप्त, (पूर्वोल्लिखित ग्रंथ), पृ० ६३.
२- नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, (दिल्ली : १९६६), पृ० ७५.
३- मन्मथनाथ के उपन्यासों की रचना-तिथि जो प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त है वे उनके एक पत्र के प्रत्युत्तर पर आधारित हैं। द्रष्टव्य है:परिशिष्ट.

उपन्यासों -- 'सागर-संग्राम,' 'सुधार,' 'गृह-युद्ध' आदि का विषय भी राष्ट्रीय संग्राम की घटनाएं हैं।

दो दुनिया (१९५३)

उपन्यास की कथावस्तु का चित्रफलक भारत विभाजन से उत्पन्न मानवीय संवेदनात्मक परिस्थितियों पर आधारित है। देश विभाजन की शिकार नारी की मजबूरी तथा शरणार्थी समस्या का चित्रांकन उपन्यास में किया गया है। समाजवादी दर्शन की स्थापना का प्रयास भी उसमें है।

बलि का बकरा (१९५३)

प्रस्तुत रचना में भारत छोड़ो आन्दोलन, कांग्रेस के सत्याग्रह को कथानक का मुख्य विषय बनाया गया है। उपन्यास का नायक प्यारेलाल गांधी जी की वाणी को वेदवाक्य मानकर चलता है। कांग्रेसी सत्याग्रह में भाग लेकर जेल की तीर्थ यात्रा करता है। सब कुछ खोकर अगस्तक्रान्ति में भाग लेकर नौकरशाही को उखाड़ने के लिए क्रान्तिकारी दल में चला जाता है। ज्यों-ज्यों अगस्तक्रान्ति की ज्वाला शान्त होने लगती है बापू की सलाह पर वह आत्मसमर्पण कर देता है।

रैन अंधेरी (१९५६)

उपन्यास 'रैन अंधेरी' में सन् १९२२ अर्थात् असहयोग आन्दोलन से सन् १९३० सविनय अवज्ञा आन्दोलन तक की राजनीति को चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है।[१] असहयोग आन्दोलन का आरंभ, उसका बापू द्वारा स्थगन, चौरी-चौरा, काकोरी रेल षड्यंत्र, कौंसिलों का चुनाव, स्वराज्यपार्टी की गतिविधियां, लाहौर-षड्यंत्र, साइमन कमीशन का बहिष्कार, गांधी इरविन समझौता आदि विविध घट-

---

१- मन्मथनाथ गुप्त, रैन अंधेरी (दिल्ली : १९५६), पृ० ६ (दो शब्द)

नाओं का प्रतिपादन किया गया है। राजनीतिक घटनाओं के आधार के लिए `कांग्रेस का इतिहास` को बनाया गया है।

रंगमंच (१६६०)

`रंगमंच` की कथा का आधार मन्मथनाथ गुप्त ने बापू के नमक सत्याग्रह आन्दोलन को बनाया है। जिसमें `डांडी-यात्रा` से लेकर `करांची कांग्रेस` १६३१ की घटनाओं का उपन्यास के रूप में लिया गया है। आतंकवादी क्रान्तिकारी दल के समाजवादी दर्शन के सांकेतिक चित्र भी उपन्यास में उभारे गये हैं। प्रेमचंद नामक पात्र आतंकवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होता है। रूस की सोशलिस्ट पार्टी का प्रभाव उस पर है। उपन्यास में धरसना नमक गोदाम पर हमले की योजना, गांधी जी की गिरफ्तारी, नमक बनाकर नमक कानून तोड़ना, `गांधी-इर्विन पैक्ट` मुख्य रूप से लिए गए हैं। चिटगांव की क्रान्तिकारी घटना, नौकरशाही, राजभक्तों की दमनकारी मनोवृत्ति के चित्रण को प्रमुखता दी गई है।

अपराजित (१६६०)

मन्मथनाथ गुप्त ने `अपराजित` के प्रतिपाद्य हेतु गांधी जी के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के आस-पास तथा उसके दो तीन वर्ष बाद की घटनाओं का चयन किया है। सन् १६३१-३२ में क्रान्तिकारियों की फांसी की सजा से न बचा पाने के कारण देश में जो दंगे हुए थे उस पृष्ठभूमि के आधार पर कानपुर के साम्प्रदायिक दंगों का वर्णन भी `अपराजित` में है। इसके अतिरिक्त `गोलमेज सम्मेलन` और कृषक आन्दोलन को भी कथानक में स्थान दिया गया है। किसी `वाद` विशेष की स्थापना का अभाव उपन्यास की अपनी विशेषता है।

उपर्युक्त सभी उपन्यासों के विवेचन के उपरान्त यह धारणा पुष्ट होती है कि उपन्यासकार ने जहां प्राक् गांधीयुग में राजनीति की उपेक्षा की वहीं `गांधी युगीन उपन्यासकार ने राजनीति को अपनी रचना का प्रमुख विषय बनाया। भिन्न-भिन्न

राजनीतिक दर्शनों के प्रतिपादन हेतु युगीन उपन्यासकार `वाद` विशेष से प्रतिबद्धता का आलिंगन करता हुआ आगे बढ़ा । जिसका फल यह निकला कि उपन्यासकार ने तद्युगीन राजनीतिक आन्दोलन से प्रभावित होकर उपन्यास की संरचना की । जिसके पीछे उसकी अपनी दृष्टि थी । `आन्दोलन` प्रियता, तथा `वाद` प्रियता के प्रचार में भी सैद्धान्तिक-पक्षों को सबल बनाने में उपन्यास का आधार जुटाया । यही कारण है कि गांधीवादी ने गांधीवादी, आतंकवादी मनोवृत्ति के विश्वासी ने आतंकवादी तथा समाजवादी प्रवृत्ति के उपन्यासकार ने समाजवादी भावों के प्रसार और प्रचार के लिए उपन्यासों की रचना की । गांधीयुगीन उपन्यासकार चाहे वह गांधीवादी था या चाहे आतंकवादी या क्रान्तिकारी समाजवादी-सबका मूल स्वर समान था । वह था किसी भी तरह ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के जबड़ों से भारत की मुक्ति । अन्त और अन्त सभी राजनीतिक दलों के अलग-अलग होने पर भी उद्देश्य एक था ।

गांधीयुगोत्तर उपन्यासकार की चेतना के भाव में स्वाधीनता के उपरान्त निश्चय ही परिवर्तन आया । अब उपन्यास वादों -- गांधीवाद-समाजवाद-मार्क्सवाद की आलोचना और प्रत्यालोचना के स्वर को स्वतंत्र भारत के संदर्भ में स्पष्ट रूप से मुखर करने लगा यद्यपि सन् १९४० से ही इस प्रकार की प्रवृत्ति के उगते हुए अंकुर राहुल, यशपाल, नागार्जुन, राघव`अंचल`आदि की रचनाओं में मिलने लगते हैं । परन्तु इन अंकुरों का विकास गांधी युगोत्तर में अधिक हुआ है । गांधीयुगीन उपन्यासकार का प्रारंभिक स्वर राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ा हुआ था परन्तु समाजवादी दर्शन के विश्व व्यापक प्रभाव से भारतीय-मुक्ति-संग्राम भी अपने को न बचा सका । राष्ट्रीय-संग्राम की संघर्षयात्रा में जो-जो पड़ाव आते गये उनसे उपन्यासकार भी तत्युगीन होकर मुखर हो उठा ।

`भारत जाग उठा` `हरशरणैल` में युगीन राजनीति के अतिरिक्त `बलिदान` में आजाद हिन्द सेना का भारत की मुक्ति के लिए किया गया संघर्ष चित्रित किया है । नेता जी का देश से बच निकलना, विदेशी मदद से सैन्य संचालन करना, इम्फाल पर तिरंगा फहराना आदि घटनाओं को उपन्यास के कथानक के लिए ग्रहण किया है ।

अगले चतुर्थ अध्याय में उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की राजनीतिक चेतनाओं के औपन्यासिक स्वरूप के चित्रण का विश्लेषण किया जायेगा ।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष का चित्रण

"मैं स्वराज्य अथवा रामराज्य चाहता हूँ। मैं शान्ति और प्रेम का राज्य स्थापन करने का इच्छुक हूँ। यह राज्य केवल अहिंसा से ही उत्पन्न हो सकता है। यही मेरा एकमात्र विश्वास है।"

— महात्मा गांधी

(कराची अधिवेशन का एक अंश)

"अथातोब्रह्मजिज्ञासा" के इस पवित्र सूत्र से भारतीय वेदान्त का प्रारंभ होता है। परन्तु साहित्यकार के अनुसार साहित्य की सर्जना का मूलमंत्र "अथातो सत्य जिज्ञासा" के अतिरिक्त और अन्य कुछ नहीं है। उसके मनस्तल में सत्य का जो गूढ़ कुतूहल निहित होता है वही काव्य, कहानी, नाटक और उपन्यास आदि के रूप में अभिव्यक्ति पाता है। साहित्यकार अनेकानेक माध्यमों से स्वयं को उद्घाटित करके आन्तरिक एवं बाह्य जगत में विद्यमान न्यपरिवेशावृत-सत्य की शोध में सर्वदा प्रवृत्त रहता है। भारतीय-स्वातंत्र्य-संघर्ष के संदर्भ में उपर्युक्त तथ्यावलोकन के बाद सहज ही यह धारणा परिपुष्ट होती है कि हिन्दी उपन्यासकार राष्ट्रीय-आन्दोलन के विविध पक्षों की कालान्तर में उपेक्षा न कर सका। राष्ट्रीय-आन्दोलन की चेतना के आन्तरिक और बाह्य निरूपण को उसने अपने उपन्यास का विषय बनाया। देश और काल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जिन स्वातंत्र्य-संग्राम के ऐतिहासिक तथ्यों को उपन्यासकार ने ग्रहण किया, उनका वैविध्यपूर्ण चित्रांकन विविध रूपों में कल्पना और सत्य के मिश्रण के साथ प्रस्फुटित हुआ है। उन्हीं विविध रूपों का विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय में करने का प्रयास किया गया है।

(क) राजनीतिक 'वाद' निरूपण

स्वातंत्र्य-संग्राम का विधिवत् सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में आरंभ हो गया था परन्तु बीसवीं शताब्दी के लगभग दो दशक तक वह नाबालिग युवक की भाँति परिपक्वता प्राप्त न कर पाया। ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि राष्ट्रीय पुनर्जागरण की समझ अपनी अन्तिम विकास-यात्रा पर थी। राष्ट्रीय चेतना की भूमि में अब उर्वराशक्ति उत्पन्न हो गई थी। ब्रिटिश पूँजीवाद और साम्राज्यवाद उन राष्ट्रीय चेतनांकुरों को सतत प्रयास के बावजूद भी समूलनष्ट करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। प्रथम-विश्व-महासमर की विजय का उपहार 'रौलेट-कमेटी' के रूप में भारतवासियों को दिया गया था। महात्मा गाँधी सेवा के प्रतिदान में पूजा और घृणा को सहन न

कर पाये । फलतः `रॉलट एक्ट` की समाप्ति की भूमिका में उन्होंने जिस असहयोग-आन्दोलन का प्रारंभ किया उसकी समाप्ति स्वाधीनता के आलोक में जाकर विलीन हुई । महात्मा गांधी के `सत्य के प्रयोग`--`अवज्ञा सत्याग्रह`, `सविनय सत्याग्रह`, `व्यक्तिगत-सत्याग्रह` जो प्रत्येक दस वर्ष बाद किये गये, को `गांधीवाद` के नाम से अभिहित किया गया । जिसके अन्तर्गत गांधी जी का सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन निरूपित है । गांधीवाद को दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है -- (१) चिन्तन पक्ष और (२) व्यावहारिक पक्ष । चिन्तनपक्ष में अहिंसा, सत्य, और सत्याग्रह आते हैं । सत्याग्रह के उपखण्डों में उपवास, असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा धरना आदि हैं । व्यावहारिक पक्ष में गांधी जी का सम्पूर्ण रचनात्मक कार्य सम्मिलित किया जा सकता है । क्योंकि यह सत्याग्रह-संघर्ष का एक मात्र उपादान है । सत्य, अहिंसा, मानवता, निडरता, हृदय की पवित्रता, प्रेम, समता और एकता आदि `गांधीवाद` के ही विविध अवयव हैं । इसी प्रकार बल प्रयोग के द्वारा ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का भारत से अन्त करने के चिन्तन पक्ष को भारतीय परिप्रेक्ष्य में आर्शवाद, क्रान्तिवाद, `समाजवाद` तथा `साम्यवाद` का नाम दिया गया है । हिन्दी उपन्यासकार ने इन्हीं `वादों` को अपनी रचनाओं का प्रतिपाद्य बनाया ।

गांधीवाद

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों में गांधीवाद की सैद्धान्तिक विवेचना का सन् १९३५ तक अभाव सा पाया जाता है । इस काल के उपन्यासकार ने `गांधीवाद` को गुणावगुण की कसौटी पर न कसकर उसके व्यावहारिक पक्ष को यथावत रूप में ग्रहण किया है । व्याख्या के रूप में `गांधीवाद` का विरोध नगण्य सा रहा है । परन्तु जहां तक गांधी जी के `असहयोग-आन्दोलन` का प्रश्न है उसका विरोध अवश्य हुआ है । वह भी अपवाद के रूप में ही है । प्रेमचंद ने अपने तीनों उपन्यासों -- प्रेमाश्रम, रंगभूमि और कर्मभूमि में `गांधीवाद` को सत्याग्रह के रूप में ग्रहण किया है । `वाद` विवेचन के फेर में न पड़कर उन्होंने गांधीवाद की स्थापना गांधीवादी पात्रों, उनके

सम्वादों, उनके सत्याग्रहों आदि के द्वारा की है । श्रीनाथसिंह ने 'जागरण' में उसी परम्परा को अग्रसर किया है तथा जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' आदि में भी इसी परम्परा के दर्शन होते हैं । परन्तु प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों को 'गांधीवाद' के 'अहिंसावाद' का व्याख्यात्मक विवेचन विशेषत: अभिप्रेत रहा है । 'गांधीवाद' पर एक ही उपन्यास में कहीं आस्था व्यक्त कराई गई है तो कहीं अनास्था । इसका कारण संभवत: युगीन प्रभाव था । क्योंकि 'सविनय अवज्ञा-आन्दोलन' के पश्चात् देश के राजनीतिक चिन्तन में पूर्णत: परिवर्तन आ गया था । इससे पूर्व असहयोग-आन्दोलन की असफलता के बाद भी गांधीवादी आन्दोलन पर जनता की विश्वास की आंखें टिकी हुई थीं । 'गांधी-इर्विन समझौते' का परिणाम भी निराशाजनक ही रहा था । स्वयं कांग्रेस के सदस्य गांधी जी की आलोचना करने लगे थे ।

अहिंसा

'गांधीवाद' में आस्थावान उपन्यासकार 'गांधीवाद' के प्रति आस्था जगाने का उपक्रम करने लगा । फलत: 'गांधीवाद' व्याख्या की वस्तु बन गया । गांधीवाद का मूलाधार अहिंसा है । 'अहिंसा एक निर्जीव-सिद्धान्त नहीं है, अपितु एक जीवित और प्राणदायिनी शक्ति है । वह शूरवीरों का एक गुण है, तद्वत: उनका सर्वस्व है । . . . . . यह सबसे उच्चतम धर्म है । अहिंसा के सूर्य के उदय होते ही घृणा, क्रोध और ईर्ष्या-द्वेष आदि अंधकार रूपी शत्रु भाग जाते हैं'।[1]

'पुरुष और नारी' का पात्र दलीप अहिंसा की व्याख्या करते हुए कहता है --

'अहिंसा कुछ दब्बूपन की दीनता नहीं है । जुल्म के आगे हम सर रोपते हैं -- कुछ सर नहीं झुकाते । पिलेरों की अहिंसा और है, बुजदिलों की अहिंसा और । . . . अहिंसा तो वह तलवार है, जिसकी चोट बचाने की कोई ढाल ही नहीं । यह सरासर

१- पट्टाभिसीता रामय्या, महात्मा गांधी का समाजवाद (प्रयाग : १९४६), पृ० १३.

सक्रिय है, कुछ पंगु नहीं । . . . . यह मृत्यु के मुंह में जीवट की सजीवता है । यहां तो हथेली पर जान रखते हैं और छाती में आग ।'[1]

'अज्ञेय' ने 'अहिंसा' पर विचार प्रकट करते हुए कहा है कि 'जहां हत्या अहिंसा हो सकती है वहां राह चलते गेहूं की एक बाल तोड़कर फेंक देना हिंसा होगी । क्योंकि वह कर्म उस विश्व-स्वभाव का कोई हित नहीं करता उल्टे थोड़े से हित की संभावना को नष्ट कर देता है ।'[2]

'नई इमारत' का भी एक पात्र इसी प्रकार से सोचता है । उसका विचार है कि 'अहिंसा ही कांग्रेस की नीति रही है और रहेगी । . . . . जब तक गांधी जी देश के नेता हैं और कांग्रेस देश का नेतृत्व कर रही है तब तक हम हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकते । शान्तिपूर्ण प्रदर्शन, अहिंसात्मक सत्याग्रह और सिविलनाफरमानी सदा हमारे हथियार रहे हैं और रहेंगे ।'[3]

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने 'बयालीस' में अहिंसा का विवेचन करते हुए लिखा है कि 'ब्रह्म अभिभूत ब्रह्मांड का ज्ञान सत्य है और उसकी अनुभूति अहिंसा है । . . . जब ब्रह्म की सत्ता ब्रह्मांड के चर-अचर सभी वस्तुओं में उसी सत्यज्ञान के द्वारा अनुभव करने लगता है तब वह अहिंसावादी होता है ।'[4] 'महात्मा गांधी अहिंसा को मात्र वैयक्तिक गुण नहीं मानते थे । उसे वे एक सामाजिक गुण के रूप में स्वीकार करते थे । अन्य गुणों की भांति उसका भी विकास विश्व के संदर्भ में होना चाहिए ।'[5] 'दो पहलू' का सुरेन्द्र भी अहिंसा को विश्व के संदर्भ में देखता है । गांधी जी का 'एकमात्र उद्देश्य केवल भारत की स्वतंत्रता के लिए ही लड़ना नहीं है बल्कि वह है अहिंसात्मक रूप से

१- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी (इलाहाबाद:१९३९), पृ० २०

२- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवनी (संघर्ष), (बनारस : १९४१), पृ० ५६.

३- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नई इमारत (वाराणसी:१९६५), पृ० ६५-६६.

४- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस (कानपुर:लि० न०), पृ० २३२.

५- महात्मागांधी, ग्राम-स्वराज्य (अहमदाबाद : १९६३), पृ० ५२.

लड़ना । . . . . वह चाहते हैं कि संसार सत्य के नाम पर रक्त बहाना छोड़ दे । . . . . . भूखे भारत को तो सूखी रोटियां चाहिए । उन्हीं से उसके उदर की पूर्ति हो सकती है । यह अहिंसा से प्राप्त हो सकती है ।’[1]

अहिंसा की व्याख्या प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अपने एक अन्य उपन्यास में कनक के माध्यम से की है । चाहे व्यक्ति को कितना ही कष्ट मिले, उत्तेजना मिले परन्तु फिर भी ‘सत्य के संग्राम में शान्ति वह कवच है जिस पर पाशविक बल की तलवारें टूट जाया करती हैं । स्वयं सत्य के सिपाही का शान्ति धर्म है और अहिंसा उसका शस्त्र । . . . . जब तक सत्य का सिपाही अहिंसक नहीं होगा तब तक उसे बल प्राप्त नहीं होगा ।’[2] ‘चढ़ती धूप’ का रघुवीर जब अहिंसा की भूमि पर डगमगाने लगता है और हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा से देने पर उतर आता है तब जयनाथ कठोर शब्दों में उसे संबोधित करते हुए कहता है -- ‘गुलाम देश में हिंसा करना दमन और सरकारी अत्याचार को निमंत्रण देना है । हम सत्याग्रह करेंगे और विजयी होंगे ।’[3] ‘सच्ची अहिंसा वह है कि कमर में तलवार कसे हुए भी हम केवल इसलिए सिर झुका दें क्योंकि हमारे मन में बदले की भावना मर चुकी है ।’[4] क्योंकि गांधी जी कहते हैं कि ‘बुराई हमारे स्वार्थ में है और अपने पड़ोसी के प्रति उदारता के अभाव में है ।’[5]

गुरुदत्त ने अपने उपन्यास ‘स्वाराज्यदान’ में अहिंसा पर बल दिया है । बनारसी लोगों को समझाते हुए पूछता है कि ‘हिन्दुस्तान में हिंसा-मार्ग से सफलता प्राप्त करने की शक्ति भी है क्या ? इसके अतिरिक्त मैं तो स्वराज्य स्वराज्य ही नहीं समझता जो बल प्रयोग से प्राप्त हो ।’[6] ‘पथिक’ में भी कई स्थानों पर ‘अहिंसा’ की

१- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू (कलकत्ता : १९४०), पृ० १४०-४१.
२- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस के बाद (दिल्ली : सि० न०), पृ० २१२.
३- ‘अंचल,’ चढ़ती धूप (इलाहाबाद : १९५५), पृ० ३११.
४- दुर्गाशंकर मेहता, अनबुझी प्यास (इलाहाबाद : १९५०), पृ० २३८.
५- महात्मा गांधी, ग्राम-स्वराज्य, पृ० १४.
६- गुरुदत्त, स्वाराज्यदान (दिल्ली : १९४६), पृ०

व्याख्या उपन्यासकार गुरुदत्त ने की है। गोविन्दवल्लभ पंत राजनीतिक दृष्टि से अहिंसा पर विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि -- 'हिंसा पाशविकता है -- निश्चय है। परन्तु कब ? जब उसका ध्येय केवल एक व्यक्ति का स्वार्थ हो। एक पशुबल के विरोध एक संगठित राष्ट्र का विद्रोह हिंसा नहीं है। वही तो नैतिकता है।'[1] 'कचनार मेरा कोई' में वृन्दावन लाल वर्मा ने भी गांधीवादी स्वर में पात्र के माध्यम से कहलाया है कि 'हमारी सलाह है कि तुम हथियारों का प्रयोग मत करना। नुकसान उठाओगे। हमारे आन्दोलन को उससे ठेस लगेगी।'[2]

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का मार्कण्डेय दद्दुआ को अहिंसा का अर्थ समझाते हुए कहता है कि 'दद्दुआ, अहिंसा के माने हैं मानवता। बली वह है जो बड़ा से बड़ा कष्ट उठा सके, बिना उफ किए, हंसते हुए, जिसके पास आत्मा का बल है। प्रेम, दया, त्याग। दूसरों को उत्पीड़ित तो सभी करते हैं, लेकिन वास्तव में आदमी वह है जो दूसरों को सुख दे सके और दूसरों को दुखी बनाने के बजाय दूसरों के दुख को बंटा सके।'[3]

राजा-महाराजाओं की महफिल में भी अहिंसा पर विचार हुआ है। रामनाथ तिवारी नवाब साहब से पूछते हैं -- 'नवाब साहब, यह अहिंसा है क्या चीज ?' नवाब साहब ने गंभीरता से कहा, 'कुछ भी न हो। पर यह है कुछ जरूर। हम हथियारों की बात करते थे लोग साथ नहीं आये। पर यह अहिंसा। हिम्मत देखिये, लोग जानते हैं कि पिटेंगे फिर भी आगे बढ़ते हैं।'[4] भगवतीचरण वर्मा का भी एक पात्र कहता है कि 'मैं इन्साफ और नेकी को नहीं छोड़ सकता क्योंकि इन्साफ और नेकी महात्मा गांधी के साथ हैं और महात्मा गांधी के पास एक और ताकत है -- अहिंसा। मैं तो

१- गोविन्दवल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन (प्रयाग : २००७), पृ० २०३.

२- वृन्दावनलाल वर्मा, कचनार मेरा कोई (झांसी : १९७१), पृ० २२३.

३- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते (इलाहाबाद : २०११ सं०), पृ० १५३.

४- रांगेय राघव : सीधा-सादा रास्ता (इलाहाबाद : १९५५), पृ० ७५.

अहिंसा का मुरीद हूं ।`[१]

`अहिंसा` के दार्शनिक पक्ष के विवेचन के लिए कुछ मुख्य-मुख्य उपन्यासों को लिया गया था जिससे गांधी जी का यह मन्तव्य स्पष्ट हो सके कि `अपने को किसी ने द्वेष का कारण दिया तो भी उसका द्वेष न कर उस पर प्रेम करना चाहिए । उस पर रहम कर उसकी सेवा करना यही अहिंसा है ।`[२]

हृदय-परिवर्तन

गांधीवाद का द्वितीय महत्वपूर्ण अवयव मानव मन में विद्यमान मानव के प्रति प्रेम की भावना है । सत्य के आग्रह के लिए हृदय की पवित्रता अनिवार्य है । क्योंकि कलुषित-हृदय सत्य का सामना नहीं कर पाता है । सत्य का दर्शनार्थी हृदय है । जब उसमें सत्य की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है तब वह `स्व` और `पर` की भावना से ऊपर उठकर शत्रु को गले लगा लेता है । उसमें वह अपनापन अनुभव करने लगता है । शत्रु के प्रति मित्रता की भावना उत्पन्न हो जाना ही हृदय-परिवर्तन कहा गया है । महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक चिन्तन में शत्रु के हृदय-परिवर्तन को राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है । गांधी जी यह मानते थे कि `न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य` अर्थात् धन और सम्पत्ति शान्ति प्रदान नहीं कर सकते । शान्ति की प्राप्ति के लिए हृदय की पवित्रता ही एकमात्र अनिवार्य कारक है । `पूजा व्यक्ति की नहीं उसके गुणों की होती है ।`[३] गुण हृदय की वस्तु है । शत्रु के प्रति मन में घृणा न रखना, उसे अपने से भिन्न न समझना और किये गये अत्याचारों के बदले क्षमा-याचना करना हृदय-परिवर्तन का ही एक रूप है । हिन्दी-उपन्यासों में गांधीवाद के इस स्वरूप का सर्वप्रथम दर्शन हमें

१- भगवतीचरण वर्मा : भूले-बिसरे चित्र (दिल्ली : १९५९), पृ० ५८५.

२- महात्मा गांधी : अमृतवाणी (इलाहाबाद : १९५४), पृ० ३५.

३- यथोपरि - पृ० ८३.

अहिंसा का मुरीद हूं।'[1]

'अहिंसा' के दार्शनिक पक्ष के विवेचन के लिए कुछ मुख्य-मुख्य उपन्यासों को लिया गया था जिससे गांधी जी का यह मन्तव्य स्पष्ट हो सके कि 'अपने को किसी ने द्वेष का कारण दिया तो भी उसका द्वेष न कर उस पर प्रेम करना चाहिए। उस पर रहम कर उसकी सेवा करना यही अहिंसा है।'[2]

हृदय-परिवर्तन

गांधीवाद का द्वितीय महत्त्वपूर्ण अवयव मानव मन में विद्यमान मानव के प्रति प्रेम की भावना है। सत्य के आग्रह के लिए हृदय की पवित्रता अनिवार्य है। क्योंकि कलुषित-हृदय सत्य का सामना नहीं कर पाता है। सत्य का दर्शनार्थी हृदय है। जब उसमें सत्य की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है तब वह 'स्व' और 'पर' की भावना से ऊपर उठकर शत्रु को गले लगा लेता है। उसमें वह अपनापन अनुभव करने लगता है। शत्रु के प्रति मित्रता की भावना उत्पन्न हो जाना ही हृदय-परिवर्तन कहा गया है। महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक चिन्तन में शत्रु के हृदय-परिवर्तन को राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है। गांधी जी यह मानते थे कि 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य' अर्थात् धन और सम्पत्ति शान्ति प्रदान नहीं कर सकते। शान्ति की प्राप्ति के लिए हृदय की पवित्रता ही एकमात्र अनिवार्य कारक है। 'पूजा व्यक्ति की नहीं उसके गुणों की होती है।'[3] गुण हृदय की वस्तु है। शत्रु के प्रति मन में घृणा न रखना, उसे अपने से भिन्न न समझना और किये गये अत्याचारों के बदले क्षमा-याचना करना हृदय-परिवर्तन का ही एक रूप है। हिन्दी-उपन्यासों में गांधीवाद के इस स्वरूप का सर्वप्रथम दर्शन हमें

१- भगवतीचरण वर्मा : भूले-बिसरे चित्र (दिल्ली : १६५६), पृ० ५८५.

२- महात्मा गांधी : अमृतवाणी (इलाहाबाद : १६५४), पृ० ३५.

३- यथोपरि - पृ० ८३.

'रंगभूमि' में होते हैं। प्रेमचन्द का 'सूरदास' गांधीवाद की देन है। क्योंकि गांधीजी और टालस्टाय का इतना गहरा असर मुंशी जी के मन पर है कि जादू की छड़ी घुमाते ही सारे पढ़-लिखे लोगों का हृदय-परिवर्तन हो जाता है। उनकी प्रसुप्त आत्मा जाग्रत हो उठती है।'[1]

'रंगभूमि' का सूरदास जब अन्याय के आगे नहीं झुकता उसका सामना सच्चाई से करता है। ठोकरें खाता है, गिरता है परन्तु पुन: संभलकर उठता है। टूट जाता है परन्तु सत्य का आंचल नहीं छोड़ता। वह न दोषारोपणों की चिन्ता करता है और न भयभीत ही होता है। इसीलिए गैरों की मलिनता स्वत: पवित्रता के जल से प्रक्षालित हो जाती है। वह सूर से अपने द्वारा किये अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिए क्षमा मांगते हुए कहता है --

'सूरे, अब तक मैंने तुम्हारे साथ जो बुराई भलाई की, उसे माफ करो। आज से अगर तुम्हारे साथ कोई बुराई करूं, तो भगवान मुझसे समझें।'[2]

प्रेमचन्द का सूरदास तो गांधीवाद के कंचन से निर्मित जीवन्त प्रतिमा है। साकार रूप है। सामन्तवाद की साकार मूर्ति राजा साहब भी अन्त में सूर के आगे नत हो जाते हैं। सूर के सत्य की ज्योति से उनका सामन्तवादी-मद पिघल जाता है। वह सूर से क्षमायाचना करने लगते हैं। 'सूरदास, मैं तुमसे अपनी भूलों की क्षमा मांगने आया हूं। अगर मेरे वश की बात होती, तो मैं आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन से बदल लेता।'[3] महात्मा गांधी जी भी स्थापित स्वार्थों को हटा देने के सर्वदा पक्ष में थे परन्तु यह काम बलप्रयोग से न होकर हृदय-परिवर्तन से ही होना चाहिए'[4] यही

१- अमृतराय, प्रेमचंद कलम का सिपाही (इलाहाबाद : १९६२), पृ० २२२.

२- प्रेमचंद, रंगभूमि (इलाहाबाद : १९७१), पृ० ३९५.

३- यथोपरि, पृ० ५५३.

४- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी (नई दिल्ली : १९६१), पृ० ५६३.

उनकी दृढ़ मान्यता थी । `रंगभूमि` में सूरदास का सामना पूंजीपति वर्ग के प्रतीक जान सेवक से होता है । जिसमें एक ओर सूर भारतीय गरीब जनता का प्रतिनिधि है और दूसरी ओर मिस्टर जानसेवक ब्रिटिश साम्राज्य के धनी वर्ग का । अन्त में गांधीवादी सूर के आगे वह भी अपनी भूल स्वीकार कर लेता है । वह सूर से कहता है -- `मैंने तुम्हारा बड़ा अहित किया । इसके लिए मुझे क्षमा करना. . . . . मैं जीतकर भी दुखी हूं, तुम हारकर भी सुखी हो ।`[1]

गांधीवाद के हृदय-परिवर्तन को प्रेमचंद `काया कल्प` में भी चित्रित करना नहीं भूले । धन्ना की संगीन से पथभ्रष्ट गांधीवादी चक्रधर घायल हो जाता है । चक्रधर को धन्ना पहचान लेता है कि वह तो भगत (चक्रधर) है और अभी जीवित है । तब `उसको उसे इतनी खुशी हुई कि वह बन्दूक लेकर पीछे की ओर चला और उनके चरणों पर सिर रखकर रोने लगा ।`[2]

`गबन` भी गांधीवाद के इस आदर्श से अछूता नहीं है । जोहरा में आकस्मिक रूप से हृदय-परिवर्तन गांधीय-आस्था का ही प्रतीक है । `दिनेश के घर उसकी जालपा से भेंट होती है । जालपा का त्याग, सेवा और साधना, देखकर उस वेश्या का हृदय इतना प्रभावित हो जाता है कि वह अपने जीवन पर लज्जित हो जाती है और दोनों में बहनापा हो जाता है ।`[3] जालपा का प्रेममय व्यक्तित्व न केवल जोहरा को ही प्रभावित करता है अपितु रामनाथ भी उससे प्रभावित होकर झूठी गवाही देने से मुकर जाता है ।

इसी प्रकार `कर्मभूमि` में लाला समरकान्त सेठ धनीराम के साथ-साथ सुखदा की देश-सेवा तथा सलीम का पद-त्याग भी गांधीवादी हृदय-परिवर्तन के उदाहरण हैं ।

१- प्रेमचंद, रंगभूमि - पृ० ५५६.
२- वही, कायाकल्प (इलाहाबाद : १९३३), पृ० १५५.
३- वही, गबन (इलाहाबाद : १९६३), पृ० २२०.

सत्याग्रह के विरोधी लाला समरकान्त अन्त में स्वयं सत्याग्रही बन जाते हैं । सभी प्रकार के कट्टरपंथ का परित्याग कर 'वह थाली उठाकर सलीम के कम्बल पर आ बैठे । अपने विचार में आज उन्होंने अपने जीवन का सबसे महान त्याग किया । सारी सम्पत्ति दान देकर भी उनका हृदय गौरवान्वित न होता । सलीम ने चुटकी ली -- अब तो आप मुसलमान हो गये । सेठजी बोले -- मैं मुसलमान नहीं हुआ । तुम हिन्दू हो गये ।'[1]

ऋषभचरण जैन के 'भाई' और 'हरहाइनेस' में सिंधू और हिजहाइनेस का हृदय-परिवर्तन हो जाता है । 'भाई' का सिंधू भी अपने पापों का प्रायश्चित करता है । अपने अपराध की स्वीकृति अब साहस से स्पष्ट कहने के लिए मान जाता है । जिसका उसने घर उजाड़ा है उसे वह आबाद करना चाहता है । क्योंकि सत्य का आलोक उसे मिल जाता है । वह दुलभरे गंभीर स्वर में कहने लगता है --'दुर्गा मेरी बात सुनो.... तुम्हारा घर मैंने उजाड़ा है, मैं ही बसाऊँगा ।'[2]

हिजहाइनेस भी रियासत के मद में चूर होने के कारण हरहाइनेस को अनेकानेक प्रकार से दुख देता है । सताता है । वह दर-दर परेशान होकर राज्य से दूर निकल जाती है । हिजहाइनेस के प्रति उसके मन में भी घृणा है । परन्तु जब हिजहाइनेस की चेतना जाग्रत होती है तब वह उसकी खोज में निकलता है और दूर से उसे पहचान कर पुकारते हुए कहता है --'मैं आ गया फैनी, मैं तुम्हें लेने आया हूँ ।'[3] परन्तु 'हरहाइनेस कुछ क्षण तक निर्निमेष भाव से खड़ी रही और तब एक कदम आगे बढ़कर वह हिजहाइनेस के चरणों पर गिर पड़ी । घृणा का वह क्रोध, वह नफरत, गलतफहमियों का वह बवंडर जैसे एक बारगी उड़ गया ।'[4]

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि (इलाहाबाद : १९५२), पृ० ३४४.

२- ऋषभचरण जैन, भाई (लखनऊ : २००७ वि०), पृ० १४१.

३- वही - हरहाइनेस (दिल्ली : १९५२), पृ० १२७.

४- यथोपरि, पृ० १२७.

‘त्यागपत्र’ में जैनेन्द्र कुमार की ‘बुआ’ भी गांधीवादी भावों से ओत-प्रोत है । हिंसा में उसकी आस्था नहीं है । बापू की भाँति उसका दृष्टिकोण भी सृजनात्मक है । क्योंकि उसका कथन है -- ‘मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूँ, समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? . . . . समाज से अलग होकर उसकी मंगलकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ ।’[1] ‘त्यागपत्र’ की बुआ में उपन्यासकार ने ‘सो ऽहं एको ऽहं बहुस्याम’ अर्थात् व्यष्टिवाद में समष्टिवाद के द्वारा गांधीवाद की समाजोन्मुखी भावना का प्रतिपादन किया है ।

रियासती अत्याचारों से पीड़ित रूपा रियासत की अमानत-दिवाकर, माधवी और उसकी माँ का खून करने के लिए पीछा करती रहती है । क्योंकि रूपा के पति को रियासत के राजा ने सत्याग्रह में मारा था । उसी का बदला रूपा लेना चाहती है । परन्तु माँ, बेटा, बेटी तीनों ही रियासती जनता के साथ हैं । दिवाकर जनता का नेता है । जब रूपा कटार लेकर मारने के लिए सामने आ जाती है तब रानी कहती है ‘रूपा, ले यह कटार ले । हम तीन व्यक्ति हैं -- मैं, दिवाकर और माधवी । एक के बाद एक सबको मारकर तू अपना प्रतिशोध ले ले ।’[2] परन्तु रूपा का देवत्व जाग उठा उसने कटार फेंक दी तथा रानी के पैरों पर गिर पड़ी ।’[3]

‘मुक्ति के बंधन’ का खूंख्वार पात्र डाकू धनई भी कुमार की सहनशीलता, सरलता और उसकी सेवा से इतना प्रभावित हो जाता है कि वह कुमार से सेवा न कराकर उसकी स्वयं सेवा करने लगता है । कहाँ जेल में धनई सत्याग्रही कुमार से रोजाना पैर दबवाता था और अब कहाँ वह स्वयं दूसरे के पैर दाबता है । क्योंकि कुमार गांधी-विचारों से युक्त था । ‘पर’ की सेवा परमेश्वर की सेवा वह मानता था । इस व्यवहार से धनई

१- जैनेन्द्र कुमार, त्यागपत्र (दिल्ली : १९७०), पृ० ७३.

२- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० १३५.

३- यथोपरि, पृ० १३५.

में धीरे धीरे परिवर्तन होता है । कुमार को जब पैर दबाने से मना करते हुए वह कहता है --"नहीं कुमार तुम थके हुए हो दिन भर के काम से, सो जाओ । आज मैं तुम्हारे पैर दाबूँगा ।"[1] कुमार सोचने लगा "आज उसकी मनोकामना पूरी हुई क्योंकि एक कठोर मनुष्य के हृदय की खिड़कियाँ वह खोल सका है ।"[2]

दिलीप का साथी जब बाढ़पीड़ितों के लिए रखे गये रुपयों की अटैची को उठा लेता है तब दिलीप सोते हुए भी उसे रंगे हाथों पकड़ लेता है और उसे अंगूठी तथा अन्य सामान को उठा ले जाने के लिए कहता है । जिससे वह दो चार महीने तो काट सके । परन्तु वह साथी दिलीप की इस महानता से कि उस चोरी का वह बुरा नहीं मना रहा है । "तब देखते ही देखते उस युवक ने मेरे (दिलीप के) पैर पकड़ लिए उसकी आँखें डब-डबा आईं और युवक बोला --"आप देवता हैं या महात्मा, यह मैं नहीं जानता . . . . . पर अब आप मुझे क्षमा कर दें । मैं नहीं जानता था कि बुराई का बदला भलाई से चुकाने में इतना जादू है ।"[3]

पात्रों के रूप में गांधीवाद की अभिव्यक्ति

उपन्यासकार ने प्राय: अपने उपन्यासों में गांधी जी को आदर्श मानकर उनका छायांकन पात्र के रूप में, उनकी वेष-भूषा के रूप में, जीवन-चर्या के रूप में तथा अन्य नाना-गांधीय-कार्यकलापों तथा विचारों के रूप में चित्रित किया है ।

'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर भी गांधी जी की छाया है । गांधी जी की भाँति वह भी रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा करता है ।[4] कुली की प्रतीक्षा में न रहकर अपना सामान

१- गोविन्दवल्लभ पंत, मुक्ति के बंधन पृ० २५५.

२- यथोपरि - पृ०

३- भगवती प्रसाद वाजपेयी - पतवार (दिल्ली : १९५२), पृ० ८०.

४- मो० क० गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (अहमदाबाद: १९७०), पृ० ३३३.

स्वावलम्बन की गांधीय-भावना के अनुसार स्वयं उठाकर चल देता है। प्रेमचंद ने उसी गांधीय-भाव का चित्रांकन इस प्रकार किया है -- ज्ञानशंकर, "गाड़ी आते ही पहले और दूसरे दर्जे की गाड़ियों में फांकने लगे किन्तु प्रेमशंकर इन कमरों में न थे। तीसरे दर्जे की सिर्फ दो गाड़ियां थीं वह इन्हीं गाड़ियों के कमरे में बैठे हुए थे।. . . . ज्ञानशंकर अभी तक कुलियों को पुकार ही रहे थे कि प्रेमशंकर ने अपना सब सामान उठा लिया और बाहर चले।"[१]

गांधी जी की तरह 'रंगभूमि' का सूरदास भी कर्तव्य की भावना को प्रमुखता देता है। उसमें गांधी जी की ही सी दृढ़ता है। वह सत्य के 'रन' से मुंह नहीं मोड़ता। सबको जीवन-संघर्ष की प्रेरणा देता हुआ वह गाता फिरता है --

"भई क्यों रन से मुंह मोड़ें ?

वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना

- - - -

क्यों जीत की तुमको इच्छा, क्यों हार की तुमको चिन्ता,

- - - - -

भई क्यों रन से मुंह मोड़ें ?"[२]

सूर में गांधी जी की ही नम्रता है। वह हार और जीत की चिन्ता न करके शुद्ध धार्मिक नम्रता से शत्रु के प्रति भी विनत होकर कहता है -- "भैया, अगर हमने खेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो या कोई अनुचित व्यौहार किया हो, तो हमें माफ करना। . . . . मेरा काम तो लड़ना है और वह भी धरम की लड़ाई लड़ना। अगर एक साहब दगा भी करे तो मैं उनसे दगा न करूंगा।"[३] सूर के इन शब्दों में गांधीवाद की स्थिति

१- प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम (इलाहाबाद : ति० न०), पृ० ७६.

२- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० २१८.

३- यथोपरि, पृ० २४२.

टपक पड़ती है। यही नहीं गांधी जी की तरह वह शरणागत को आश्रय देता है। दीन-दुखी के लिए उसकी झोंपड़ी का द्वार सर्वदा खुला रहता है। 'सुभागी' जब उससे शरण मांगती है तब सूरदास सुभागी को अपने विरोधी भैरों की चिन्ता न करते हुए शरण भी देता है।'[1]

'सूरदास' गांधी जी की तरह पूंजीवादी 'औद्योगीकरण का विरोध'[2] करते हुए कहता है कि 'कारखाने का खुलना ही हमारे ऊपर विपत्ति का आना है।'[3] यही नहीं प्रेमचंद गांधीवाद के समर्थन के लिए और औद्योगिकरण के विरोध हेतु नायक राम से गवाह के रूप में कहलाते भी हैं कि --'दीनबंधु सूरदास बहुत पक्की बात कहता है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आपके इकबाल से सभी जगह घूम आया हूं। जजमान लोग बुलाते रहते हैं। जहां जहां कलकारखाने हैं, वहां यही हाल देखा है।'[4]

औद्योगीकरण के बारे में गांधी जी का मन्तव्य था कि 'बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि ज्यों-ज्यों प्रति स्पर्धा और बाजार की समस्याएं खड़ी होंगी त्यों-त्यों गांवों का प्रगट या अप्रगट शोषण होगा।'[5]

शत्रु के प्रति मित्रभाव भी गांधी-दर्शन की विशेषता है। सूर में कूट-कूट कर प्रेमचंद ने भरदी है। जिनके लिए 'सूर' लड़ता है वे ही उसकी टांग खींच कर गिरा देते हैं।[6] सूर के दांत टूट जाते हैं। ओंठ फट जाते हैं। मूर्च्छा आ जाती है। फिर भी यह पूछने पर कि 'किसी ने मारा है।' सूर का उत्तर 'नहीं भैया, ठोकर खाकर गिर

१- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० १२५.

२- नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, (इलाहाबाद : २०१६ सं०),पृ०८५.

३- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० २४.

४- यथोपरि, पृ० ८८.

५- महात्मा गांधी, मेरे स्वप्नों का भारत (अहमदाबाद : १९६०), पृ० ३४.

६- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० ४६४.

पड़ा था ।'[1] 'आत्म-पीड़न' 'समान-दृष्टि' जो गांधीवाद के तन्तु हैं, प्रेमचंद ने सूर के एक-एक कथन में पिरो दिये हैं । मरणासन्न सूर अपने विरोधी राजासाहब के आगमन पर उठने की चेष्टा करता है । विरोधी के प्रति प्रेम की भावना व्यक्त करते हुए कहता है --'राजा साहब आये हैं । उनका इतना आदर भी न करूं ?'[2] इसीलिए ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का पुतला क्लार्क गांधीवादी सूर की प्रशंसा करते हुए राजासाहब से बरबस कह उठता है --'हमें आप जैसे मनुष्य से भय नहीं । भय ऐसे ही मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन कर सकते हैं ।'[3] मिस्टर क्लार्क के इन शब्दों में आंग्ल साम्राज्यवाद की मनोवृत्ति का स्पष्ट आभास है । अंग्रेज गांधी जी के नेतृत्व से बेखबर न थे । गांधी जी असहयोग आन्दोलन के द्वारा जो आग उगल रहे थे उससे ब्रिटिश साम्राज्य का चक्का बंद पड़ गया था । जान सेवक भी सूर को 'सत्यप्रिय आदमी' कहता है । क्योंकि गांधी जी ने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य-संग्राम को कभी भी हार या जीत के दांव पर नहीं चलाया । एक खिलाड़ी कीभावना से हमेशा अपना कर्तव्य करते रहे । सूरदास भी 'जीता, तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो प्रसन्नचित्त रहा. . . . . खेल में सदैव नीति का पालन किया । कभी धांधली नहीं की, कभी द्वन्द्वी पर छिपकर चोट नहीं की ।'[4] वह 'एक सच्चा सत्याग्रही है ।'[5] इसीलिए उसकी प्रशंसा केवल उसके मित्र ही नहीं करते अपितु उसके विरोधी भी उसकी प्रशंसा करते हैं । मि० क्लार्क उसे 'असाधारण पुरुष' कहता है । वह साधु भी है और दार्शनिक भी ।'[6] गांधी जी को अंग्रेज 'नंगेहु फकीर'[7] कहा

१- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० ४६४.

२- यथोपरि, पृ० ५५३.

३- यथोपरि, पृ० ५६०.

४- यथोपरि, पृ० ५५६.

५- इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन (दिल्ली : ति० न०), पृ० ८६.

६- प्रेमचंद - रंगभूमि, पृ० २३१.

७- डी० जी० तेन्दुलकर, महात्मा (बम्बई : १९५१), खण्ड दो, पृ० ७९.

करते थे । उसी भाव को प्रेमचन्द ने यहां ग्रहण किया है ।

'कायाकल्प' का मुख्य पात्र चक्रधर भी गांधीवादी पात्र है । उसमें भी बापू के अनेक गुणों का छायाभास देखा जा सकता है । चक्रधर आन्दोलनकारी-उपद्रवियों को उसी प्रकार से समझाता है जिस प्रकार से अहिंसावादी बापू प्राय: समझाया करते थे । चक्रधर कहता है --'अगर तुम्हें खून की प्यास है, तो मैं हाजिर हूं । मेरी लाश को पैरों से कुचल कर तुम आगे बढ़ सकते हो ।'[1] वह हमेशा हिंसा का विरोध करता है । 'अदावत की सजा' उसे भी मिलती है जैसी गांधी जी को मिला करती थी । दमन की चक्की में पिसने वाले मजदूरों के इन शब्दों से चक्रधर का गांधीवादी रूप और उज्ज्वल हो जाता है --

मजदूर --'भैया, तुम शान्त शान्त क्या करते हो, लेकिन उसका फल क्या होता है । हमें जो चाहता है, मारता है, जो चाहता है, पीसता है । . . . . शान्त रहने से और भी हमारी दुर्गत होती है । हमें शान्त रहना मत सिखाओ ।'[2] शान्ति का पुजारी है चक्रधर ठीक गांधी जी की ही भांति ।

अमरकांत को भी प्रेमचंद ने गांधीवादी सांचे में ढाला है । वह राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत है । वह 'वैधानिक रीति से स्वराज्य प्राप्त करने का पक्षपाती है ।'[3] रोजाना रोज दो घण्टे बैठकर नियमानुसार कोठरी में जाकर 'चरखा चलाना,'[4] खादी का गट्ठा लादे गली-गली 'खादी बेचना,'[5] 'झाड़ू लगाना,'[6] अपनी थाली स्वयं मांजना,'[7] 'झोपड़ी में निवास करना व हरिजन बच्चों के लिए 'पाठशाला खोलना'[8] आदि कार्य उसके गांधी जी के ही कार्य हैं । गांधी जी अपने जीवन में यह सब स्वयं करते थे । अमर-

---

१- प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० १२१.

२- यथोपरि, पृ० १२२.

३- ल० शा० पाण्डेय, 'अमरकान्त' सम्पा०, धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-दो, पृ० १७.

४-८. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० क्रमश: १२, १२२, १५४, १५८, १५९,

कान्त गांधी जी की तरह छुआछूत नहीं मानता । उसका कथन है कि -- `जो सच्चा है वह चमार भी हो तो आदर के योग्य है, जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो, तो आदर के योग्य नहीं ।`[१] राजेश्वर गुरु ने डा० मदान के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि `कर्मभूमि` के नायक अमरकान्त की प्रेरणा के स्रोत पंडित पन्त जी हैं ।[२] परन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का लेखक उक्त मान्यता से सहमत नहीं है क्योंकि गांधी जी में विद्यमान सभी गुण अमरकान्त में पाये जाते हैं । प्रेमचन्द स्वयं भी गांधी जी की राजनीतिक गतिविधि से प्रभावित थे ।[३] पंडित पन्त के `राजनीतिक जीवन` का अध्ययन करने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि पंडित पन्त और अमरकान्त में कोई साम्य नहीं है । क्योंकि पंडित पन्त स्वयं भी बापू के ही अनुयायी थे । पंडित पन्त के जीवनी लेखकों[४] ने उनके राजनीतिक जीवन का ऐसा उल्लेख कहीं नहीं किया है जिसका स्पष्ट छायांकन अमरकान्त से साम्य रखता हो । यद्यपि पंडित पन्त का योगदान भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के क्षेत्र में विशेष महत्त्वपूर्ण है । साधारणतया अमरकान्त को किसी भी गांधीवादी नेता का छायाभास कोई कहना चाहे तो सहज ही कह सकता है ।

श्रीनाथसिंह ने `जागरण` में भी अनेक गांधीवादी पात्रों की रचना की है । सर कृपाशंकर तो इंग्लैंड से शिक्षा पाकर भारतीय गांवों में रहने लगते हैं। क्योंकि उनका कथन है -- `कष्ट की कहानी ही मैंने सुनी थी । स्वयं कष्ट का अनुभव नहीं किया था । . . . . . आपने मुझे उन कष्टों का अनुभव कराया जो इस देश की जनता के कष्ट हैं । इन्हीं कष्टों की बदौलत आज मैं अपने देशवासियों के बहुत निकट आ गया हूँ । उनमें मिल गया हूँ ।`[५]

१- प्रेमचन्द, कर्मभूमि , पृ० १४२.

२- राजेश्वर गुरु, प्रेमचन्द एक अध्ययन (भोपाल : १९५८), पृ० ८८

३- द्रष्टव्य है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का तृतीय अध्याय.

४- श्यामसुन्दर एण्ड सावित्री श्याम, पालिटिकल लाइफ आव पंडित गोविन्दवल्लभ पंत (लखनऊ : १९६०).

५- श्रीनाथ सिंह, `जागरण` (लखनऊ : २०१२ वि०), पृ० २१५.

रुक्मिणी भी गांधीवाद पर पूरी आस्था रखती है। वह सेठजी से कहती है -- `गोली का जवाब गोली से देना हमारा धर्म नहीं है। साहसपूर्वक गोलियों की बौछार को सीने पर लेने में ही हमारी जीत है।`[1] जेल की जघन्य यातनाओं से पीड़ित संग्रामसिंह को समझाते हुए सर कृपाशंकर कहता है --`संग्रामसिंह हताश मत हो जाओ। शरीर पर सब प्रकार के कष्टों को प्रसन्नता पूर्वक झेलने का ही नाम तप है।`[2] क्योंकि `गांधीवाद दूसरे को कष्ट देने की अपेक्षा अपने को कष्ट देना सिखाता है।`[3]

`पतवार` का दिलीप भी गांधी जी का अनुयायी है। वह भी पीड़ित मानवता का चीत्कार सुनने के लिए बस्तियों का चक्कर लगाता है।[4] अनन्त गोपाल शेवड़े के `ज्वालामुखी` का अभय नामक पात्र भी `गांधी जी का कट्टर भक्त बन गया। सेवाग्राम नजदीक था। इसलिए वहां भी साल में एक आध बार हो आता। . . . . . कालेज के भाषणों में, वाद-विवादों में, लेखों में वह गांधी जी का अहिंसक दृष्टिकोण ही पेश करता। `हरिजन` का वह नियमित पाठक था और गांधी जी के लेखों का एक-एक शब्द पढ़ता था।`[5] `निशिकान्त` में विष्णु प्रभाकर ने निशिकान्त को पूर्णतः गांधीवादी पात्र चित्रित किया है। निशिकान्त प्रतिज्ञा करता है कि (१) खद्दर पहनूंगा (२) अछूतों को अपने समान मानूंगा (३) राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा करूंगा (४) हिन्दू-मुस्लिम एकता का सेवाकाम करूंगा।[6] वह सरकारी नौकर है परन्तु वह उस गश्ती-चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर देता है जिसमें `सत्याग्रह करने वालों से कोई संबंध न रखो` कहा जाता है। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थक भी है। वह कहता है --

---

१- श्रीनाथसिंह - जागरण , पृ० १७६.

२- यथोपरि, पृ० १९८.

३- गुलाबराय, मेरे निबंध (आगरा : १९५५), पृ० १७३.

४- भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पतवार, पृ० ११०.

५- अनन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी (प्रयाग : १९५६), पृ० ४६.

६- विष्णुप्रभाकर, निशिकान्त (दिल्ली : १९५८), पृ० ४१.

"मैं हिन्दू हूं, परन्तु उससे पहले मनुष्य हूं।"[1]

यज्ञदत्त शर्मा ने भी 'दो पहलू' में गांधी जी के अनुयायी के रूप में गांधीवादी पात्र सुरेन्द्र की कल्पना की है। अपना परिचय वह इस प्रकार देता है -- "मैं महात्मा गांधी का शिष्य हूं। उन्हीं का अनुयायी हूं।. . . . यह उन्हीं की शक्ति का अंश है जो मैं इतनी यातनाओं को हंसकर सहन कर लेता हूं।"[2]

नागार्जुन ने भी 'बलचनमा' में बलचनमा नामक पात्र के मुंह से गांधीवादी-पात्र की सजीवता का वर्णन कराया है। वह कहता है --"मैंने देखा, मालिक बहुत बदल गये थे। सुबह-शाम गांधी जी का भजन गाते थे। जेल ही से गीता की एक छोटी पोथी ले आये थे। ऊपर आते ही दिन एक चरखा खरीद लाए। अरे भैया, वही चरखा छोटे बक्स में बंद रहता। खाना-पीना भी उनका बदल गया था। मसाला मिरचाई कुछ नहीं। तरकारी उबाल कर खाते थे।"[3]

'मुक्ति के बंधन' के विशालसिंह पक्के गांधीवादी हैं। गांधी जी के आन्दोलन में वह भाग लेते हैं। जनता को सत्याग्रह के लिए जगाते हैं। अपने भाषण में वह गांधी जी की विचारधारा अहिंसा का प्रचार करते हुए कहते हैं --

"हमारा व्यक्तिगत न किसी से द्वेष है, न किसी से लड़ाई। हम सैनिक हैं तो अहिंसा के। कोई हमसे शत्रुता साध नहीं सकता हम सत्य के पुजारी हैं।"[4]

गांधी, गांधीवाद और उससे प्रभावित पात्रों की अन्विति उपन्यासकारों ने अपने-अपने ढंग से की है। गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित रचित उपन्यासों में तो गांधीवादी पात्रों के ही चारों ओर उपन्यास की कथा-वस्तु चक्कर लगाती है।

१- विष्णुप्रभाकर, निशिकान्त, पृ० ११७.
२- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० ८८.
३- नागार्जुन, बलचनमा (इलाहाबाद : १९५९), पृ० ६५.
४- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० १०४.

राष्ट्रीय नेताओं के रूप में कुछ अन्य प्रमुख पात्रों की कल्पना

प्रेमशंकर, सूरदास, चक्रधर व अमरकान्त आदि के अतिरिक्त उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन के संदर्भ में कुछ ऐसे पात्रों की भी कल्पना की है जो किसी न किसी भांति उस आन्दोलन से संबंधित हैं। कुछ प्रमुख पात्रों का छायांकन प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं से ग्रहण किया गया है। मिस्टर जान सेवक (रंगभूमि) 'मरणासन्न पूंजीवाद के वर्ग का प्रतिनिधि है'[1] और मिस्टर क्लार्क को ब्रिटिशसाम्राज्यवाद का भारतीय नौकरशाही का एजेन्ट कहा जा सकता है। विनयसिंह (रंगभूमि) का धूमिल छायाभास जवाहर लाल नेहरू से ग्रहण किया गया लगता है। क्योंकि नेहरू जी भारतीय क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखते थे। करांची-कांग्रेस में उन्होंने कहा था -- 'हम सबके सब इतने असहाय हो गये हैं कि हम अपने प्यारों (भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों) को भी न बचा सके। . . . . जब कभी भी इंग्लैंड हमसे सुलह की बातचीत करेगा तब ही हमारे और इंग्लैंड के बीच में सरदार भगतसिंह आदि की लाशें दिखाई देंगी।'[2]

जवाहरलाल नेहरू भी 'नाभा स्टेट' में बंदी बना लिए गये थे।[3] विनयसिंह भी सम्पन्न घर का नवयुवक नेहरू जी की तरह है। विनयसिंह भी अपने घर से दूर एक रियासत में जन-आन्दोलन का संचालन करता है। देहात के लोग उनके इतने भक्त हो जाते हैं कि ज्यों ही वह किसी गांव में पहुंचता है सम्पूर्णग्राम उनके दर्शनार्थ एकत्र हो जाता है।[4] विनय की सहानुभूति सोफिया जैसी 'बोल्शेविक एजेन्ट' के साथ सर्वदा रहती है। उसका चरित्र रंगभूमि' के उत्तरार्द्ध में क्रान्तिकारी के रूप में उभर कर सामने आता है। नेहरू जी व्यक्तिगत रूप से कभी भी क्रान्तिकारियों के विरोधी नहीं रहे। केवल देश-हित के कारण वे उस मार्ग को उचित नहीं मानते थे। उनका कहना है --

---

१- कोमल कोठारी, प्रेमचंद के पात्र (जोधपुर : १९५७), पृ० ११६.

२- जीतमल लुणियां, करांची कांग्रेस (अजमेर : १९३१), पृ० २९.

३- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी - द्रष्टव्य है शीर्षक - नाभा का नाटक.

४- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० १८.

"मैं साफ कहना चाहता हूं कि मुझे ऐसे मार्ग का अवलम्बन किए जाने पर लज्जा नहीं होती लेकिन हिंसा का मार्ग अवलम्बन करने से देश का सर्वोत्कृष्ट हित नहीं हो सकता।"[1]

जब विनयसिंह रियासत से छूट कर वापस जाने लगता है तब रियासत-नरेश का कहना है --"इस थोड़े से समय में आपने जो रियासत का कल्याण किया है उसके लिए आपका कृतज्ञ हूं। मुझे खूब मालूम है आप निरपराध हैं।"[2]

श्रीमती ऐनीबेसेन्ट का योगदान राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन में स्वर्णाक्षरों में उल्लिखित है। सोफिया नामक पात्र के निर्माण में प्रेमचन्द ने यह माना है कि "सोफिया के चरित्र में ऐनीबेसेन्ट की छाया है।"[3] उपन्यासकार की कल्पना में "छाया" विद्यमान रही हो परन्तु उसका निर्वाह उपन्यासकार कर नहीं पाया है। प्रेमचंद के उपर्युक्त कथन से पाठकों के मन में श्रीमती ऐनीबेसेन्ट के चरित्र के बारे में सोफिया के चरित्र से भ्रम उत्पन्न हो सकता है। श्रीमती बेसेन्ट की "आत्मकथा"[4] की संगति कहीं भी सोफिया से मेल नहीं खाती है। जहां तक सोफिया का भारत की बौद्धिकता, उसकी प्राचीनता और धार्मिकता के प्रति लगाव का प्रश्न है वहीं तक ऐनीबेसेन्ट की छाया "रंगभूमि" में प्रेमचंद ग्रहण कर पाये हैं। वह भी बहुत स्पष्ट नहीं है। श्रीमती ऐनीबेसेन्ट एक विदेशी महिला थी। जब कि सोफिया भारतीय ईसाई महिला है। वह "किसी दूसरे देश में जाकर भारत का आर्तनाद"[5] सुनाना चाहती है जबकि श्रीमती बेसेन्ट स्वयं भारत में आकर भारत का आर्तनाद सुनना चाहती थी। जहां तक धार्मिकता का प्रश्न है वह प्रसंग ऐनीबेसेन्ट से ग्रहण किया हुआ माना जा सकता है। सोफिया कहती है --

---

१- अभ्युदय, भगतसिंह अंक (प्रयाग : १९३१), पृ० २७.

२- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० २१२.

३- अमृतराय, प्रेमचंद कलम का सिपाही, पृ० ३४२.

४- द्रष्टव्य है -- ऐनीबेसेन्ट, आटोबायोग्राफी (लन्दन : १९०८), तृतीय संस्करण

५- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० ३८.

`धर्म का त्याग करना मेरी क्षमता से बाहर है। आत्मा के लिए मैं संसार के सारे दुख झेलने को तैयार हूं।`[1] भारतीय आध्यात्मिकता के प्रति दोनों के लगाव में साम्य है। क्योंकि `धार्मिक-विषयों में वह अपनी विवेक-बुद्धि के सिवा और किसी के आदेशों को नहीं मानती।`[2] वह हिन्दू-धर्म की कायल हो जाती है।[3] बौद्ध, जैन-ग्रंथों के अध्ययन में रुचि लेती है।`[4] इसके अतिरिक्त सोफिया और श्रीमती एनीबेसेन्ट का साम्य `रंगभूमि` में ढूंढना व्यर्थ है।

`पूरब और पश्चिम` की मीमी नामक नारी पात्र का व्यक्तित्व मदाम ब्लावात्स्की के जीवन से प्रभावित है। जिसके पीछे राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का निजी सच्चा अनुभव है।[5] राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में मीमी भविष्यवाणी करते हुए कहती है -- `मैं कहे देती हूं कि गोरों का यह गरूर चूर-चूर होकर रहेगा एक दिन. . . । यह आग एकबारगी बुझी हुई मत समझो, आज दबी हुई जो दीखे. . . . और हवा पलटने में कैसी देर भी नहीं।`[6] मीमी भी मदाम ब्लावात्स्की की तरह अन्तर्देशीय सार्वभौम महिला है। उसका कथन है -- `मैं किसी देश की नहीं हूं -- किसी `रेस` की नहीं, किसी खास परिवार की नहीं -- हर किसी की हूं।`[7]

पंडित जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक जीवन का अंकन वर्णनात्मक शैली में अनेक उपन्यासों -- `कृपा जीवा`, `सीधा-सादा रास्ता`, `भूले-बिसरे चित्र`, `स्वराज्य दान`, `गांधी टोपी` तथा `धर्मपुत्र` आदि में किया गया है। इसी प्रकार डाक्टर राजेन्द्र

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ३४.

२- यथोपरि, पृ० ३२.

३- यथोपरि, पृ० ६१.

४- यथोपरि, पृ० ७४.

५- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पूरब और पश्चिम (आरा : १९५१), भूमिका पृ० २.

६- यथोपरि, पृ० १४४-४५.

७- यथोपरि, पृ० १३८.

प्रसाद का `मैला आँचल` में, `बलचनमा` तथा इन्दुमती में लोकमान्य तिलक का, `कुली-घाट` में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित का, `पूरब और पश्चिम` तथा 'शेष-अशेष' में महायोगी अरविन्दों का, विवेकानंद का `शेष-अशेष` में, `झूठा सच` में `कायदे आजम` जिन्ना का, `बलिदान` में पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त का, प्रासंगिक वर्णन किया गया है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के चरित्र का उल्लेख `संक्रान्ति`, `इन्दुमती`, तथा `धर्मपुत्र` में मिलता है।

`अगस्त क्रान्ति` के दिनों में देश के सभी बड़े-बड़े नेताओं को जेलों में बंद कर दिया गया था। जिनमें अनेक समाजवादी नेता भी थे। उन लोगों के साथ श्री जयप्रकाश नारायण भी जेलमें रखे गये थे। परन्तु वह किसी तरह जेल से भाग गये थे।[1] `नई इमारत` का पात्र महमूद भी श्री जयप्रकाशनारायण की तरह जेल से सन् १९४२ की अगस्त-क्रान्ति में भाग जाता है। उस घटना का चित्रण करते हुए एक पुलिस वाला मुकुन्द से कहता है --`रात तार आया है। महमूद जेल से निकल भागा है। सरकार मुकदमा चलाने की पूरी तैयारी किये बैठी है। पर मुजरिम सबकी आँखों में धूल झोंककर उड़ गया। जेलर और वहां के वार्डरों का जो हाल होगा वह भगवान जाने।. . . . इतनी बड़ी सरकार को बेवकूफ बनाकर बाहर निकल भागना।`[2]

उपर्युक्त साम्य के अतिरिक्त श्री जयप्रकाश नारायण ने भूमिगत होकर पुन: गिरफ्तारी से बचते हुए जनता के नाम `अपीलें`[3] जारी की थीं। उनका भी यथार्थ रूप में शायाकिन `अंचल` ने किया है। यथा --

---

1. "One morning the people woke to find that Jaya Prakash with four other companions had escaped from prison. This was one of the greatest sensation of 1942 Revolution."

   Jaya Prakash Narayana, Towards Struggle, (ed) Yusuf Meherally (Bombay: 1946), P. 11.

2. `अंचल`, नई इमारत, पृ० २१६.

3. Jaya Prakash Narayana, Op. Cit., PP. 21-22.

'उसने सबसे पहले विद्यार्थियों के नाम अपील निकाली और उन्हें कर्तव्य की बलि-वेदी सूनी छोड़ विमुख हो जाने की लज्जा देते हुए फिर आगे बढ़कर रक्तदान के लिए ललकार सुनाई। उसने इसी तरह की एक और अपील पुलिस के नाम, सरकारी कर्मचारियों के नाम निकाली।'[1]

'संक्रान्ति' में भी श्री जयप्रकाशनारायणजी के राजनैतिक कार्य का वर्णन किया गया है।[2]

गांधीवाद की व्याख्यात्मक उद्भावना

प्रेमचन्द ने राजनीतिक उपन्यास-त्रयी -- 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' की संरचना महात्मा गांधी द्वारा चलाये गए आन्दोलन को चित्रित करने के उद्देश्य से ही की थी। इन उपर्युक्त उपन्यासों में भी गांधीवाद की परिभाषा खोजी जा सकती है। परन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबंध के कलेवर के आकार का ध्यान रखते हुए इन उपन्यासों के गांधीवादी-व्याख्यात्मक विवेचना को प्रकारान्तर से अन्य संदर्भों में किसी न किसी रूप में व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। यहां प्रेमचंद के अतिरिक्त अन्य उपन्यासकारों द्वारा अभिव्यक्त गांधीवाद के पारिभाषिक चित्रण पर ही विचार होगा।

'जागरण' के रचनाकार श्रीनाथसिंह ने पात्रों के आपसी प्रश्नोत्तर द्वारा 'गांधीवाद' को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। गांधीवादी भावना पर जिज्ञासा प्रकट करते हुए एक जमादार सर कृपाशंकर से पूछता है --'आपने कहा था, दूसरों को मारना नहीं, दूसरों के लिए कट मरना ही क्षत्रियत्व है।'

'बेशक'।

'सिर पर दुश्मन खड़ा हो, तो क्या उसे न मारें?'

'मैं तो यही कहूंगा कि नहीं।'

१- 'अंचल', नई इमारत, पृ० २३८.

२- 'भिक्षु', संक्रान्ति (आगरा : १९५१), पृ० १८४.

"घर पर लूट रहा हो, मां-बहन की इज्जत बिगाड़ रहा हो, तब भी चुप रहें ?"

"उसे प्रत्येक अवस्था में प्रेम से समझाना चाहिए । हां जब इज्जत बचने की और सूरत न हो तो उसका मुकाबिला करना चाहिए ।"[1]

गांधी जी दूसरे का रक्त बहाकर स्वतंत्रता लेने के इच्छुक न थे । वह सत्याग्रह की तलवार को ही अपना अस्त्र मानते थे । "सत्याग्रह" का रचनाकार गांधी-दर्शन पर अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहता है --"देखो" गांधी जी ने कहा, "संसार के सभी युद्धों से यह सत्याग्रह युद्ध कठिन है । तलवार का बदला तलवार से देकर दुश्मन को मार डालना या बन्दूक हाथ में होते हुए युद्ध-क्षेत्र में बन्दूक की गोली से मर जाना बहुत आसान है । पर शारीरिक प्रतिकार करने में कुछ भी समर्थ होते हुए जड़ पदार्थ की तरह मान, अपमान, मार-गाली सहना बड़ा कठिन है । पर याद रखिये सहनशीलता में ही हमारी जीत है, धैर्य, क्षमा और त्याग में ही हमारी सुर्ख-रुई है और उसके विपरीत क्रोध आवेश या प्रतिहिंसा ही हमारी सब से बड़ी हार है ।"[2] गांधी जी ने ऐसा ही भाव साम्य "हिन्द-स्वराज्य" में अभिव्यक्त किया है । वह कहते हैं --"सत्याग्रह ऐसी तलवार है जिसके दोनों ओर धार है । . . . उसे जो चलाता है और जिस पर वह चलाई जाती है वे दोनों सुखी होते हैं । वह खून नहीं निकालती लेकिन उससे भी बड़ा परिणाम ला सकती है ।"[3]

"कल्याणी" में भी गांधीवादी दर्शन की व्याख्या करने का प्रयत्न मिलता है । उपन्यासकार कल्याणी के माध्यम से कहता है --"जो सूखा है, हृदय के रससे हरा-भरा नहीं है, वह गांधी का नहीं है । गांधी की तपस्या मुस्कराती है । भिज की ओर ही वह दुर्दम

१- श्रीनाथ सिंह, जागरण, पृ० १६६.

२- ऋषभचरण जैन, सत्याग्रह (दिल्ली : १९५३), पृ० ५२.

३- महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज्य (अहमदाबाद : १९५८), पृ० ६७.

है, शेष सब और वह निमग्न है । प्रीति की मुस्कराहट जहाँ नहीं वैसी धर्म की तपस्या गाँधी की नहीं ।'[1] 'जयवर्द्धन' में भी गाँधी जी के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा है कि -- 'हिंसा को अधिक हिंसा से हराने की सोचना और उसे औचित्य बढ़ाने का साधन देना ही है । हिंसा की हार वही होगी जो अहिंसा से होगी । घृणा को व क्रोध को प्यार से और नम्रता से ही जीता जायेगा ।'[2]

महात्मा गाँधी जी सदैव सादा जीवन उच्च विचार को महत्व देते थे ।[3] देश की स्वाधीनता से पहले वह व्यक्ति की आत्मा की स्वतंत्रता और पवित्रता को अनिवार्य मानते थे । स्वातंत्र्य-संघर्ष भी उनके लिए अध्यात्म का एक साधन था । इसी भाव को राधिकारमण प्रसाद सिंह स्पष्ट करते हुए कहते हैं -- 'हाँ इस अध्यात्म के साधन की तह में कर्म की प्रेरणा है -- जीवन की अवहेलना नहीं । उनकी निगाह में भयंकर साम्राज्यवाद तो आत्मा की सत्ता पर शरीर का साम्राज्य है । लौकिक साम्राज्य से भिड़ने के पहले अपने आप से भिड़ते हैं ।'[4]

खद्दर भारतीय जनता की आबरू की चादर थी । यह उनकी गरीबी के लिए रामबाण थी । जिसके प्रयोग की बापू ने राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में अनिवार्यता घोषित की थी । 'खद्दर की लिबास बे-हथियार की लड़ाई की निराली वर्दी है । अगर इस वेश को हम अपना सकें, तो बगैर रक्तपात के इस देश को हम लौटा सकेंगे । . . . यह गाँधी टोपी शहीदों के सर पर सफेद कफन का सेहरा है -- देश पर कुर्बानी का तुर्रा है ।'[5]

१- जैनेन्द्र कुमार, कल्याणी (दिल्ली : १९३२), पृ० १५३.

२- जैनेन्द्रकुमार, जयवर्द्धन (दिल्ली : १९७३), पृ० ४२.

३- श्रीमन नारायण, प्रिन्सीपल्स आव गाँधीय प्लानिंग (इलाहाबाद : १९६०), पृ० ६३.

४- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० २२८.

५- वही, गाँधी टोपी (इलाहाबाद : १९५२), पृ० २०-२१.

'सत्याग्रह' का ही दूसरा नाम 'आत्मबल' है। अंग्रेजी में इसी को 'पैसिव रेजिस्टेन्स' कहा जाता है।[1] 'दो पहलू' का सुरेन्द्र इसी आत्मबल की चर्चा करते हुए कमला से कहता है कि --'यदि हममें आत्मिक बल है तो हम बड़ी से बड़ी शक्ति को अपने सामने झुका सकते हैं। यदि हिंसा का सामना अहिंसा और सत्य से किया जाय तो हिंसा अपने आप पराजित हो जायेगी।'[2] भगवती प्रसाद वाजपेयी गांधीवाद को कष्ट और विपत्तियों का भोक्ता मानते हुए एक पात्र के मुख से कहलाते हैं कि --'बापू की यह वाणी मैं कैसे भूल सकता हूँ कि निरन्तर विपत्तियाँ माँगना और सत्य का पालन करना ही भगवान के निकट पहुँचने का एक सीधा और सच्चा मार्ग है।'[3] 'निमंत्रण' में उपन्यासकार ने कहा है --'घृणा प्रेम की विकृति है। . . . . घृणा की परम परिणति का ही दूसरा नाम प्रतिहिंसा है। वह ऐसी अग्नि है जो तब तक सुलगती रहती है जब तक आहुति के रूप में अपना भोग नहीं पा लेती।'[4]

शेखर के पिता शेखर को हर वक्त गांधी का नाम लेने पर डाँटते हैं। तब शेखर कहता है --'मैं गांधी को मानता हूँ। . . . . . पिताने हँस कर कहा, 'गांधी की शिक्षा तुमने समझी भी है? कोई तुम्हारे गाल पर एक थप्पड़ लगाये तो क्या करोगे?' शेखर ने तुरन्त जवाब दिया 'दूसरा गाल भी आगे कर दूँगा।'[5]

अन्य अनेक उपन्यासकारों ने इसी प्रकार अपने-अपने ढंग से 'गांधीवाद' की व्याख्या की है जिनमें 'प्रताप नारायण श्रीवास्तव'[6], 'रघुवीर शरण मित्र'[7], 'इलाचंद्र

१- महात्मा गांधी, हिन्द-स्वराज्य, पृ० ६३.

२- पं० यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० ३८३.

३- भगवती प्रसाद वाजपेयी, पतवार, पृ० २४३.

४- भगवती प्रसाद वाजपेयी, निमंत्रण (दिल्ली : १९५७), पृ० २११.

५- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवनी, प्रथम भाग, पृ० १२४.

६- (१) प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० १६६.
   (२) वही - विसर्जन, पृ० ८६-८७.

७- रघुवीर शरण मित्र, बलिदान (मेरठ : १९७२), पृ० १३५.

जोशी,[1] पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी',[2] अनन्त गोपाल शेवड़े,[3] गुरुदत्त,[4] सन्तोष नारायण नौटियाल,[5] गोविन्द वल्लभ पंत,[6] वृन्दावनलाल वर्मा[7] के अलावा यशपाल (के प्राय: सभी उपन्यास) रांगेय राघव (सीधा-सादा रास्ता) प्रताप (गांधी चबूतरा) मन्मथनाथ गुप्त (जिव), भगवतीचरण वर्मा (भूले-बिसरे चित्र तथा 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते'), गोविन्ददास (इन्दुमती), उदयशंकर भट्ट (डा० शेफाली) आदि उपन्यासकारों की रचनाएं प्रमुख हैं।

गांधीवाद का आलोचनात्मक चित्रण

जहां एक ओर उपन्यासों में गांधीवाद पर आस्था व्यक्त की गई है वहीं दूसरी ओर गांधीवाद का विरोध और आलोचना भी अपने कहीं पात्रों द्वारा या कहीं स्वयं के विवेचन द्वारा प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं तो एक ही उपन्यास में एक पात्र गांधीवादी है तो दूसरा गांधीवाद का विरोधी। पक्ष के लिए विपक्ष का होना तो आवश्यक है। इसलिए गांधीवाद के समर्थन के लिए गांधीवाद विरोधी पात्रों की कल्पना उपन्यासकारों ने की है। कहीं व्यंग्य की चुटकी है तो कहीं पर विश्लेषण की अभिव्यक्ति और कहीं खण्डन है तो कहीं मंडन। इसका कारण ऐतिहासिक भी है। क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है गांधीवाद का आतंकवादियों द्वारा विरोध 'असहयोग-आन्दोलन' की असफलता के बाद होने लगा था। परन्तु वह सूखी सरिता के समान था। भारतीय बहुमत गांधी जी की आस्था पर ही टिका था। 'सविनय अवज्ञा-

---

1- इलाचन्द्र जोशी, निर्वासित (प्रयाग : २०१५), पृ० १९९.

2- पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी', विसर्जन (प्रयाग : १९५६), पृ० ८९.

3- अनन्तगोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २४२.

4- गुरुदत्त (१) स्वाधीनता के पथ पर, नई दिल्ली : १९५५, पृ० २४९.
(२) देश की हत्या (नई दिल्ली : १९६६), पृ० १५३.

5- संतोष नारायण नौटियाल, हरिजन (दिल्ली : १९४९), पृ० ६४.

6- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ९७.

7- वृन्दावन लाल वर्मा, अचल मेरा कोई (काशी : १९७१), पृ० ७३.

आन्दोलन' तक यही रूप मिलता है । परन्तु सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों को न बचा पाने के कारण भारतीय जनमानस में गांधी जी के प्रति रोष व्याप्त होने लगा था । 'कांग्रेस के कराँची अधिवेशन' में गांधी जी को काले पुष्प विरोध के रूप में भेंट किये गये थे ।[1] दूसरी ओर 'मार्क्सवाद' के नवीन राजनीतिक दर्शन का प्रचार भारत में भी बढ़ने लगा था । श्री मानवेन्द्रनाथ राय प्रभृति साम्यवादी लोग गांधीवादी आन्दोलन की आलोचना करने लगे थे ।[2] बार-बार सफलता की चोटी पर आरूढ़ सत्याग्रह आन्दोलन को गांधी जी बिना शर्त वापस ले लेते थे जिससे जनता में गांधीवाद के प्रति आस्था डगमगाने लगी ।[3] इन ऐतिहासिक परिवर्तनों का प्रभाव साहित्यिक जगत में भी पड़ा । यही कारण है कि प्रेमचंद के उपन्यास-साहित्य में गांधीवाद का उग्र विरोध या व्यंग्य बड़ी कठिनाई से ही कहीं मिलेगा । परन्तु 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के उपरान्त रचित अन्य उपन्यासों में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है ।

'आज हम जनता की सेवा का स्वांग रचते हैं, अपनी सेवा के लिए और उस स्वांग का सिरमौर है गांधी-टोपी । और यही नहीं कांग्रेस की टकसाली अहिंसा के तले हमारी हिंसा की वृत्ति की ओट लेकर शिकार खेलती है । आखिर हमने गांधी से उनकी टोपी तो ले ली -- उनकी लंगोटी नहीं ली । उनकी टोपी तो सबके सर पर है -- उनकी लंगोटी किसी के तन पर नहीं ।'[4] गांधी जी अहिंसा के बल पर देश को स्वाधीन करने की बात जनता से कहते थे । और उस पर दृढ़ भी थे । परन्तु गांधी जी के आन्दोलन से निराश उपन्यासकार कह उठता है --'तो तुम ताली बजाकर देश आजाद कर लोगे ? वही मसल-मेंढकी भी नाल बंधाने को टांग उठाती है । कहीं मच्छर की फूंक से किसी सल्तनत का सिंहासन डोल सका है ।'[5]

१- जीतमल लूणिया - कराँची कांग्रेस, पृ० ३८.
२- निकोलस ० एम०, दि ट्रान्सफर आव पावर, खंड दो, पृ० ३७२.
३- दि फ्री प्रेस जनरल मद्रास, दिसम्बर ८, १९४४, वाल्यू, भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली सं० २२।१००।४४ राजनीतिक (आई०).
४- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० २३१.
५- यथोपरि, पृ० २३.

नरेन्द्रपाल (दो पहलू) में गांधी जी के 'सत्याग्रह' और उनके अनुयायी जवाहरलाल पर व्यंग्य करते हुए कहता है -- 'गांधी ने कितना ढोंग बनाया है । भारत की जनता को अपने जाल में फंसाने के लिए, किस तरह अपने पचड़े में फांस लिया है । . . . . . .जवाहरलाल तो उसके हाथ की कठपुतली है । जैसा भी नाच नचाता है नाच जाते हैं । मानो अपनी तो कुछ रखते ही नहीं ।'[1] चर्खा गांधी जी का सुदर्शन-चक्र था । परन्तु 'चढ़ती-धूप' के सर्जनाकार को वह नहीं भाया । 'चर्खा कातने से ही स्वराज्य मिलेगा -- यह जिनकी मान्यता है वे क्यों भूल जाते हैं कि भारतवर्ष में सदियों चर्खा काता है -- सूत बुना है । फिर भी उस पर सतत और निर्दय आक्रमण होते रहे ।'[2] 'गांधी-टोपी' में 'राजा' साहब गांधीवादी व्यक्तियों को बाह्य रूप से नहीं आन्तरिक रूप से भी गांधीवादी बनने की सलाह देते हुए कहते हैं --'गांधी टोपी की तह में गांधीतत्व की बू लिपटी न रही, तो फिर वह खादी की कलंगी नहीं, खादी की कफनी है । आचार पर मन बांधना तो विचार का पर बांधना है ।. . . . आप महज गांधी-टोपी को न अपनाकर गांधीतत्व को अपनाते, तो देश को अपना पाते ।'[3] 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के रामनाथ और उमानाथ ने भी गांधी जी की अहिंसात्मक नीति का विरोध किया है । रामनाथ का कथन है --'तुम अहिंसा की दुहाई देते हो, लेकिन यह अहिंसा है क्या ? अहिंसा निर्बल की अपने को धोखा देने की प्रवृत्ति है । यह अहिंसा आत्म-छलना से भरा सिद्धान्त है. . . . जो नपुंसकता का द्योतक है ।'[4] परन्तु उमानाथ तो कांग्रेस को 'पूंजीपतियों की संस्था' और गांधी जी को उनका 'प्रतिनिधि' कहता है । सत्याग्रह को चलाने वाले देश के पूंजीपति ही हैं ।[5] यही भाव वर्मा जी ने 'भूले-बिसरे चित्र' में गांधीवाद को 'अहिंसा के नाम पर हिंसा का नेतृत्व' करने वालों का आन्दोलन

१- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० २६.

२- 'अंचल', चढ़ती धूप, पृ० ८४.

३- राजा राधिकारमण सिंह 'गांधी-टोपी', पृ० १७.

४- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० १४२.

५- यथोपरि, पृ० ४८१.

कहा है।[१] इसी से साम्य रखता हुआ भाव रांगेय राघव ने भी व्यक्त किया है -- 'यह अहिंसा कायरता है। समर्थ-असमर्थ पर सदैव शासन करता है। उसकी पशुता और अत्याचार को बुरा कहने वाले जिन्दा नहीं रह सकते। जनता। जैसे भेड़ बकरी हो।'[२]

उपन्यासों में गांधी-व्यक्तित्व निरूपण

गांधी जी 'सत्य', 'पवित्रता' और 'प्रेम' की मूर्ति थे। ये तीन तत्व उनके राजनीतिक दर्शन के महत्वपूर्ण अंग भी थे।[३] उनके पीछे भारत ही नहीं था अपितु स्वयं दमनकारी ब्रिटिश अधिकारी भी उनका सम्मान करते थे। उनके अनोखे मन्त्र -- 'अहिंसा' ने विश्व को एक नई चेतना प्रदान की। उनके व्यक्तित्व से सभी प्रभावित थे। मित्र भी और शत्रु भी। इसी संदर्भ में यहां द्रष्टव्य है कि हिन्दी-उपन्यासकार ने उनके व्यक्तित्व को किस रूपमें ग्रहण किया। कुछ विशेष उपन्यासों के आधार पर इस तथ्य पर विचार करने का प्रयास किया जायेगा।

उपन्यासकार ने अपने मनोभावों को जो उसके हृदय में बापू और उनके द्वारा चलाये गये 'अहिंसात्मक आन्दोलन' की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे प्रशंसा के रूप में 'सत्याग्रह' में दृष्टिगोचर होते हैं --

'वह महान व्यक्ति गांधी, वह पुरुषसिंह गांधी, वह परमात्मा का अत्यन्त श्रेष्ठ अंश गांधी जिस दिन जेल गया, सारी कौम मानो लड़खड़ाकर उठ बैठी।'[४] 'पुरुष और नारी' का अजीत जब साबरमती आश्रम से लौटकर आता है तब से 'उसकी नस-नस में सेवा का रस भीग रहा है।. . . . देश के लिए लहू को पानी करने पर तैयार है।'[५]

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५४८.

२- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० १६६.

३- जे० सी० विन्सलो, दि डान आव इंडियन फ्रीडम (लन्दन : १९३२), पृ० ४१.

४- ऋषभचरण जैन, सत्याग्रह, पृ० ७८.

५- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० ४५.

'राजा' साहब पुनः आगे कहते हैं -- 'गांधी तो एक महामानव है । वह किसी मुल्क की ही आजादी नहीं -- मानव मात्र की आजादी का संदेश लाया है ।'[1]

बापू की वेश-भूषा, उनके दर्शनार्थियों की भीड़ का चित्रण भी उपन्यास में किया गया है । 'बापू की संध्याकालीन प्रार्थना में आज हिन्दू-मुसलमानों का ठट लगा हुआ है । . . . . लकुटी लिए हुए बापू प्रार्थना सभा में पधारे । खद्दर की लंगोटी पहिने भव्य विभूति के दर्शनों से मनुष्य साक्षात् शान्ति एवं प्रेम में स्नान करने लगा ।'[2] हिन्दू-मुस्लिम, नर और नारी बालक और बूढ़ा सभी के हृदय में गांधी जी के लिए एक विशेष श्रद्धा है । विदेशी शिष्टमंडल के गांधी जी के बारे में पूछने पर एक ग्रामीण बालक ने बापू के बारे में बतलाया -- 'अजी बाबूजी । भला दुनिया में ऐसा कौन है जो गांधी महात्मा और जवाहरलाल नेहरू को नहीं जानता । गांधी महात्मा हमारे गांव में भी आये थे । उस दिन हमारे मदरसे के सामने ही उन्होंने प्रार्थना की थी, सबसे चर्खा कातने को कहा था, सबको अपना भाई समझते हैं । तुलसी हरिजन भाई के घर उन्होंने भोजन किया था । महात्मा गांधी की जय हम रोज बोलते हैं ।'[3]

'निशिकान्त' में नरमदली मनोवृत्ति के पंडित जी कहते हैं -- 'गांधी सब कुछ जानता है पर मानता नहीं । . . . . दो चार दिन ठीक बोलता है पर उसके बाद फिर देवत्व का ढोंग रचने लगता है ।'[4] एक दूसरा पात्र कहता है -- 'गांधी तपस्वी है पर सरकार जितनी शक्ति उसके पास कहां है ? . . . . जीत उसी की होगी पर उस दिन तक न जाने कितने घर-बार उजड़ जायेंगे ।'[5] जहां एक उपन्यासकार गांधी जी

१- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पूरब और पश्चिम, पृ० १६५.

२- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० १३५.

३- यथोपरि, पृ० २६.

४- विष्णु प्रभाकर, निशिकान्त, पृ० २६०.

५- यथोपरि, पृ० ४२.

को निराशा पूर्ण दृष्टि से देखता है वहीं अनन्त गोपाल शेवड़े ने बापू के आन्दोलन के योगदान का निम्नांकित शब्दों में उल्लेख किया है --

'गांधी ही वह अद्भुत, अगम्य शक्ति है जो गहन निराशा और पीड़ा से जर्जरित विश्व को शान्ति का मार्ग दिखा सकेगा ।'[1] गांधी जी जेल में होते हुए भी जनता के मन में निवास करते थे । जनता के दिलों का स्वामी था वह लंगोटिया फकीर जो आगा महल की चार-दीवारी में बन्दी था ।'[2] 'संन्यासी' में इलाचंद्र जोशी ने महात्मा गांधी के व्यक्तित्व का जो चित्रांकन किया है वह भी द्रष्टव्य है -- 'मिस्टर मुकर्जी ने गांधी जी के चित्र को कुछ देर तक गौर से देखते हुए कहा -- 'बहुत सुन्दर चित्र है ।
.... क्यों साहब क्या मैं यह जान सकता हूं कि इस चित्र में क्या विशेषता है ?
.... गांधी जी की इस मुस्कान में न सरलता है न भोलापन । इसमें केवल 'कैपिटेलिस्टों' की कृपा से परिपुष्ट एक आत्म-तुष्ट प्राणी के सुख और सन्तोषपूर्ण भाव की अभिव्यक्ति मैं पाता हूं ।' परन्तु शीतलाप्रसाद मि० मुकर्जी की बात का प्रतिवाद करते हुए कहता है -- 'मैं मूर्ख को मूर्ख ही कहूंगा, चाहे वह महात्मा गांधी हो, चाहे खुद अल्लाह मियां ही क्यों न हो । उनके चेहरे का एक्सप्रेशन देखते नहीं, एक भर-पेट भोजन प्राप्त गंवार की तरह हंस रहे हैं । दक्षिण अफ्रीका में. . . . अपने को अर्पित करने वाले त्यागी गांधी का अन्त न जाने कब हो चुका था । सच्चे गांधी को भूलकर दुनियां उसकी प्रेतात्मा को भज रही है ।'[3]

'अविका कारा' में एक नये व्यक्तित्व का चित्रण मन्मथनाथ गुप्त ने प्रस्तुत किया है । पंडित जी और प्यारेलाल में गांधी जी अवतार हैं या नहीं, इस बात पर वाद-विवाद होता है । पंडित जी कहते हैं -- 'दस तो कुल अवतार हैं, उसमें से भी

१- अनन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० १२१.

२- यथोपरि, पृ० १६६.

३- इलाचन्द्र जोशी, संन्यासी (इलाहाबाद : २०१६ सं०), पृ० १६०-६१.

हो चुके । और अब एक होना बाकी है, एक अवतार जो होने वाला है उनसे गांधी जी का कोई लक्षण नहीं मिलता ।' किन्तु हजारीलाल कहता है -- 'गांधी जी अवतार हैं, यह तो उन तस्वीरों से साबित है जो मेरी दुकान में टंगी हैं । . . . . तस्वीर से क्या होता है जो जैसी चाहे खींच दे । . . . . वे कृष्ण हैं तो उनकी गोपियां कहां हैं ?' इस पर हजारीलाल फिर चित्र का हवाला देकर कहता है -- 'सब जमाने में गोपियां एक सी नहीं हुआ करतीं । इस अवतार में दूसरे नेता उनकी गोपियां हैं ।'[1]

गांधी जी की सफेद टोपी पर गोविन्दवल्लभ पन्त अपनी भावना पात्र द्वारा व्यक्त कराते हुए कहते हैं -- 'चमक उठी सफेद टोपी । आरंभ में वह टोपी घोर अराजकता की जननी हुई, श्वेतांग उसे देखकर भय से थर्राने लगा, किसान ने उसमें आशाएं उज्वल कीं ।'[2] नागार्जुन का बलचनमा अपने मालिक के अत्याचारों से पीड़ित है । उसे अब आशा बंधने लगी है क्योंकि फूल बाबू गांधी बाबा के चेला बन गये हैं । उसके मनोभाव का अंकन देखिए -- 'गांधी महात्मा न बड़े लाट से डरते हैं न छोटे लाट से, न सरकार से न अमला से । गरीबों का पच्छ लेते हैं । फूल बाबू उन्हीं गांधी महात्मा के चेला होकर मेरे लिए क्या इतना भी नहीं करेंगे कि अपने फूफा-फूफी (बलचनमा के मालिक) को जरा समझा दें ।'[3] गांधी जी को 'कांग्रेस का डिक्टेटर'[4] कहा जाता था । उसी का चित्रण नागार्जुन ने इस प्रकार किया है --

'अब एकमात्र महात्मा जी कांग्रेस के डिक्टेटर थे । आन्दोलन पूरे उठान पर था । कांग्रेस ने सारे अधिकार उन्हें सौंप दिये थे ।'[5] गांधी जी के आह्वान पर नीलकंठ

१- मन्मथनाथ गुप्त : बलि का बकरा (वाराणसी : १९६१), पृ० ३१-३२.
२- गोविन्दवल्लभ पन्त - मुक्ति के बंधन, पृ० ६७.
३- नागार्जुन, बलचनमा, पृ० ९६.
४- दि फ्री प्रेसजनरल (मद्रास : दिसम्बर ४, १९४४), बाम्बे प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग गोपनीय पत्रावली सं० २२/१००/१९४४ (राष्ट्र० अभि०).
५- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ (दिल्ली : १९६०), पृ० ६३.

सत्याग्रही के रूप में जेल चला जाता है तब उसे बच्चों की चिन्ता सताती है । जब उससे पूछा गया कि जेल आया ही क्यों ? तब वह कहता है --

'तब देश का काम था । महात्मा ने हुक्म दिया था ।'

'तब देश ही से मांगो । महात्मा क्यों नहीं दे देता ?'

'ठीक से बोलो पंडित । इतनी बड़ी आत्मा के लिए तुम्हारे छोटे मुंह इतना बड़ा बोल नहीं सुहाता । सारा जग उनके सीस नवाता है ।'[१]

जनता गांधी जी की थी और गांधी जी जनता के थे । सारा देश बाढ़ के जल की तरह उनके पीछे-पीछे था । 'गांधी ने देश को डंडा-गोली खाने की ही शिक्षा दी, डंडा-गोली चलाने की नहीं, जिसके बिना कभी कोई देश आजाद नहीं हुआ करता, मगर इस बात से क्या कोई इनकार कर सकता है कि गांधी ने देश की जनता को पुकारा और जनता उसकीपुकार पर दौड़ी ।'[२]

यशपाल ने गांधी जी का शब्द-चित्र यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है --'गांधी जी के शरीर पर केवल कमर में घुटनों से ऊपर की छोटी सी धोती थी । गर्दन झुकी हुई और चेहरा बहुत उदास था । . . . . . उन्हें पहचानने के लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं थी । दुबला, गठीला, गहरा सांवला शरीर, सुडौल सुरूप और सुवर्ण न होकर भी भव्य जान पड़ रहा था ।'[३]

उपर्युक्त उपन्यासों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक उपन्यासकार ने अपनी भिन्न-भिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न रूपों में गांधी जी के व्यक्तित्व का अंकन अपनी रचनाओं में किया है ।

१- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० ३४७.

२- अमृतराय, बीज (इलाहाबाद : १९५७), पृ० २४.

३- यशपाल, झूठा सच - वतन और देश (लखनऊ : १९५८), पृ० ८२.

उपन्यास और आश्रम-स्थापना

महात्मा गांधी जब दक्षिणी अफ्रीका से भारत वापस आये तब उन्होंने देश की परिस्थिति का अध्ययन किया । सन् '१६१६ में गांधी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम खोला और उसके बाद १६२० से उसी आदर्श पर दूसरे कई आश्रम खोले गये ।'[१] हिन्दी-उपन्यासकारों में सर्वप्रथम आश्रम की स्थापना मुंशी प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर द्वारा होती है । प्रेमशंकर भी गांधी जी की तरह अमेरिका से शिक्षाप्राप्त कर भारत लौटता है और गांधी जी भी विदेश से भारत वापस आते हैं । दोनों के विदेश से आगमन में साम्य है । अन्तर केवल इतना है कि एक ब्रिटेन से आता है तो दूसरा अमेरिका से । यही नहीं गांधी जी साबरमती आश्रम की स्थापना करते हैं और 'प्रेमशंकर भी वरुण नदी के किनारे हाजीगंज में रहने का निश्चय करता है ।'[२] शीघ्र ही 'गांव से बाहर फूस का एक झोंपड़ा पड़ गया । दो तीन खाटें आ गईं । गांव वालों की उन पर असीम भक्ति थी । . . . . . उन्हें सब लोग अपना रक्षक अपना इष्टदेव समझते थे और उनके इशारे पर जान देने को तैयार रहते थे ।'[३] 'साबरमती आश्रम' की ही भांति प्रेमशंकर के आश्रम में 'लोग नये-नये सुधार के प्रस्ताव सोचते, राजकीय प्रस्तावों के गुण दोषों की मीमांसा करते, सरकारी रिपोर्टों का निरीक्षण करते । प्रश्नों द्वारा अधिकारियों को अत्याचारों का पता देते, जहां कहीं न्याय का खून होते देखते, तुरन्त सभा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते. . . . विरोध के लिए विरोध न करते बल्कि शोध- के लिए ।'[४]

गांधी जी के ही अनुसरण पर प्रेमचंद 'ट्रस्टीशिप' की बात 'प्रेमाश्रम' में उठाते हैं । गायत्री ज्ञानशंकर को सुझाव देती है कि 'एक 'ट्रस्ट' कायम कर दीजिये । ज्ञानशंकर कहता है --' 'ट्रस्ट' कायम करना तो आसान है पर मुझे आशा नहीं है कि उससे आपका उद्देश्य पूरा हो । (क्योंकि) आप अपने विचार में कितने ही निःस्पृह,

---

१- पट्टाभिसीता रामय्या, कांग्रेस का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० ७८.

२-३-४- प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, क्रमशः पृ० ८३-८३-२११

सत्यवादी ट्रस्टियों को नियुक्त करें, लेकिन अवसर पाते ही वे अपने घर भरने पर उद्यत हो जायेंगे।'[1] 'ट्रस्टीशिप' के बारे में गांधी जी ने कहा था —'आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है। जिस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं।. . . . इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सके उतनी अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाये।'[2] प्रेमचन्द का यह स्वप्न 'कर्मभूमि' में पूर्ण होता है। वहां भी रेणुका का कथन है कि 'अगर आप कोई ट्रस्ट बना सकें तो मैं आपकी कुछ सहायता कर सकती हूं।'[3] 'ट्रस्ट' का बनना आरंभ हो जाता है और 'सेवाश्रम का ट्रस्ट बन गया।'[4]

महात्मा गांधी जिस प्रकार के 'ट्रस्ट' का स्वप्न देख रहे थे वह भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में संभव न था। और न कालान्तर में हुआ ही। उसी भाव का आभास रांगेय राघव के इन शब्दों में व्यक्त हुआ है —'गांधी क्या कहते हैं? आप क्या कहते हैं?. . . . आपने कितने अमीरों, जमींदारों और सेठों से जोर देकर कहा कि अपना हृदय बदल डालिये। तुरन्त 'ट्रस्टी' बन जाइये।'[5]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने भी 'मनुष्यानंद' में 'अछूत आश्रम' की स्थापना की है। यह आश्रम भी 'साबरमती आश्रम' की ही भांति पूर्ण गांधीवादी आश्रम है। उस आश्रम का एक चित्र प्रस्तुत है —'उस आश्रम में रहने वाले दलितों को और उनकी स्त्रियों को चर्खा कातना, रुई धुनना, चरखे बनाना और बढ़ई के अन्य काम तथा सूप

१- प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० १९६.

२- महात्मा गांधी, मेरे स्वप्नों का भारत, पृ० ८०.

३- प्रेमचन्द, कर्मभूमि (इलाहाबाद : १९६२), पृ० २३०.

४- यथोपरि, पृ० २३२.

५- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० २७६.

पत्ते, मेज, कुर्सी आदि तयार करना बड़े चहल्ले से सिखाया जा रहा है। उनके बच्चों को पढ़ाया-लिखाया तथा स्वच्छता प्रेमी बनाया जा रहा है। . . . . उत्साह और बड़ा जोश है उन भूले पतितों में।'[१]

अजीत भी 'साबरमती आश्रम' से प्रभावित है। वह भी रेवा नदी के तट पर एक 'आश्रम' की स्थापना करता है। 'वहां चरखे तो चले ही, करघे भी जारी हुए।'[२] उसकी देखभाल का काम वह स्वयं करता है। 'गांव-गांव घूमता है। कृषकों का दुख-सुख सुनता है।'[३] बापू की भांति नारी के उत्थान में उसका पूरा विश्वास है। आश्रम में 'महिला-विभाग' की स्थापना इसी उद्देश्य कीपूर्ति हेतु होती है। 'साबर मती आश्रम में जहां बापू 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' अथवा 'रघुपति राघव राजा राम' का भजन-कीर्तन किया करते थे उसी तरह अजीत के आश्रम में भी निम्नोक्त तराना रोजाना गाया जाता था --

'जहां में हमारा निशाना रहेगा
वतन का ही हरदम तराना रहेगा
गरीबी व चाहे रहेगी खुशी है
पर झंडा वतन का ऊंचा रहेगा।'[४]

'राष्ट्रीय आन्दोलन' को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कांग्रेसी सत्याग्रही महात्मा गांधी के अनुसरण पर नगर से थोड़ी दूर और ग्रामों के कुछ निकट विशाल जी का स्थापित आश्रम अपने उद्देश्यों को साधता हुआ चल पड़ा।'[५] उस आश्रम में

१- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', मनुष्यानंद (दिल्ली : १९५८), पृ० १८६.

२- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० ६४-६५.

३- यथोपरि, पृ० १७०.

४- यथोपरि, पृ० ७८.

५- गोविन्दवल्लभ पंत, मुक्ति के बंधन, पृ० १६६.

भारतीयों का ही नहीं अपितु विदेशियों का भी आगमन होने लगा । विशाल जी के आश्रम में भी एक विदेशिनी-महिला बड़े-बड़े भारतीय नेताओं के परिचायक-पत्रों को लेकर आश्रम में प्रवेश करती है । क्योंकि 'अध्यात्म की क्रीड़ा-भूमि भारत ने उसका ध्यान खींचा ।. . . . घूमते-घूमते वह भारतवर्ष में आई -- गांधीवादी के सम्पर्क में । उसे विश्वास हुआ, शान्ति त्याग में है, सभ्यता एक बन्धन है . . . . उसने अनेक नये पश्चिमी दार्शनिकों के मत भी संग्रह किये थे । भारतीय तत्व ने उस मत की भी पुष्टि की थी. . . . रंग-विहीन एक श्वेत खद्दर की साड़ी उसने अपने आवरण के लिए स्वीकार करली । निरामिष और मसालों से विहीन भोजन पर वह चलने लगी । आश्रम के सभी कार्यक्रमों में वह भाग लेती ।'[१] यह विदेशिनी महिला और अन्य कोई न होकर परम गांधी-भक्त मीरा बहन (मैडेलिन स्लेड) ही हैं । मीरा बहन का बापू के आश्रम में प्रवेश की घटना का छायांकन ही पन्त जी ने अपनी रचना में किया है ।[2] साबरमती आश्रम में प्रवेश लेने वाली मैडलिन स्लेड तथा विशालसिंह के आश्रम में प्रविष्ठ विदेशी महिला में पूर्ण साम्य दिखाई देता है । मीरा बहन का छायाभास लेखक के मस्तिष्क में विद्यमान है ।

सीताचरण दीक्षित ने भी अपने उपन्यास में 'वनिता आश्रम' की स्थापना कराई है । जहाँ जात-पांत धर्म और कुल-गोत्र का कोई भी बंधन नहीं है । बापू की तरह सेठ गंगाप्रसाद का 'वनिता आश्रम'[३] दलित नारियों के उद्धार के लिए स्थापित

१- गोविन्दवल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० १२६.

२- "In November 1925 there arrived at the Sabarmati Ashram a thirty three year old English Woman, Madeleine Slade.x-----x-----x She was tall, handsome, a good horse Woman------x------x------x She reached Ahmedabad early one morning and hurried to the ashram to kneel before Gandhi who lifted her up and said, "You shall be my daughter." He gave her the Indian name of Mira Behn." - Robert Payne, Life And Death of Mahatma Gandhi (London:1969), P. 378.

३- सीताचरण दीक्षित, हृदय मंथन (दिल्ली : १९५५), पृ० ४५.

किया गया है। आचार्य के कथन के द्वारा आश्रम का उद्देश्य इस प्रकार व्यक्त किया गया है --"हमारे आश्रम में भिन्न-भिन्न धर्मों, वर्गों और जातियों की बालिकाएं मौजूद हैं। हमें अभिमान है कि. . . . . हमारे आश्रम ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि दलित सम्प्रदायों की बालिकाएं भी उचित शिक्षा मिलने पर अधिक से अधिक उन्नति कर सकती हैं।"[१]

'वनिता आश्रम' भी गांधी जी के द्वारा स्थापित आश्रम की परम्परा में स्थापित किया गया है। बापू की दलित वर्ग की सेवा को भला कौन नहीं जानता। उनका 'अछूतोद्धार आन्दोलन' स्वातंत्र्य-संघर्ष की एक अनुपम कड़ी है।

जैनेन्द्रकुमार गांधीवादी आस्था के उपन्यासकार कहे गये हैं। 'कल्याणी' का 'तपोवन' भी उन्हीं आदर्शों का स्मरण कराता है।[२] 'गांधी चबूतरा' की स्थापना भी गांधी जी के आदर्शों को मूर्तिमान करने के लिए की गई है। "यह गांधी चबूतरा ज्योति-स्तंभ होगा मेरे गांव का तथा पास पड़ौस का। देखो ईश्वर की कृपा हुई तो स्वप्न पूरे ही होंगे।"[३]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-उपन्यासों में गांधी जी के आदर्शों की स्थापना का किसी न किसी रूप में अवश्य प्रयत्न होता रहा है।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का चित्रण

आतंकवाद:दार्शनिक पक्ष

'क्रान्ति' सम्पन्न करना कोई बायें हाथ का खेल नहीं है। यह साधारण व्यक्ति के वश से बाहर की वस्तु है। इसकी कोई निश्चित तिथि भी नहीं है। यह

१- सीताचरण दीक्षित, हृदय मंथन (दिल्ली : १९५५), पृ० ७०.
२- जैनेन्द्रकुमार, कल्याणी, पृ० १५३.
३- प्रताप, गांधी चबूतरा (वाराणसी : १९५७), पृ० १६२.

देश की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक वातावरण की विशेष देन होती है। क्रान्ति के लिए आत्म-बलिदान तथा जन-सहयोग दोनों का होना अनिवार्य है। मात्र आतंक द्वारा राजनीतिक क्रान्ति का सम्पन्न होना असंभव भले ही न हो परन्तु दुष्कर अवश्य है। फिर भी भारतीय नव-युवक ब्रिटिश साम्राज्यवाद को आतंकवादी तरीकों से उखाड़ने का प्रयत्न करते रहे। पूंजीवादी सरकार उनके बारे में जनता में गलतफहमी उत्पन्न करती रही। जिससे जनता के क्रियात्मक सहयोग के अभाव में आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन अपनी मौत स्वयं मर सके। किन्तु जागरूक साहित्यकार पूंजीवाद के इस भुलावे में न आ सका। उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से आतंकवाद के दर्शन को भारतीय जनता तक पहुंचाने तथा समझाने का प्रयास किया। भगतसिंह ने अदालत के सामने कहा था कि 'उनका उद्देश्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करना तथा किसान-मजदूर के प्रजातंत्र की स्थापना करना' है।[1]

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'प्रतिशोध' में सर्वप्रथम विप्लवादी आन्दोलन का प्रशस्तिपरक चित्रण मिलता है --'यह कोई नहीं देखता कि लम्बी-चौड़ी वक्तृताएं झाड़ने और मोटरों पर दौरा करने वालों से कितना अधिक त्याग वह क्रान्तिकारी कर रहा है। जिसकी आवाज पिस्तौल की गोली है और जिसकी सवारी अरथी। यह कोई नहीं कहता कि क्रान्तिकारी तुम्हीं देश के बन्धु हो, दस हजार नेता वह नहीं दे सकते जो तुममें का एक-एक हंसते-हंसते दे डालता है।. . . . आओ मेरे गले लगो सभी उसे ठुकराते हैं और सभी उसका अपमान करते हैं।'[2]

क्रान्तिकारी आतंक क्यों उत्पन्न करता है क्योंकि वह अपनी इस पराधीन मातृभूमि का दुख दूर[3] करना चाहता है। इसलिए वह 'आततायी का वध'[4] करता है।

१- यशपाल, सिंहावलोकन (लखनऊ : १६५४), भाग-एक, पृ० १३४.

२- दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रतिशोध (वाराणसी : १६६५), पृ० ५२.

देश की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक वातावरण की विशेष देन होती है। क्रान्ति के लिए आत्म-बलिदान तथा जन-सहयोग दोनों का होना अनिवार्य है। मात्र आतंक द्वारा राजनीतिक क्रान्ति का सम्पन्न होना असंभव भले ही न हो परन्तु दुरूह अवश्य है। फिर भी भारतीय नव-युवक ब्रिटिश साम्राज्यवाद को आतंकवादी तरीकों से उखाड़ने का प्रयत्न करते रहे। पूंजीवादी सरकार उनके बारे में जनता में गलतफहमी उत्पन्न करती रही। जिससे जनता के क्रियात्मक सहयोग के अभाव में आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन अपनी मौत स्वयं मर सके। किन्तु जागरूक साहित्यकार पूंजीवाद के इस भुलावे में न आ सका। उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से आतंकवाद के दर्शन को भारतीय जनता तक पहुंचाने तथा समझाने का प्रयास किया। भगतसिंह ने अदालत के सामने कहा था कि 'उनका उद्देश्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करना तथा किसान-मजदूर के प्रजातंत्र की स्थापना करना' है।[१]

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'प्रतिशोध' में सर्वप्रथम विप्लवादी आन्दोलन का प्रशस्तिपरक चित्रण मिलता है -- 'यह कोई नहीं देखता कि लम्बी-चौड़ी बदहुलाएं फाड़ने और मोटरों पर दौरा करने वालों से कितना अधिक त्याग वह क्रान्तिकारी कर रहा है। जिसकी आवाज पिस्तौल की गोली है और जिसकी सवारी अरथी। यह कोई नहीं कहता कि क्रान्तिकारी तुम्हीं देश के बन्धु हो, दस हजार नेता वह नहीं दे सकते जो तुममें का एक-एक हंसते-हंसते दे डालता है।. . . . आओ मेरे गले लगो सभी उसे ठुकराते हैं और सभी उसका अपमान करते हैं।'[२]

क्रान्तिकारी आतंक क्यों उत्पन्न करता है क्योंकि वह अपनी इस पराधीन मातृभूमि का दुख दूर[३] करना चाहता है। इसलिए वह 'आततायी का वध'[४] करता है।

१- यशपाल, सिंहावलोकन (लखनऊ : १९५४), भाग-एक, पृ० १३४.

२- दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रतिशोध (वाराणसी : १९५५), पृ० ५२.

३- यथोपरि, पृ० १४.

४- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्त मंडल (वाराणसी : १९७०), खण्ड-एक, भाग-१, पृ० ४८.

प्रतिशोध की यह भावना `रक्तमंडल` में आकर स्पष्ट होती है । `देश को जिस तरह से हो सके स्वतंत्र करना उनका मुख्य उद्देश्य था ।`[1] यशपालने अपने संस्मरणों में यही भाव व्यक्त करते हुए कहा है -- `हम सुधारों की नहीं बल्कि व्यवस्था बदल देने की माँग करते हैं ।`[2] इसी ब्रिटिश शासन व्यवस्था को बदलने के लिए विप्लवादी सम्पूर्ण देश में `गुप्त संगठनों`[3] की स्थापना करते थे । `रक्तमंडल` के `भयानक चार` ने `सम्पू . . . के लगभग बहुत जोर बांधा था । यहाँ तक कि सरकार भी इनसे घबड़ा गई थी । मुल्क भर में इस मंडल की शाखें थी ।`[4] `रक्तमंडल` के `भयानक चार` की कल्पना दुर्गा प्रसाद खत्री ने प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी, शचीन्द्रनाथ सान्याल, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि किसी में से की है । ऐसा विश्वास होता है । क्योंकि ब्रिटिशदमन से बचने का केवल प्रतीक ही आधार था । आतंकवाद के उद्देश्य को `रक्त मंडल` के दूसरे खण्ड में पुन: स्पष्ट करते रक्तमंडल का एक आदमी कहता है --

`भाई हिन्दियों !--

`आज हम लोग बहुत दिनों के बाद इकट्ठे हुए हैं । रक्त-मंडल की पिछली बैठक में यह तय हो चुका था कि अब बातचीत और सलाहविचार का समय बीत गया और काम करने का वक्त, जिसके माने सरकार से मोर्चा लेने का वक्त है आ गया है ।`[5] यही नहीं स्वाधीनता अपनी कीमत प्राणों की आहुति से माँगती है । `और वह उसके पाने की इच्छा करने वाले को अदा करनी ही पड़ेगी । देश की स्वतंत्रता की भी एक कीमत है और वह हमें देनी ही पड़ेगी ।`[6] `सुफेद शैतान में भी इसी भाव की आवृत्ति की गई है ।`[7]

---

१. दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल, खंड-एक, भाग पहला, पृ. ४८.
२- यशपाल, सिंहावलोकन (लखनऊ : १९५१), भाग-दो, पृ० १२१८.
३- रिपोर्ट आव दि सेडीशन कमेटी (भारत सरकार : १९१८), पृ० ९७.

४- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल, खण्ड-एक, भाग पहला, पृ० ४८.
५- यथोपरि, खण्ड दो, भाग तीन, पृ० ११.
६- यथोपरि, ,, भाग चार, पृ० १३४.
७- यथोपरि, सुफेद शैतान (वाराणसी : १९५४), खंड एक, भाग-दो, पृ० ५६-६०.

क्रान्तिकारी आन्दोलन को संजीवनी प्रदान करने वाले श्री अरविन्दो थे ।[1] उनकी प्रेरणा से ही क्रान्तिकारी आगे बढ़े । राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने उनके योगदान का वर्णन इस प्रकार किया है -- 'जिस मदारी के डमरू पर क्रान्तिकारियों का दल कुलांच लेता रहा वह दिक्पाल तो श्री अरविन्द हैं, यह दृष्टिकोण तो हर गोरे अफसर का निरन्तर बना रहा । काफी सबूत न पाकर अलीपुर के सेशन जज ने उन्हें जो रिहा कर दिया हो, पर फिरंगियों की निगाह में उनकी सफाई कभी न थी ।'[2]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आतंकवाद सक्रिय रूप में पुनः उठ खड़ा हुआ था । उसकी ओर 'आत्मदाह' में संकेत किया गया है । 'यह वह समय था जब युद्ध के बाद की शान्ति-सभा से भारत निराश हो गया । देश में उद्वेग उत्पन्न हो गया था । पंजाब और बंगाल में क्रान्तिकारी दल बन गये थे ।'[3] आचार्य चतुरसेन ने यथार्थ रूप में क्रान्तिकारी दल-निर्माण के प्रसार के तथ्य को उपन्यास में ग्रहण किया है । 'बंगाल के अनुकरण में. . . . काशी दिल्ली और लाहौर में विप्लव केन्द्रों की सृष्टि हुई ।'[4] 'बलिदान' में शेखर भी विनय से अपना विप्लवी उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहता है -- 'अहिंसा ही अहिंसा में आज देश की कितनी विभूतियां जेलों में सड़ रही हैं । कितने हत्याकाण्ड हो रहे हैं । मुझे अब अहिंसा में विश्वास नहीं रहा । मैं गुरिल्ला युद्ध की योजना बना चुका हूं । कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, प्रयाग और मेरठ आदि में आजाद सभा के गुप्त कार्यालयों की स्थापना हो चुकी है ।'[5]

१- प्रोसीडिंग्स आव भारत सरकार - गृह-विभाग गोपनीय पत्रावली सं० (बी) ११०--११७, अक्तूबर १९०९.

२- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पूरब और पश्चिम, पृ० १०३.

३- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह (बनारस : ति० न०), पृ० २०४.

४- शचीन्द्रनाथ सान्याल, बंदी जीवन (दिल्ली : १९६३), पृ० ३

५- रघुवीर शरण मित्र, बलिदान, पृ० ८.

क्रान्तिकारी आन्दोलन को संजीवनी प्रदान करने वाले श्री अरविन्दो थे।[१] उनकी प्रेरणा से ही क्रान्तिकारी आगे बढ़े। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने उनके योगदान का वर्णन इस प्रकार किया है -- "जिस मदारी के डमरू पर क्रान्तिकारियों का दल झूमता रहा वह दिक्पाल तो श्री अरविन्द हैं, यह दृष्टिकोण तो हर गोरे अफसर का निरन्तर बना रहा। काफी सबूत न पाकर अलीपुर के सेशन जज ने उन्हें जो रिहा कर दिया हो, पर फिरंगियों की निगाह में उनकी सफाई कभी न थी।"[२]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आतंकवाद सशक्त रूप में पुनः उठ खड़ा हुआ था। उसकी ओर 'आत्मदाह' में संकेत किया गया है। "यह वह समय था जब युद्ध के बाद की शान्ति-सभा से भारत निराश हो गया। देश में उद्वेग उत्पन्न हो गया था। पंजाब और बंगाल में क्रान्तिकारी दल बन गये थे।"[३] आचार्य चतुरसेन ने यथार्थ रूप में क्रान्तिकारी दल-निर्माण के प्रसार के तथ्य को उपन्यास में ग्रहण किया है। "बंगाल के अनुकरण में. . . . काशी दिल्ली और लाहौर में विप्लव केन्द्रों की सृष्टि हुई।"[४] 'बलिदान' में शेखर भी विनय से अपना विप्लवी उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहता है -- "अहिंसा ही अहिंसा में आज देश की कितनी विभूतियां जेलों में सड़ रही हैं। कितने हत्याकाण्ड हो रहे हैं। मुझे अब अहिंसा में विश्वास नहीं रहा। मैं गुरिल्ला युद्ध की योजना बना चुका हूं। कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, प्रयाग और मेरठ आदि में आजाद सभा के गुप्त कार्यालयों की स्थापना हो चुकी है।"[५]

१- प्रोसीडिंग्स आव भारत सरकार - गृह-विभाग गोपनीय पत्रावली सं० (बी) ११०-
-११७, अक्तूबर १९०९.

२- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पूरब और पश्चिम, पृ० १०३.

३- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह (बनारस : ति० न०), पृ० २७४.

४- शचीन्द्रनाथ सान्याल, बंदी जीवन (दिल्ली : १९६३), पृ० ३

५- रघुवीर शरण मित्र, बलिदान, पृ० ८.

अनन्त गोपाल शेवड़े ने भी आतंकवादी आन्दोलनकारी के उन मनोभावों को अपनी रचना में यथावत रूप में चित्रित किया है जिन्हें फाँसी की सजा सुनने के बाद भगतसिंह ने अदालत में अभिव्यक्त किया था।[1] जब जज अभियुक्त-अभयकुमार से पूछता है --

'इस आन्दोलन में हिस्सा लेने में तुम्हारा क्या ध्येय था?'

'अपने देश की आजादी।'

'आजादी का मतलब?'

'विदेशी शासन से पूर्णतः मुक्ति। 'यानी तुम अंग्रेजी शासन हटाना चाहते हो।'

'अवश्य'

'किसी भी मार्ग से?'

'स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अख्तियार किया जाय उचित है।'

'हिंसा का भी?'

'जी हाँ'।[2]

विप्लववादी आन्दोलन का उद्देश्य इसी प्रकार यज्ञदत्त शर्मा (दो पहलू),[3] 'भिक्षु' के 'भंवरजाल'[4] में व्यक्त हुआ है। 'शेखर : एक जीवनी' में 'अज्ञेय' ने पूर्वी-

---

१- "Let not the Government think that they have executed the three people and with them the revolutionary party is dead.——— I say every one of you must follow their example,——— There is no use of following the Ahimsa policy of Gandhi, any longer. You adopt the policy of killing the cruel people." Progs. Govt. of India, Home. Deptt. Political Confidential file No. 23/II/1930.

२- अनन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २४०-४१.

३- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू', पृ० २१६.

४- कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्षु,' भंवरजाल (दिल्ली : १९५४), पृ० २८.

वादी वर्ग में आतंकवाद के प्रति विद्यमान उपेक्षा का उत्तर विद्याभूषण नामक पात्र के द्वारा दिलाया है। उसका कथन है -- 'सबसे पहले तो उन्हें आतंकवादी कहना ही अन्याय है। यद्यपि आतंकवाद को वे अपने कार्यक्रम से बाहर नहीं निकालते। आजकल के ज़माने में जिस आदमी का राजनीतिक दर्शन आतंकवाद तक जाकर समाप्त हो जाता है वह मानसिक विकास की दृष्टि से सात साल का बच्चा है। साफ बात यह है कि उसमें इतना नैतिक बल ही नहीं हो सकता जितना कई आतंकवादी कहलाने वालों में सब लोग मानते हैं।'[१]

'क्रान्ति' तो साक्षात महिषमर्दिनी है। मोहन का कथन है 'मैं उसे देवी मानता हूं।.... मैं श्रेणी युद्ध में विश्वास करता हूं और प्रत्येक प्रकार के शोषण का अन्त कर देना चाहता हूं।'[२] 'अंचल' पुनः आतंकवादी क्रान्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं -- 'हमारे समाज की भयंकर समस्या और नारकीय विषमता का निपटारा युद्ध में है.... पूंजीवादी स्वार्थों के विनाश में है --.... क्रान्ति में है... कोटि-कोटि शोषित श्रमिकों-कृषकों की हुंकार में है-- व्यक्तिवादी आत्म-अभिव्यक्ति में नहीं -- हिंसा में है -- अहिंसा में नहीं।'[३] यशपाल भी 'दादा कामरेड' में कहते हैं कि 'हमारा उद्देश्य तो है, इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उसके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना।'[४] 'सुखदा' का क्रान्तिकारी लाल का कथन है कि 'स्वतंत्रता के सिवाय दूसरा कुछ मैं जानता ही नहीं। मैं कुछ और हो ही नहीं सकता।'[५] इसी प्रकार के संकेत 'विवर्त'[६] में भी चित्रित हैं। 'कल्याणी' में क्रान्ति-

---

१- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवनी (बनारस : १९५१), दूसरा भाग, पृ० ५७.
२- 'अंचल', चढ़ती धूप, पृ० १२३-२४.
३- यथोपरि, पृ० १२५.
४- यशपाल, दादा कामरेड (लखनऊ : १९५४), पृ० ६०.
५- जैनेन्द्र कुमार, सुखदा (दिल्ली : १९५८), पृ० १००.
६- यथोपरि, विवर्त (दिल्ली : १९५७), पृ० १९४.

कारी आन्दोलन के दर्शन पर विचार हुआ है। यथा --"क्रान्तिकारी आन्दोलन राष्ट्रीय जागरण में अभी अनावश्यक नहीं है।. . . . उसकी सतत आवश्यकता है। असल में वह युद्ध का अग्रिम मोर्चा है।"[1]

क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त जो स्वयं भी भुक्तभोगी रहे हैं, ने अभिताप पात्र के माध्यम से क्रान्तिकारी आन्दोलनका उद्देश्य बतलाया है। अभिताप का कहना है कि --"सबसे बड़ी बात है खोई हुई आस्था का पुनरुद्धार. . . . राजनीतिक स्वतंत्रता तो साधारण लोगों के लिए है, नहीं तो किसी शहीद को लीजिए जैसे खुदीराम बोस, कन्हाई लाल, करतारसिंह इनके लिए कैसी स्वतंत्रता कैसी परतंत्रता क्योंकि. . . . वे अपने लिए नहीं लड़ रहे थे बल्कि जनता के लिए लड़ रहे थे।"[2] यद्यपि क्रान्तिवाद और आतंकवाद का उद्देश्य एक है फिर भी उनके सूक्ष्म अन्तर को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है --"क्रान्तिकारी जनता के इतिहास निर्माण में भाग लेता है और आतंकवादी स्वयं ही अपने त्याग, तपस्या तथा वीरता से इतिहास निर्माण करने के लिए चल देता है।"[3] अमृतराय ने आतंकवादी आन्दोलन पर प्रकाश डालते हुए कहा है --"यह पुलिस के डंडे खाना भी कोई लड़ाई है।. . . . लाठी का जवाब लाठी यह तो ठीक है मगर यह बकरी की तरह सिर झुकाकर डंडे खाना। छि: इस तरह भी क्या कभी कोई मुल्क आजाद हुआ है?. . . . आजादी की लड़ाई का मतलब है हथियारों की लड़ाई।"[4] क्योंकि आतंकवादियों का विश्वास था कि अंग्रेज सरकार पशुबल के आधार पर निर्मित है। वह एक विदेशी संस्था है। अत: उसे हिंसक तरीकों से नष्ट करने में कोई बुराई नहीं है।[5] शिवानंद, यशोदा से अरुणानंद की बहन के बारे में पूछता है कि क्या वह

१- जैनेन्द्र कुमार, कल्याणी, पृ० ६५-६६.

२- मन्मथनाथ गुप्त, रैन बसेरी (दिल्ली : १६५६), पृ० ३२.

३- यथोपरि, चित्र (इलाहाबाद : २००३ वि०), पृ० ८१.

४- अमृतराय, बीज, पृ० २८.

५- बाबूराव जोशी, भारतीय नव-जागरण का इतिहास, पृ० ११३.

भी संन्यासिनी है । 'नहीं उसका भाई क्रान्तिकारी दल में है ।'

'यह क्या चीज है ?'

देश सेवकों का एकदल जो अंग्रेजों को देश से भगाना चाहता है ।'[1]

'डा० शेफाली' में भी क्रान्तिकारी-दल में एक महिला अपने सम्मिलित होने का उद्देश्य बताते हुए कहती है --'दीदी मैं तुमसे सच कहती हूं कि मैं जिस दल में शामिल होने जा रही हूं वह मेरे उद्देश्य के सबसे अधिक निकट है ।'

'क्या' ?

'क्रान्तिकारी दल के प्रयत्नों के द्वारा देश को स्वतंत्र करना ।'[2]

क्रान्तिकारी आन्दोलनको बंगाल से गति मिली थी । वहीं से वह उत्तर भारत में फैला ।[3] बाबा बटेसरनाथ उसी की कहानी दुहराते हुए कहते हैं --'बंगाल के नौजवानों का महात्मा गांधी के असहयोग और सत्य अहिंसा की बातों में आस्था नहीं रखते थे । दुश्मनों को पछाड़ने के जितने भी तरीके हो सकते हैं वे उन्हें अपनाने के पक्ष में थे ।'[4]

आतंकवादी कार्यकलापों का अंकन

आतंकवादी-क्रान्तिकारी दल के नेताओं ने देश में फैले विभिन्न गुप्त दलों को एक सूत्र में पिरोने के लिए प्रयास किया था । उसकी एक गुप्त बैठक भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद आदि ने की थी ।[5] क्योंकि छोटे-छोटे दलों को मिलाकर सशक्त रूप

१- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष (दिल्ली : १९६०), पृ० ३५६.

२- यथोपरि, डा० शेफाली (दिल्ली : १९६०), पृ० २१७.

३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली सं० ४।४०।१९३२.

४- नागार्जुन , बाबा बटेसरनाथ, पृ० ८६.

५- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास (दिल्ली : १९६०), पृ० २६२-६३.

भी संन्यासिनी है । 'नहीं उनका भाई क्रान्तिकारी दल में है ।'

'यह क्या चीज है ?'

देश सेवकों का एकदल जो अंग्रेजों को देश से भगाना चाहता है ।'[1]

'डा० शेफाली' में भी क्रान्तिकारी-दल में एक महिला अपने सम्मिलित होने का उद्देश्य बताते हुए कहती है --'दीदी मैं तुमसे सच कहती हूं कि मैं जिस दल में शामिल होने जा रही हूं वह मेरे उद्देश्य के सबसे अधिक निकट है ।'

'क्या' ?

'क्रान्तिकारी दल के प्रयत्नों के द्वारा देश को स्वतंत्र करना ।'[2]

क्रान्तिकारी आन्दोलनको बंगाल से गति मिली थी । वहीं से वह उत्तर भारत में फैला ।[3] बाबा बटेसरनाथ उसी की कहानी दुहराते हुए कहते हैं --'बंगाल के नौजवानों का महात्मा गांधी के असहयोग और सत्य अहिंसा की बातों में आस्था नहीं रखते थे । दुश्मनों को पछाड़ने के जितने भी तरीके हो सकते हैं वे उन्हें अजमाने के पक्ष में थे ।'[4]

आतंकवादी कार्यकलापों का क्रम

आतंकवादी-क्रान्तिकारी दल के नेताओं ने देश में फैले विभिन्न गुप्त दलों को एक सूत्र में पिरोने के लिए प्रयास किया था । उसकी एक गुप्त बैठक भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद आदि ने की थी ।[5] क्योंकि छोटे-छोटे दलों को मिलाकर सशक्त रूप

१- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष (दिल्ली : १९६०), पृ० ३५६.

२- यथोपरि, डा० शेफाली (दिल्ली : १९६०), पृ० २९७.

३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली सं० ४।४०।१९३२.

४- नागार्जुन , बाबा बटेसरनाथ, पृ० ८६.

५- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास (दिल्ली : १९६०), पृ० २६२-६३.

में ब्रिटिश-साम्राज्य को सुगमता से उखाड़ा जा सकता था । "यही विचार कर इधर कुछ समय से सभी क्रान्तिकारियों को एकत्र करके एक साथ मिला देने की चेष्टा हो रही है । काफी बातचीत और उद्योग के बाद हम चार आदमी आज एक हफ्ते से इस जगह इकट्ठे हैं । मैं गुरु कमसिंह पश्चिम की गदर पार्टी का मुखिया हूं । ये अल्लाहदीन इस देश की दक्षिणी सीमा--की उस मशहूर पार्टी के मुख्य कार्य-कर्ता हैं जिसने शासकों की नाक में दम कर दिया है । ये रासबिहारी मशहूर बमगैंग के सर्वेसर्वा हैं और ये रघुनाथ सिंह उत्तर के क्रान्तिकारियों के सरगना हैं ।"[१] प्रस्तुत चित्रण ऐतिहासिक होने के साथ साथ देश और काल की कसौटी पर भी यथार्थता लिए हुए है । क्रान्तिकारी अपना काम गुप्त रूप से करते थे । ताकि ब्रिटिश दमनचक्र से बचा जा सके । 'जीने के लिए' में मोहनलाल का कथन है --"हमने आतंकवादियों की गुप्त समितियां सफलता पूर्वक संगठित की हैं ।"[२] ब्रिटिश सरकार आतंकवादियों से परेशान रहती थी । उनको पकड़वाने के लिए इश्तहार बांटे जाते थे, इनाम रखा जाता था । 'मुक्ति के बंधन' के "कुमार को जीवित या मरा पकड़ लाने वाले के लिए एक लक्ष रुपये के पुरस्कार की घोषणा की । जगह-जगह उसके चित्र समाचार पत्रों में छापे गये, दीवारों पर चिपकाये गये । ग्रामों में बांटे गये ।"[३] ऐसा ब्रिटिश नौकरशाही प्राय: किया करती थी । गोविन्दवल्लभ पन्त ने उसी नौकरशाही के कार्यकलाप का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है । 'यशपाल' तथा 'आजाद' की फरारी पर भी ऐसा ही इनाम ब्रिटिश सरकार ने रखा था ।[४]

प्रेमचंद जब 'कर्मभूमि' की रचना कर रहे थे उस समय तक 'भारतीय नवयुवकों' का आन्दोलन भी संगठित हो गया था । बंगाल 'तरुण-समिति', 'पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में 'नौजवान भारत-सभा' के नाम से यह काफी प्रसिद्ध हो चुका था ।[५] 'कर्मभूमि'

१- दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रतिशोध, पृ० १९.
२- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए(इलाहाबाद : १९५९), पृ० ५२.
३- गोविन्दवल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० २६८.
४- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-दो, पृ० २२४.
५- सुभाषचन्द्र बोस, दि इंडियन स्ट्रगल (कलकत्ता : १९५४), पृ० ३४.

में शान्तिकुमार के कथन द्वारा प्रेमचंद ने ऐसे ही युवक-सत्याग्रह के बारे में कहलाया है कि --`आज `नौजवान-सभा` के दस-बारह युवकों को तैनात कर आया हूँ, नहीं इसकी चौथाई हड़ताल भी न होती ।`[1] प्रेमचन्द ने उसी नव-युवक आन्दोलन की छाया की ओर यहाँ संकेत किया है । रघुवीरशरण मित्र ने भी युवकों के एक अन्य संगठन का चित्रण `बलिदान` में किया है ।'बलिदान'का शेखर सुखबीर से पूछता है --`कहो सुखबीर हिन्दुस्तान में क्या हाल है ? आजाद-सभा का संगठन कैसा है । अब हमें हर प्रान्त में, हर नगर में सभा के कार्यालय पूरी शक्ति से स्थापित करने हैं ।`[2] `आजाद सभा` भी एक गुप्त संगठन है । आतंकवाद के विकास पर `ब्रिटिश भारत की एक गोपनीय पत्रावली` में देश के विभिन्न प्रान्तों में स्थापित गुप्त संगठनों पर प्रकाश डाला गया है ।[3] रघुवीर-शरण मित्र ने आतंकवाद के उसी प्रसार का चित्रण किया है । यही नहीं मुख्य-मुख्य ठोस आतंकवादियों की सूची भी शेखर तैयार करता है और कहता है --`खुदीराम बोस, भीरसिंह, अशफाक उल्ला खाँ. . . . को तार देकर हवाई जहाज से बनारस बुलाओ ।`[4] बैठक होती है परन्तु पूर्ण सतर्कता के साथ । `खुदीराम`, `अशफाक उल्ला खाँ` दोनों ही ऐतिहासिक क्रान्तिकारी शहीद हैं ।

`गुप्त संगठनों` के अतिरिक्त उपन्यासकारों ने आतंकवादियों की कार्य-प्रणाली का भी अंकन किया है । क्रान्तिकारी साधुओं आदि के वेश में रहते थे । यशपाल ने `सिंहावलोकन`[5] में भी इसकी चर्चा की है । वेश बदलना आतंकवादी जीवन का अभिन्न अंग था । `बलिदान` का शेखर भी पुलिस की पकड़ से बचने के लिए ऐसा ही रूप धारण

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० २४६.
२- रघुवीर शरण मित्र, बलिदान, पृ० ६८.
3. There is indeed hardly a district in the province where there is not a terrorist organisation xxxxxx: where these is not a secre terrorist group under the control of the district terrorist leader." - Progs. Govt. of India, Home Deptt.(Cofl.) file No. 4/40/1933.
४- रघुवीर शरण मित्र, बलिदान, पृ० ६६.
५- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-२, पृ० ७६-८२.

करता है। यथा -- 'शंकर ने लाल किनारी की बारीक धोती बांधी। राम नाम का दुपट्टा ओढ़ा, पोथी पतरा बगल में दबाया और फिर दुपहर को स्टेशन की सड़क के किनारे बोरी बिछाकर बैठ गये। सलेट पर उल्टी-सीधी पांच-चार लाइनें खींचीं। किसी का हाथ देखा। किसी की जन्मपत्री बांची। किसी को कुछ बताया, किसी को कुछ।'[1]

'शेष-अशेष' में भी साधुओं के भेष में आतंकवादी क्रान्ति की योजना बनाते हैं। 'चिदम्बर' की योजना थी कि सब दल के साधुओं की सेना बनाई जाय जिसमें उदासी, निर्मला, कबीर पंथी, बैरागी सभी साधु हों और वे अंग्रेजों से लड़कर उन्हें देश से बाहर निकाल दें।'[2] हरिशरणानंद भी यही बात कहते कि 'अब हम लोगों का उद्देश्य है कि इस प्रकार का साहित्य तैयार किया जाय कि अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा फैला दी जाय कि सारा देश क्रोध और घृणा से उबल पड़े।'[3] क्रान्तिकारी अपना प्रचार इश्तहारों के द्वारा करते थे। 'हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र दल' का एक परचा लाहौर में बलराज के दस्तखत से बांटा गया था।'[4] 'शेष-अशेष' के क्रान्तिकारी साधु भी इश्तहार बांटते हैं। 'उनमें बड़े जोरदार शब्दों में साधुओं से अपील की गई थी। आग बरसाती हुई भाषा में साधुओं को संगठित होकर देश से विदेशियों को निकालने पर जोर दिया गया था। अंग्रेजों ने देश में जो अत्याचार किये थे उनका ब्योरेवार वर्णन विस्तृत तालिका सहित दिया गया था।'[5]

१- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० १६२.

२- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष, पृ० १७१.

३- यथोपरि, पृ० १७२

४- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-१, पृ० ८६.

५- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष, पृ० १७७.

करता है । यथा --"शंकर ने लाल किनारी की बारीक धोती बांधी । राम नाम का दुपट्टा ओढ़ा, पोथा पतरा काल में दबाया और फिर दुपहर को स्टेशन की सड़क के किनारे बोरी बिछाकर बैठ गये । स्लेट पर उल्टी-सीधी पांच-चार लाइनें खींची । किसी का हाथ देखा । किसी कीजन्मपत्री बांची । किसी को कुछ बताया, किसी को कुछ ।"[१]

'शेष-अशेष' में भी साधुओं के भेष में आतंकवादी क्रान्ति की योजना बनाते हैं । 'चिदम्बर' की योजना थी कि सब दल के साधुओं की सेना बनाई जाय जिसमें उदासी, निर्मला, कबीर पंथी, बैरागी सभी साधु हों और ये अंग्रेजों से लड़कर उन्हें देश से बाहर निकाल दें ।"[२] हरिशरणानंद भी यही बात कहते कि "अब हम लोगों का उद्देश्य है कि इस प्रकार का साहित्य तैयार किया जाय कि अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा फैला दी जाय कि सारा देश क्रोध और घृणा से उबल पड़े ।"[३] क्रान्तिकारी अपना प्रचार इश्तहारों के द्वारा करते थे । "'हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र दल' का एक परचा लाहौर में बलराज के दस्तखत से बांटा गया था ।"[४] 'शेष-अशेष' के क्रान्तिकारी साधु भी इश्तहार बांटते हैं । "उनमें बड़े जोरदार शब्दों में साधुओं से अपील की गई थी । आग बरसाती हुई भाषा में साधुओं को संगठित होकर देश से विदेशियों को निकालने पर जोर दिया गया था । अंग्रेजों ने देश में जो अत्याचार किये थे उनका ब्योरेवार वर्णन विस्तृत तालिका सहित दिया गया था ।"[५]

१- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० १६२.

२- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष, पृ० १७१.

३- यथोपरि, पृ० १७१

४- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-१, पृ० ८६.

५- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष, पृ० १७७.

`रक्तमंडल` में भी `भयानक वार` इश्तहारों द्वारा जनता में जागरण उत्पन्न करते हैं। उनके इश्तहार का विवरण इस प्रकार खत्री जी ने दिया है -- `अब हम एक आखिरी चोट उस जालिम विदेशी सरकार को पहुंचाना चाहते हैं जिसने अपना कब्जा जबर्दस्ती हमारे देश पर जमा रखा है। तीन रोज बाद इस समस्त प्रान्त के उन भागों पर बम बरसाये जायेंगे जहां फौजी छावनियां, सरकारी दफ्तर, खजाने, कचहरियां या ऐसे ही दूसरे मुकाम हैं।`[१]

साधुओं और संन्यासियों ने `स्वदेशी-आन्दोलन` में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[२] उपन्यासकार भी उनकी उपेक्षा नहीं कर सका। क्योंकि साधु ही एक ऐसा भेश था जो क्रान्तिकारियों को बचा सकता था। अभयकुमार भी साधु का भेश धारण कर लेता है -- अनेक यातनाओं को देश के लिए सहता हुआ साधुवेश में भिक्षा मांगता हुआ अपने को बचाता फिरता है। द्वार पर खड़ा वह कहता है --

`साधु को भिक्षा मिलेगी मां ?`

आवाज सुनते ही मां चौंक पड़ी। यह आवाज परिचित सी है या यह केवल उनका भ्रम है ? वे हड़बड़ा कर उठ बैठीं. . . . देखा --

सामने फटे और मैले कपड़े पहने तूमा लिए एक साधु खड़ा है।`[३]

वह और कोई नहीं उस मां का अपना ही क्रान्तिकारी बेटा अभय था।

रेलों को लूटना, उन्हें रोकना आतंकवादियों के लिए साधारण बातें थीं। प्रेमचंद ने `रंगभूमि` में तुगीन आतंकवादी गतिविधि का संकेत सोफिया के इस कथन द्वारा चित्रित किया है -- `पुलिस से बचने के लिए ही मैंने रास्ते में गाड़ी को रोक कर सवार होने की व्यवस्था की।`[४] इसी प्रकार की एक अन्य गुप्त समिति का वर्णन

१- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल, खण्ड-दो, भाग-चौथा, पृ० ३२.

२- प्रोसीडिंग्स भारत सरकार गृह-विभाग, राजनीतिक गोपनीय पत्रावली सं० (ब) ११५-१२८.

३- अनन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २११.

४- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ४३१.

'मुक्ति के बंधन' में भी मिलता है। स्वामी दयानंद ने भी 'नगर के एक कोने में -- अँधेरे गौठ (तहखाने) में हिन्दी-समिति नामक एक संस्था खोल रखी है। इन षड्यंत्र-कारियों का एक अलग समझिये उसे। हिन्दी तो एक नाम का धोखा है। ये जरूर वहां छिपकर बम बनाते होंगे।'[१] बंगाल में जब खुली संस्थाओं का दमन होने लगा तो उसका परिणाम यह हुआ कि सारे देश में नेताओं ने गिरफ्तारी से बचने के लिए गुप्त समितियों का प्रचार किया।[२] 'कलकत्ते के जोड़ा बगान नामक मुहल्ले में एक बम फैक्टरी पकड़ी गई थी।'[३]

'कल्याणी' और 'सुखदा' में फरारी का जीवन या 'एब्सकांड', 'मकान की तलाशी' आतंकवादी का 'बाल-बाल बच निकलना', 'गुप्त सभा' का आयोजन आदि अनेक प्रसंग जैनेन्द्र ने प्रसंगवशात चित्रित किये हैं।[४] यशपाल, गुरुदत्त तथा रांगेय राघव आदि ने भी आतंकवादी गतिविधियों का अंकन अपनी रचनाओं में किया है।

गदर आन्दोलन

भारतीय आतंकवादी-क्रान्तिकारी बड़ी गुप्त रीति से गदर की तैयारी में लगे थे। यतीन्द्रनाथ के नेतृत्व में पंजाब अन्दर ही अन्दर बंगाल से जोड़ दिया गया था। गदर की तैयारी व्यवस्थित रूप से ही की गई थी। यह खुला सैनिक विद्रोह था। जो अमेरिका से लौटे भारतीयों द्वारा गदर के रूप में सन् १९१५ ई० में कियागया था। भारतीय सैनिकों को गदर के लिए तैयार करने का पूरा प्रयत्न किया गया[५]। पुलिस-स्टेशनों को लूट कर, हथियार प्राप्त करना उसके उपरान्त डाक-घरों, तहसीलों, खजानों, को

१- गोविन्दवल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ४६-४७.
२- मन्मथनाथ गुप्त, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास (आगरा : १९५२), पृ० २०१.
३- शंकरलाल तिवारी 'बेढब', भारत सन् ५७ के बाद (बनारस : १९३९), पृ० १०२.
४- (क) जैनेन्द्र कुमार, कल्याणी, पृ० ९८.
   (ख) यथोपरि, सुखदा, पृ० ४७ तथा १९३.
५- शचीन्द्रनाथ सान्याल, बंदी जीवन, पृ० ५७.

`मुक्ति के बंधन` में भी मिलता है । स्वामी दयानंद ने भी `नगर के एक कोने में -- अंधेरे गोठ (तहखाने) में हिन्दी-समिति नामक एक संस्था खोल रखी है । इन षड्यंत्र-कारियों का एक क्लब समझिये उसे । हिन्दी तो एक नाम का धोखा है । ये जरूर वहां छिपकर बम बनाते होंगे ।`[1] बंगाल में जब खुली संस्थाओं का दमन होने लगा तो उसका परिणाम यह हुआ कि सारे देश में नेताओं ने गिरफ्तारी से बचने के लिए गुप्त समितियों का प्रचार किया ।[2] `कलकत्ते के जोड़ा बगान नामक मुहल्ले में एक बम फैक्टरी पकड़ी गई थी ।`[3]

`कल्याणी` और `सुखदा` में फरारी का जीवन या `एक्शन`, `मकान की तलाशी` आतंकवादी का `बाल-बाल बच निकलना`, `गुप्त सभा` का आयोजन आदि अनेक प्रसंग जैनेन्द्र ने प्रसंगवशात चित्रित किये हैं ।[4] यशपाल, गुरुदत्त तथा रांगेय राघव आदि ने भी आतंकवादी गतिविधियों का अंकन अपनी रचनाओं में किया है ।

गदर आन्दोलन

भारतीय आतंकवादी-क्रान्तिकारी बड़ी गुप्त रीति से गदर की तैयारी में लगे थे । यतीन्द्रनाथ के नेतृत्व में पंजाब अन्दर ही अन्दर बंगाल से जोड़ दिया गया था । गदर की तैयारी व्यवस्थित रूप से ही की गई थी । यह खुला सैनिक विद्रोह था । जो अमेरिका से लौटे भारतीयों द्वारा गदर के रूप में सन् १९१५ ई० में कियागया था । भारतीय सैनिकों को गदर के लिए तैयार करने का पूरा प्रयत्न किया गया[5]। पुलिस-स्टेशनों को लूट कर, हथियार प्राप्त करना उसके उपरान्त डाक-घरों, तहसीलों, खजानों, को

१- गोविन्दवल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ४६-४७.
२- मन्मथनाथ गुप्त, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास (आगरा : १९६२), पृ० २०१.
३- शंकरलाल तिवारी `बेढब`, भारत सन् ५७ के बाद (बनारस : १९३९), पृ० १७२.
४- (क) जैनेन्द्र कुमार, कल्याणी, पृ० ६८.
   (ख) यथोपरि, सुखदा, पृ० ५७ तथा १९३.
५- शचीन्द्रनाथ सान्याल, बंदी जीवन, पृ० ५७.

लूटकर तथा रेलों, पुलों और जेलों को तोड़कर अंग्रेजी सरकार को समाप्त करना गदरियों का एकमात्र उद्देश्य था।[1] 'रक्तमंडल' में इसी गदर आन्दोलन का उद्देश्य चित्रित किया गया है। अमर कहता है -- "मेरे मंडल का हुक्म है कि इस देश में जितनी भी फौजी छावनियां हैं सब उड़ादी जायं। मैं उसी काम के लिए आया हूं। मेरा पिता मेरे काम में बाधा देता है तो मैं उसे अपने रास्ते से हटा कर अपना काम करूंगा।"[2]

गदरियों के आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए गोपाल कहता है -- "अभी तो आपको दो ही तीन छावनियां उड़ी हैं जिस समय समूचे देश की छावनियां इसी तरह उड़ा दी जायेंगी और तब लाटों की कोठियां, कमांडर-इन-चीफ के बंगलों, छोटे-मोटे अफसरों के मकानों और दफ्तरों तथा कचहरियों की बारी आयेगी उस समय तीन सप्ताह के भीतर यहां से शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य का नाम निशान मिट जायेगा[3]।" इसी प्रकार 'गदर' के खुले विद्रोह पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि "देश में गुप्त रीति से जो कुछ आन्दोलन हम लोग कर सके हैं उसका भी प्रभाव आशाजनक हुआ है। अस्तु इस समय हम लोगों की राय में खुला विद्रोह कर देने का बड़ा सुन्दर मौका आ गया है।"[4] गदर आन्दोलन भी ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध एक खुली चुनौती थी। उसी का संकेत उपन्यासकार ने किया है।

'आत्मदाह' में भी इसका चित्रण मिलता है। "इधर क्रान्तिकारी दल बढ़ रहा था। आतंक के बल पर भारत को स्वाधीन किया चाहता था। युद्ध-काल में जो इस दल ने विफल चेष्टाएं की थीं . . . अब फिर बल आ रहा था।"[5] "गदर पार्टी"

१- प्रीतमसिंह पंछी, गदरपार्टी का इतिहास (दिल्ली : १९६१), पृ० १०१.

२- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल, खंड-एक, भाग-दो, पृ० ८.

३- यथोपरि, पृ० ३४.

४- यथोपरि, खण्ड-एक, भाग-एक, पृ० ११४.

५- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह, पृ० २०५.

के कर्ता-धर्ता `रासबिहारी बोस` के अतिरिक्त `सरदार करतार सिंह सराबा`[1] तथा `गूजरसिंह` आदि थे। `निर्देशक` के रचनाकार ने `गदर आन्दोलन` की भावात्मक संयोजना की है। `गदर पार्टी के सिख-बाबा साम्राज्यवादी जेलों के भीतर सड़ रहे थे। क्रान्ति कई नौ मिसालों को फांसी पर झुला चुकी थी। उनका शहीद हो जाना नवयुवकों को रोमांचित करता था।` `सिख-बाबा` और कोई अन्य व्यक्ति नहीं थे, वे थे `करतार सिंह सराबा` जिन्हें कारावास की कोठरियों में जीवन बिताना पड़ा[2]।

राजनीतिक डकैतियाँ

विप्लववादियों ने अपने जीवन में हमेशा साहसी कामों को ही महत्व दिया। क्रान्ति के प्रसार के लिए तथा अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए राजनीतिक डकैतियाँ डाली जाती थीं। क्योंकि `जनता से मांग न सकने की अवस्था में धन पाने का एक ही उपाय था, राजनैतिक डकैती करना, इसलिए क्रान्ति के जितने भी प्रयत्न हुए, उनका आरंभ प्राय: राजनैतिक डकैतियों से हुआ।`[3]

`रक्तमंडल` के क्रान्तिकारी भी भारतीय क्रान्तिकारियों की भांति राजनैतिक डकैती पर विश्वास करते हैं क्योंकि `रक्तमंडल ने एक बड़ा भारी काम अपने सिर पर उठाया है, स्वदेश को जुल्मियों के पंजे से छुड़ाना। उसके लिए सबसे बड़ी जरूरत रुपये की है।.... जिनके पास रुपये हैं वे इस काम के लिए खर्च करने को तैयार नहीं हैं। लाचार होकर हमें.... जिस तरह जहाँ से और जैसे मिलता है रुपया लेना पड़ता है।`[4]

१- श्री पहाड़ी, निर्देशक (इलाहाबाद : १९५५), पृ० २५५.

२- चाँद (फांसी-अंक) (इलाहाबाद : नवम्बर १९२८), पृ० २०१.

३- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-एक, पृ० १२८.

४- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल, खण्ड एक, भाग-एक, पृ० ३७.

‘रंगभूमि’ का वीरपाल भी सरकारी खजाना लूटता है । लगता है प्रेमचंद के अन्तर्मन में क्रान्तिकारियों की राजनीतिक झलकियां विद्यमान रही हों । ‘काकोरी-षड्यंत्र’ की भी छाया उसमें निश्चित संभव है क्योंकि वीरपाल भी आतंकवादी है । विनय जब उससे पूछता है कि ‘राज्य के नौकरों को बेरहमनामाकूद’ क्यों करना चाहते हो । तब वीरपाल सिंह अपना उद्देश्य स्पष्ट करता है । उसका उद्देश्य आतंकवाद के उद्देश्य से साम्य रखता है । दोनों ही नौकरशाही के अत्याचारों से पीड़ित जनता की मुक्ति के आकांक्षी हैं । वीरपाल सिंह का कथन है --‘आपको इन लोगों की करतूतें मालूम नहीं है । ये लोग प्रजा को दोनों हाथों से लूट रहे हैं । इनमें न दया है न धर्म । . . . . किसे धूस न दीजिये वही आपका दुश्मन है. . . . . कोई फरियाद नहीं सुनता । कौन सुने, सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं ।’[1] ‘काकोरी-ट्रेन कांड’ भी अगस्त १९२५’ को हुआ था[2] और उसके अभियुक्तों को ६ अप्रैल १९२७ को अदालत ने सजा सुना दी थी ।[3] ‘रंगभूमि’ का रचनाकाल १९२५--२७ है और ‘काकोरी षड्यंत्र का घटनाकाल तथा उसकी अदालती कार्यवाही का अन्त भी १९२७ ई० है । इससे संभव है कि प्रेमचंद ने वीरपाल द्वारा सरकारी खजाने की गाड़ी लूटने के प्रसंग ‘काकोरी’ के रेलगाड़ी के खजाने को लूटने की घटना से ग्रहण किया हो । वीरपाल सिंह के बारे में सरकारी अमला छान-बीन के बाद कहता है --‘यह मालूम था कि वह डाकू है. . . उसने यहां से तीन मील पर सरकारी खजाने की गाड़ी लूट ली है । और एक सिपाही की हत्या कर डाली है ।’[4] ब्रिटिश नौकरशाही की दृष्टि में आतंकवादी भी तो मात्र आतंकवादी डाकू ही थे । स्वयं ‘बिस्मिल’ कहते हैं ‘हम लोगों को डाकू बताकर फांसी और काले पानी की सजाएं दी गई हैं. . . . राज्य में दिन के डाकुओं की प्रतिष्ठा है ।’[5] यशपाल

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० २०२.

२- आर० सी० मजूमदार, स्ट्रगल फार फ्रीडम (बम्बई : १९६९), वि०११ , पृ० ५४१

३- पं० रामप्रसाद ‘बिस्मिल’, काकोरी के मैट (दिल्ली : सि० न०), पृ० २०.

४- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० २०६

५- रामप्रसाद ‘बिस्मिल’, काकोरी के मैट, पृ० १५३.

ने `दादा कामरेड` में इसी आक्षेप का प्रत्युत्तर शैल के शब्दों में दिया है । वह अपने पिता से कहती है --`पिताजी वे डाकू नहीं हैं वे मनुष्य समाज के लिए एक नये युग का सन्देश लेकर आये हैं । समाज के कल्याण के लिए ही समाज के अत्याचार को सहन कर रहे हैं ।`[१]

अन्य उपन्यासकारों में जिन्होंने राजनीतिक डकैतियों का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है उनमें यशपाल (दादा कामरेड)[२] जैनेन्द्र कुमार (सुनीता)[३] वृन्दावनलालवर्मा (अचल मेरा कोई)[४] तथा गुरुदत्त (स्वाधीनता के पथ पर)[५] मुख्य हैं ।

काकोरी-ट्रेन कांड

राजनीतिक डकैतियों की परम्परा में काकोरी का ऐतिहासिक महत्व है । आतंकवादियों ने राजनीतिक कार्यों के संचालन के लिए धन की कमी होने पर सहारनपुर-लखनऊ के बीच काकोरी स्टेशन पर रेल से सरकारी खजाना लूट लिया था । उपन्यासों में उपर्युक्त महत्वपूर्ण घटना का अंकन मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यासों में सर्वाधिक हुआ है । क्योंकि वे स्वयं `काकोरी-षड्यंत्र` के अभियुक्त थे ।

`रक्तमंडल` के षड्यंत्रकारी भी खजाने की गाड़ी लूटते हैं । सरकारी कर्मचारियों को संबोधित करते हुए उनका एक साथी कहता है --`खजाने की गाड़ी यहीं छोड़कर तुम लोग फौरन पीछे लौट जाओ नहीं तो एक आदमी भी जीता बचने न पायेगा ।`[६]

१- यशपाल, दादा कामरेड, पृ० २१०.

२- यथोपरि, पृ० २०१.

३- जैनेन्द्र कुमार, सुनीता (बम्बई : १९५१), पृ० १३८.

४- वृन्दावन लाल वर्मा, अचल मेरा कोई , पृ० १८०.

५- गुरुदत्त, स्वाधीनता के पथ पर, पृ० ७२.

६- दुर्गाप्रसाद खत्री,रक्तमंडल खण्ड एक, भाग एक, पृ० १७८.

`निराला` ने `काकोरी-षड्यंत्र` का संकेत `अप्सरा` में पात्रों के वार्तालाप द्वारा चित्रित किया है --

`आप तब कहाँ थे ?`

\- - -

`लखनऊ में सरकारी खजाने में डाका पड़ा । शक पर मैं भी गिरफ्तार कर लिया गया । पर मेरी गैरहाजरी ही साबित रही । पुलिस के पास कोई शिकायत नहीं थी सिर्फ नाम दर्ज था । . . . . कोई सबूत न रहने से जमानत पर छोड़ दिया गया ।`[1] यह ऐतिहासिक तथ्य है कि `जिस समय गिरफ्तारियाँ हुई थीं, उस समय कई ऐसे आदमी पकड़े गये थे जिनका इस आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं था । वे धीरे-धीरे छोड़ दिए गए ।`[2]

`रैन अंधेरी` में `काकोरी-कांड` का वर्णन करते हुए मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं -- `यह तो तय हो ही चुका था कि खजाना लखनऊ में नहीं लूटना है । तब अविनाश नामक पात्र कहता है -- `क्यों न ऐसा किया जाय कि जब यह गाड़ी किसी छोटे स्टेशन पर खड़ी हो तो हम उसे वहाँ पर लूट लें ।`[3] परन्तु `घोराम जंगल में जंजीर खींचकर गाड़ी के खजाने को लूटने की बात तय हो गई ।`[4] गाड़ी से खजाने का लूटना, अभियुक्तों का गिरफ्तार होना मुखबिरों द्वारा झूठा गवाह बनना, अभियुक्तों को सजा का दिया जाना आदि प्रसंगों का भी उपन्यास में चित्रण है । जानसन नामक अंग्रेज कहता है -- षड्यंत्र तो साफ है । ये लोग डकैतियाँ भी करते रहे हैं, ट्रेन-डकैती भी इन्हीं लोगों ने की, कई जगह सरदार गोली चलाकर भाग गया और अब इन लोगों ने मिस्टर बनर्जी की हत्या करके ब्रिटिश सरकार को खुली चुनौती दी है ।`[5] `काकोरी` के अभि-

---

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, अप्सरा(लखनऊ : १९५२), पृ० १६१.

२- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २४५.

३- यथोपरि, रैन अंधेरी, पृ० १९६.

४- यथोपरि, पृ० १९८.

५- यथोपरि, पृ० २१८.

मुकदमे में 'आजाद' गिरफ्तार नहीं हुए थे वे फरार हो गये थे । उपन्यासमें उल्लिखित 'सरदार' शब्द उन्हीं की ओर संकेत करता है । यद्यपि इस षड्यंत्र के विधिवत नेता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' थे ।[१]

'लाहौर-षड्यंत्र' का वर्णन भी 'रैन अंधेरी' में किया गया है । लाहौर में भगतसिंह पर मुकदमा चल रहा था । इसी मुकदमे के श्री यतीन्द्रनाथ दास सान्याल राजनीतिक कैदियों के लिए विशेष व्यवस्था की मांग रखकर बासठ दिन के अनशन के बाद शहीद हो गये ।[२] उपन्यासकार ने क्रान्तिकारी घटना का यथार्थवादी अंकन प्रस्तुत किया है । 'यतीन्द्रनाथ की तपस्या अब पूरी हो चुकी थी । . . . देश का प्यारा यतीन्द्र बोरस्टल जेल में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ते हुए शहीद हो गया ।'[३]

<u>अधिकारी वर्ग की हत्याएं</u>

आतंकवादी अपने उद्देश्य की पूर्ति में बाधक सरकारी कर्मचारियों की प्राय: हत्या किया करते थे । जिनमें छोटे से पुलिस के सिपाही से लेकर भारत का वाइसराय तक उनकी गोली का निशाना बनता था । अपने उद्देश्य के लिए 'यदि उनको हत्या, डकैती या अन्य कोई भी बात करनी पड़ती तो वे उसके लिए तैयार रहते थे ।'[४] 'रंगभूमि' की सोफिया के द्वारा जसवन्त नगर के दारोगा की हत्या का चित्रण आतंकवाद की गतिविधियों का ही युगीन प्रभाव है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रेमचंद 'खुदीराम' के प्रशंसकों में थे । खुदीराम को पकड़वाने में एक दारोगा का हाथ था । 'प्रफुल्लचाकी' ने उस दारोगा को जिस का नाम नन्दलाल मुकर्जी था, मारने का प्रयत्न भी किया था । भाग्यवश वह बच गया परन्तु कुछ दिन बाद नन्दलाल क्रान्तिकारियों

१- आर० सी० मजूमदार, स्ट्रगल फार फ्रीडम, जिल्द सं०   पृ० ५५६.
२- मन्मथनाथ गुप्त, 'रैन अंधेरी' - पृ० २९०.
३- मन्मथनाथ गुप्त , भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २९२.
४- बाबूराव जोशी, भारतीय नव-जागरण का इतिहास, पृ० ११३.

द्वारा दिनदहाड़े कलकत्ता में मारे गये ।[1] 'रंगभूमि' में दरोगा की हत्या का अंकन विनय के मनोभावों द्वारा व्यंजित हुआ है -- 'विनय ने पूछा, तो मालूम हुआ कि इसका (बुढ़ा का) पुत्र जसवन्त नगर के जेल का दरोगा था, उसे दिन दहाड़े किसी ने मार डाला । . . . . सोफी ने कोरी धमकी न दी थी । मालूम होता है, उसने गुप्त हत्याओं के साधन एकत्र कर लिए हैं ।'[2]

पंजाब के गवर्नर जब पंजाब विश्वविद्यालय का दीक्षान्त-भाषण करके लौट रहे थे, उन पर हरकिशन नामक युवक ने गोली चला दी थी और उन्हें जख्मी कर दिया था ।[3] इसी घटना को 'भारत जागउठा' में इस प्रकार अंकित किया गया है -- 'सवेरे सड़क पर अखबार वाला चिल्लाता जा रहा था -- 'गवर्नर साहब पर गोली का निशाना गवर्नर महोदय बाल-बाल बचे ।'[4] लाला लाजपतराय की मृत्यु से दुखी होकर भगतसिंह आदि ने स्काट के बदले सेन्डर्स (जो एक उच्च पुलिस अधिकारी थे) को गोली से उड़ा दिया था[5] उस घटना का वर्णन 'आत्मदाह' में भी मिलता है -- 'टेलीफोन खड़का कि लाहौर में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को पिस्तौल से उड़ा दिया गया है । चारों तरफ पुलिस ने पड़ाव डाल दिये हैं और हत्याकारी की तलाश बड़ी सरगर्मी से की जारही थी ।'[6]

'अपराजित' में भी बंगाल में सम्पन्न किए जाने वाले आतंकपूर्ण कार्यों का उल्लेख किया गया है । मेदनीपुर के जिलाधीश जेम्सपेडी पर तीन गोलियां दागी गई

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० १५६.

२- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ४२९.

३- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० ३१५.

४- उमाशंकर, भारत जागउठा(बम्बई : १९५५), पृ० ४३.

५- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २६४.

६- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह, पृ० २७५.

द्वारा दिनदहाड़े कलकत्ता में मारे गये ।[1] 'रंगभूमि' में दरोगा की हत्या का अंकन विनय के मनोभावों द्वारा व्यंजित हुआ है -- 'विनय ने पूछा, तो मालूम हुआ कि इसका (वृद्धा का) पुत्र जसवन्त नगर के जेल का दरोगा था, उसे दिन दहाड़े किसी ने मार डाला ।' . . . . सोफी ने कोरी धमकी न दी थी । मालूम होता है, उसने गुप्त हत्याओं के साधन एकत्र कर लिए हैं ।'[2]

पंजाब के गवर्नर जब पंजाब विश्वविद्यालय का दीक्षान्त-भाषण करके लौट रहे थे, उन पर हरकिशन नामक युवक ने गोली चला दी थी और उन्हें जख्मी कर दिया था ।[3] इसी घटना को 'भारत जागउठा' में इस प्रकार अंकित किया गया है -- 'सवेरे सड़क पर अखबार वाला चिल्लाता जा रहा था -- 'गवर्नर साहब पर गोली का निशाना गवर्नर महोदय बाल-बाल बचे ।'[4] लाला लाजपतराय की मृत्यु से दुखी होकर भगतसिंह आदि ने स्काट के बदले सेन्डर्स (जो एक उच्च पुलिस अधिकारी थे) को गोली से उड़ा दिया था[5] उस घटना का वर्णन 'आत्मदाह' में भी मिलता है -- 'टेलीफोन खड़का कि लाहोर में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को पिस्तौल से उड़ा दिया गया है । चारों तरफ पुलिस ने पड़ाव डाल दिये हैं और हत्याकारी की तलाश बड़ी सरगर्मी से की जा रही थी ।'[6]

'अपराजित' में भी बंगाल में सम्पन्न किए जाने वाले आतंकपूर्ण कार्यों का उल्लेख किया गया है । मेदनीपुर के जिलाधीश पेड्डी पर तीन गोलियां दागी गईं

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० १५६.

२- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ४२९.

३- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० ३१५.

४- उमाशंकर, भारत जागउठा(बम्बई : १९५३), पृ० ४३.

५- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २६५.

६- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह, पृ० २०५.

थीं और अस्पताल में उनकी मृत्यु हुई थी ।[1] इसी घटना का संकेत मन्मथनाथ ने किया है —"बंगाल में बराबर क्रान्तिकारी कार्य जारी थे. . . . सात अप्रैल को मेदिनीपुर के मजिस्ट्रेट कर्नल पेडी क्रान्तिकारी की गोली से मारे गये थे ।"[2]

'चटगांव शस्त्रागार कांड' का क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में विशेष महत्व है । 'असनुला हत्याकांड का वर्णन 'अपराजित' में मिलता है । जो वास्तविक काण्ड है । यथा —"अभी महात्मा गांधी के विलायत रवाना हो जाने की खबर ठंडी नहीं हो पाई थी कि हरिपद नामक चौदह साल के एक लड़के ने चटगांव शस्त्रागार काण्ड के तहकीकात करने वाले पुलिस इन्स्पेक्टर असनुल्ला को खेल के मैदान में गोलियों से उड़ा दिया ।"[4] इस वर्णन में हरिपद की उम्र का अन्तर अवश्य है । शेष वर्णन भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास से यथावत रूप में मिलता है ।

क्रान्तिकारी दल को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए प्राय: दल के गैर जिम्मेदार सदस्य को मौत के घाट उतार दिया जाता था । इस प्रकार की सजा दल के गुप्त कार्यों की सूचना बाहर भेजने पर ही दी जाती थी । 'दादा कामरेड' में यशपाल ने इसी प्रकार की वैयक्तिक घटना का चित्रण किया है । यशपाल और चन्द्र शेखर आजाद के दल की एक महिला कार्यकर्ता सुश्री प्रकाशवती को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया था । यशपाल और प्रकाशवती का वैयक्तिक सम्बन्ध इसका एकमात्र कारण था । 'आजाद' ने यशपाल को गोली मारने की आज्ञा दे दी थी । क्योंकि विलासिता के संदेह में यशपाल का मुखबिर बनने का भय हो रहा था । यशपाल अपने संस्मरणों में स्वयं लिखते हैं कि 'उनके एक साथी वीरभद्र ने बताया कि केन्द्रीय समिति की बैठक हो चुकी है और उसमें

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारीआन्दोलन का इतिहास, पृ० ३२८.

२- यथोपरि, अपराजित (दिल्ली : १९५०), पृ० ११६.

३- यथोपरि, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास , पृ० ३१६.

४- मन्मथनाथ गुप्त, अपराजित, पृ० ११७.

निर्णय हुआ है कि तुम्हें यहाँ बुलाकर शूट कर दिया जाये ।`[1] उपर्युक्त संदर्भ का चित्रण थोड़े से परिवर्तन के साथ `दादा कामरेड` में किया गया है ।

`लिफाफे के भीतर कागज पर अंग्रेजी के टाइप में एक पंक्ति थी ।[2] . . . दादा और बी० एम हरीश के प्राण लेना चाहते हैं उसे बचाओ -- पार्टी का शुभचिन्तक[3]। दादा के रूप में `चन्द्रशेखर आजाद` और बी० एम० के रूप में `धन्वन्तरी` (पंजाब का क्रान्तिकारी नेता) की कल्पना की गई है । हरीश का चरित्र स्वयं यशपाल का अपना है ।

आतंकवाद और बम

ब्रिटिश साम्राज्य को उसके सुख-स्वप्न से जगाने के लिए बम को क्रान्तिकारी आवश्यक समझते थे । इसलिए वे स्वयं ही बम बनाते थे और उसका प्रयोग करते थे । उपन्यासकारों ने बम बनाने वाले क्रान्तिकारियों का तथा उसकी रासायनिक प्रक्रिया का भी वर्णन किया है । जिसमें `बाबा बटेसरनाथ` का `बौक`[4] प्रसिद्ध वीरभद्र तिवारी है ।[5] `मुक्ति के बंधन`, `बलिदान`, `हरिजन`, `पूरब और पश्चिम`, `रक्त मंडल` आदि में भी `बम-दर्शन` का किसी न किसी रूप में वर्णन है ।

वाइसराय की गाड़ी को बम से उड़ाया गया था । जिसमें लार्ड इर्विन यात्रा कर रहे थे । दिल्ली से एक मील दूर रेल की पटरी पर बम के विस्फोट से गाड़ी क्षति-ग्रस्त हो गई थी । उससे एक नौकर को चोट लगी और भोजन कक्ष पूरा क्षतिग्रस्त हो गया ।`[6] उस घटना का चित्रण उपन्यासकारों ने इस प्रकार किया है --

---

१- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-२, पृ० २२२.
२- "Dada and B.M. want to shoot Harish. Save him-- - A friend of the party."
३- यशपाल, दादा कामरेड, पृ० ६५.
४- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० १०३.
५- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-दो,
६- फ्रैंक मोरेस, जवाहरलाल नेहरू जीवनी(इलाहाबाद : लि० न०) पृ० १३४.

भारत के इतिहास में आज तक जो कभी नहीं हुआ था, वह घटना उस दिन हो गई। यहां के अंग्रेज़ी लाट की स्पेशल ट्रेन पर बम फेंका गया जिसके फलस्वरूप आधी ट्रेन नष्ट हो गई और हमारे कमांडर-इन-चीफ लार्ड गाॅसेन की जान चली गई।'[1]

भगवतीचरण वर्मा ने अखबारी सूचना निकाली है -- 'इलाहाबाद में सनसनी फैल गई. . . . . कि सुबह के समय जब वाइसराय दिल्ली वापस आ रहे थे, पुराने किले के पास उनकी स्पेशल ट्रेन के नीचे एक बम फटा। वाइसराय बाल-बाल बच गये। लेकिन स्पेशल ट्रेन के खाने वाले डिब्बे को नुकसान हुआ और एक नौकर घायल हो गया।'[2]

'हरिजन' में भी 'कानपुर रेलवे हाल्ट से सातवीं पुलिया' उड़ाने का उपक्रम हुआ है। यहां क्रान्तिकारी टाइम बम का प्रयोग करते हैं। और उसी से रेलवे की गाड़ी को उड़ाते हैं। उस दृश्य का चित्रण द्रष्टव्य है -- 'गाड़ी की घड़घड़ाहट प्रति क्षण पास आती जा रही थी. . . . आसपास की भूमि हिल रही थी. . . .. सामने कुछ दूरी पर इंजिन की तेज रोशनी से दिन का सा प्रकाश हो रहा था. . . . . . दो सेकिंड. . . .. एक सेकंड. . . .. गाड़ी उस पुल पर से होकर आ रही थी। एक भयंकर विस्फोट हुआ। उसके साथ हृदयविदारक चीत्कार तथा लोहे की झनझनाहट आदि। . . . . दस बजते बजते सारे शहर में सनसनी फैल गई और धर पकड़ का बाजार गर्म हो गया। देसी बम द्वारा. . . . एक नौकर घायल हो गया।'[3]

'रैन अंधेरी' में भी उसी प्रकार का एक अन्य चित्रण भी मिलता है -- क्रान्तिकारी गांधी और इर्विन की बातों से संतुष्ट नहीं थे, 'इसीलिए क्रान्तिकारियों ने सम्मेलन के दिन वाइसराय की ट्रेन उड़ा देने का निश्चय किया. . . यथा समय बम विस्फोट हुआ पर वाइसराय बाल-बाल बच गये. . . परिचारिकों में से एक को चोट

१- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल खण्ड-१, भाग-दो, पृ० ५४.

२- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ३००.

३- सन्तोषनारायण नौटियाल, हरिजन, पृ० ७६-८१.

जाई ।"[१]

वैधानिकता को मादर की चोट देने के लिए 'हिसप्रस' की केन्द्रीय समिति ने यह निश्चय किया कि जिस समय विधानसभा में 'सार्वजनिक सुरक्षा बिल' तथा औद्योगिक विवाद बिल' को बहुमत की उपेक्षा करके वाइसराय की आज्ञा से पारित की घोषणा की जाय उस समय विधान सभा में बम फेंककर भारतीय जनता की आवाज से बहरी सरकार को जगाया जाय । इस घटना का संकेत मन्मथनाथ के उपन्यास में मिलता है -- "क्रान्तिकारियों ने अपने दो प्रमुख नेताओं सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त द्वारा असेम्बली में बम डलवाकर इन बिलों का प्रतिवाद किया । उन दोनों युवकों को कालेपानी की सजा हुई ।"[२] परन्तु इस चित्रण में एक ऐतिहासिक भूल उपन्यासकार ने की है । भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त आदि को फांसी की सजा हुई थी । काले पानी की नहीं ।

क्रान्तिकारियों का व्यक्तित्व चित्रण

(१) भगतसिंह -- इलाचंद्र जोशी ने 'मुक्तिपथ' में राजीव नामक पात्र के मनोभाव में भगतसिंह के मनोभाव की कल्पना की है। राजीव के मन में एक निश्चित आदर्श और उद्देश्य था । भारत मां के अपमान का बदला उसके मन में था । "जब से उसने सुना कि लाला लाजपतराय की मृत्यु में निरंकुश शासनाधिकारियों का कितना बड़ा हाथ है तब से वह और अधिक विचलित हो उठा ।"[३] इसी भाव से विचलित होकर भगतसिंह आदि ने सैन्डर्स की हत्या की थी ।

सैन्डर्स की हत्या के बाद गिरफ्तारी से बचने के लिए भगतसिंह भेष बदल कर और नकली दुल्हन दुर्गा देवी (भाभी) को साथ लेकर कलकत्ता पहुंच गये थे ।[४] "जिस"

१- मन्मथनाथ गुप्त, 'रैन अंधेरी', पृ० २६६.

२- यथोपरि, पृ० २८३.

३- इलाचंद्र जोशी, मुक्ति पथ (इलाहाबाद : १९५१), पृ० २२.

४- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २६४.

में तारा उसी घटना का वर्णन करते हुए कहती है -- 'जब पहली बार मुझ से कहा गया कि मैं एक प्रसिद्ध फरार की बनावटी पत्नी बनकर रेल की यात्रा करूं तो मुझे कुछ झिझक जरूर मालूम हुई थी. . . . . इन महाशय का नाम तो कुछ और था पर ट्रेन में हम लोगों ने इन्द्रकुमार और उसकी स्त्री सरला के नाम से यात्रा की ।'[1] सरला (तारा) और इन्द्रकुमार अन्य कोई नहीं 'दुर्गादेवी' तथा 'भगतसिंह' ही हैं ।

'बीज' के 'सत्यवान को गांधी और जवाहर से भी ज्यादा मुहब्बत थी, सरदार भगतसिंह से क्योंकि उसे फांसी लगी थी और वह जवान था और बहादुर था -- फांसी का झूला झूल गया मर्दाना भगतसिंह ।'[2]

'ज्वालामुखी' के 'अभयकुमार' की कल्पना भी भगतसिंह से की गई है । भगतसिंह की तरह अभयकुमार भी वाइसराय के सामने प्राणों की भीख मांगने के विरुद्ध है । उसकी फांसी रद्द कराने के लिए देश ने बड़ा प्रयत्न किया । उनके पिता सरदार किशनसिंह ने जब अपने पुत्र की प्राण-भिक्षा के लिए अंग्रेज गवर्नर की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा तो उससे देशभक्त भगतसिंह को बड़ा कलक हुआ था । अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हुए वीर भगतसिंह ने खिन्नता भरे स्वर में कहा था, 'पिता ने ही मेरी पीठ में छुरी भोंक दी है ।'[3] उसका एक चित्रण देखिये --

'एक अपील की गई हाईकोर्ट में, वह खारिज हुई । प्रिवीकौंसिल में दूसरी अपील दायर की गई ।. . . पर जब प्रिवीकौंसिल से भी 'अपील खारिज'[4] हो गई तब जनता में निराशा फैल गई । अब केवल वाइसराय के पास दया की अर्जी भर भेजना बाकी

१- मन्मथनाथ गुप्त, चित्र, पृ०८३.

२- अमृतराय, बीज, पृ० २०.

३- यशपाल, सिंहावलोकन(लखनऊ : १९५५), भाग-तीन, पृ० ८२.

४- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २७१.

था । अभयकुमार इन सब बातों के खिलाफ था । वायसराय के सामने हाथ पसार कर भीख मांगी जाय यह उसके स्वाभिमान को बर्दाश्त नहीं था ।[1] अभयकुमार नामक 'भगतसिंह' को छुड़ाने के लिए 'डेपूटेशन' भी मिले । स्वयं गांधी जी ने भी प्रयत्न किया था ।[2] 'पर वायसराय ने यही इशारा किया कि इस मामले में उनके हाथ बंधे हुए हैं, सारी नीति लन्दन से निर्धारित हो रही है ।'[3] भगतसिंह का नारा था 'क्रान्ति जिन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद'।[4] यही भावना अभयकुमार में अन्त तक रहती है । जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट जब पूछता है --

'आपकी अन्तिम इच्छा क्या है ?'

'अन्तिम इच्छा ? वह और क्या हो सकती है, सिवा इसके कि ब्रिटिश साम्राज्य वाद का अन्त हो और मेरा देश स्वतंत्र हो ।'[5]

(२) 'बिस्मिल'--- अभयकुमार में पं० 'रामप्रसाद बिस्मिल' का छायाभास भी उपन्यासकार ने कहीं कहीं ग्रहण किया है । भगतसिंह द्वारा गीता-पाठ करना युक्तिपूर्ण नहीं लगता है परन्तु अभयकुमार को 'बिस्मिल' की तरह फांसी से पूर्व गीता-पाठ करते चित्रित किया गया है । 'जब प्रातःकाल तीन बजे उठकर उसे बताया गया कि पांच बजे उसे फांसी दी जाने वाली है तब . . . . शौचादि से निवृत होकर गीता का पाठ आरंभ किया. . . न हन्यते हन्यमाने. . . शरीरे' ।[6] 'बिस्मिल हमेशा गीता पाठ करते थे उन पर गीता के निम्न श्लोक का विशेष प्रभाव था --'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि. . . . . . निवाम्भसा ।'[7]

१- अनन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २८६.
२- फ्रैंक मौरेस, जवाहर लालनेहरू जीवनी, पृ० १६६.
३- अनन्त गोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २८६.
४- मन्मथनाथ गुप्त, क्रान्तिदूत भगतसिंह और उनका युग (दिल्ली : १९७२), पृ० २०२.
५- अनन्तगोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २९८.
६- यथोपरि, पृ० २९६.
७- 'बिस्मिल,'काकोरी के भेंट, पृ० १५०.

(३) अशफाक उल्ला -- 'रैन अँधेरी' का युसुफ और कोई नहीं काकोरी का अमरशहीद हिन्दू-मुस्लिमों का प्राणप्यारा 'अशफाक उल्ला'[१] ही है। "जिस जेल में युसुफ को फांसी हुई वहां सबसे अधिक जोश रहा। शहर के सारे हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के गले मिलकर उस बुरी तरह रो रहे थे कि कोई अपने प्रिय व्यक्ति के वियोग पर भी क्या रोता होगा।" सत्यवान भी अशफाक का दिवाना है। "भगतसिंह से जरा घटकर जिस दूसरे आदमी की जगह उसके दिल में थी वह था अशफाक उल्ला -- काकोरी केस वाला -- अशफाक उल्ला।

फांसी की तरफ बढ़ते हुए रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने यह शेर पढ़ा था जो तभी से सत्य को याद है।

दरो दीवार पर हसरत से नजर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।[२]

काकोरी के शहीदों को जब फांसीघर की ओर ले जाया जा रहा था तब उन्होंने "अन्तिम बार वंदेमातरम का नाद किया और सुनाई पड़ा --
दरो दीवार पर. . . . करते हैं।"[३]

(४) यशपाल -- क्रान्तिकारी यशपाल और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रकाशवती यशपाल, दोनों ही 'आजाद' के गुप्तदल के सक्रिय कार्यकर्ता थे। दोनों धीरे-धीरे एक दूसरे को चाहने लगे थे[४] अन्त में जेल में ही यशपाल ने शादी कर ली थी। 'बुझते दीप' में नीलिमा और सुधीबाबू की कल्पना उपर्युक्त दोनों ही क्रान्तिकारियों से ग्रहण की गई है। दोनों ही पात्र समाजवादी विचारधारा के भी हैं। नीलिमा का कथन है --

---

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २३१.

२- अमृतराय, बीज, पृ० २२.

३- 'बिस्मिल', काकोरी के भेंट, पृ० २०.

४- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-दो, पृ० १८८.

(३) अशफाक उल्ला -- `रैन अंधेरी` का युसुफ और कोई नहीं काकोरी का अमरशहीद हिन्दू-मुस्लिमों का प्राणप्यारा `अशफाक उल्ला`[१] ही है। "जिस जेल में युसुफ को फांसी हुई वहां सबसे अधिक जोश रहा। शहर के सारे हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के गले मिलकर उस बुरी तरह रो रहे थे कि कोई अपने प्रिय व्यक्ति के वियोग पर भी क्या रोता होगा।" सत्यवान भी अशफाक का दिवाना है। "भगतसिंह से जरा घटकर जिस दूसरे आदमी को जगह उसके दिल में थी वह था अशफाक उल्ला -- काकोरी केस वाला -- अशफाक उल्ला।

फांसी की तरफ बढ़ते हुए रामप्रसाद `बिस्मिल` ने यह शेर पढ़ा था जो तभी से सत्य को याद है।

दरो दीवार पर हसरत से नजर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।[२]

काकोरी के शहीदों को जब फांसीघर की ओर ले जाया जा रहा था तब उन्होंने "अन्तिम बार वंदेमातरम का नाद किया और सुनाई पड़ा --
दरो दीवार पर. . . . करते हैं।"[३]

(४) यशपाल -- क्रान्तिकारी यशपाल और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रकाशवती यशपाल, दोनों ही `आजाद` के गुप्तदल के सक्रिय कार्यकर्ता थे। दोनों धीरे-धीरे एक दूसरे को चाहने लगे थे[४] अन्त में जेल में ही यशपाल ने शादी कर ली थी। `झुकते दीप` में नीलिमा और सुधीबाबू की कल्पना उपर्युक्त दोनों ही क्रान्तिकारियों से ग्रहण की गई है। दोनों ही पात्र समाजवादी विचारधारा के भी हैं। नीलिमा का कथन है --

---

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० २३१.

२- अमृतराय, बीज, पृ० २२.

३- `बिस्मिल,` काकोरी के भेंट, पृ० २०.

४- यशपाल, सिंहावलोकन, भाग-दो, पृ० १८८.

'मैं उनके साथ राजनैतिक षड्यंत्रों में वर्षों से काम करती आ रही थी । धीरे-धीरे हम दोनों ही मन ही मन दाम्पत्य जीवन की कल्पना करने लगे ।'[1]

ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रशेखर आजाद आदि लोग यह अनुभव करने लगे थे कि वैयक्तिक आतंकवाद से अधिक सफलता मिलना संभव नहीं है । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' में ऐसा ही भाव व्यक्त किया है कि जब 'आजाद' उनसे मिला तो 'उसने कहा कि खुद मेरा तथा दूसरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिल्कुल बेकार हैं और उनसे कोई लाभ नहीं है । हाँ वह यह मानने को तैयार नहीं था कि शान्तिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायेगी ।'[2] 'आजाद' से इस मनोभाव का चित्रण कई उपन्यासों में हुआ है । 'भंवरजाल' के निशिनाथ का कथन है -- 'आजादी के मुट्ठी भर दीवानों को लेकर हम यह लड़ाई न जीत सकेंगे । हमें तो जन-जन में स्वराज्य की भावना जगानी है ।'[3] 'जीने के लिए' का मोहन'दा' कहता है -- 'देश की आजादी कौन नहीं पसंद करेगा ? लेकिन एक दो पिस्तौल या बम चला छुप-छिपकर किसी को मार देना. . . . मेरी दृष्टि में उतना लाभदायक नहीं है ।'[4] 'रक्तमंडल' का नरेन्द्र सिंह भी इसी भावना को प्रकट करता है । उसका कहना है -- 'छिपी हत्याओं और पीछे से किये गये हमलों ने आज तक किसी देश को स्वतंत्र नहीं किया और न एकान्त निरीहता और शान्तिप्रियता ही किसी जाति को पराधीनता से छुड़ा सकती है ।'[5]

समाजवाद

दार्शनिक पक्ष

समाजवाद एक ऐसा आन्दोलन है जो किसी देश की पूंजी और भूमि में व्यक्ति-

---

१- दयाशंकर मिश्र, झुकते दीप (दिल्ली : १९५५), पृ० १२९.
२- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, पृ० ३६६.
३- कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु', भंवरजाल, पृ० २२.
४- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० ५४.
५- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्तमंडल, खण्ड १, भाग-१, पृ० ११६

मत अन्तर, प्रतिस्पर्धा को समाप्त करके व्यक्ति की उन्नति के लिए समाज में समान अवसरों की स्थापना करता है। यह एक ऐसा तरीका है जिससे सम्पूर्ण मानव-समाज अपनी आर्थिक-विषमता का शमन करके अपनी योग्यता के अनुसार उसके फलों का रसास्वादन करता है। अंग्रेजी शब्द सोशलिज्म के लिए हिन्दी में साम्यवाद और समाजवाद शब्दों का व्यवहार होता है। सतही दृष्टि से दोनों एक ही भावना को प्रकट करते हैं। यद्यपि सूक्ष्म आधार पर इनमें अन्तर निहित है।[1]

समाजवाद की कोई निश्चित परिभाषा करना असंभव है। प्रबंध के 'अधिकारी' ने इसकी लगभग छ: सौ परिभाषाएं की हैं ऐसा कहा जाता है। इसके अनेक भेद हैं।[2] प्रसिद्ध क्रान्तिकारी यशपाल ने समाजवाद और साम्यवाद का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है कि --'साम्यवाद का अर्थ है -- समाज में सब समान हों और समाजवाद का अर्थ है -- समाज स्वामी हो. . . . साम्यवाद लक्ष्य है और समाजवाद साधन।'[3] लक्ष्य बिना साधन के संभव नहीं है। 'समाजवाद विकासशील एवं वास्तविक तत्वों पर बल देकर संवैधानिक उपायों द्वारा समाज में परिवर्तन लाना चाहता है किन्तु साम्यवाद क्रान्तिकारी उपायों द्वारा. . . . पूंजीवाद का अन्त करने का समर्थक है।'[4] दोनों ही व्यक्ति का उत्थान चाहते हैं और समाज में समानता की कामना करते हैं। शोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित का अन्त करना दोनों का समान लक्ष्य है। मूलत: समाजवाद 'वह आन्दोलन है जो कि उत्पादन के मुख्य साधनों के समाजीकरण पर आधारित वर्गहीन समाज स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है और जो मजदूरवर्ग को इसका मुख्य आधार बनाता है।'[5] मार्क्स ने इसे भौतिकवादी विज्ञान कहा है जिसके मूल में वैज्ञानिक यथार्थवाद है। सामाजिक समानता के लिए राजनीतिक स्वाधीनता का

१- यशपाल, मार्क्सवाद (लखनऊ : १९५४), पृ० १९.

२- Please see - Websters Third New International Dictionary (London: 1961) Vol, L-Z, P. 2162.

३- यशपाल, मार्क्सवाद, पृ० १९-२०.

४- रामकिशोर चतुर्वेदी, 'मनुष्य की युगयात्रा,' हिन्दी विश्वभारती, खण्ड-१०, पृ०३०६५.

५- रामप्रसाद त्रिपाठी (सम्पा०) हिन्दी विश्वकोष(वाराणसी :१९६६), खंड ,पृ०४६४.

संघर्ष अनिवार्य है । उस संघर्ष का सिपाही है सर्वहारा वर्ग ।

रूसी-क्रान्ति की सफलता का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन पर पड़ा । भारतीय नवयुवक मजदूर और कृषकों के क्रियात्मक सहयोग द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति का प्रयत्न करने लगे । उसके लिए सर्वहारा वर्ग की चेतना को जागरित करना अनिवार्य था । क्योंकि रूस के किसान और मजदूरों की सफलता का प्रमाण वह पा चुका था । सन् १९२४ से समाजवादी आन्दोलन का आरंभ भारत में माना जाता है । 'मानवेन्द्रनाथ राय के दिशा-निर्देशन में 'किसान मजदूर पार्टी' की स्थापना हुई और सन् १९२४ तक एक 'अखिल भारतीय साम्यवादी दल' का संगठन भी हुआ ।'[1] 'भारतीय मजदूरवर्ग भी अपनी सामाजिक स्वतंत्रता के लिए देश की स्वाधीनता के लक्ष्य को एकमात्र अन्तिम उपाय मानने लगा ।'[2] भारतीय मजदूर वर्ग की चेतना को जगाने में हिन्दी उपन्यासकार भी समाजवादी आन्दोलन के साथ आगे आया । उपन्यासों में समाजवाद की व्याख्या, मजदूरों और किसानों के शोषणों का कारण, उनसे मुक्ति, उनकी भूमिका आदि के महत्व पर प्रकाश डाला जाने लगा जिससे मजदूर अपने शोषक का अन्त कर सकें । जहाँ तक साम्यवाद और समाजवाद के अन्तर का प्रश्न है प्रस्तुत शोध-प्रबंध में राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में दोनों को एक ही संदर्भ में देखा गया है । क्योंकि साधन-भिन्नता होते हुए भी साध्य दोनों का एक ही रहा है ।

समाजवाद का लक्ष्य क्या है ? मोहन (चढ़ती धूप) कहता है -- 'हमारा एक युद्ध -- एक नारा -- एक लक्ष्य है जो मेहनत करते हैं उन्हीं का राज्य हो । हम राज्य चाहते हैं -- किसानों का जो भूमि के सच्चे स्वामी हैं । हम राज्य चाहते हैं मजदूरों का जो कारखानों और मिलों के सच्चे अधिकारी हैं । हमें शोषण का अन्त करना है । जब तक उसका अंत नहीं होता तब तक राजनैतिक शक्ति कोई अर्थ नहीं रखती ।'[3] अंचीम

१-रामप्रसाद त्रिपाठी (सम्पा०) हिन्दी विश्वकोष (वाराणसी :१९६९), खण्ड- पृ०४७

२- ए० आर० देसाई, सोशल बैकग्राउन्ड आफ इंडियन नेशनलिज्म (बम्बई :१९४८), पृ० ९१.

३- 'अंचल', चढ़ती धूप, पृ० १५१.

समाज की स्थापना के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए एक अन्य नारी पात्र भाभी कहती है-- `बड़े छोटे का यही भेद मिटाकर हमें वर्गहीन समाज की स्थापना करनी है. . .. कैसा मंगलमय होगा वह दिन जब हमारे देश में -- इस महान ऐतिहासिक राष्ट्र में वर्गहीन समाज का निर्माण होगा -- जब सबके बराबर अधिकार -- सबकी एक सी मान्यताएं होंगी । अमृता के लाल झंडे के नीचे मानव का मानव से मिलन होगा ।`[1]

मोहन पुन: मजदूरों को संबोधित करता है और उनका कर्तव्य उन्हें समझाता है । उसका कथन है --`सरमायादारी का नाश करो -- अपने सबके की आजादी के लिए कुरबानी का समुन्दर खोल दो । हमारे सबके की आजादी -- किसान मजदूर की आजादी हिन्दुस्तान की आजादी है ।`[2] नायडू भी सामाजिक समानता की बात करता है -- `हम उत्पादक श्रम का समाजीकरण चाहते हैं -- उसे चारों ओर से घेरने वाले -- लूट खसोट -- छीना झपटी मचाकर बीच में ही हड़प जाने वाले व्यक्तिगत पूंजी और मुनाफे का अन्त चाहते हैं । यही इन्कलाबी समाजवाद हमारे सपनों का प्रेरक है ।`[3] `अंचल` ने पूरे उपन्यास में समाजवाद का दर्शन स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

`राहुल`जी ने साम्यवाद अथवा समाजवाद पर लगाये गये आरोपों का प्रत्युत्तर देने का प्रयास किया है जिससे मार्क्सवाद के बारे में जन-सामान्य की धारणा स्पष्ट हो सके । सोहनलाल से दुक्खू पूछता है कि `मरक्स बाबा का रास्ता हत्या का रास्ता है ।` तब वह उस पर प्रकाश डालता हुआ कहता है --`मरक्स बाबा हत्या का रास्ता नहीं बताते, वह ऐसा रास्ता बताते हैं कि दुनिया में फिर आदमी को आदमी की हत्या करने की कभी जरूरत ही न पड़े ।. . . . मरक्स बाबा ने ऐसा ऐसा रास्ता बताया है कि जोंक ही न रह जाये और दुनियाभर के सारे आदमियों का एक परिवार

१- `अंचल`, चढ़ती धूप, पृ० २४६.

२- यथोपरि, पृ० २६५.

३- यथोपरि, पृ० २८०.

बन जाय । गांधी जी जोंकों (पूंजीपतियों) को भी रखना चाहते हैं और यही जोंकें हत्या की जड़ हैं ।"[1]

भारत की गरीबी, उसका शोषण, छोटे-बड़े की समस्या, भूखे-नंगों का सवाल, गरीब और अमीर जैसे रहे हैं वैसे ही बने रहेंगे । मधुर इन प्रश्नों पर सोचता है । परन्तु उसे आशा की किरण केवल क्रान्ति में दिखाई देती है । तब वह स्वतः कहता है --

"ओ समानता के युग ! ओ आशा और उत्साह देने वाले समय ! ओ जीने का संदेश लाने वाले इन्कलाब !!! तुम आओ, तुम्हारा स्वागत है, देर करोगे तो स्वागत करने वालों में से इन्तजार करते-करते ही मर जायेंगे ।. . . ओ मजलूमों के मसीहा आओ ।"[2]

'इन्सान' की कमला का कहना है --"अभी भारत का मजदूर अच्छी तरह ट्रेन्ड नहीं हुआ है । मजदूर वर्ग अभी केवल नारों को समझता है, सिद्धान्त को नहीं । जब तक वह यह नहीं समझने लगेगा कि कम्युनिज्म ही उसकी अपनी चीज है और इसके अतिरिक्त सब उसे भुलावे में डालने वाले मायाजाल हैं. . . . उसका खून चूसने के लिए जोंकें हैं, तब तक वह अपना निश्चित मार्ग निर्धारित नहीं कर सकेगा ।"[3] 'दादा कामरेड' में उपन्यासकार यशपाल समाजवाद की व्याख्या करते हुए कहते हैं --"हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए । एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है । यह समाज में निरन्तर होने वाली हिंसा और डकैती है । इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे

१- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो (इलाहाबाद : १९४८), पृ० २६६.

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर (लखनऊ : १९५३), पृ० १४१.

३- [illegible] शर्मा, इन्सान (दिल्ली : १९५१), पृ० १२२.

जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के लिए हमने प्रयत्न किया ।"[1] मजदूर-आन्दोलन के उद्देश्य को भी स्पष्ट किया गया है --"पहले मजदूरों, सब पेशों के मजदूरों को आर्थिक प्रश्नों पर संगठित करना, फिर उनके संयुक्त मोर्चे के हाथ में राजनैतिक शक्ति देना, यही हमारी लाइन है ।"[2]

मजदूर वर्ग अधिक से अधिक समाजवादी बन सके इसके लिए उनके सामने समाजवादी व्यक्तित्व की प्रशंसा प्रस्तुत की गयी है । यथा -- "मगर भाई कुछ भी हो ये कम्युनिस्ट होते बड़े मेहनती हैं । शान्ति भी तो कम्युनिस्ट है, शान्तिदास, कितना काम करती है, . . . बाकी लड़कियों को देखती हूँ उन्हें अपने पाउडर लिपिस्टिक से ही फुर्सत नहीं ।"[3]

प्रताप ने अपनी रचना में आर्थिक विषमता को मिटाने की बात कही है । "अर्थ वैषम्य मिटकर रहेगा यह चाहे आज हो चाहे चार रोज बाद लेकिन होना है । . . . . समय रहते जो चेत गये सो चेत गये वर्ना किसकी क्या गत होगी कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।"[4]

डा० शेफाली पूछती है --"यह भौतिकवाद क्या बला है ?"

चौधरी तत्क्षण बोल उठा, "भौतिकवाद -- नास्तिकवाद ।"

"ठीक है भौतिकवाद नास्तिकवाद होते हुए भी वह सत्य है ।"

प्राणनाथ बोला ।

"कैसे ?"

प्राणनाथ ने कहा --"जड़वाद का पहला सिद्धान्त है कि सब चीजें बदलने वाली हैं । परिवर्तनशील हैं । वस्तुओं का स्थान बदलता रहता है । उनके घटक गुण-

---

१- यशपाल, दादा कामरेड, पृ० २२७.

२- यशपाल, यथोपरि, पृ० २७६.

३- अमृतराय, बीज, पृ० १०८.

४- प्रताप, गांधी चबूतरा, पृ० १६.

धर्म सब बदलते रहते हैं ।'[1]

'निर्मंत्रण' का रचनाकार भी समाजवाद पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि --'उत्पादन के जितने भी साधन हैं उन पर प्रभुत्व यहाँ स्थापित है उस समाज का जो न श्रम का उचित मूल्यांकन करता है, न बौद्धिक प्रयोगों का ।. . . . ये सूदखोर, ये महाजन, लगानखोर जमींदार, हराम खोर व्यापारी और उनके दलाल, रिश्वतखोर हाकिम और अहलकार, शाब्दिक विवादों के पेशेवर वकील-- सबके सब संगठित रूप से हमारा जो शोषण करते हैं उसी का तो कुफल हम भोग रहे हैं ।'[2]

अन्य उपन्यासों में समाजवाद के दार्शनिक पक्ष का चित्रण हुआ है । यथा मन्मथनाथ (जिव)[3], यशपाल (मनुष्य के रूप)[4], 'मिश्र बंधु' (स्वतंत्र भारत)[5], इलाचंद्र जोशी (संन्यासी)[6], रांगेय राघव (सीधा-सादा रास्ता)[7], प्रतापनारायण श्रीवास्तव (बयालीस)[8] आदि ।

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन तथा भगतसिंह तथा 'आजाद' के युग की समाप्ति के उपरान्त आतंकवादी आन्दोलन मृत प्राय: हो गया था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उग्रवाद की भावना उभरने लगी थी । क्योंकि भारतीय सरकार के गुप्त दस्तावेजों में यह कहा गया है कि 'आतंकवाद समाजवाद (कम्युनिज्म) में और समाजवाद, भारती राष्ट्रीय कांग्रेस में विलीन होकर प्राधान्य होता जा रहा है ।[9] जिसका परिणाम यह

१- उदयशंकर भट्ट, डा० शेफाली, पृ० १८४.
२- भगवतीप्रसाद वाजपेयी, निर्मंत्रण, पृ० ११४.
३- मन्मथनाथ गुप्त, जिव, पृ० २२-२४.
४- यशपाल, मनुष्य के रूप(इलाहाबाद : १९७२), पृ० १९९.
५- 'मिश्र बंधु', स्वतंत्र भारत (लखनऊ : २००७ वि०), पृ० २२.
६- इलाचंद्र जोशी, संन्यासी (इलाहाबाद : २०१९ वि०), पृ० १९२.
७- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० १२५,२३९ तथा २७७.
८- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० १४३ व १४८.
९- स्टेटसमैन, (दैनिक) दिल्ली : जुलाई ११, १९३६, पाण्ड प्रोसीडिंग्स: भारत सरकार गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली सं० ३३।९।१९३६ (राजनीतिक).

धर्म सब बदलते रहते हैं ।`[१]

`निर्मंत्रण` का रचनाकार भी समाजवाद पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि --`उत्पादन के जितने भी साधन हैं उन पर प्रभुत्व यहाँ स्थापित है उस समाज का जो न श्रम का उचित मुल्यांकन करता है, न बौद्धिक प्रयोगों का ।. . . ये सूदखोर, ये महाजन, लगानखोर जमींदार, हराम खोर व्यापारी और उनके दलाल, रिश्वतखोर हाकिम और अहलकार, शाब्दिक विवादों के पेशेवर वकील-- सबके सब संगठित रूप से हमारा जो शोषण करते हैं उसी का तो कुफल हम भोग रहे हैं ।`[२]

अन्य उपन्यासों में समाजवाद के दार्शनिक पक्ष का चित्रण हुआ है । यथा मन्मथनाथ (जिव),[३] यशपाल (मनुष्य के रूप),[४] `मित्र द्वय` (स्वतंत्र भारत),[५] इलाचंद्र जोशी (संन्यासी),[६] रांगेय राघव (सीधा-सादा रास्ता),[७] प्रतापनारायण श्रीवास्तव (बयालीस)[८] आदि ।

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन तथा भगतसिंह तथा `आजाद` के युग की समाप्ति के उपरान्त आतंकवादी आन्दोलन मृत प्राय: हो गया था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उग्रवाद की भावना उभरने लगी थी । क्योंकि भारतीय सरकार के गुप्त दस्तावेजों में यह कहा गया है कि `आतंकवाद समाजवाद (कम्युनिज्म) में और समाजवाद, भारती राष्ट्रीय कांग्रेस में विलीन होकर प्राधान्य होता जा रहा है ।[९] जिसका परिणाम यह

१- उदयशंकर भट्ट, डा० शेफाली, पृ० १८४.
२- भगवतीप्रसाद वाजपेयी, निर्मंत्रण, पृ० ११४.
३- मन्मथनाथ गुप्त, जिव, पृ० २३-२४.
४- यशपाल, मनुष्य के रूप(इलाहाबाद : १९७२), पृ० १६६.
५- `मित्र द्वय`, स्वतंत्र भारत (लखनऊ : २००७ वि०), पृ० २२.
६- इलाचंद्र जोशी, संन्यासी (इलाहाबाद : २०१६ वि०), पृ० १६२.
७- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० १२५.२३६ तथा २७७
८- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ०
९- स्टेट्समैन, (दैनिक) दिल्ली : जुलाई ११,
गृह-विभाग, गोपनीय पत्रावली सं० ३३१६।

हुआ कि 'सन् १९३४ में पटना-कांग्रेस अधिवेशन के समय ही वामपंथी विचारकों ने 'अखिल-भारतीय समाजवादी दल' की स्थापना कर ली थी ।'[१] उक्त पार्टी का उद्देश्य कांग्रेस को प्रगतिशील बनाना था ।

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय समाजवादी दल के कार्य-कलापों का अंकन भी यत्र-तत्र मिलता है । समाजवादी दल के प्रमुख नेता थे -- बाबू सम्पूर्णानंद, आचार्य नरेन्द्रदेव, तथा जयप्रकाश नारायण आदि । अनेक नवयुवक धीरे-धीरे समाजवादीदल में भरती होने लगे । 'बलिदान' के गोपा, नलिन तथा रागिनी भी 'कांग्रेस समाजवादी पार्टी में भर्ती हो गए ।. . . . बालरवि भी पूरे जोश और खरोश के साथ नौ-जवानों को संगठित करने लगे ।'[२] यही नहीं 'योजनाएं तैयार कर अरुणा एवं नलिन ने दिल्ली में समाजवादी नेताओं की एक बैठक बुलाई । जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन, बाबा राघवदास आदि प्रसिद्ध नेता दिल्ली पधारे ।'[३] आगामी क्रान्ति पर जयप्रकाश ने विवेचना करते हुए कहा --'ईश्वर के भरोसे पर देसी शस्त्रों से युद्ध करना या मरना होगा ।. . . . फौजों में बगावत का मंत्र फूंको. . . . सन् अठारह सौ सतावन की तरह आग भड़केगी ।. . . . उस युद्ध की आग से स्वतंत्र भारत निकलेगा ।'[४]

'देशद्रोही' में 'समाजवादी पार्टी' के बनने के कारणों पर प्रकाश डाला गया है --'ज्यों-ज्यों उग्र कार्यक्रम के पक्षपाती, समाजवादी लोग परिवर्तन की पुकार को ऊंचा करने लगे, नम्रता और शान्ति के रूप में प्राचीनता केसमर्थक उनके विरुद्ध होने लगे । कांग्रेस के किसी भी काम या कार्यक्रम को पूरा करने के समय यह प्रश्न अनिवार्य रूप से उठ खड़ा होता कि वह कार्य उग्रदल के नेतृत्व में होगा या दक्षिण पक्ष के ।'[५]

१- पट्टाभिसीता रामय्या, कांग्रेस का इतिहास, पृ० ७, खण्ड-दो.

२- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० २२.

३- यथोपरि, पृ० ६६.

४- यथोपरि, पृ० ६६.

५- यशपाल, देशद्रोही (इलाहाबाद : १९७२), पृ० ५६.

'हमारे कांग्रेस के मेम्बरों को भी सोशलिस्ट पार्टी का मेम्बर बना लिया है।[1]' यह वाक्य तत्कालीन सोशलिस्ट पार्टी की निर्माण-प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है। 'गोदान' का रचनाकार भी समकालीन समाजवादी प्रभाव को अपनी रचना में स्थान दिये बगैर न रह सका। प्रेमचन्द जी लिखते हैं --'गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ (कि) हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूँ।[2]' इसी प्रकार 'इस डैमोक्रेसी में पवित्र नहीं रहो' 'कौंसिलों से बेजार होना' 'उनमें आग लगाना, उन पर जमींदारों, व्यापारियों का राज्य होना' आदि प्रसंगों द्वारा भी युगीन समाजवादियों के मनोभावों को गोदान में आभासित किया गया है।

'नई इमारत' में समाजवादी दल की उस नीति का भी संकेत उपन्यासकार ने किया है जिसके अनुसार समाजवादी दल का उद्देश्य 'कांग्रेस के भीतर ही रहकर उसे नया रूपाकार प्रदान करना था।[3] 'हम राष्ट्रीय समाजवादी हैं। . . . . यहाँ हमारा रोल उल्टा है। हम कांग्रेस के 'राइटविंग' को फैसिज्म की तरफ जाने से रोकेंगे।[4]' नागार्जुन ने 'बलचनमा' में भी इसी भाव को दुहराया है --'मालूम हुआ है कि कांग्रेस के अन्दर ही इन लोगों का एक अलग दल बन गया है। इस दल में बूढ़े लीडर नहीं हैं . . . . पर भैया, सोसलिस्टों का क्या कहना था? उनका कहना यही था कि दो चार साधु महात्मा के गिड़गिड़ाने से अंग्रेजों का दिल नहीं बदलेगा। समूची जनता आपस में भेद-भाव भुलाकर उठ खड़ी होगी, तभी अंग्रेज भागेगा।[5]' 'समाजवादी दल' की

१- फणीश्वरनाथ 'रेणु,' मैला आंचल (दिल्ली : १९५४), पृ० १२४.

२- प्रेमचंद, गोदान (इलाहाबाद : १९७२), पृ० ५२.

३- "The Congress socialist Party was formed not to develop in to a rival to the Congress but to work with in the Congress, to strengthen it, to mould and shape its policies." Jaya Prakash Narayana, "To words struggle" P. 137.

४- 'अंचल,' नई इमारत, पृ० १४४.

५- नागार्जुन, बलचनमा, पृ० १६३-६४.

नीतियों से राष्ट्रीय आन्दोलन में नई हलचल उत्पन्न हो गई थी और अन्य दलों के सदस्य उस दल की ओर आकर्षित होने लगे। मथुरादत्त भी अपने को अलग-थलग न रख सका और "उधर मथुरादत्त जो एक दो बार जेल गये तथा वहां के जीवन में इनकी जान-पहचान एक समताबादी महाशय से हो गई. . . . उनकी संगति से इनका मेल पूरी समताबादिनी पार्टी से हो गया तथा वे उसके सदस्य भी बन गये।"[1] कांग्रेस और समाजवादी दल में आर्थिक कार्यक्रम के कारण ही मतभेद हो गया था। देवराज का कथन है--"मैं मानता हूं, कि कांग्रेस के नरम और गरम दल में पार्थक्य शुरू हो गया है। वह पार्थक्य आर्थिक प्रोग्राम के कारण है, इसीलिए उसे स्थायी तौर पर मिटाया नहीं जा सकता।"[2]

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी" के सदस्य बाबू सम्पूर्णानन्द ने "भारतीय समाजवादी दल" की "नीतियों का घोषणापत्र"[3] तैयार किया था उसमें आर्थिक कार्यक्रम को ही प्रथम प्रश्रय दिया गया था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता के० एम पन्नीकर की भी यही मान्यता है।[4] चाहे कांग्रेस दल हो या समाजवादी दल दोनों का उद्देश्य तो एक ही था। दोनों ही पूंजीवाद को समाप्त करना चाहते थे। दयानाथ का कथन है --"हम सब साम्यवाद (समाजवाद) चाहते हैं। पर उसे प्राप्त करने के तरीकों पर हमारा आपका मतभेद है, खैर वह हुआ करे। उससे क्या होता है ? वैसे हमारा आपका ध्येय तो एक है।"[5]

सोवियत रूस का प्रभावांकन

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त महान् रूसी क्रान्ति ने मार्क्स के चिन्तन का प्रसार

१- 'मिश्र बंधु', 'स्वाधीन भारत', पृ० २०-२१.

२- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० ३०६.

३- स्टेट्समैन, दिल्ली (डाक संस्करण) अगस्त ७,१९ ३४ वाइड प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग गोपनीय राजनीतिक पत्रावली सं० ४।१।३४.

४- "Socialism entered in India as a body of ideas providing an economic bearer to the Congress movement." K.M. Pannikar, The Foundation of New India, P. 194.

५- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० २८०.

विश्व के कोने-कोने में करने का प्रयत्न किया । विशेषत: एशियाई-पराधीन राष्ट्रों के लिए मार्क्स का चिन्तन एक नवीन आशामय प्रेरणा के रूप में प्रकट होने लगा । भारतीय समाजवादी अथवा साम्यवादी प्रयत्नों के द्वारा ब्रिटिश-साम्राज्य के विरुद्ध आयोजित आन्दोलन, सोवियत रूस के आदर्शों पर कार्यरत होने लगा । भारतीय राष्ट्रीय-कांग्रेस की सहानुभूति भी सोवियत जनता के साथ थी । 'इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस' भी अपने वार्षिक अधिवेशनों में 'रूसी वर्षगांठ' पर बधाई का प्रस्ताव पारित करती रहती थी ।[1] ब्रुसेल्स में सम्पन्न 'दलितराष्ट्र संघ कांग्रेस' (१९२७ ई०) में जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था ।[2] भारतीय राष्ट्रीय जन-जीवन पर रूस की महान क्रान्ति का जो प्रभाव पड़ा जवाहरलाल नेहरू ने उस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है --'सोवियत इन्कलाब ने हमारे समाज को बल्लियों आगे बढ़ाया है और ऐसी चमकीली ज्योति पैदा की है, जिसे दबाकर बुझाया नहीं जा सकता ।'[3]

हिन्दी उपन्यास भी भला उस ज्योति से अछूते कैसे रहते ? उपन्यासकारों ने किसी न किसी रूपमें सोवियत प्रभाव का चित्रांकन करने का प्रयास किया है ।

'प्रेमाश्रम' का बलराज कहता है --'मेरे पास जो पत्र आया है, उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों का राज है । वह जो चाहते हैं करते हैं । उसी के पास कोई और देश बलगारी है. . . . (वहां) अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है ।'[4] प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में भी सोफी के द्वारा आतंकवादी आन्दोलन के चलाये जाने पर उसे रूसी 'बोल्शेविक' पार्टी की संज्ञा देते हुए लिखा है --'इस बोल्शेविक आन्दोलन को शान्त करने में रियासत की सहायता कीजिये । सोफी जैसी चतुर, कार्य-

---

१- एन० एन० मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १९२७), खण्ड-दो, पृ० ११७.

२- जवाहरलाल नेहरू, कुछ पुरानी चिट्ठियां (नई दिल्ली : १९६०),पृ० ६६.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (नई दिल्ली : १९६०), पृ० ३६.

४- प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० ४३.

के कोने-कोने में करने का प्रयत्न किया। विशेषतः एशियाई-पराधीन राष्ट्रों र मार्क्स का चिन्तन एक नवीन आशामय प्रेरणा के रूप में प्रकट होने लगा। भार-समाजवादी अथवा साम्यवादी प्रयत्नों के द्वारा ब्रिटिश-साम्राज्य के विरुद्ध आयो-आन्दोलन, सोवियत रूस के आदर्शों पर कार्यरत होने लगा। भारतीय राष्ट्रीय-की सहानुभूति भी सोवियत जनता के साथ थी। 'इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस' नने वार्षिक अधिवेशनों में 'रूसी वर्षगाँठ' पर बधाई का प्रस्ताव पारित करती थी।[1] ब्रुसेल्स में सम्पन्न 'दलितराष्ट्र संघ कांग्रेस' (१६२७ ई०) में जवाहरलाल ने कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था।[2] भारतीय राष्ट्रीय जन-जीवन र की महान क्रान्ति का जो प्रभाव पड़ा जवाहरलाल नेहरू ने उस पर प्रकाश डालते लता है -- 'सोवियत इन्कलाब ने हमारे समाज को बल्लियाँ आगे बढ़ाया है और जमकीली ज्योति पैदा की है, जिसे दबाकर बुझाया नहीं जा सकता।'[3]

हिन्दी उपन्यास भी भला उस ज्योति से अछूते कैसे रहते ? उपन्यासकारों ने म किसी रूपमें सोवियत प्रभाव का चित्रांकन करने का प्रयास किया है।

'प्रेमाश्रम' का बलराज कहता है -- 'मेरे पास जो पत्र आया है, उसमें लिखा रूस देश में काश्तकारों का राज है। वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास और देश बलगारी है. . . . (वहाँ) अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज है।'[4] प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में भी सोफी के द्वारा आतंकवादी आन्दोलन के चलाये पर उसे रूसी 'बोल्शेविक' पार्टी की संज्ञा देते हुए लिखा है -- 'इस बोल्शेविक ोलन को शान्त करने में रियासत की सहायता कीजिये। सोफी जैसी चतुर, कार्य-

---

एन० एन० मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १६२७), खण्ड-दो, पृ० ११७.

जवाहरलाल नेहरू, कुछ पुरानी चिट्ठियाँ (नई दिल्ली : १६६०), पृ० ६६.

जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी (नई दिल्ली : १६६०), पृ० ३६.

प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० ६३.

शील धुन की पक्की युवती के हाथों में यह आन्दोलन कितना भयंकर हो सकता है।"[1] राजा साहब 'रंगभूमि' में सूर के आन्दोलन से जब तिलमिला उठते हैं तो वह अनायास ही बोल उठते हैं --"अगर साम्यवाद का यही अर्थ है तो ईश्वर हमें इससे बचाये।"[2]

मजदूर वर्ग के लिए तो लेनिन महान भगवान शंकर से कम नहीं है। "जहाँ पहले भगवान शंकर की तस्वीर लगी थी वहाँ अपनी मिलों के मजदूरों का वेतन ड्योढ़ा करने वाले दिन विजय के कहने से रस्तोगी ने लेनिन की तस्वीर लगादी थी।"[3] क्रान्ति-कारियों से पुलिस परेशान रहती थी। 'मार्क्स' उनका प्रेरक था। 'मार्क्स' को ही पुलिस सभी उपद्रवों की जड़ मानती थी। पुलिस का सिपाही मार्क्स की फोटो खोलकर कहता है --"हुजूर यह दढ़ियल ही असली आफत का परकाला है।"[4] मुन्नी की भी कामना है कि "हमारे देश में कम्युनिज्म आ जाये तो कितना अच्छा हो।"[5] कामरेड आजाद का कहना है कि -- "भाई रूस की बात ही अलग रही। वह जादू का देश है। बर्नार्डशा ने एक जगह लिखा है कि रूस संसार का स्वर्ग है। विमल बोला --"और भारत क्या है?"

"नरक। रूस की तुलना में यह नरक है।"[6]

वियोगी में 'लेनिन,' 'स्तालिन,' 'गोर्की,' 'त्रात्स्की' तथा 'मोलोतोव' के अलावा 'मुसोलिनी' आदि का भी प्रसंगवशात वर्णन किया गया है। कामरेड आजाद तो 'भारत को रूस का रूपदेना' चाहता है। "यदि समाजवाद रक्त-मांस स्पर्शहीन वन्य कटाकटी मात्र होता तो वह रूस ऐसे (जैसे) एक विराट देश को जहाँ काल्पनिक मनुष्य नहीं वास्तविक मनुष्य रहते हैं कभी आन्दोलित तथा आलोड़ित कर अपने साथ

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ४२२.

२- यथोपरि, पृ० २४६.

३- उपेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर, पृ० १४६.

४- अमृतराय, बीज, पृ० २१७.

५- भैरवप्रसाद गुप्त, सत्ती मैया का चौरा (इलाहाबाद : १९५९), पृ० ५२८.

६- मोहनलाल महतो 'वियोगी,' विसर्जन, पृ० १३६.

नहीं ले जा सकता ।"[1] मजूर भी भारत के मजदूरों को रूस के पद चिह्नों पर चलने की बात कहता है --"रूस में गरीब किसानों और मजदूरों ने वहां के सरमायादारों की ताकत से पहली बार टक्कर ली और दुनिया में एक नये इन्कलाब को जना कर दुनिया के सारे गरीबों, किसानों, मजदूरों को एक नई राह दिखाई. . . . हिन्दुस्तान का हर मजदूर उसी राह पर चलेगा ।"[2]

वृन्दावनलाल वर्मा ने भी 'अचल मेरा कोई' में कहा है कि --"रूस की निन्दा तो बहुत की जाती है परन्तु अभी उससे बहुत सीखने को पड़ा है ।"[3] 'जीने के लिए' का देवराज का कथन है --"सोवियत शासन को रूसी मजदूरों का ही मत समझो, रूस में साम्यवाद की विजय सारे संसार के मजदूरों की विजय है । रूस के पूंजीपतियों की पराजय को दुनिया के सभी पूंजीपति अपनी पराजय समझ रहे हैं ।"[4] रूस के प्रति दुलराम के मन में बड़ी ही जिज्ञासा भरी हुई है । भैया से वह कभी 'बोलशेविक दल' के बारे में प्रश्न करता है तो कभी 'कमेरों' की पताका के बारे में और कभी 'कमेरों' की जोंकों से मुक्ति के उपाय के बारे में ।

भैया दुलराम के दुखी मन को समझाते हुए कहता है --"रूस में मारक्स बाबा के चेलों को बोलशेविक कहा जाता है ।"[5] और झंडा ? 'कमेरों का झंडा लाल चौकोर होता है । रूस के झंडे पर हंसिया और हथौड़ा का चीन्ह बना रहता है । हंसिया है किसानों का हथियार और हथौड़ा है मजदूरों का । झंडे का लाल रंग कमेरों का है ।[6] शेष रहा जोंकों से मुक्ति की जिज्ञासा का उत्तर । उसका समाधान करते हुए भैया का पुनर्कथन

१- मन्मथनाथ गुप्त, जिच, पृ० ३०.

२- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल (इलाहाबाद : १९५७), पृ० १०८.

३- वृन्दावन लालवर्मा, अचल मेरा कोई, पृ० ६३.

४- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २०२.

५- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० ८६.

६- यथोपरि , पृ० ६२.

है कि 'दुनिया भर की जोंकें कम्युनिस्टों से बहुत डरती हैं। कम्युनिस्टों ने कमेरों की लड़ाइयां खूब बहादुरी से लड़ी हैं, अपना सर्वस होम दिया है। रूस से जोंकों का राज उन्होंने ही खतम किया।'[1]

मजदूर-आन्दोलन

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ मजदूरों का संबंध परम्परागत रहा है। लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी से ही मजदूर-वर्ग की सहानुभूति राष्ट्रीय नेताओं के साथ रही है। 'मजदूर आन्दोलन के इतिहास में तिलक महोदय की गिरफ्तारी के विरुद्ध उनकी वह प्रथम हड़ताल थी।'[2] यद्यपि भारत में ट्रेड यूनियन आन्दोलन का सूत्रपात लगभग सन् १९१९ ई० से ही आरंभ हुआ। प्रथम विश्व-महासमर की विकराल विभीषिका ने भारतीय श्रमजीवी को स्वचिन्तन के लिए मजबूर किया। 'अमृतसर कांग्रेस' (१९१९ ई०) ने भी मजदूरों के चतुर्दिक विकास हेतु उनके संगठन के निर्माण के लिए प्रस्ताव पारित किया था।[3] सन् १९२० के लगभग मास्को से दीक्षा पाकर कुछ भारतीय समाजवाद का प्रचार करने के लिए भारत लौट आये थे। मजदूर वर्ग में समाजवाद का इतना प्रसार और प्रचार सन् १९२४ ई० तक हो गया था कि उसका प्रथम परिणाम 'कानपुर-षड्यंत्र' के रूप में सामने आया।[4] मजदूरवर्ग में समाजवादी चेतना के प्रचार का एक मात्र उद्देश्य खेत और खलिहानों के साथ-साथ कल और कारखानों में हड़ताल कराकर ब्रिटिश-साम्राज्य का अन्त करके देश को स्वाधीन करना था।[5]

कानपुर षड्यंत्र

कानपुर की ऐतिहासिक मजदूर-हड़ताल को 'इन्दुमति' में वर्णनात्मक रूप में

१- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० ७५.
२- अमृतराय, नई समीक्षा (बनारस : २००० ई०), पृ० २४२.
३- कन्हैयालाल, कांग्रेस के प्रस्ताव (बनारस : १९३१), पृ० ३७२.
४- प्रोसीडिंग्स आफ भारत सरकार गृह-विभाग, राजनीतिक गुप्त पत्रावली सं० ७।७।१९३७.
५- "And that workers and revolutionaries must assist the peasants by transforming individual strikes in to a general political strike. -x-x-x- a nation wide agitation in favour of complete independence, x-x-x." Procs. Govt. of India Home Political Deptt. Secret file No. 7/7/1937 (Pol.)

प्रस्तुत किया गया है -- `कानपुर में मजदूरों की हड़ताल की तैयारियाँ चल रही थीं। लखनऊ की हड़ताल से यह हड़ताल कहीं बड़ी होने वाली थी।`[1]

रांगेय राघव ने भी उक्त हड़ताल का चित्रण करने का प्रयास किया है। ब्रह्मदत्त और शंकर हड़ताल का आयोजन करते हैं। उसी का चित्र प्रस्तुत है -- `अब कहीं एक महीने पहले सबको लेकर शंकर कानपुर आ सका था। मगर इसी बीच में ब्रह्मदत्त ने मिल एरिया में जाकर मजदूरों को जो बताया कि वे अपनी हालत सुधार सकते हैं तो उनकी आँखें खुलीं।. . . . मजदूरों ने इसे बहुत आसानी से समझा कि देश की बात रोटी की बात है, रोटी की बात देश की बात है। और जो बात रोटी की नहीं वह देश की नहीं है और जो देश की बात है उसके लिए जरूरी है कि वह रोटी की बात हो। पर ऐसे मजदूर बहुत कम थे। उन दिनों मजदूरवर्ग इतना चेतन नहीं हुआ था।`[2] क्योंकि वह प्रथम प्रयास मजदूर नेताओं का था। फिर भी उनका प्रयास व्यर्थ नहीं गया। `सुनते ही सुनते हजारों मजदूरों की भीड़ उठकर खड़ी हो गई।. . . . दरोग भूपसिंह भाग खड़ा हुआ। मजदूरों ने हर्ष से नारा लगाया -- रोटी के भूखे. . . .. `मुर्दाबाद`

ब्रह्मदत्त ने पुकार कर कहा -- `हिन्दुस्तान. . . . . . .।`

हजारों गंभीर कंठों ने उत्तर दिया -- `करेंगे आजाद।`

कानपुर, गदर और अंग्रेजी जुल्मों के समय का वह बुझा अंगारा दहक उठा। उस समय उन भूखे और गरीब इन्सानों की वज्र हुंकारों से कानपुर के अत्याचारी थर्रा उठे।`[3]

`मशाल` में पुनः कामरेड युसुफ ऐलान करता है -- `हम हड़ताल शान्तिपूर्वक चलाना चाहते हैं।. . . लेकिन मिल मालिकों और कांग्रेसी नेताओं ने पुलिसों और फौजियों की मदद से हमारी हड़ताल तोड़ने की कोशिश की तो मजदूर सभा अपनी पू

१- सेठ गोविन्ददास, इन्दुमती (दिल्ली : १९५८), पृ० ३३६.

२- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० २६०.

३- यथोपरि, पृ० २६८-६९.

ताकत से उनका मुकाबिला करेंगी और कानपुर में मजदूरों और मिल-मालिकों में ऐसा संघर्ष होगा, जो मजदूर वर्ग के इतिहास में हमेशा अमर रहेगा ।"[1]

'मेरठ षड्यंत्र'

असहयोग-सत्याग्रह के स्थगन के बाद 'कानपुर-षड्यंत्र' के अतिरिक्त सन् १९२७-२८ में श्री अमृतपाद डांगे और श्री विट्ठल भाई पटेल के नेतृत्व में बम्बई में मजदूरों की हड़ताल हुई । इसी तरह की हड़ताल बम्बई के साथ-साथ बंगालमें भी हुई ।[2] जब हड़ताल कमजोर होने लगी तब देश के भिन्न-भिन्न स्थानों से ट्रेड यूनियन नेताओं को मार्च १९२९ ई० में गिरफ्तार करके मेरठ लाया गया । और उन पर ब्रिटिश साम्राज्य केप्रति अखिल भारतीय स्तर पर 'कम्युनिस्ट षड्यंत्र' रचकर विद्रोह करने का अभियोग चलाया गया ।[3] जिसे मेरठ-षड्यंत्र कहा जाता है । अभियुक्तों ने ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा करने की बात स्वयं अपनी एक अपील में स्वीकार की थी ।[4] उपर्युक्त षड्यंत्र में 'इकतीस व्यक्तियों'[5] पर मुकदमा चला । 'कम्यूनिस्टों की इस ताकत को देखकर सरकार और घबराई और देश भर के कोने-कोने से गिरफ्तार करके जोशी, अधिकारी डांगे आदि इकतीस कम्यूनिस्टों पर मेरठ में मुकदमा चला ।'[6] 'राहुलने उपर्युक्त वर्णन में यथार्थवाद का भावाबोध ऐतिहासिक-घटना निरूपण के रूप में किया है । अभियुक्तों की नामावली भी सही है ।

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० २०८.

२- सुभाषचन्द्र बोस, दि इंडियन स्ट्रगल, पृ० ८८-८९.

३- दि ट्रिब्यून (दैनिक) लाहौर, दिनांक मार्च २२,२४, १९२९.

४- "It is an episode by the class struggle. It is launched and conducted as part of the Imperialist British Government of India to strike a blow at that force which it recognises as the real enemy which will ultimately bring about its over through."
N.S. Desai, The Communist Reply, P. I.

५- N.N. Mitra, (ed) The Indian Annual Register(Calcutta: 1930) Vol.I, P. 19.

६- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० २०६.

'मेरठ-षड्यंत्र' की अभियुक्त संख्या का, उन पर लगाये गये आरोप आदि के बारे में 'निर्देश' में भी वर्णनात्मक संकेत उपलब्ध होता है --

'नवीन चुपचाप सुन रहा था । बयालीस नौजवानों का वह सवाल था । वे सब अठारह से अठाईस तक के नौ-जवान लड़के हैं । उनके ऊपर पुलिस अफसरों की हत्या, बादशाह के खिलाफ षड्यंत्र और न जाने क्या क्या अपराध नहीं लगाये गये हैं ।'[1]

'उस कमरे में तीन व्यक्ति थे । बातचीत में मालूम हुआ उनके नाम थे -- अपूर्व गंगोली, अविनाश घोष, हरिपद मल्लिक । वे सब कम्युनिस्ट हो चुके थे क्योंकि व्यक्तिगत क्रान्ति से ऊब चुके थे । उन्होंने जान लिया था कि. . . . समाज में मजदूर वर्ग ही सबसे अधिक क्रान्तिकारी हो सकता है । एक नई दुनिया जहाँ कोई किसी को लूट नहीं सकेगा ।'[2] उपन्यासकार ने प्रकारान्तर से मेरठ-षड्यंत्र को ही छायाभास के रूप में प्रस्तुत किया है । इसी तरह का छायांकन 'अचल मेरा कोई' में भी है । मजदूर नेताओं की गिरफ्तारी से चिन्तित अचल का कथन है --'पंचम गिरधारी वगैरह का वह मुकदमा अभी तक खतम नहीं हुआ है । पुलिस उन लोगों के ऊपर कोई दूसरा मुकदमा चलाने की तैयारी कर रही है । जिसका रूप है सरकार के खिलाफ हथियार इकट्ठे करके षड्यंत्र रचना ।'[3]

'मेरठ-षड्यंत्र' के दौरान पुलिस ने घर-घर छापे मारे थे । तलाशियाँ ली थीं । भगवतीचरण वर्मा ने भी उपर्युक्त षड्यंत्र की कार्यवाही पर संक्षेप में पात्रों के वार्तालाप द्वारा प्रकाश डालते हुए लिखा है --'मुझ पर कम्युनिस्ट होने का आरोप है । मेरे घर की तलाशी का भी वारन्ट निकला है. . . . ज्ञानप्रकाश ने कहा, 'ओह तो मेरठ कॉन्स्पिरेसी केस में तुम्हारा नाम भी शामिल है । लेकिन गिरफ्तारियाँ तो मार्च में

१- श्री पहाड़ी, निर्देश, पृ० २५३.

२- रांगेय राघव, (सीधा-सादा रास्ता), पृ० १४२.

३- वृन्दावनलाल वर्मा, अचल मेरा कोई, पृ० २१४.

हुई थीं । तुम बचे कैसे रहे ? ताज्जुब की बात है ।"[1] वर्मा जी ने अपनी रचना में ऐति-हासिकता का पुट दिया है । इसके अतिरिक्त 'मेरठ कॉन्स्पिरेसी केस' का कोई भी अभि-युक्त जमानत पर नहीं छूटा ।"[2] यद्यपि बत्तीस लोगों को गिरफ्तार किया गया था परन्तु एक छोड़ दिया गया था ।[3]

भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष का गहन अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि मजदूर आन्दोलन की अपनी एक विशेष भूमिका रही है । बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, पंजाब आदि नगरों में समय-समय पर अनेक हड़तालें होती रही हैं । उनका चित्रण अनेक उपन्यासों में चित्रित हुआ है । जिनमें मुख्य हैं — 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते',[4] 'निर्देशक',[5] 'भारत जाग उठा',[6] 'पार्टीकामरेड',[7] 'दादा कामरेड',[8] 'देशद्रोही',[9] के कथानक का तो आधार ही मजदूर आन्दोलन की भित्ति पर खड़ा है । 'रेणु' के 'मैला आँचल' में मजदूर आन्दोलन का एक सुन्दर चित्र द्रष्टव्य है —

"उठ मेहनत कश अब होश में आ
हाथ में झंडा लाल उठा,
जुल्म का नामोनिशान मिटा
उठ होश में आ बेदार हो जा ।"[10]

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ६७१.
२- यथोपरि, पृ० ६७३.
३- एच० एन० मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १९२९), जिल्द एक, पृ० १६.
४- भगवती चरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० ४८३.
५- पहाड़ी, निर्देशक, पृ० ११२.
६- उमाशंकर, भारत जागउठा पृ० ५६.
७- यशपाल, पार्टी कामरेड, पृ० ८२.
८- यशपाल, दादा कामरेड, पृ० २१६.
९- यशपाल, देशद्रोही, पृ० ६०.
१०- फणीश्वर नाथ 'रेणु', मैला आँचल, पृ० ९५.

समाजवादी तथा साम्यवादी दृष्टिकोण से मजदूर आन्दोलन का चित्रण यशपाल, 'अंचल', 'राहुल', भैरवप्रसाद गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव तथा अमृतराय के उपन्यासों में बहुतायत से पाया जाता है। मजदूर आन्दोलन का आंशिक रूप में चित्रण यशदत्त ने भी किया है। इसके अतिरिक्त द्वितीय महासमर में साम्यवादियों की भूमिका को लेकर उन पर 'गद्दारी' का जो आरोप आरोपित किया गया था उसका प्रत्युत्तर भी यशपाल, 'अंचल' आदि की रचनाओं में दिया गया है। साम्यवाद तथा समाजवाद के पक्ष-विपक्ष पर सविस्तार चर्चा अनेक उपन्यासों में की गई है। प्रत्येक उपन्यासकार ने स्वयुगीन राजनीतिक घटनाचक्र को अपने चक्षुओं से देखने और परखने का प्रयास किया है।

हिन्दी-उपन्यासों में 'वाद' विशेष के मंडनार्थ गांधीवाद के अतिरिक्त साम्यवाद और समाजवाद के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष के विविध चित्र भी यत्र-तत्र उरेहे गये हैं। समाजवादी लेखकों को समाजवाद के मंडन के लिए गांधीवाद का खंडन विशेष अभिप्रेत रहा है। यही तथ्य गांधीवादी लेखकों के बारे में भी सत्य है। इसका एकमात्र कारण राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में विद्यमान राजनीतिक दर्शन की वैचारिक भिन्नता भी है। क्योंकि गांधीवाद, समाजवाद, आतंकवाद और साम्यवाद राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अपने-अपने राजनीतिक सिद्धान्तों को ही श्रेष्ठ मानते थे। देश की स्वाधीनता के लिए इन्हीं राजनीतिक सिद्धान्तों को अस्त्र बनाकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेते रहे।

(ख) असहयोग सत्याग्रह-आन्दोलन

महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत वापस आये। प्रथम विश्व-युद्ध की कालिमा संसार में व्याप्त थी। भारत में आकर उन्होंने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। महासमर में अंग्रेजों की विजय के लिए अपना पूर्ण समर्थन दिया। गांधी जी गोपाल कृष्ण गोखले के निर्देशन में राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगे। दक्षिणी अफ्रीका में चलाये गये आन्दोलन की सफलता के कारण भारतीय जन-मन पर उनके व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ने लगा था।

'चम्पारन-सत्याग्रह' तथा 'अहमदाबाद-मजदूर-आन्दोलन' में उनकी सफल भूमिका ने भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के रणक्षेत्र में एक नवीन युग का प्रारंभ किया। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए कटिबद्ध भारतीय जनता ने बापू का देश की राजनीति में प्रवेश का हार्दिक स्वागत किया। वह विशाल ब्रिटिश साम्राज्य को एक नवीन राजनीतिक अस्त्र-- अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा पूर्णतः मिटा देने को सन्नद्ध थे।

गांधी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन ने न केवल भारतीय-जनमानस को ही प्रभावित किया अपितु भारतीय साहित्य में भी विशेषकर हिन्दी साहित्य में उसका प्रभाव स्पष्ट मिलता है। देशवासियों को एक नवीन आलोक, सुदूर क्षितिज में दिखाई देने लगा। उनके राजनीतिक प्रवेश के समय सम्पूर्ण देश में जो सुखद प्रतिक्रिया हुई उसका मनोहारी अंकन हिन्दी उपन्यास साहित्य में बड़ी ही कुशलता से किया गया है।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह बापू के राजनीति में प्रवेश का अंकन करते हुए लिखते हैं -- "१९२० का साल। जलियांवाला बाग की आग अभी बुझी नहीं है। महात्मा गांधी ने राष्ट्र के अन्तर में नवीन चेतना का जादू फूंका है। - - - - - फुरसत वाली लीडरी घर पर नौकरशाही की सलीमशाही को काफी ठों चुकी। अब गांधीत्व की तमतमाई हुई आध्यात्मिकता राजनीति के अखाड़े में ताल ठोंके चली है।"[१] अपने एक अन्य

१- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० ४-५.

उपन्यास में गांधी जी के राजनीतिक प्रवेश को पुनः इस प्रकार व्यक्त किया है —" अरे भई १९०७ या ८ की बात है। गांधी जी उन दिनों दक्खिनी अफ्रीका में रहे — अपने नये प्रयोग को आजमाने में व्यस्त। वह क्रान्ति की लहर जो बम और पिस्तौल को लेकर उठी - - - - - गांधी ने आकर उस क्रान्ति की काया ही पलट दी जैसे। बम और पिस्तौल की जगह असहयोग और सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र आया और हिंसा के हाविटजर से कहीं दूर असर अहिंसा के कमान का तीर। बस, उड़ चले अंग्रेजों के हाथ के तोते।"[1] "भारत की मुक्ति का दाता तो केवल गांधी जी ही है। वही देश की नब्ज जानता है और कोई नहीं। वह जो बतायेगा, वही हमारे उद्धार का मार्ग है। उसमें यदि आग में भी कूदना पड़े तो कोई परवाह नहीं।"[2] 'इन्दुमती' का एक पात्र भी बापू के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहता है —"अब एक नया आदमी आया है, देखें वह क्या करता है।"[3] 'मुक्ति के बंधन' का रचनाकार अपनी प्रतिक्रिया बतलाते हुए कहता है —"भारत के राजनीतिक आकाश में एक नवीन तारे का उदय हुआ। अफ्रीका में पालना झूलकर वह शिशु अपनी जन्मभूमि में आया। माता ने हृदय भर कर उसे अपनी छाती से लगाया। निर्धन, निर्बल, असहाय और दलितों ने उस पर अपनी आशायें लगानी आरंभ की।"[4]

"अगस्त १९२० में लोकमान्य का स्वर्गवास हो गया और महात्मा जी भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के सर्वमान्य नेता हुए। आपने ब्रिटिशों से असहयोग की नीति भारतीयों के लिए चलाई - - - - चर्खे और खद्दर का भी मान महात्मा ने - - - बढ़ाया। इसका मूल मंतव्य था कि ब्रिटिशों का राज्य-परिचालन प्रजा के असहयोग से असंभव कर दिया जाय।"[5]

१- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पूरब और पश्चिम, पृ० २००.

२- कान्तानाथ पांडे, ज्वालामुखी, पृ० ३३.

३- गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० १९.

४- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ७२.

५- 'मिश्र बन्धु', स्वतंत्र भारत, पृ० ७.

उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त बापू के भारतीय राजनीति में प्रवेश का चित्रण 'स्वराज्यदान', 'भागो नहीं बदलो', 'भूले-बिसरे चित्र' तथा 'उल्का' आदि में भी किया गया है।

'जलियांवाला बाग' की भयंकर मानसिक वेदना से बापू भी अपने को अलग न रख सके। अंग्रेजों के इन्हीं जघन्य अपराधों का अन्त करने के लिए उन्होंने 'असहयोग-सत्याग्रह' का अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया था। उसका भारतीय जन जीवन पर इतना गंभीर प्रभाव पड़ा कि ब्रिटिश-सत्ता की नींव हिलने लगी। प्रेमचंद ने तो सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र ही दे दिया था। गांधी जी ने न वकील न अपील तथा न दलील के साथ-साथ स्कूल तथा कालेजों का बहिष्कार, सरकारी नौकरी से त्यागपत्र, कौंसिलों तथा पदवियों का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि का आयोजन 'असहयोग-सत्याग्रह' आन्दोलन में किया था।[1] ब्रिटिश सरकार से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग न करना और सत्य पर डटे रह कर अपनी वास्तविक मांग मनवाना ही असहयोग सत्याग्रह कहलाता था।

नागार्जुन का एक पात्र बलचनमा पूछता है -- 'असहयोग क्या होता है भैया ?'[2] भैया असहयोग का अर्थ समझाते हुए कहता है -- 'गांधी महात्मा ने यह तरीका निकाला था कि दुश्मन अगर ताकतवर हो तो तुम लाठी से उसका मुकाबला नहीं कर सकते। हां उससे बोलचाल बन्द कर दो। उसके किसी काम में मदद न पहुंचाओ। दुश्मन दक्खिन की ओर मुंह करके खड़ा रहे तो तुम पीठ फेर कर अपना मुंह उधर तरफ कर लो।'[3]

मंगलदास भी असहयोग की व्याख्या करता है। उसका कथन है -- 'दफ्तर और खजाने हाथ में लेना इस आन्दोलन का अभिप्राय नहीं। हम लोग तो इस आन्दोलन द्वारा

१-(क) प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृहविभाग, राजनीतिक पत्रावली संख्या (बी)।१०६ आव जुलाई १९२०.

(ख) डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा (नई दिल्ली १९६२), पृ० १७०.

२- नागार्जुन, बलचनमा, पृ० १००.

३- वही, पृ० १००.

सरकार की सारी कल-चाबी को ऐसा बेकार कर देना चाहते हैं कि सम्पूर्ण देश में इन्हें धता बता दें और कुल शासन की बागडोर अपने हाथ में कर लें।"[1]

बाबा बटेसरनाथ असहयोग आन्दोलन की कथा सुनाते हुए कहता है -- "बेटा, गांधी जी अपनी अहिंसा के आगे और सत्य व आत्मशुद्धि के आगे बाकी बातों की परवाह शायद ही करते थे। जल्द से जल्द स्वराज हासिल करने के लिए १९२० के अन्त में कांग्रेस ने असहयोग और बहिष्कार का नया लड़ाकू प्रोग्राम अपनाया था। बड़े नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गई।"[2]

गांधी जी के आह्वान पर छात्रों ने विद्यालयों में जाना छोड़ दिया था।[3] क्योंकि उनका कहना था कि "हमारे देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली दास मनोवृत्ति की पोषक है और उन्होंने विद्यार्थियों को स्कूल तथा कालेजों को छोड़ देने की सलाह दी थी।"[4]

'मेरा देश' उपन्यास का पात्र विमल भी गांधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित होकर विद्यालय छोड़ देता है और सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेता है। माँ उससे पूछती है -- 'बेटा'। 'तुमने गांधी जी के असहयोग के बारे में सुना है?'

'हाँ'

'यह सुना है कि कितने विद्यार्थी अपने-अपने कालेज और स्कूल छोड़ रहे हैं?'

'हाँ'।[5]

अपनी माँ से इतना सुनना था कि गांधी जी की जय बोलता हुआ विमल फिर कभी स्कूल नहीं जाता है।

१- वृन्दावनलाल वर्मा, प्रत्यागत (झाँसी २०१९ वि०) पृ० ४३,

२- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ९३,

३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृहविभाग गोपनीय पत्रावली संख्या १८।१९२२,

४- इलाचंद्र जोशी, संन्यासी, पृ० १७९,

५- ऋषीराम 'प्रेम', मेरा देश (बम्बई : १९३५), पृ० १;

"डा० शेफाली" का प्राणनाथ कहता है — "मैं जिन दिनों पांचवीं-छठी में पढ़ता था, उन दिनों ही असहयोग आन्दोलन में मैंने पढ़ना छोड़ दिया था।"[1] "मंगलसूत्र" का साधुकुमार भी ऐसा ही पात्र है "जिसने सत्याग्रह संग्राम में पढ़ना छोड़ दिया, दो बार जेल हो आया।"[2] "कुल्लीभाट" का कुल्ली भी गांधी जी से प्रभावित होकर "अदालत के स्टांप बेचते थे, बेचना छोड़ दिया था। महात्मा की बातें करने लगे।"[3] "आत्मदाह" का सुधीन्द्र भी नौकरी छोड़ देता है।[4] "भूले-बिसरे चित्र" का फरहतुल्ला भी गांधी जी के आन्दोलन में चला जाता है। "फरहतुल्ला ने ऐलान कर दिया कि महात्मा गांधी और कांग्रेस के हुक्म से उन्होंने आज से वकालत छोड़ दी। यही नहीं थानेदार विक्रमसिंह ने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।"[5] वकीलों ने जब अदालत में जाना ही छोड़ दिया तब गांव वाले अपने झगड़े स्वयं निपटाने लगे। असहयोग-आन्दोलन के युग का चित्रण करते हुए राहुल कहते हैं — "गांव गांव में पंचायत है। घर-घर से सेवासमिती के लिए मुठिया निकाली जाती है। सेवासमिती रात को पहरा देते हैं। पंच लोग मुकदमों का फैसला करते हैं। अब कचहरी की रौनक नहीं रही। वकील लोग बैठे-बैठे मक्खी मारते हैं।"[6] नौकरी से त्यागपत्र की ओर संकेत "अनबुझी प्यास" में भी किया गया है — "गांधी महात्मा की पुकार पर कितने-कितने छोटे नौकरों ने नौकरियां छोड़ दी थी। स्कूल मास्टरों ने, पुलिस के सिपाहियों ने, दफ्तरों के बाबुओं ने सभी जात के छोटे नौकरों में से बहुतों ने छोड़ दी।"[7] राजाराम भी बापू के आन्दोलन से प्रभावित होकर अपनी

१- उदयशंकर भट्ट, डा० शेफाली, पृ० ३५.

२- प्रेमचंद, मंगलसूत्र व अन्य रचनायें (इलाहाबाद : सि०न०), पृ० ३८०.

३- निराला, कुल्लीभाट (लखनऊ : १९६५), पृ० ८६.

४- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह, पृ० १३३.

५- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४८४.

६- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २१६.

७- पुरीशंकर मेहता, अनबुझी प्यास, पृ० ८०.

लांडरी की दुकान बंद करके जेल चला जाता है ।[१]

प्रेमचंद ने भी `रंगभूमि` में बापू के `असहयोग-सत्याग्रह` की भावना का अंकन करने का प्रयास किया है । मिसेज सेवक कुंवर साहब को निमंत्रण देती है । परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित कुंवर साहब का कथन है -- `मुझे खेद है कि मैं उस उत्सव में सम्मिलित न हो सकूंगा । मैंने व्रत कर लिया है कि राज्याधिकारियों से कोई सम्पर्क न रखूंगा ।`[२] पदवियों, नौकरियों से त्यागपत्र की जो लहर असहयोग-आन्दोलन में चल रही थी उसका संकेत भी रंगभूमि में मिलता है । राजा साहब जब इन्दु से सूरदास की जमीन से उत्पन्न समस्या पर सलाह लेते हुए पूछते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए । इन्दु कहती है -- `पदत्याग` राजा साहब -- `मेरे पदत्याग से जमीन बच सकेगी ?`[३]

बाबू कृष्णानंददास भी (बाबा बटेसरनाथ) `असहयोग` के कारण खूब चलती चलाती वकालत को छोड़कर[४] सत्याग्रह में जेल चले जाते हैं । उसका अंकन द्रष्टव्य है -- `उन दिनों असहयोग की धूम मची हुई थी - - - - कोई अपनी नौकरी से इस्तीफा दाखिल कर रहा था, कोई कालिज की पढ़ाई छोड़ रहा था, कोई प्रोफेसरी और मास्टरी पर लात मार रहा था । असहयोग की बातों को लेकर पढ़े लिखे लोगों में खूब चहल-पहल थी।`[५] स्वर्गीय चितरंजनदास ने भी असहयोग आन्दोलन के युग में वकालत छोड़ दी थी ।[६] लगता है

१- उपेन्द्रनाथ `अश्क`, गिरती दीवारें (प्रयाग : १९५७), पृ० ७४.

२- प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० १७६.

३- यथोपरि, पृ० १६३.

४- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृहविभाग राजनीतिक गोपनीय पत्रावली संख्या ३२७।४। १९२२ (शिमला रिकार्ड्स).

५- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ६०.

६- "When non-cooperation movement was started Mr. C.R. Das had gave up his practice."
- Maulana Abul Kalam Azad, India Wins Freedom, P. 16.

नागार्जुन ने कृष्णानंददास का चरित्र चिरंजीवदास से ग्रहण किया है।

गोदान के राय साहब जो अब जनता के प्रिय हो गये थे "पिछले सत्याग्रह-संग्राम में --- बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी।"[1] "शेखर" भी "असहयोग-आन्दोलन" में भाग लेने का प्रयत्न करता है।[2] "रंगभूमि" का पाँडेपुर का आन्दोलन भी असहयोग-सत्याग्रह का ही छायाभास है। बापू का सत्याग्रह जिस प्रकार दिन प्रति दिन उग्र रूप ग्रहण करता चला जा रहा था उसी प्रकार पाँडेपुर का सत्याग्रह भी अपनी भीषणता पर था। यथा --"पाँडेपुर का आन्दोलन दिन-दिन भीषण होता था। मुआवजे के रुपये तो अब किसी के बाकी न थे। ---- इन खाली मकानों को गिराने के लिए मजदूर न मिलते थे। दूनी तिगुनी मजदूरी देने पर भी कोई मजदूर काम करने को न आता था --- -- अन्य भागों से मजदूर बुलाये ---- तो रातों-रात भाग खड़े हुए।"[3]

खिलाफत-आन्दोलन

उपन्यासकारों ने असहयोग आन्दोलन की प्रत्येक घटना को अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयत्न किया है। परन्तु कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं का ही विश्लेषण संभव है। गांधी जी ने "असहयोग-आन्दोलन" को सफल बनाने के लिए "खिलाफत-आन्दोलन" को भी अपने आन्दोलन का एक अंग मान लिया था। हिन्दू और मुसलमान नेताओं ने पूरे सहयोग से काम किया।[4]

१- प्रेमचंद, गोदान, पृ० १३.

२- "अज्ञेय", शेखर : एक जीवनी-उत्थान, पृ० ११५.

३- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५१६.

४- रामानंद चटर्जी (सम्पा०) दि माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १९२२) खंड ३१, पृ० १३१.

सर्वप्रथम `खिलाफत-आन्दोलन` पर मुंशी प्रेमचंद ने प्रकाश डाला है। उस आन्दोलन का कारण समझाते हुए आत्मसेवक कहता है --`सफलता में दोषों को मिटाने की विलक्षण शक्ति है। आप जानते हैं, दो साल पहले मुस्तफा कमाल क्या था? बागी, देश उसके खून का प्यासा था। आज वह अपनी जाति का प्राण है। क्यों? इसलिए कि वह सफल-मनोरथ हुआ। लेकिन कई साल पहले प्राण भय से अमेरिका भागा था, आज वह प्रधान है। क्योंकि उसका विद्रोह सफल हुआ।`[1] खिलाफत-आन्दोलन का सूत्रपात ही `कमालपाशा` के पक्ष का समर्थन करने के लिए हुआ था। प्रेमचंद का उपर्युक्त चित्रण सामयिक प्रसंग का द्योतक है।

`प्रत्यागत` का कथानक तो `खिलाफत-आन्दोलन` से ही निर्मित हुआ है। मंगलदास के कारण ही बांदा जिले में खिलाफत-आन्दोलन को बल मिलता है। दादा जी उसका विरोध करते हुए पूछते हैं --`ब्राह्मण का लड़का होकर तू खिलाफत-विलाफत के झगड़ों में क्यों पड़ता है?` - - - - देश का इससे क्या उपकार होगा रे?` मंगलदास बोला --`दादाजी जिन जिन बातों से अंग्रेज परेशान हों, उन उन बातों से देश को लाभ होगा।`[2] जब पुनः मंगलदास से पूछा जाता है `यह खिलाफत है क्या?` मंगलदास समझाता है --`ठीक ठीक यह क्या है सो तो मुसलमान भी नहीं बतला सकते। परन्तु - - - - हिन्दू-मुसलमानों में इसके कारण बहुत मेलजोल पैदा हुआ है। देश के लिए यह कम कल्याण-कारक नहीं है।`

`आखिर यह लड़ाई है किस बात की?`

`इस बात की कि मुसलमानों के एक बड़े भारी पुरुष का जो टर्की में रहते हैं। अंग्रेजों ने अपमानित किया है और उनका राज्य छीन लिया है। उन्हीं के लिए हिन्दू-मुसलमान अपना पूरा बल लगा रहे हैं।`[3] वर्मा जी ने उपर्युक्त वार्तालाप के द्वारा `खिलाफत-

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० १२२.
२- वृन्दावनलाल वर्मा, प्रत्यागत, पृ० ११.
३- यथोपरि, पृ० १२.

आन्दोलन ' का यथार्थवादी चित्रण किया है जो एक ऐतिहासिक सत्य है ।

अन्य रचनायें जिनमें खिलाफत की आलोचना प्रमुख रूप से की गई है वह 'भूले-बिसरे चित्र' है । इसमें 'खिलाफत' के कई रंगीन चित्र उपन्यासकार ने उभारे हैं । जिसका एक चित्र प्रस्तुत है -- "असहयोग एक तरह से आरंभ हो गया है । इस असहयोग को खिलाफत आन्दोलन से बहुत बड़ा बल प्राप्त हुआ है । देश के मुसलमानों में इस समय अंग्रेजों के विरुद्ध प्रबल भावना जाग उठी है । - - - - बड़ी मुश्किल से अब आकर कहीं हिन्दू-मुसलमानों में एका हो पाया है ।"[१]

<u>चौरी-चौरा-हिंसात्मक घटना-कांड</u>

असहयोग-आन्दोलन शीघ्र ही हिंसात्मक रूप में परिवर्तित हो गया था । उत्तर भारत में 'चौरी-चौरा' की हिंसात्मक घटनाओं ने महात्मा गांधी को असहयोग अहिंसात्मक सत्याग्रह को वापस लेने के लिए मजबूर किया था । गांधी जी ने शीघ्र ही चौरी-चौरा की घटना पर विचार करने के लिए कांग्रेस से कार्यसमिति की बैठक बुलाई और असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया ।[२] आन्दोलन को असफलता की संज्ञा दी गई ।

हिन्दी-उपन्यासों में इसकी अभिव्यक्ति अनेकानेक रूपों में हुई है । 'रंगभूमि' में सर्वप्रथम असहयोग-आन्दोलन की असफलता का मार्मिक चित्रण गांधीवादी सूर के माध्यम से हुआ है -- सूर भी अपने सत्याग्रह का विश्लेषण करते हुए कहता है -- "सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी पर बाजी हारते हैं, चोट पर चोट खाते हैं, धक्के पर धक्के सहते हैं पर मैदान पर डटे रहते हैं । - - - - खेल में रोना कैसा ? खेल हंसने के लिए दिल बहलाने के लिए है, रोने के लिए नहीं ।"[३] खेल में, संघर्ष में गिरना स्वाभाविक है । जब दो खेलते

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४६६.

२- सुभाषचन्द्र बोस, दि इंडियन स्ट्रगल, पृ० ७७.

३- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० १३८.

हैं तो हार जीत होती ही है। सत्याग्रह का संघर्ष भी तो एक खेल ही महात्मा गांधी के लिए था। हार क्या जीत क्या? 'खेलते-खेलते गिर पड़ना' हार नहीं है। गांधीवादी सूर का कथन है --"हम तो खेल खेलते हैं। जीत-हार तो भगवान के हाथ है। - - - - बस नियत ठीक होनी चाहिए - - - - सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक की ही होती है तो क्या हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं? वे फिर खेलते हैं। कभी न कभी उनकी जीत होती ही है।"[1] गांधी जी भी हिम्मत हारने वाले पुरुष न थे। उन्होंने भी स्वयं अपने सत्याग्रह का विश्लेषण करते हुए कहा था --"समय आते ही और समय आयेगा ही -- ये ही सहकारी उसूल - - - - मेरे हथियार आज काम नहीं आये, इस कारण वे कुछ अयोग्य नहीं हैं उन्हें अधिक पानी देने की आवश्यकता होगी, उनका उपयोग असफल हुआ होगा।"[2]

सूरदास चौरी-चौरा जैसी हिंसात्मक घटना का विरोध भी करता है। उसका सत्याग्रहियों से कहना है कि --"आप लोग वास्तव में मेरी सहायता करने नहीं आये हैं, मुझसे दुश्मनी करने आये हैं। हाकिमों के मन में, फौज के मन में, पुलिस के मन में जो दया और धरम का ख्याल आता उसे आप लोगों ने क्रोध बना दिया है। मैं हाकिमों को दिखा देता कि एक दीन अंधा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुंह कैसे बंद कर देता है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धरम के बल से लड़ना चाहता था।"[3]

'चौरी-चौरा' में सत्याग्रहियों ने थाने पर हमला करके पुलिस कर्मचारियों को जिन्दा जला दिया था। 'कायाकल्प' में भी उसी घटना की छाया ग्रहण की गई है। चक्रधर के नेतृत्व में राजा साहब के विरुद्ध मजदूरों का आन्दोलन हिंसात्मक रूप ग्रहण कर

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५४२.

२- महात्मा गांधी, अमृतवाणी, पृ० १२४.

३- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५३२-३३.

हैं तो हार जीत होती ही है। सत्याग्रह का संघर्ष भी तो एक खेल ही महात्मा गांधी के लिए था। हार क्या जीत क्या ? 'खेलते-खेलते गिर पड़ना' हार नहीं है। गांधीवादी सूर का कथन है -- "हम तो खेल खेलते हैं। जीत-हार तो भगवान के हाथ है। - - - - बस नियत ठीक होनी चाहिए - - - - सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक की ही होती है तो क्या हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं ? वे फिर खेलते हैं। कभी न कभी उनकी जीत होती ही है।"[1] गांधी जी भी हिम्मत हारने वाले पुरुष न थे। उन्होंने भी स्वयं अपने सत्याग्रह का विश्लेषण करते हुए कहा था -- "समय आते ही और समय आयेगा ही -- ये ही सहकारी होंगे - - - - मेरे हथियार आज काम नहीं आये, इस कारण वे कुछ अयोग्य नहीं हैं उन्हें अधिक पानी देने की आवश्यकता होगी, उनका उपयोग असमय हुआ होगा।"[2]

सूरदास चौरी-चौरा जैसी हिंसात्मक घटना का विरोध भी करता है। उसका सत्याग्रहियों से कहना है कि -- "आप लोग वास्तव में मेरी सहायता करने नहीं आये हैं, मुझसे दुश्मनी करने आये हैं। हाकिमों के मन में, फौज के मन में, पुलिस के मन में जो दया और धरम का ख्याल आता उसे आप लोगों ने क्रोध बना दिया है। मैं हाकिमों को दिखा देता कि एक दीन अंधा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुंह कैसे बंद कर देता है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धरम के बल से लड़ना चाहता था।"[3]

'चौरी-चौरा' में सत्याग्रहियों ने थाने पर हमला करके पुलिस कर्मचारियों को जिन्दा जला दिया था। 'कायाकल्प' में भी उसी घटना की छाया ग्रहण की गई है। चक्रधर के नेतृत्व में राजा साहब के विरुद्ध मजदूरों का आन्दोलन हिंसात्मक रूप ग्रहण कर

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५४३.

२- महात्मा गांधी, अमृतवाणी, पृ० १२४.

३- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५३२-३३.

लेता है । "राजा साहब बंदूक लेकर कुंवर के पीछे दौड़े - - - - उनका जमीन पर गिरना था कि पांच हजार आदमी बाड़े को तोड़ कर, सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैम्प की ओर चले । रास्ते में जो कर्मचारी मिला उसे पीटा । मालूम होता था कि कैम्प में लूट मच गई है । - - - - चारों तरफ भगदड़ मच गई ।"[1] यही नहीं सत्याग्रही तीन अंग्रेजों को मौत के घाट उतार देते हैं । हिंसा की लार टपकने लगती है । चौरी-चौरा में पुलिस कर्मचारी हिंसा का शिकार होते हैं और 'कायाकल्प' में उसी नौकरशाही के उच्चाधिकारी अंग्रेज अन्तिम सांस लेकर रह जाते हैं । 'राहुल' ने भी चौरी-चौरा की घटना का संकेत किया है -- "असाधारण उपेक्षा के कारण एक जगह कुछ खून खराबी हो जाने से गांधी जी ने सत्याग्रह बंद कर दिया ।"[2]

"ऐं यह क्या ?" ज्ञानप्रकाश कलक्टर का नोट पढ़ कर मानो चिल्ला उठा, "यह चौरी-चौरा की खबर झूठ है, अतिशयोक्ति है । इक्कीस पुलिस के सिपाही और एक सब-इन्स्पेक्टर जिन्दा जला दिये गये और थाना फूंक दिया गया । मैं इस बात पर यकीन नहीं कर सकता । क्यों गंगा, क्या यह वाकई सही खबर है ?"[3] ज्ञानप्रकाश विश्वास करे या न करे परन्तु उक्त घटना ऐतिहासिक है । खुफिया-पुलिस की रिपोर्ट के आधार पर चौरी-चौरा में २२ पुलिस कर्मचारी मारे गये थे ।[4]

'रैन अंधेरी' में इबादत हुसैन 'चौरी-चौरा' का मनन करते हुए कहता है -- "जब चौरी-चौरा वाली वारदात हुई, तभी मैं समझ गया था कि इसमें कोई चाल है, नहीं

१- प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ० ११८.

२- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २४६.

३- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५५४.

४- "In all 22 policemen including two Sub-Inspectors, One head Constable, 15 Constables, 4 Chaukidars and a servant of the Sub-Inspector were killed."
 - Progs: Govt. of India, Home Deptt. Political Confidential file No. 563/3 of 1922.

तो भला गोरखपुर जिले के देहातियों की क्या मजाल कि पुलिस वालों को घेर कर मार दें।"[1]

'निर्देशक' के रचनाकार ने भी 'चौरी-चौरा' का चित्रण किया है -- "सन् २२ का वह प्रवाह एकाएक रुक गया - - - - एकाएक एक सुबह गांधी जी खून के लाल धब्बे पाकर चौंक उठे। - - - - आन्दोलन जहां का तहां खड़ा कर दिया गया।"[2] 'चौरी-चौरा' की उस लोमहर्षक घटना का अंकन 'स्वतंत्र भारत' में भी हुआ है -- "अहिंसात्मक सत्याग्रह चलता रहा। महात्मा उसे शान्तिमूलक चाहते थे, किन्तु चौरी-चौरा नामक स्थान में जनता ने पुलिस की चौकी जला दी, तथा दंगा कर दिया। - - - - महात्मा ने फरवरी १९२२ में असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया।"[3]

बाबा बटेसरनाथ भी चौरी-चौरा का स्मरण सुनाते हुए कहते हैं -- "दो वर्ष पहले चौरी-चौरा कांड के बाद गांधी जी ने आन्दोलन पर रोक लगा दी थी, पस्तहिम्मती के कारण लोगों का चित्त घबरा गया था।"[4]

चौरी-चौरा जैसी हिंसात्मक घटनाओं का विरोध 'कर्मभूमि' में भी मिलता है। संभव है उसी घटना से उपन्यासकार ने उसे ग्रहण किया हो। अमर कान्त हिंसात्मक आन्दोलन का विरोध करते हुए सत्याग्रहियों को समझाता और कहता है -- "जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो वह उद्धार का रास्ता नहीं है -- सर्वनाश का रास्ता है। तुम्हारा बैल अगर बीमार पड़ जाय, तो तुम उसे जोतोगे।"[5] अमरकान्त भी ग्रामीण सत्याग्रही

१- मन्मथनाथ गुप्त, रैन अंधेरी, पृ० ६४.

२- 'पहाड़ी', निर्देशक, पृ० ३४.

३- 'मिलिन्द', स्वतंत्र भारत (लखनऊ : २००७ वि०), पृ० १५.

४- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ८९.

५- प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ० २६०.

जनता को संबोधित करते हुए कहता है -- "तुम धर्म की लड़ाई लड़ रहे हो। लड़ाई नहीं यह तपस्या है। तपस्या में क्रोध और द्वेष आ जाता है तो तपस्या भंग हो जाता है।"[१]

सत्याग्रह-आन्दोलन में हिंसा न आने पाये यही प्रयत्न हमेशा बापू करते रहे। हिंसा उन्हें कभी भी स्वीकार्य नहीं थी। प्रेमचंद ने अहिंसा के संदर्भ में ही उपर्युक्त गांधी-वादी भावों को पात्रों के द्वारा अभिव्यंजित किया है।

<u>मोपला-उपद्रव</u>

महात्मा गांधी ने 'असहयोग-आन्दोलन' के दौरान हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो माला पिरोई थी वह असहयोग-आन्दोलन के स्थगन के कारण बिखरने लगी। क्योंकि जनता एक खोखलापन अनुभव करने लगी थी। विदेशी सत्ता भी चुपचाप न थी। मलाबार में मुस्लिम जनता गरीब थी और हिन्दू अमीर थे। अमीरी और गरीबी की भावना ने वहां मात्र एक कृषक-समस्या ने साम्प्रदायिकता का रूप ले लिया। 'असहयोग-आन्दोलन' में किसान भी बापू के साथ थे। किसान और जमींदार का संघर्ष हिन्दू-मुसलमान का संघर्ष बना दिया गया।[२]

ऋषभचरण जैन ने एक गरीब मुसलमान कुली के भावों का अंकन 'भाई' में किया है --

> "अरे यार इन (गाली) हिन्दुओं ने मुसलमानों का सारा रोजी रोजगार खतम कर दिया।"
>
> हिन्दुओं ने? "कैसे?"
>
> "अभी यही लड़ाई झगड़ा। ससुरे अपने आप तो झगड़ा लड़ा करते हैं। दीनी भाई तादाद में कम हैं, बस हिन्दुओं के शिकार हो जाते हैं। दीनी भाई गरीब हैं, हिन्दू भाई अमीर।"[३]

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० ३५७.
२- रामानंद चटर्जी, दि माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १९२२), खंड ३१, पृ० ३३३.
३- ऋषभचरण जैन, भाई, पृ० ५१.

मंगलदास खिलाफत-आन्दोलन के प्रचार के लिए मलाबार पहुंच जाता है परन्तु हिन्दू होने के नाते मुसीबत में फंस जाता है। "सवेरा होने पर मंगल ने मलाबार की गलियों को सुनसान पाया। इधर-उधर मकान धधक रहे थे। कभी-कभी मोपलों के लोहू-लुहान और धूल-धूसरित झुंड जय की पुकार लगाते निकल पड़ते थे। मंगल ने सोचा सचमुच मोपलों का राज्य हो गया।"[1] मोपलों के उपद्रव का समाचार मंगलदास के घर बांदा भी पहुंचता है। कीर्तन-मंडली में उसकी चर्चा होती है -- "सुना है, मोपलों ने छावनी, खजाने सब एक पल भर में लूट लिए - - - - हिन्दुओं को भी बहुत तहस-नहस किया है। अंग्रेजों का कुछ नहीं बिगाड़ पाये।"[2]

भगवतीचरण वर्मा भी गंगाप्रसाद के द्वारा कहलाते हैं -- "यह आन्दोलन प्रमुखत: मुसलमानों का है। मुसलमान गरीब हैं। अभावग्रस्त हैं। क्योंकि हिन्दुओं के पास पैसा है। ऐसी हालत में लूट-मार हो जाना स्वाभाविक बात होगी। - - - - मलाबार में मोपला-मुसलमानों ने जो उत्पात किया है वह तो अभी चल ही रहा है। कितने हिन्दू जान से मारे गये कितने हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये। - - - - यह हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा नितान्त खोखला नारा है।"[3]

दक्षिण भारत के उक्त साम्प्रदायिक दंगों ने सारे भारत में दंगों का आरंभ किया अंग्रेजों ने बड़ी कुशलता से अपने विरुद्ध चलाये गये आन्दोलन को हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न बना दिया।[4] रांगेयराघव का मन्तव्य है कि -- "मोपला दंगों को अंग्रेजों ने चतुराई से अपने विरोध से हिन्दुओं के विरोध में बदल दिया था। - - - - आर्य समाज उस पर हा-हा कार करने लगा और शुद्धि-आन्दोलन के परिणाम स्वरूप भीषण रक्तपात हुआ। अंग्रेजों

१- वृन्दावनलाल वर्मा, प्रत्यागत, पृ० ५७.

२- यथोपरि, पृ० ५५-५६.

३- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४६८-६६..

४- भूपेन्द्रनाथ सान्याल, साम्यवाद की ओर (इलाहाबाद : ति० न०), पृ० १०६.

ने दोनों को हवा दी ।'[१]

बाबा बटेसरनाथ का कथन है -- 'असहयोग का वह जमाना अद्भुत था । देश का हर हिस्सा नई चेतना से स्पंदित होकर अंगड़ाइयां ले रहा था - - - - दक्षिण मलाबार के मोपलों ने बगावत कर दी ।'[२]

'सत्याग्रह' का चित्रण

महात्मा गांधी ने ही 'सत्याग्रह आन्दोलन' चलाया था । उसके स्वरूप का अंकन भी अधिकांश उपन्यासों में किया गया है । सत्याग्रहियों का पुलिस के सामने धरना, नारे लगाना, झंडा फहराना, राष्ट्रीय गीत गाना आदि अनेक कार्य 'सत्याग्रह' के ही आनुषंगिक थे । ब्रिटिश भारत की गोपनीय पत्रावलियां सत्याग्रह के विविध कार्यों की रिपोर्टों से भरी पड़ी हैं । इतिहासकारों को इन घटनाओं के विस्तृत वर्णन को जानबूझ कर छोड़ना होता है । वे भी अपनी सीमा से बंधे होते हैं । हिन्दी-उपन्यासों में 'सत्याग्रह' के कार्यकलाप का बहुविध-चित्रण उपलब्ध है परन्तु शोध अध्येता यहां अपनी सीमाओं में बंधा होने के कारण उस कार्यकलाप की कुछ ही झांकियां प्रस्तुत करना चाहेगा ।

'रंगभूमि' गांधी 'सत्याग्रह' से प्रेरित रचना है । सूर के नेतृत्व में जो सत्याग्रह सम्पन्न होता है उसका चित्रण इस प्रकार है --

'सुपरिंटेंडेंट ने गली के मोड़ पर आदमियों का जमाव देखा, तो घोड़ा दौड़ाता उधर चला - - - - 'तुम सब आदमी अभी हट जाओ, नहीं हम गोली मार देगा ।'

समूह जो भर भी न हटा ।

'अभी हट जाओ, नहीं हम फायर कर देगा ।'

कोई आदमी अपनी जगह से न हिला । सुपरिन्टेंडेन्ट ने तीसरी बार आदमियों को हट जाने की आज्ञा दी । समूह शान्त गंभीर स्थिर रहा ।'[३]

१- रांगेयराघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० २३५.
२- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ६३.
३- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५१२.

'दो पहलू' में भी सत्याग्रही जनता का चित्रण मिलता है --'सड़क पर मीलों तक जनता जुटी खड़ी थी । जनता का जोश बराबर बढ़ता ही चला जा रहा था । सभी के सिर पर आज सफेद खादी की गांधी टोपी दिखाई दे रही थी । - - - - महात्मा गांधी जी की जै, जवाहरलाल की जै, भारत माता की जै, इन्कलाब जिन्दाबाद आदि न जाने क्या क्या ध्वनियां चारों ओर से आ आ कर नभ में गूंज रही थी ।'[1] घुड़सवारों के एक नायक ने कड़क कर कहा --'तुम्हें सोचने के लिए दिया गया समय पूरा हुआ । मैं आखिरी बार पूछता हूं कि - - - - प्रश्न की समाप्ति के पूर्व ही उत्तर गूंज उठा । निशिनाथ ने कहा --'कौमी नारा । सत्या के सहित सत्याग्रहियों के शतशत कंठों ने निर्नादित किया - 'वंदे मातरम्'[2]

बापू की गिरफ्तारी का चित्र भी उपन्यासों में चित्रित हुआ है ।'गांधी बाबा गिरफ्तार हो गए थे । चारों तरफ उधम मच रहा था । कभी कभी जो कोई शहर से लौटता बताता कि लारियों की लारियां भरे गांधी वाले गिरफ्तार हो रहे हैं ।'[3]

रमईपुर के सत्याग्रही थाने पर धावा बोल देते हैं और उस पर अपना कब्जा कर लेते हैं । स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास में कई बार ऐसा हुआ । सत्याग्रहियों के नेता ने 'रमईपुर के चारों तरफ जितने पुलिस थाने थे सब पर कब्जा कर लिया है और अपने साथ फौज के समान एक बड़ी भीड़ लेकर लखनऊ पर अधिकार जमाने जा रहा है ।'[4] थाने पर तिरंगा फहराने की घटना का वर्णन 'ज्वालामुखी' में भी है --

'क्या तेरा ही नाम रामनाथ है ।'

१- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० १८.

२- कृष्णाकुमार शर्मा, 'भिक्षु', मंवरजाल, पृ० ३७.

३- रांगेयराघव, विषादमठ (दिल्ली : १९७२), पृ० १२.

४- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० ३२२.

"हां । उस दिन जुलूस की मुखियागिरी तूने ही की थी ?"

"हां"

"थाने पर तिरंगा झंडा तूने ही चढ़ाया था ?"

"हां ।"[1]

'कायाकल्प' के शोषित चमार भी बेगार के खिलाफ सत्याग्रह करते हैं । उसका चित्रण प्रेमचंद ने भी किया है । 'अमरबेल' में भी --"सत्याग्रह करो । टैक्टरों और बुलडोजर इत्यादि मशीनों के सामने हाथें बांध-बांध कर लेट जाओ, बिल्कुल न चलने दो । तुम्हें शायद पकड़-पकड़ कर और घसीट-घसीट कर हटाया जायेगा । इसलिए बीच में स्त्रियों को लिटा देना, उन्हें कोई छू भी नहीं सकेगा ।"[2] आदि उपर्युक्त चित्रण भी गांधीवादी सत्याग्रह का ही एक अंश है ।

'भूले-बिसरे चित्र' में भी राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्र यथार्थ रूप में अंकित किया गया है । "उस जलूस में आगे कांग्रेस की झंडियां लिए हुए स्वयं सेविकायें थी, जिनमें अन्य स्त्रियां भी सम्मिलित हो गई थीं । उनके पीछे कांग्रेस के स्वयंसेवक तथा अन्य कार्यकर्ता थे।"[3]

'मैला आंचल' का एक सत्याग्रही अपने साथियां को संबोधित करते हुए कहता है -- "पियारे भाइयों, हमने भारथमाता का नाम, महतमाजी का नाम लेना बंद नहीं किया । जब मिलेटरी ने हमको नाखन में सुई गड़ाया, तिस पर भी हम टसकिया नहीं किए । आखिर हार कर जेलखाना में डाल दिया गया । - - - - जेहलेन ही ससुराल यार हम बिहा करने को जायेंगे ।"[4]

१- अनन्तगोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० १४५.

२- वृन्दावनलाल वर्मा, अमरबेल, (झांसी : १९५३), पृ० १५८.

३- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५४६.

४- फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आंचल, पृ० ३२.

'मेरा देश' के सत्याग्रही जेल को जाते हुए निम्नांकित गीत गाते हैं --

'भाई विदा करो जाने दो ।

- - - - - - - - - -

यहीं शेष दासत्व पाश माता का कटवाने दो ।

जहां तिलक भगवान रहे थे

करते गीता ज्ञान रहे थे ।

- - - - - - - - - -

गांधी, मोती 'लाल' जहां हैं

बली, राय, आजाद जहां हैं ।

- - - - - - - - - -

मेरा भी बलिदान तनिक वेदी पर चढ़ जाने दो ।।'[१]

१- मनीराम 'प्रेम', मेरा देश, पृ० ७.

(ग) गांधी जी के रचनात्मक कार्य का चित्रण

'असहयोग-आन्दोलन' की हिंसात्मक परिणति के फलस्वरूप महात्मा गांधी ने अपने 'सत्य के प्रयोग' का पुनर्मूल्यांकन किया। हिंसात्मक-घटनाओं से स्वराज्य की प्राप्ति तो दूर उसकी कल्पना भी असंभव जान पड़ी। फलतः 'सत्याग्रह' को पुनः सत्य की कसौटी में कसने के लिए भारतीय जनता का सामाजिक जागरण अनिवार्य था। भारत का सामाजिक उत्थान जो राजनीतिक जागरण की नींव था, एक नया कार्यक्रम जनता के सम्मुख बापू ने रखा। बापू की यह धारणा बन चुकी थी कि रचनात्मक कार्यक्रम के बिना 'सत्याग्रह-आन्दोलन' की सफलता भी शस्त्रहीन हाथ से सम्मव उठाने के समान है। उनके रचनात्मक कार्यक्रम में 'जातीय सद्भाव एवं एकता', 'अस्पृश्यता का निवारण', 'मद्य-निषेध' 'खादी और ग्रामोद्योग', 'ग्रामीण स्वच्छता', 'स्वभाषा के प्रति प्रेम', कृषक तथा नारी जागरण राष्ट्रीय शिक्षा आदि मुख्य विषय थे।[1]

गांधी जी के रचनात्मक-कार्यक्रम का प्रसंग 'सीधा-सादा रास्ता' 'पथिक', 'हृदयमंथन', 'कर्मभूमि' 'पतवार' 'भूले-बिसरे चित्र', 'अलका' आदि उपन्यासों में उठाया गया है। जिनमें यह स्पष्ट करने का प्रयत्न भी है कि गांधी जी क्यों रचनात्मक-कार्यक्रम की ओर बढ़े। बापू के रचनात्मक-कार्यक्रम के संदर्भ में उनके मुख्य-मुख्य कार्यों पर जो हिन्दी-उपन्यासों में चर्चा का विषय बने हैं, उन पर प्रस्तुत अध्याय में विचार होगा।

कृषक आन्दोलन

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषक उसकी रीढ़ हैं। उस रीढ़ पर निरन्तर प्रहार करने वाला सामंतवाद, ब्रिटिश साम्राज्यवाद रूपी मशीन के विभिन्न पुर्जों के समान

१-(क) रामानंद चटर्जी (सम्पा०) दि माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १६४२), खंड ७१, पृ० ६.
(ख) पट्टाभि सीतारामय्या, कांग्रेस का इतिहास, खंड दो, पृ० ३०७.

है । जो भारतीय कृषक का शोषण करके उसकी थैली को सर्वदा भरता रहा है । दुनिया बदल रही थी । दास-प्रथा विश्व के मानचित्र से धूमिल हो रही थी । संसार का कृषक अपनी पीड़ा की केंचुल को त्याग चुका था । परन्तु भारतीय किसान उसी बरगद की घनी छाया में बैठे का बैठा ही रह गया, जिसके तले उसके पुरखों ने विश्राम लिया था । जब भी वह वहां से उठने के लिए अपनी लाठी उठाता उसे अपने सामने `पंचभूत` -- पटवारी, पुलिस, जमींदार, महाजन और मुखिया की क्रूर दृष्टि दिखाई देती थी । `रायल एग्रीकल्चर कमीशन (१९२८) ने भारतीय कृषक के जीवन पर जो प्रकाश डाला है वह निश्चय ही उसकी दयनीय कहानी का यथार्थ चिट्ठा है ।[१] एक पुरानी कहावत है कि बैल हमेशा अपने प्राण त्यागने के स्थान की खोज में रहता है जब उसे स्थान मिल जाता है तब वह मर जाता है । ठीक यही बात भारतीय किसान पर भी लागू होती है । कृषक के शोषण का संदर्भ देते हुए पंडित नेहरू कहते हैं --`हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिए जाते हैं उनका २० फीसदी किसानों के लगान के रूप में - - - - वसूल किया जाता है ।`[२]

भारतीय कृषक के उत्थान के लिए `भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस` भी अपने प्रस्तावों द्वारा ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित करती रही है । `लखनऊ कांग्रेस` (१८९९) में

१- "There is a reason to believe that the standard of living is rising. There is no outward sign of change in the mud hut of the Indian Cultivator; he consumes the same kind of food stuff as before, but he is beginning to sell his rabi Crops. The money so obtained is spent in paying his rent or revenue in meeting the claims of the moneylender's who finances him and in buying with the surplus commodities of ordinary comforts, e.g. tea, buttons, looking glass--------etc."

Report of the Royal Commission on Agriculture In India. (Bombay: 1928), P. 400.

२- जवाहर लाल नेहरू, मेरी कहानी, पृ० ८५६.

कृषकों की दशा सुधारने का प्रस्ताव पारित किया गया था ।[१] हिन्दी-उपन्यासकार भी कृषक की दयनीय दशा से परिचित थे । सबसे पहले हमें प्रेमचंद के उपन्यासों में भारतीय-कृषक की दुख भरी गाथा पढ़ने को मिलती है । 'सेवा सदन' में आंशिक रूप से युगीन-कृषक-हलचल तथा उसकी बेचैनी का आभास दृष्टिगत होता है । क्योंकि सन् १९१८ ई० में मालवीय जी ने दिल्ली कांग्रेस को जन साधारण और किसानों की कांग्रेस बना दिया । उन्होंने देश के किसानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया था ।[२] किसान और कांग्रेस का वैधानिक संबंध यहीं से आरंभ होता है । 'चम्पारन' और 'खेड़ा' आन्दोलन जो गांधी जी से संबंधित हैं वैयक्तिक आन्दोलन की परिधि में आते हैं । महात्मा गांधी और कांग्रेस ने किसानों का जो आह्वान किया था 'सेवा सदन' में उसकी परछाईं कुंवर अनिरुद्ध के प्रति व्यक्त इस वक्तव्य में दिखाई देती है — "आज कुंवर अनिरुद्धसिंह यहां एक कृषि सहायक सभा खोलने वाले हैं । सभा का उद्देश्य होगा किसानों को जमींदारों के अत्याचार से बचाना ।"[३] बाबू राजेन्द्रप्रसाद का कहना है कि "इस (चम्पारन) जागृति में होम रूल आन्दोलन ने भी काफी मदद पहुंचाई थी । एक रूप इसका यह हुआ कि जहां तहां किसान सभायें स्थापित हुईं जो जमींदारों के विरुद्ध किसानों की शिकायतों को जाहिर करने लगीं ।"[४]

गांधी जी का रचनात्मक-कार्यक्रम विधिवत् 'असहयोग-आन्दोलन' के बाद प्रारंभ होता है । परन्तु उसका सूत्रपात 'चम्पारन सत्याग्रह' से ही हो गया था । स्वयं बापू की भी यही मान्यता है । उनका कथन है — "मैं तो चाहता था कि चम्पारन में शुरू किये गये रचनात्मक काम को जारी रख कर लोगों में कुछ वर्षों तक काम करूं ।"[५] परन्तु उन्हें

१- कन्हैयालाल, कांग्रेस के प्रस्ताव, पृ० १२८.

२- अभ्युदय (साप्ता०) (इलाहाबाद : जनवरी ११, १९३७) संख्या ८, पृ० २४.

३- प्रेमचन्द, सेवासदन (इलाहाबाद : १९७२), पृ० २३७-३८.

४- डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ० १६५.

५- मो० क० गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ० ३९९.

`रॉलट एक्ट` के प्रतिरोध के लिए आगे आना पड़ा तथा असहयोग-सत्याग्रह का संचालन करना पड़ा ।

`प्रेमाश्रम` की रचना की प्रेरणा का कारण अवश्य ही गांधी जी के रचनात्मक कार्य -- कृषक उत्थान (आन्दोलन) -- चम्पारन तथा खेड़ा-सत्याग्रह है । `प्रेमाश्रम` का कथानक खेड़ा-सत्याग्रह के समीप अधिक जान पड़ता है । क्योंकि सन् १९१८ में `खेड़ा` में बहुत भारी मात्रा में फसल की बाढ़ मारी गई थी । किसान भूखों मरने लगे थे । लगान देना उनके बशकी बात न रह गई । लोगों ने सरकार से लगान माफी की मिन्नतें की । सब व्यर्थ रहा ।[1] `प्रेमाश्रम` में मनोहर और कादिर के वार्तालाप में उस लगान-माफी की ही ध्वनि समाई है । मनोहर कहता है --

`जब उस देश के किसान राज का बंदोबस्त कर लेते हैं तो क्या हम लोग लाट साहब से अपना रोना भी न रो सकें ? ` कादिर --`तहसीलदार साहब के सामने तो मुंह खुलता नहीं, लाट साहब से कौन फरियाद करेगा ?`[2]

उस युग में किसानों पर जो अत्याचार किये जा रहे थे उनकी कहानी `राय साहब की जुबानी ` इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है -- `मैं मानता हूं कि जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है । मैं - - - - बेगार लेता हूं,[3] डांड बांध भी लेता हूं, बेदखली या इजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता ।` लखनपुर के किसानों के लिए गौसखां का अत्याचार अंग्रेज आंग्ल-प्रशासन के अत्याचारों का ही प्रतीक है । खेड़ा पर अफसरशाही ने जो क्यामत ढाही थी वही क्यामत गौसखां के शब्दों में प्रस्तुत है --`इसीलिए मुझे इन कमबख्तों पर सभी तरह की सख्तियां करनी पड़ती हैं । कहीं मुकदमें खड़े कर दिये, कहीं बेगार में फंसा दिया, कहीं आपस में लड़ा दिया । कानून का

१- के०डी० धिन्गड़ी, दि डान आव इंडियन प्राब्लम (लंदन : १९३२), पृ० १३४.

२- प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० ४३.

३- प्रेमचंद, यथोपरि, पृ० ६३.

हुक्म है कि आदमियों को लगान देते ही पाई-पाई की रसीद दी जाय, लेकिन मैं सिर्फ उन्हीं लोगों को रसीद देता हूं जो जरा चालाक हैं ---- छोटे सरकार का बकाया पर इतना जोर है कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिश कर दो।"[1] छोटे सरकार के हुक्म को फैजुल्लाह खाँ भी न टाल सका। समस्त गांव उनके अत्याचार से पीड़ित था। ---- पूस में ही बिसाती पर बकाया लगान की नालिश हुई और उसके सब जानवर कुर्क हो गये।"[2] खेड़ा के किसानों ने गांधी जी से सलाह ली और गांधी जी ने उन्हें सत्याग्रह करने तथा लगान (कर) न देने की सलाह दी।[3] लखनपुर में भी इन्हीं अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह आरंभ होता है। सामन्तवाद की चाबुक सर्पिणी की भांति किसानों को अपने डंक का शिकार बनाती है। फैजुल्लाह खाँ रूपी नौकरशाही सत्याग्रहियों को "चौपाल के सामने धूप में खड़ा" करती, "किसी की मुश्कें कसकर पिटवाई" होती, "दीन नारियों के साथ पाशविक व्यवहार किया जाता" किसी की चूड़ियां तोड़ी जाती, किसी के जूड़े नोचे जाते" आदि नाना प्रकार के अत्याचार सत्याग्रह के दमन हेतु होते। परन्तु सत्य की सदा विजय होती है। "खेड़ा-सत्याग्रह" के सामने ब्रिटिश-सरकार को झुकना पड़ा तथा किसानों की न्यायपूर्ण मांगें माननी पड़ी।[4] सर्वत्र आनन्द और उत्साह छा गया। "प्रेमाश्रम" में भी लखनपुर का सत्याग्रह सफल होता है। प्रेमशंकर के द्वार पर विजय की हल-चल सुनाई देती है। "खेड़ा सत्याग्रह" की विजय का चित्रण लखनपुर सत्याग्रह के विजय के रूप में "प्रेमाश्रम" में भी चित्रित किया गया है --

"अचानक उसे द्वार पर हलचल सी सुनाई दी। खिड़की से झांका तो नीचे सैंकड़ों आदमियों की भीड़ दिखाई दी। इतने में महरी ने आकर कहा, बहू जी लखनपुर के

१- प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० ११६-२०.

२- प्रेमचंद, यथोपरि, पृ० १४६.

३- "Gandhi advised the farmers to offer 'Satyagraha' and refused to pay the tax." - J.C. Winslow, The Dawn of Indian Freedom, Op. Cit. P. 133.

४- R.C. Majumdar, Struggle For Freedom, Vol. XI, P. 201.

जितने आदमी कैद हुए थे वह सब छूट आये हैं और द्वार पर खड़े बाबूजी को आशीर्वाद दे रहे हैं। ज़रा सुनो, वह बुड्ढा दाढ़ीवाला क्या कह रहा है, अल्लाह। बाबू प्रेमशंकर को क्यामत तक सलामत रख।"[1]

प्रेमशंकर खेड़ा भी लखनपुर का महात्मा गांधी ही है। महात्मा गांधी की कल्पना प्रेमशंकर में की गई है। जिस पर पहले विचार हो चुका है।

ब्रिटिश सरकार ने "लैण्ड एक्वीजिशन एक्ट" का अनुचित प्रयोग आरंभ कर दिया था। किसानों की ज़मीन ज़बरदस्ती छीन कर बड़े-बड़े कारखाने पूंजीपतियों द्वारा खोले जा रहे थे। जिससे किसान-समाज में एक व्यापक रोष उत्पन्न हो गया था। जनता के उसी रोष को ध्यान में रखकर नागपुर-कांग्रेस (१९२०) के अधिवेशन में "लैंड एक्वीजिशन एक्ट" के विरुद्ध प्रस्ताव पारित कर कहा गया था कि "लैंड एक्वीजिशन एक्ट" के अनुचित प्रयोग से पूंजीपतियों और विशेषकर विदेशी पूंजीपतियों के लिए सरकार ने ज़बर्दस्ती बहुत सी ज़मीन ले लेने की जो नीति बरती है — जिससे गरीब किसानों के घर-बार और परम्परा के पेशे उजड़ गये हैं। उसकी ओर कांग्रेस जनता का ध्यान आकर्षित करती है। तथा सरकार से असहयोग का एक और कारण भी पाता है। - - - - जिन भारतीय पूंजीपतियों का इससे संबंध है उनसे यह कांग्रेस प्रार्थना करती है कि वे गरीबों के इस आसन्न नाश को रोकें।"[2] जानसेवक का सिगरेट का कारखाना भी सूरदास की ज़मीन छीनकर ही बनाने का प्रयास है। जानसेवक भारतीय पूंजीपतियों का एक कठपुतला है। जो भूमि-हथियाने के लिए हर हथकंडा अपनाता है। म्युनिसिपालिटी में वह जाता है मिस्टर क्लार्क की मिन्नत वह करता है। सूर की हर चाल को नाकाम बनाया जाता है। आखिर उसी जानसेवक का प्रवक्ता बन कर सूर को समझाता है। उसके निम्नांकित कथन में उस युग में ज़बर्दस्ती भूमि के अधिग्रहण की प्रक्रिया की गंध स्पष्ट है —

१- प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० २३०.

२- कन्हैयालाल, कांग्रेस के प्रस्ताव, पृ० ३९१.

"इन बड़े आदमियों से कभी पाला नहीं पड़ा है। अभी खुशामद कर रहे हैं, मुआवजा देने पर तैयार हैं, लेकिन तुम्हारा मिजाज नहीं मिलता, और यही सब कानूनी दांव-पेंच खेलकर जमीन पर कब्जा कर लें, तो चार सौ रुपये बराएनाम मुआवजा दे देंगे तो सीधे हो जाओगे। ---- देख लेना ---- साहब यह जमीन लेंगे जरूर चाहे खुशी से दो, चाहे रोकर।"[1] 'रंगभूमि' में पूंजीपतियों की इसी धोखा-कपटी, कानूनी दांव-पेंच का पर्दाफाश करने के लिए प्रेमचंद ने सिगरेट के कारखाने के लिए जबरन भूमि हथियाने की शासन की नीति का विरोध किया है।

'असहयोग-आन्दोलन' में गांधी जी ने किसानों को भी सम्मिलित किया था। क्योंकि उनका विचार था कि यदि "देश आजाद होगा तो केवल किसानों के बल पर। यदि स्वराज्य हमें मिलेगा तो महज किसानों की सहायता से। स्वराज्य संग्राम का अंतिम युद्ध शहर की चौक में न होगा। वह होगा किसान के खलिहान में।"[2] 'असहयोग-आन्दोलन' के पश्चात् भारतीय किसानों की स्वतंत्र संस्थाओं के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। ---- जिसके फलस्वरूप १९२६-२७ में उत्तरप्रदेश, पंजाब, तथा बंगाल में अनेक किसान सभायें प्रारंभ हुईं।[3] 'जागरण' में कृपाशंकर कृषक-आन्दोलन का सूत्रपात करता है जिसके साथ संग्रामसिंह, रुक्मिणी तथा पुरोहित शिवदत्त सत्याग्रही भी भाग लेते हैं। कृपाशंकर गांधीवादी जन नेता है। रियासत के राजा के विरुद्ध भयंकर आन्दोलन होता है। राजा के अत्याचार अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों के प्रतीक हैं। पर कृपाशंकर का कथन है कि "किसान की समस्या केवल रोटी की ही समस्या नहीं है सम्मानपूर्वक जीवन बिताने की भी समस्या है।"[4]

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ६८.

२- अभ्युदय (साप्ता०) किसान अंक (इलाहाबाद : नवम्बर १८, १९३१), पृ० सम्पादकीय.

३- ए० आर० देसाई, सोशल बैक ग्राउन्ड आफ इंडियन नेशनलिज्म, पृ० १७४.

४- सीतारामसिंह, जागरण, पृ० २२३.

सत्याग्रही अहिंसात्मक रूप से आन्दोलन करते हैं और एक प्रस्ताव पारित कर रियासत के राजा के पास भेजते हैं। जिसमें यह मांग की जाती है --

"किसानों की यह महती सभा अपने राजा को बतलाना चाहती है कि - - - - आज प्रजा कष्ट में है। राजा उनके कष्ट को बंटायें। - - - - राजा से किसानों की इस महती सभा का निवेदन है कि उसे (सूबा को) इस पद से हटा दिया जाय और दूसरा सूबा किसान" की सलाह से नियुक्त किया जाय। - - - - यदि किसानों की मांगें स्वीकार न की गईं तो उनका सम्मानपूर्वक जीवित रहना असंभव है। उस दशा में वे ईश्वर से प्रार्थना करेंगे और ईश्वर उन्हें जो भी मार्ग दिखायेगा, उधर ही वे बेधड़क जायेंगे।"[1] उपर्युक्त प्रस्ताव पर 'नागपुर कांग्रेस (१९२०) में पारित प्रस्ताव का प्रभाव स्पष्ट रूप से अंकित है।[2]

'अलका' में भी किसान संगठन और उनके आन्दोलन पर प्रकाश डाला गया है। जब यह पूछा जाता है कि यह किसान क्या चाहते हैं? तब स्नेहशंकर जी का कहना है -- "चाहते और क्या हैं? न्याय और इस दुख से मुक्ति।"[3] रायबरेली में कृषक-आन्दोलन अपने यौवन पर रहा है। जिसका संकेत अजीत नामक पात्र द्वारा कराया गया है --"देहात में सिक्का जम सकता है। रायबरेली जिले में कुछ काम भी हो रहा है और महीने-भर पहले मैंने एक व्याख्यान भी दिया था। किसानों की सभा थी।"[4] पंडित जवाहरलाल नेहरू ने रायबरेली के किसानों का संगठन किया था और आये दिन प्रत्येक जिले में नेहरू जी का भाषण होता था।[5] किसान कांग्रेस के साथ थे। भारतीय-राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में

१- श्रीनाथसिंह, जागरण, पृ० १३१.

२- कन्हैयालाल, कांग्रेस के प्रस्ताव, पृ० ३६१.

३- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अलका (लखनऊ : १९५४), पृ० ४७.

४- यथोपरि, पृ० ५६.

५- "Pandit Jawahar Lal Nehru told the peasants yesterday evening that struggle for swaraj was initiated mainly for the removal of their distress. That struggle was to be continued untill the distress of the peasants was removed.". - The Pioneer, Allahabad, July 8th, 1931. vide Proceedings of Govt., of India, Home Deptt. Political file No. 33/24 of 1931.

चल रहे कृषक-आन्दोलन से परेशान कृपानाथ खीझ कर बतलाता है कि "हुजूर, ये लोग काँग्रेस से मिले हैं, और एक आदमी यह खड़ा है, तमाम गांव बिगाड़े हुए है। सारी करामात इसी की है।"[1] "कुल्लीभाट" में भी किसान और काँग्रेस के आपसी संबंधों पर प्रकाश डाला गया है।[2]

"चम्पारन-सत्याग्रह" का गुणगान करते हुए भैया का कथन है —"गांधी जी के उपकार को बहुत मानता हूं। उन्होंने ही चम्पारन के निलहे साहबों के मद को चूर किया और सैकड़ों वर्षों से भेड़ बने किसानों को शेर बनाया।"[3]

काँग्रेस ने बेगार प्रथा का भी विरोध किया था। उसी का छायांकन "बहती धूप" में मिलता है। मोहन सुलतानपुर के किसानों का संगठन करता है। एक किसान सभा होती है। जिसमें वह कहता है —"मैंने साफ साफ कह दिया है, किसी हालत में तुम्हें यह बेगार नहीं देनी है। तुम खेत जोतते हो — बदले में लगान देते हो। जमींदार को इसके अतिरिक्त तुमसे कुछ वसूल करने का अधिकार नहीं।"[4] कृषक सभाओं में काँग्रेस के नेता बेगार प्रथा के विरुद्ध प्रचार करते थे।[5] जिसे उपन्यासकार ने यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

किसान आन्दोलन का चित्रण "बयालीस" में भी किया गया है। कल्याणपुर की जनता सर भगवानसिंह के अत्याचारों से पीड़ित होकर सत्याग्रह करती है। जब दो किसान सर भगवानसिंह से अपना दुखड़ा सुनाने जाते हैं तब सर भगवानसिंह कहते हैं —

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", अलका, पृ० ६५.
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", कुल्लीभाट, पृ० ११७.
३- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० ३०२.
४- "अंचल", बहती धूप, पृ० ४५.
५- "Never do unpaid labout for the zamidars and the police and stop this system at all. Let them beat if they are beating you but do no Begar." - Progs: Govt. of India, Home Deptt. Poll. F. No. 33/24 of 1931.

"मुझे मालूम हो गया कि तुम मुझको पाठ पढ़ाने आये हो। तुम शायद कांग्रेस में काम करते हो, तभी बदमाशी तुम्हारे चेहरे से टपक पड़ती है। जानते हो, एक इशारे से मैं तुम्हें आजन्म जेल में चक्की पिसवा सकता हूं।"[1] सर भगवानसिंह ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के दमनकारी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। कल्याणपुर की गरीब रियाया सम्पूर्ण भारत की पीड़ित रियाया है।

'अमरबेल' में मरणासन्न जमींदारी से परेशान भारतीय जमींदारों की मनःस्थिति का अंकन मिलता है — "लखनऊ की एक पुरानी बारहदरी में जिमींदारों का अधिवेशन हो रहा था। ऐसा लगता था जैसे किसी टूटे हुए अनाथालय के लोगों का जमाव हो। ---- अब हमारा क्या होगा? हमारे असंख्य आश्रित किसके होकर जीवन बितायेंगे।"[2] जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों, कृषकों की एकता आदि का सुन्दर संयोजन भी प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है।

'बलचनमा' भी कृषक आन्दोलन की ध्वनि को ध्वनित करता है। उसमें चित्रित कृषक आन्दोलन का एक चित्र द्रष्टव्य — "कमाने वाला खायेगा ---- इन्किलाब --- जिन्दाबाद जमीन किसकी ---- जोते बोये उसकी। अंग्रेजी राज का नाश हो। जमींदारी प्रथा ---- नाश हो। किसान सभा जिन्दाबाद। लाल झंडा जिन्दाबाद --।"[3] 'रातुल' के भैया नामक पात्र की तरह बाबा बटेसरनाथ भी चम्पारन के कृषक आन्दोलन का वर्णन करता है, यथा — "जयानाथ को अपने जीवन में पढ़ने लिखने का समय नहीं मिला था। लेकिन महात्मा गांधी के लिए अपार श्रद्धा और भक्ति थी। यह ---- तभी हो गई थी जबकि चम्पारन की भूमि पर गांधी जी के चरण पड़े थे। नील के कारखानेदार साहबों की तरफदारी में पहले तो सरकार तन गई परन्तु पीछे उसे झुकना पड़ा और इस प्रकार

१- प्रताप नारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० ४४.

२- वृन्दावनलाल वर्मा, अमरबेल, पृ० २१४.

३- नागार्जुन, बलचनमा, पृ० १७८.

चम्पारन की जनता को नील-दानवों से छुटकारा मिला ।"[1]

"चम्पारन सत्याग्रह" की यादें "रेणु" ने "मैला आंचल" में भी चित्रित की हैं । यथा -- "पूर्णिया जिले में ऐसे बहुत से गांव और कस्बे हैं, जो आज भी अपने नामों पर नीलहे साहबों का बोझ ढो रहे हैं । वीरान जंगलों में और मैदानों में नील कोठी के खंडहर राही बटोहियों को आज भी नील युग की भूली हुई कहानियां याद दिलाते हैं । - - - - गौना करके नई दुलहिन के साथ घर लौटता हुआ नौजवान अपने गाड़ीवान से कहता है - जरा गाड़ी यहां धीरे-धीरे हांकना, "कनिया" साहब की कोठी देखेगी । - - - - यही है मकें साहब की कोठी । - - - - यहां है नील मथने का हौज ।"[2]

किसान-आन्दोलन चल रहा है । सभी किसान सभा में जा रहे हैं । उस समय का एक अन्य चित्र भी उपन्यास में द्रष्टव्य है --

"चलो । चलो । सभा देखने चलो ।"

"किसान राज कायम हो" "मजदूर राज कायम हो ।"[3]

"बारदोली-किसान-सत्याग्रह" का प्रारंभ सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में हुआ था । जो स्थानीय सत्याग्रह की सीमा को लांघ कर अखिल भारतीय बन गया था । जिसने सम्पूर्ण देश में जागरण की एक नवीन लहर उत्पन्न कर दी थी ।[4] "यह आन्दोलन एक तरह से "खेड़ा आन्दोलन" की ही पुनरावृत्ति था ।"[5] मन्मथनाथ गुप्त ने "अपराजित" में उसका विवरणात्मक चित्र अंकित किया है ।

१- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ८७.

२- फणीश्वर नाथ "रेणु", मैला आंचल, पृ० १२.

३- यथोपरि, पृ० ६.

४- एन०एन०मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन क्वाटरली रजिस्टर (कलकत्ता : १९२८) जुलाई से दिसम्बर, खंड दो, पृ० १५.

५- महादेव देसाई, दि स्टोरी आव बारदोली (अहमदाबाद : १९२९), पृ० १४७.

"बारदोली में विशेषकर बहुत विस्फोटक परिस्थिति थी । यहां करबंदी आन्दोलन हो चुका था, किसानों की हालत बहुत खराब थी । उन पर जुर्माने किये जा रहे थे और बराबर पुलिस का धौंस-धपट्टा जारी था ।"[1]

उपर्युक्त विवेचित उपन्यासों के अतिरिक्त जिनमें कृषक-आन्दोलन का पूर्ण या आंशिक रूप से चित्रण हुआ है, वे इस प्रकार हैं -- 'अनबुझी प्यास'[2], 'निर्देशक'[3], 'स्वतंत्र-भारत'[4], 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते'[5], 'सीधा-सादा रास्ता'[6], तथा 'कर्मभूमि'[7] आदि ।

ग्राम्य जागरण

'असहयोग-आन्दोलन' का चिन्तन और मनन करने के बाद महात्मा गांधी इस परिणाम पर पहुंचे कि गांव ही भारत की सच्ची आत्मा है । "गांवों का खून वह सीमेन्ट है जिससे शहरों की बड़ी-बड़ी इमारतें बनी हैं । मैं चाहता हूं कि जिस खून ने आज शहरों की नाड़ियों को फुला रखा है वह फिर से गांवों की नाड़ियों में बहने लगे ।"[8] महात्मा गांधी को ग्रामों के प्रति विशेष लगाव था । वह स्वयं भी चाहते थे स्वतंत्र भारत का राष्ट्रपति 'एक किसान' हो । उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में गांधी जी के 'गांव की ओर लौट चलो' संदेश का चित्रांकन भी किया है । 'मेरा देश' का बालक विमल

१- मन्मथनाथ गुप्त, अपराजित, पृ० २७.

२- दुर्गाशंकर मेहता, अनबुझी प्यास, पृ० ६३, ६४ तथा ११२.

३- 'पहाड़ी', निर्देशक, पृ० १६६ तथा २५०.

४- 'मिश्रबन्धु', स्वतंत्र भारत, पृ० २०.

५- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० ४२.

६- रांगेयराघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० ४६.

७- प्रेमचंद, कर्मभूमि - देखिये लगानबंदी शीर्षक (प्रस्तुत शोध प्रबंध)

८- महात्मा गांधी, ग्रामस्वराज्य, पृ० २५.

गांधी जी की इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर एक गांव में पहुंच जाता है। वहां जाकर ग्रामवासियों से वह कहता है --

"यहां मैं एक सभा करना चाहता हूं।"

"कैसी ?"

"कांग्रेस की।"

"गांधी की।"

"हां"

"तो आप गांधी के चेले हैं ?" "चेला नहीं उनका अनुयायी हूं। उन्हीं का संदेश सुनाने आया हूं।"[1]

"हरिजन" का एक पात्र सुधीर को ग्राम की महत्ता बतलाते हुए कहता है -- "हमारे देश की नब्बे प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है, इसलिए हमारे सुधार कार्य पहले गांवों में होने चाहिएं।"[2]

विशालसिंह भी गांधी-व्यक्तित्व से प्रभावित पात्र है। वह भी अपने आन्दोलन को नगर की परिधि से दूर गांवों के प्रांगण में ले जाता है। उसके ग्राम-कार्य का चित्रण करते हुए रचनाकार का कथन है -- "विशाल जी ने गांवों की ओर पैर बढ़ाने आरंभ किए। ग्राम मैत्रों का संगठन करना आरंभ किया। ग्राम समाजों में जीवन और जागृति के संदेश देने लगे। गांवों में दिन-रात दौरे आरंभ हुए। - - - - कष्टों के निवारण का एकमात्र उपाय बतलाया -- स्वराज्य, कांग्रेस-गांधीवाद।"[3]

गांधी जी के गांव संबंधी विचारों की छाप "गांधी चबूतरा" में भी व्यक्त की गई है। उपन्यासकार पात्र के माध्यम से कहता है -- "मेरी आप उन महलों में नहीं है।

१- धनीराम "प्रेम", मेरा देश, पृ० १७.

२- सन्तोष नारायण नौटियाल, हरिजन, पृ० ५५.

३- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० १७-१८.

गरीबों की बस्ती में जाकर मुझे काम करना चाहिए ।"[1] गांधी जी का भी कथन था — "मेरा वश चले तो मैं ऐसे ही किसी गांव में जाकर रहूं । वह सच्चा हिन्दुस्तान है । मेरा हिन्दुस्तान है ।"[2] गांधी जी कांग्रेस का अधिवेशन भी गांवों में करना चाहते थे ताकि 'आन्दोलन' को ग्रामीण जनता का अमूल्य सहयोग मिल सके । डा० राजेन्द्र बाबू लिखते हैं — "गांधी जी ने विचार प्रकट किया था कि कांग्रेस का अधिवेशन गांवों में हुआ करे तो जनता को उससे विशेष लाभ पहुंच सकता है ।"[3] ऐसा ही भाव भगवतीचरण वर्मा ने भी व्यक्त किया है — "यह सामूहिक सत्याग्रह ही एकमात्र ऐसा अस्त्र है जिसके आगे ब्रिटिश सरकार झुक सकती है और अब हमें लाखों-करोड़ों किसानों तक इस आन्दोलन को पहुंचाना है ।"[4] 'जागरण' के कृपाशंकर का कथन है — "सब प्रकार के कष्टों का आस्वादन करने ही मैं इस गांव में आया हूं ।"[5] विष्णु प्रभाकर का कुमार नामक पात्र भी वही भाव व्यक्त करता है — "कार्य करने का कितना विशाल क्षेत्र हमारे सामने पड़ा है । गांधी जी की बात आज मुझे सत्य मालूम होती है, भारत को गांवों में जाकर देखो । मैंने तो अब निश्चय कर लिया है कि गांव में रहूंगा । हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न की गुत्थी नहीं सुलझ सकती है ।"[6]

बापू की मान्यता थी कि "हमें अपना ध्यान गांवों की ओर लगाना चाहिए । हमें गांवों को उनकी संकुचित दृष्टि उनके पूर्वाग्रहों तथा वहमों आदि से मुक्त करना है और यह सब करने का इसके सिवा कोई तरीका नहीं है कि हम उनके बीच में रहें । उनके दुःख-दुख में हिस्सा लें ।"[7]

१- प्रताप, गांधी चबूतरा, पृ० ३५.
२- महात्मा गांधी, ग्रामस्वराज्य, पृ० १८३.
३- डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ० ६०४.
४- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५५५.
५- श्रीनाथसिंह, जागरण, पृ० १२७.
६- विष्णुप्रभाकर, निशिकान्त, पृ० २००.
७- महात्मा गांधी, ग्रामस्वराज्य, पृ० २६.

नारी-जागरण

बंग-भंग के परिणामस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन को नारी के सहयोग से एक नया जीवन मिला था। मानव-समाज के विकासार्थ नारी का समाज में एक विशिष्ट और महत्व-पूर्ण स्थान है। नारी के बिना समाज पंगु है। दयानंद सरस्वती का योगदान नारी-जागरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के नेता यह अनुभव करने लगे थे कि नारी के पूर्ण सहयोग के बिना स्वराज्य पाना सरल नहीं है। आर्यसमाज ने नारी स्वावलम्बन के लिए जो भूमि तैयार की थी उसका सदुपयोग राष्ट्रीय-संग्राम में किया गया। "नारी को स्वातंत्र्य-संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए तथा उसके सामाजिक व राजनीतिक अधिकारों की माँग के लिए सन् १९१७ में "भारतीय-महिला-संगठन" की स्थापना की गई।"[१] इसके अतिरिक्त सन् १९१८ में भारतीय-राष्ट्रीय कांग्रेस ने दिल्ली अधिवेशन में भी यह माँग रखी कि नारियों को पुरुषों के बराबर ही मतदान का अधिकार दिया जाए।[२] सन् १९२५ में तो "भारतीय राष्ट्रीय-कांग्रेस" की एक महिला अध्यक्षा बनाई गई थी। जिसका गौरव सुश्री सरोजिनी नायडू को प्राप्त है।[३]

महात्मा गांधी ने नारी के राजनीतिक जागरण में विशेष सहयोग दिया। नारी उनके आह्वान पर पर्दों को चीर कर राष्ट्रीय-संग्राम में कूद पड़ी। बापू वेश्या-प्रथा के भी सख्त विरोधी थे। भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस ने भी सन् १८९२ ई० में श्री यूल के प्रयत्नों से इलाहाबाद अधिवेशन में इस कुप्रथा को पूर्णतः बंद करने के लिए ब्रिटिश सरकार से कानून बनाने की माँग की थी।[४] "सेवासदन" प्रेमचंद की राजनीतिक घंटी है। जिसके

१- Man Mohan Kaur, Role of Women in the Freedom Movement. (Delhi: 1968) P. 145.

2. Proceedings of 23rd session of Indian Nation Congress Delhi, December, 1918.

3. P.D. Kaushik, The Congress Idiology and Programme. (Bombay: 1964), P. 150.

४- पट्टाभि सीता रामय्या, कांग्रेस का इतिहास, खंड एक, पृ० ५८.

माध्यम से वह यह कहना चाह रहे थे कि यदि नारी का शोषण वेश्या के रूप में होता रहा तो हमारे राष्ट्रीय-संग्राम का पाया-स्तंभ कमजोर का कमजोर ही बना रहेगा और स्वराज्य शीघ्र उपलब्ध न होगा ।

'भारतीय-महिला-संघ' तथा कांग्रेस के नारी-जागरण की ध्वनि जोहराजान के इस कथन में गूंजती हुई दिखाई देती है --"मैं अपनी बहनों से यही कहना चाहती हूं कि वह आइन्दा से हलाल-हराम का ख्याल रखें । - - - - बदकार रईसों के शहवत (कामातुरता) का खिलौना बनना छोड़ना चाहिए । - - - - अब हमें अपने को आबाद करना चाहिए ।"[१] शांति का भी यही कथन है कि "हम कोई भेड़-बकरी तो हैं नहीं कि मां बाप जिसके गले मढ़ दें, बस उसी की हो रहें ।"[२] सुमन भी पुरुष की दुत्कार सहना पसंद नहीं करती । वह आत्मनिर्भरता की ओर पग बढ़ाती है । उसका कहना है --"यह दुत्कार क्यों सहूं ? मुझे कहीं रहने का स्थान चाहिए । खाने भर को किसी न किसी तरह कमा लूंगी, कपड़े भी सीऊंगी तो खाने भर को मिल जायेगा ।"[३]

'सेवासदन' में 'सरकार से वेश्याओं के बारे में प्रश्न करवाना'[४], 'बाबू विट्ठलदास का सुधारक संस्था की स्थापना करना'[५] यह सब प्रश्न नारी जागरण की ही युगीन देन हैं । यही कारण है कि 'असहयोग आन्दोलन' में नारी ने पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर सत्याग्रह किया था ।

'रंगभूमि' की इन्दु भी राजा साहब की 'लौंडी' बनना अच्छा नहीं समझती । राजा साहब को इन्दु की स्वतंत्रता तथा सत्याग्रह में भाग लेना गंवारा नहीं है । राजा

१- प्रेमचंद, सेवासदन, पृ० २३०.

२- यथोपरि, पृ० ४२.

३- यथोपरि, पृ० ४१.

४- यथोपरि, पृ० २०.

५- यथोपरि, पृ० ३१.

साहस से वह स्पष्ट कहती है --"आपने अगर हुक्काम के दबाव से सूरदास की जमीन ली, तो मैं चुपचाप बैठी न रह सकूँगी। स्त्री हूँ तो क्या, पर दिखा दूँगी कि सबल से सबल प्राणी भी किसी दीन को आसानी से पैरों तले नहीं कुचल सकता।"[1] सोफिया का आतंकवादी आन्दोलन नारी जागरण का ही प्रतिफल है।

'कर्मभूमि' की मुन्नी तो राष्ट्रीय-आन्दोलन की ही उपज है। अपने सम्मान की रक्षा के बदले के लिए वह तीन गोरों का खून कर देती है। उस पर मुकदमा चलता है। दूसरी नारी उसकी मदद करती है। "रेणुका नगर की रानी बनी हुई थी। मुकदमें की पैरवी का सारा भार उसके ऊपर था।"[2] मुन्नी छूट जाती है जनता उसका स्वागत करती है। "फिर बैंड बजने लगा। सेवा-समिति के दो सौ युवक केसरिये बाने पहने जुलूस के साथ चलने को तैयार थे। ---- महिलाओं की संख्या एक हजार से कम न थी।"[3]

सुखदा जन नेता है। सब सुविधाओं को त्याग कर अमरकान्त की तरह वह भी सत्याग्रह का नेतृत्व करती है। जनता को गोलियों के भय से भागते हुए देखकर वह स्वयं गोलियों के सामने खड़ी हो जाती है।[4] जनता को संबोधित करती हुई कहती है --

"मैं कहती हूँ, हमारे ही हाथों में सब कुछ है। हमें लड़ाई नहीं करनी है, फिसाद नहीं करना है। सिर्फ हड़ताल करना है ---- यह हड़ताल एक दो दिन की नहीं होगी। वह उस वक्त तक रहेगी जब तक बोर्ड अपना फैसला रद्द करके ---- न दे दे। ---- बिना तकलीफ उठाये आराम नहीं मिलता।"[5] सुखदा गिरफ्तार हो जाती है। समरकान्त जमानत देने की जुगत सोचते हैं। सुखदा बुढ़िया से कहती है --"मैं जमानत

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० १६२.

२- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० ५८.

३- यथोपरि, पृ० ७६.

४- यथोपरि, पृ० २१०.

५- यथोपरि, पृ० २५६.

न दूंगी, न इस मुआमले की पैरवी करूंगी।"[१] पंडित नेहरू का यह कथन सत्य ही है कि "राष्ट्रीय-संग्राम की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि भारतीय नारियों ने इस संग्राम में भाग लिया और उससे सारे संसार को प्रभावित किया।"[२] 'कर्मभूमि' की सुखदा का साम्य कुमारी मणिबेन पटेल से किया जा सकता है। 'बारदोली-सत्याग्रह' में "सरदार बल्लभ-भाई पटेल की पुत्री कुमारी मणिबेन पटेल भी जिन्होंने आन्दोलन में अपनी राजकोट की बहनों की सहायता के लिए भाग लिया था, पकड़ी गई थीं।"[३] सुखदा भी सत्याग्रही के रूप में पकड़ी जाती है। दोनों के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने में घनिष्ठ साम्य है।

'गोदान' में मालती भी एक ऐसा ही नारी चरित्र है। जो नगर कांग्रेस कमेटी की 'सभानेत्री' है। जो नारी-उत्थान को अपने जीवन का ध्येय बना लेती है। प्रेमचंद उसके योगदान का वर्णन करते हुए कहते हैं —

"शीघ्र ही वीमेन्सलीग की ओर से मेहता का भाषण होने वाला है। - - - - यह लीग इस नगर की नई संस्था है और मालती के उद्योग से खुली है। नगर की सभी शिक्षित महिलायें उसमें शरीक हैं।"[४]

गांधी जी ने भारतीय नारियों से पर्दा त्यागने की अपील की थी। बिहार से इस आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। सारे भारत में इसका प्रभाव दिखाई दिया। बापू की अपील पर कट्टर पंथी परिवारों की लगभग पचास महिलाओं ने तुरन्त हस्ताक्षर कर दिए थे।[५]

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० २६८.

२- "The greatest thing was that Indian ladies took part in this struggle and this effected the whole world much." - Progs. Govt. of India Home Deptt. Poll. F.No. 34 of 1931.

३- पट्टाभि सीता रामय्या, कांग्रेस का इतिहास, खंड २, पृ० ११०.

४- प्रेमचन्द, गोदान, पृ० १५१.

५- "The success of the anti-purdah movement in Bihar, with its repurcussions in other purdah ridden provinces------as the fact that many orthodox Hindu Women have given practical support to it by tearing down the purdah." - Rama Nand Chatterjee. The Modern Revie

इलाचंद्र जोशी की लज्जा भी एक ऐसा ही अन्य पात्र है जो देश-हित का व्रत लेना चाहती है । चर्खे का प्रचार गांव-गांव में जाकर ग्रामीण नारियों के बीच करके उनकी राजनीतिक चेतना को जागरित करना चाहती है । सामाजिक बंधनों की दीवार उसके सामने है । पर्दा-प्रथा उसके राह का कांटा है । मनोविश्लेषण-उपन्यासकार जोशी जी ने उसी का अंकन 'पर्दा-प्रथा-हटाओ' से प्रभावित होकर किया है । - - - - लज्जा कहती है -- "पर्दानशीन औरतों को पर पुरुषों के साथ बातें करने का अधिकार नहीं होता । इस सत्यानाशी प्रथा के विरुद्ध अब देश भर में आन्दोलन मच रहा है । पर हमारे घर में स्त्री-स्वाधीनतापूर्ण रूप में वर्तमान होने पर भी रानी को यह बात बेतरह अखरती है कि मैं डाक्टर साहब के साथ बेधड़क बातें करती हूं । - - - - इस अन्याय का विरोध करना ही होगा ।"[1]

चपला ('विदा') नारी जागरण से पूर्ण प्रभावित नवीन पीढ़ी की युवती है । वह भी समाज में नारी की मुक्ति की समर्थक है । मिस्टर वर्मा जैसे पूंजीपति वर्ग के शोषकों का वह दृढ़ता से सामना करती है । उसका कथन है -- "सच्ची स्त्री स्वाधीनता वही है, जहां स्त्री पर अत्याचार न हो ।"[2] माधव बाबू इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि -- "सबसे पहले हम लोगों का लक्ष्य होना चाहिए स्त्रियों की स्वाधीनता -- स्त्रियों की चहारदीवारी तोड़ देनी चाहिए । - - - - उनके अधिकारों के लिए सबसे पहले हमको आवाज उठानी चाहिए - - - - जिससे वे स्वयं अपना कैदखाना तोड़ दें ।"[3]

'अंचल' ने 'चढ़ती धूप' में तारा का चरित्र समाजवादी नारी के रूप में चित्रित किया है । तारा मजदूरों के कारखाने के आगे धरना देती है । देहातों में घूमती है । 'जनता' के काम से उसे फुरसत नहीं मिलती । यहां रहेगी तो दिन-दिन भर मिल मजदूरों

१- इलाचंद्र जोशी, लज्जा (इलाहाबाद : 2020 वि०), पृ० ६४.
२- प्रताप नारायण श्रीवास्तव, विदा (लखनऊ : १९७२) पृ० १५०.
३- यथोपरि, पृ० १०६.

की बस्तियों में घूम-घूम कर बगावत फैलायेंगी। बाहर रहेंगी तो देहातों में व्याख्यान देती फिरेंगी।"[1] वह "अपनी शक्ति के सहारे अपनी उपलब्धि के बल पर समाज की मान्यतायें ठुकरा कर अपना सिर ऊंचा रखना चाहती है।"[2] मजदूर-औरतों को पढ़ाना, ताड़ी, शराब और जुआ मजदूरों से छुड़वाना उसके अन्य कार्य हैं। अपनी नारी स्वतंत्रता की भावना का उल्लेख करते हुए वह कहती है --"नारी स्वतंत्रता से मेरा मतलब है नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की मान्यता। उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति की सुरक्षित मर्यादा। - - - - मन से किसी एक की रहते हुए भी रोटियों और केवल रोटियों के लिए दूसरे का बनने पर (उसे) मजबूर न किया जाय।"[3]

कमल, कुन्ती, सुधाकर तथा गिरधारी आदि सत्याग्रह आन्दोलन चलाते हैं। आन्दोलन में पुरुषों के साथ नारियां भी होती हैं। जिसमें स्त्रियों से आजादी के नारे लगवाये जाते हैं। कुन्ती की धारणा है कि "जब तक हर बात में पुरुष को मात न किया जाय तब तक उसकी आत्मा स्त्री की उच्चता की कायल ही न होगी।"[4] सत्याग्रही आगे बढ़ते हैं और रोक दिए जाते हैं। पुलिस के सामने कुन्ती के दृढ़ सत्याग्रही रूप के अंकन का एक चित्र प्रस्तुत है --

"कुन्ती अकड़ कर खड़ी हो गई।

अपना कर्तव्य पालन कर रही हूं। आपको पकड़ना हो तो मुझको पकड़िये। आप इन गरीब स्त्रियों का और अधिक अपमान नहीं कर सकेंगे।"[5]

यशपाल शर्मा ने कमला के माध्यम से राष्ट्रीय-संग्राम में नारियों के योगदान का उल्लेख किया है, यथा --"कमला का स्त्रियों में किया हुआ कार्य सराहनीय था। उसने

१- "अंचल", चढ़ती धूप, पृ० ७६-७७.

२- यथोपरि, पृ० ७२.

३- यथोपरि, पृ० १५७.

४- वृन्दावनलाल वर्मा, अचल मेरा कोई, पृ० ११५.

५- यथोपरि, पृ० २१८.

घर-घर में जाकर उन्हें कांग्रेस को वोट देने के लिए पक्का किया था। कार पर घूमने वाली कमला के पैरों में वास्तव में एक चक्कर था और उसी चक्कर में वह बिना भूख, प्यास की चिन्ता किये बराबर कार्य कर रही थी। स्त्रियों में हलचल पैदा कर दी थी।[१] 'इन्दुमती' भी मजदूर वर्ग में आन्दोलन का नेतृत्व करके एक नवीन चेतना को जगाती है।[२] 'विसर्जन' की उर्मिला[३], 'भंवरजाल' की सत्या[४], 'मुक्ति के बंधन' की लक्ष्मी[५], 'हृदय मंथन' की चंचला[६], 'स्वराज्यदान' की मनोरमा[७], 'स्वाधीनता के पथ पर' की पूर्णिमा[८], 'सीधा-सादा रास्ता' की हरदेई[९], 'दादा कामरेड' की शैल[१०], 'झूठा सच' की कनक[११] आदि अनेक नारी-पात्रों के माध्यम से उपन्यासों में नारी-जागरण का युगीन चित्रण किया गया है।

अछूतोद्धार-आन्दोलन

महात्मा गांधी का विचार था कि बिना सामाजिक उन्नति के राजनीतिक उन्नति का कोई मूल्य नहीं होता है। सामाजिक कार्य को वे राजनीतिक कार्य से कभी भी हेय नहीं समझते थे। 'असहयोग-आन्दोलन' हिंसा की चादर में लिपट कर भस्मीभूत

१- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० ३३०.

२- गोविन्ददास, इन्दुमति, पृ० २९१.

३- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ० २८३-२८७.

४- कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु', भंवरजाल, पृ० ३५-३८.

५- गोविन्द वल्लभपन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० १०८, १७१.

६- सीताचरण दीक्षित, हृदय मंथन, पृ० १०४, १०८, १५५.

७- गुरुदत्त, स्वराज्यदान, पृ० १९७-१९८.

८- गुरुदत्त, स्वाधीनता के पथ पर, पृ० ३००, ३२०, ३२२, ३२३.

९- रांगेयराघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० २९०, ३०१, ३०२.

१०- यशपाल, दादा कामरेड, पृ० १५०, १५५, २२५.

११- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० ३७ तथा ८६.

हो गया था । गांधी जी के हृदय में अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता को मिटा देने की अग्नि धधक रही थी । अन्त्यजों के प्रति किये गये घृणित व्यवहार से वह बहुत दुखी थे । उनका कहना था कि -- "यह मेरे हृदय की प्रार्थना है कि मैं इस जन्म में मोक्ष न प्राप्त कर सकूं तो अगले जन्म में भंगी के घर पैदा होऊं ।"[1] अन्त्यजों के प्रति विशेष ममत्व तथा स्नेह के कारण ही बापू ने "उस समय तक के 'अछूत' शब्द के बदले में 'हरिजन' शब्द का व्यवहार आरंभ कर दिया था ।"[2] सन् १९२२ में 'हरिजनों' के उत्थान के लिए 'बारडोली' में एक प्रस्ताव पारित किया गया था ।[3] समय-समय पर गांधी जी अन्त्यजों के उद्धार के लिए कोई न कोई कार्यक्रम बनाते रहे । 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना, हरिजनों के लिए मंदिर-प्रवेश की योजना, उनसे मांस न भक्षण करने की प्रार्थना आदि अनेक कार्य बापू ने उनके लिए किये । बापू के कदम से कदम मिला कर हिन्दी-उपन्यासकार भी उनके साथ चल रहा था ।

मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह

सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यासों में 'जागरण' में अछूत समस्या की ओर संकेत किया गया है । ब्राह्मण और अछूत भगवान के मंदिर में दर्शनार्थ जाते हैं । पुजारी को जब यह मालूम होता है कि दूसरा व्यक्ति जाति का चमार है तब वह कड़क कर कहता है -- "निकालो इसको । इसे तुमने कैसे यहां लाने का साहस किया ? सारा मंदिर अपवित्र हो गया ।"[4] परन्तु पुजारी का प्रतिवाद होता है । उसे समझाने का प्रयत्न किया जाता है -- "ईश्वर के दरबार में कैसा भेद ? क्या इस चमार को ईश्वर ने नहीं बनाया ? और वह इसके घट में नहीं रम रहा है ?"[5]

१- महात्मा गांधी, बापू के हरिजन (लखनऊ : २००६ वि०), पृ० ७.

२- डा० राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० ५८८.

३- डा० बी०आर० अम्बेडकर, 'व्हाट कांग्रेस एन्ड गांधी हैव डन टू दि अनटचेबल्स' (बम्बई : १९४६), पृ० २०.

४- श्रीनाथसिंह, जागरण, पृ० १२९.

५- यथोपरि, पृ० १३२

उपर्युक्त वाक्यों में बापू की अन्त्यजों के प्रति व्यक्त भावना को संयोजित किया गया है। बापू यह मानते थे कि मानव-मानव में भेदभाव नहीं होना चाहिए। कोई भी धर्म भिन्नता की शिक्षा नहीं देता। यदि हिन्दू-धर्म भी ऐसा करे तो "मैं अस्पृश्यता के रहने की अपेक्षा हिन्दुत्व के लोप हो जाने को सहन कर सकता हूं।"[1]

`मनुष्यानंद` (बुधुआ की बेटी) का रचनाकाल सन् १९२७-२८ ई० के आसपास का है। बुधुआ की बेटी का नवीन रूप ही `मनुष्यानंद` है। पूरे उपन्यास की कथा हरिजनोद्धार की समस्या पर आधारित है। कचौड़ी बाबा में महात्मा गांधी की कल्पना है।[2] क्योंकि वह बापू की तरह अहर्निश अन्त्यजों की उन्नति के लिए ही चिन्तित रहता है। उसका उद्देश्य उसी के शब्दों में इस प्रकार है -- "मैं चाहता हूं कि देश के अछूतों में किसी तरह जीवन का मंत्र फूंका जाय। मैं बहुत दिनों से इन गरीबों के लिए कुछ न कुछ करने की सोच रहा था और सोच रहा हूं।"[3]

बापू के वाक्यों पर अलईपुर में `अछूताश्रम` की स्थापना होती है। जिसमें बच्चों के लिए विद्यालय, कताई-बुनाई का काम सिखाया जाता है। स्वयं-सेवक भर्ती किये जाते हैं। कचौड़ी बाबा अछूतों में एक नवीन चेतना का संचार कर देते हैं। उनके उद्धार के लिए आन्दोलन चलाते हैं। अन्त्यजों में आशा की नयी लहर दौड़ने लगती है। आन्दोलन की तैयारियां हो रही है। "शहर में आज बड़ा तहलका है। कहा जाता है कि अछूतोद्धारकों और कचौड़ी मनुष्यानंद के उद्योग में आज प्रातः १० बजे अछूतों का एक बड़ा भारी जलूस गाजे-बाजे से निकलेगा, क्योंकि मरणोन्मुख भंगी सरदार बुधुआ, बाबा विश्वनाथ के दर्शन करना चाहता है। क्योंकि, कचौड़ी ने, अपने बाहुबल पर, उसे दर्शन करा देने का वरदान दिया है।"[4]

१- पट्टाभि सीता रामय्या, महात्मा गांधी का समाजवाद, पृ० १७४.

२- "Ambedkar and the socialists did not gave temple entry the priority that Gandhiji gave it." - J.B. Kripalani Gandhi: His life And Thought, " (Govt. of India : 1971) P. 150.

३- पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र`, मनुष्यानंद (दिल्ली : १९५८), पृ० ९०.

४- यथोपरि, पृ० २०६.

अघोड़ी बाबा जनसमूह को मंदिर की ओर जाने से पूर्व संबोधित करते हैं और मंदिर के मठाधीशों से प्रार्थना करते हैं --"यदि आपको धर्म प्यारा हो तो धार्मिक और सच्चा धार्मिक बनाइये। मंदिरों के द्वार खोलिये - भड़किये नहीं। पवित्रों के लिए नहीं, पूंजीपति सर्वशक्तिमानों के लिए नहीं - मनुष्य के लिए, सारी मनुष्य जाति के लिए। मंदिरों के पवित्र फाटकों पर से "आर्यधर्मेतराणां प्रवेशोनिषिद्ध" - - - - को हटाइये और उसके स्थान पर - - - - लगाइये - - - - हरि को भजे सो हरि का होई।"[१] प्रस्तुत रचना में हरिजन आन्दोलन की प्रेरणा उपन्यासकार ने "सन् १९२४ में विनोबा-भावे के नेतृत्व में केरल में आयोजित हरिजन मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह"[२] से ग्रहण की है।

अन्त्यज-मंदिर-प्रवेश आन्दोलन शान्तिकुमार के नेतृत्व में "कर्मभूमि" में भी चित्रित हुआ है। शान्तिकुमार हरिजन-आन्दोलन की व्याख्या करते हैं। हरिजनों को उनके मानवीय सामाजिक अधिकारों के लिए उत्तेजित करते हैं। उनका कथन है -- "मंदिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नहीं है, वह हिन्दू-मात्र की चीज है। - - - - मत टलो उस मंदिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो।"[३] वह पुनः कहता है -- "तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं। तुम समाज की बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है, पर तुम अछूत हो। तुम मंदिरों में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवाय और कहां हो सकती है?"[४] जनता जलूस के रूप में मंदिर की ओर चल देती है। "ज्यों जत्था आगे बढ़ता था और लोग आ-आकर मिलते जाते थे। - - - - जत्था मंदिर के पास पहुंचा।"[५] तथा "बंदूकों से धांय! धांय! की आवाजें निकलीं। एक गोली सुखदा

१- पाण्डे बेचन शर्मा "उग्र", मनुष्यानंद, पृ० १८८.

२- एस०पी०सैन, डिक्शनरी आव नेशनल बायोग्राफी खंड दो, पृ० १८६.

३- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० २०४.

४- यथोपरि, पृ० २०४.

५- यथोपरि, पृ० २०५.

के कानों के पास से सन से निकल गई। तीन-चार आदमी गिर पड़े - - - - मंदिर खुल गया।"[१]

गांधी जी ने अगस्त १६३१ ई० को अहमदाबाद में हरिजनों के लिए मंदिर खोलते समय कहा था --"यह तो एक आदमी का निजी मंदिर है। यदि इसका द्वार अछूतों के लिए खुल जाता है तो सार्वजनिक मंदिर का द्वार कितने समय तक बंद रहेगा।"[२] शान्तिकुमार द्वारा अभिव्यक्त भावों में बापू के उपर्युक्त भावों की छाया दिखाई देती है। देश में मंदिर-प्रवेश आन्दोलन का बड़ा जोर चल रहा था। विशेषकर दक्षिण भारत में सन् १६२६ के आसपास एक जबर्दस्त सत्याग्रह हुआ था।[३] जैनेन्द्रकुमार भी हरिजन-आन्दोलन से प्रभावित लगते हैं। प्रसंगवशात `कल्याणी` में उन्होंने मेहतरानी को मालिक के कमरे में बने निजी मंदिर में प्रवेश कराया है। यथा --"मंदिर के कमरे में भेद-भाव नहीं रखा जाता। मेहतरानी को कई बार साग्रह शाम की आरती में शामिल किया गया और उसे थाली में से प्रसाद मिला।"[४] राधिका रमण प्रसाद सिंह ने आंशिक रूप में हरिजन-मंदिर प्रवेश की समस्या पर संकेत भर किया है। बापू के मनोभावों को उन्होंने भी रविदास के द्वारा व्यक्त किया है। रविदास का कथन है --

"याद रखिये, हम आपके हैं - आप हमारे हैं। हम आपके ही अंग लहू के लहू हैं। हम जानते हैं, हम दलित अंग हैं फिर भी आप ही के अंग प्रत्यंग हैं। आप हमें काट कर अलग करते हैं, तो अपना ही अंग-भंग अपना ही दायरा तंग करते हैं।"[५] अन्त्यजों के मंदिर-प्रवेश-निषेध पर उपन्यासकार का मन्तव्य है --"आज हरिजनों को मंदिर से अलग कर हमने

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० २१०-११.

२- महात्मा गांधी, बापू के हरिजन, पृ० १६.

३- एन०एन०मित्रा (सम्पा०) दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १६३०) खंड एक, पृ० १

४- जैनेन्द्रकुमार, कल्याणी, पृ० ५६.

५- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, गांधी टोपी, पृ० ३१.

मंदिर की आलमगिरी की कब्र खोद डाली । हमने उनका गला टीप कर हिन्दुत्व का गला टीपा है । - - - - आखिर ये भी इसी देश की मिट्टी में उगे हैं, यहीं के हवा पानी से पनपे हैं । उनको भी फूलने-फलने का बराबर हक है ।[1] देश के नेता मंच से हरिजनोद्धार का कार्य कर रहे थे तो उपन्यासकार अपनी कृतियों के माध्यम से अछूत समस्या का भूत जनता के मन से निकालने का कार्य कर रहे थे ।

'मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह' के अतिरिक्त अन्य प्रश्नों को भी उपन्यासकार ने रचनाओं में ग्रहण किया है । भैया से दुलराम पूछता है कि इस देश में औरतों से अधिक 'सताई जमात है उन लोगों की जिनको बड़ी जाति अछोप, अछूत कहते हैं ।' वे क्या हैं ? भैया तत्काल उत्तर देता है -- 'उन्हीं को गांधी जी ने नया नाम दिया - हरिजन ।'[2] इस प्रकार युगीन संदर्भ में उपन्यासकार जन सामान्य को यह बतलाना चाहता है कि हरिजन कौन हैं ? किसने उन्हें यह नया नाम दिया है ?

'अज्ञेय' ने शेखर के द्वारा भी अछूत समस्या का चित्रण 'शेखर : एक जीवनी' में किया है । दक्षिण भारत में जो अछूत-समस्या पर आन्दोलन चल रहा था उसी का अनुकरण 'शेखर' में मिलता है । 'अस्पृश्यता-निवारण कार्य का केन्द्रबिन्दु दक्षिण-भारत हो गया था ।'[3] शेखर दक्षिणांचल में जाकर अछूतों के उद्धार हेतु अनेक काम करता है । हरिजन-महिला को कंधे पर ढोकर उपचारार्थ ले जाता है । रात्रि पाठशाला खोलता है ।[4] बापू ने हरिजन-बच्चों की शिक्षा पर विशेष बल दिया था । शेखर अन्त्यजों के उत्थान के लिए अपना अस्तित्व उनके अस्तित्व में 'पानी में की लोनु' बना देता है । वह ऐसे आश्रावास में रहता है -- 'जो अछूतों के लिए था, और जहां कार्य-कर्ता भी सब अछूत थे ।

१- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, गांधी टोपी, पृ० ३२.

२- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० २००.

३- प्रोकंमोरस, जवाहर नेहरू जीवनी, पृ० १००.

४- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवनी (पहला भाग), पृ० २१५.

- - - - शीघ्र ही वह दिन आ गया जब शेखर ने पाया कि उसके मित्र और सखा और [illegible] सब अछूत हैं, उसके भाई अछूत हैं।"[१]

महात्मा गांधी 'जन्मना' और 'कर्मणा' से 'वर्णाश्रम' में विश्वास रखते हुए भी हरिजनों को किसी भी रूप में हीन 'आश्रम' का नहीं मानते थे। अन्य सवर्ण बच्चों के साथ अन्त्यजों को शिक्षा पाने के अधिकार के पूर्ण समर्थक थे।[२] 'शेखर' में गांधी जी के उसी दार्शनिक पक्ष का चित्रण हुआ है।

'बुझते दीप' के [illegible] तथा सुधीबाबू हरिजनों में बस कर 'छुआ-छूत' के विरुद्ध आन्दोलन चलाते हैं। उनके उत्थान के लिए वे उनके ही हो जाते हैं।[३] 'हृदय मंथन' उपन्यास की कथावस्तु अछूतोद्धार की समस्या पर आधारित है। आचार्य उमापति, चंचला, निर्मला तथा जीवन आदि उपन्यास के पात्र सशक्त हरिजनोद्धार आन्दोलन का प्रणयन करते हैं। चंचला और जीवन के स्नेह में अस्पृश्यता दीवार बनकर आ जाती है। गांधी जी ने लगभग १९३२ ई० के आसपास 'अखिल भारतीय-हरिजन-सेवक संघ' की स्थापना की थी। जिसका मुख्य उद्देश्य हरिजनों के लिए विद्यालयों की स्थापना तथा सम्पूर्ण रूप से अस्पृश्यता का विनाश करना था।[४] उपर्युक्त संघ की प्रेरणा के फलस्वरूप 'हृदय मंथन' की रचना की गई है। 'हरिजन संघ' की स्थापना का स्पष्ट संकेत भी उपन्यास में है। चंचला हरिजन-संघ-सेविका के रूप में अछूत समस्या के उन्मूलन का कार्य करती है। उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि - "मैं सात करोड़ अभागे अस्पृश्य भाइयों को छोड़ नहीं सकती। मैं उनके ही साथ डूबना और उनके ही साथ उभरना चाहती हूँ।"[५] आचार्य उमापति का कहना है — "जन्म के आधार

१- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवन (पहला भाग), पृ० २१०.

२- महात्मा गांधी, बापू के हरिजन, पृ० ७.

३- दयाशंकर मिश्र, बुझते दीप, पृ० १६४.

४- जे०बी० कृपलानी, गांधी : हिज लाइफ एन्ड थाट, पृ० १४८.

५- सीताचरण दीक्षित, हृदय मंथन, पृ० १४५.

पर अस्पृश्यता धर्म सम्मत नहीं है । अधिकांश लोगों ने बौद्धिक रूप से इस मत को स्वीकार कर लिया है । धंधागत अस्पृश्यता को मिटाने के लिए उन्होंने श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित की और उसमें भंगी, चमार आदि के कामों को - - - - विशेष महत्व दिया ।"[१] बापू भी जन्म के आधार पर अस्पृश्यता को नहीं मानते थे उन्होंने एक भाषण में कहा था — "मैं जन्म से स्पृश्य हूं परन्तु अस्पृश्य अपनी इच्छा से हूं ।"[२] जहां तक श्रम के आधार पर अस्पृश्यता का प्रश्न है — "मेरे विचार में प्रत्येक व्यक्ति भंगी है । भंगी का व्यवसाय तो हमें स्वच्छता प्रदान करता है ।"[३]

महात्मा गांधी के इसी वैचारिक पक्ष को 'हृदय-मंथन' में व्यावहारिकता प्रदान की गई है । भगवन्ता (गांधी चबूतरा) का कथन है — "ब्राह्मण और चमार दोनों समान हैं । एक जन्म से भी ब्राह्मण होकर कर्म से भला गया गुजरा है - - - - मैं उससे लाख गुना अच्छा हूं । किसी भी कर्मनिष्ठ ब्राह्मण से थोड़ा भी कम नहीं हूं ।"[४] 'हरिजन-आन्दोलन' से प्रभावित होकर तारा और मधुकर भी मजदूरी में काम करना आरंभ कर देते हैं । "रात को उन्होंने हरिजनों की बस्ती में एक पाठशाला खोल दी । तारा स्त्रियों को पढ़ाती और मधुकर पुरुषों को ।"[५] इसी उपन्यास के दूसरे पात्र जगन्नाथ ने "चमारों,

---

१- सीताचरण दीक्षित, हृदय मंथन, पृ० १६१.

२- "I am touchable by birth but I am untouchable by choice." Progs. Govt. of India, Home Deptt. Political Confidential file No. 31/113 of 1932.

३- "In my opinion every person is a Bhangi. The Bhangi profession keeps us clean." Progs. Govt. of India, Home Deptt. Secret file No. 123 of 1930.

४- प्रताप, गांधी चबूतरा, पृ० २०-२१.

५- उदयशंकर भट्ट, डा० शेफाली, पृ० १४७.

भंगियों की बस्तियों में प्रचार कार्य आरंभ कर दिया ।"[1] राष्ट्रपिता गांधी भी हरिजन-बस्तियों में रहकर उनके लिए काम करते थे । दिल्ली की भंगी-कालोनी इसका जीवन्त प्रमाण है ।[2]

महात्मा गांधी ने हरिजनों को सामाजिक-उद्धार के लिए यह परामर्श दिया था कि वे मरे हुए जानवरों का मांस-भक्षण न करें क्योंकि उससे वे सवर्ण हिन्दुओं के घृणा के पात्र बन जाते हैं । उनका विचार था कि "पाप से घृणा करनी चाहिए पापी से नहीं ।" इसीलिए वे अतिमानवीय व्यक्ति थे । मृतक-पशु के मांस-भक्षण संबंधी अपनी पूर्व धारणा को उन्होंने "हरिजन" में व्यक्त भी किया था ।[3] अमरकान्त (कर्मभूमि) अन्त्यजों की एक बस्ती में जाकर उनके मांस-भक्षण, मद्य-पान तथा अन्य कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करता है । अमरकान्त को जब बस्ती में कोई नहीं दिखाई देता तब उसे बताया जाता है कि "पहर रात सिरोमनपुर के ठाकुर की गाय मर गई, सब लोग वहीं गये हैं । आज घर-घर सिकार बनेगा ।"[4] अमरकान्त घृणा से उबने लगता है और सोचता है -- "मरी गाय का सिकार बनाया जायेगा । वह "इन्हीं मुरदाखोरों के घर भोजन" करता रहा है । वह इन मुरदाखोरों को समझाता है । और सफलता उसके चरण चूमती है । उसके अनुयायी उसके इस परामर्श का स्वागत करते हैं और सबसे कहते फिरते हैं -- "हमको तो उन्हीं की सलाह पर चलना है । उनकी राह पर चल कर हमारा

१- उदयशंकर भट्ट, डा० शेफाली, पृ० १४६.

२- के०पी० कृपलानी, बापू स्मि०, पृ० ३८६.

३- "But the eating of carrion is a most filthy habit, regarded as one of the heinous sins in Hindu scriptures, and it is essential that at this hour of self purification our Harijan brethern should be helped to get rid of this habit." Mahatma Gandhi (ed.) Harijan March 18, 1933 P. 8.

४- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० १६०.

उद्धार हो जायेगा । सारी दुनिया हमें इसीलिए तो अछूत समझती है कि हम दारू-शराब पीते हैं, मुरदा मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं ।"[1]

अमरकान्त की इस बात से "सारे गांव में एक नया जीवन प्रवाहित होता हुआ जान पड़ता था, कुलाधार का जैसे जांप हो गया था ।" प्रेमचंद ने अमरकान्त के माध्यम से वही कार्य लिया है जो बापू अन्त्यजों में कर रहे थे । यदि बापू घूम-घूम कर पैदल चल-चल कर हरिजनों में जागरण का मंत्र फूंक रहे थे तो साहित्यकार लेखनी की तेज धार से जनता के मस्तिष्क में विद्यमान आवरण को हटा रहे थे ।

साम्प्रदायिक-निर्णय

भारतीय-स्वातंत्र्य-संघर्ष की जड़ें दिन-प्रतिदिन गहरी होती जा रही थीं । जनता एक प्रबल तूफान की तरह ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के किले को झकझोरने लगी थी । उससे चिन्तित होकर कुछ ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने एक नवीन चाल चली । अगस्त १९३२ ई० को मैकडोनाल्ड ने 'साम्प्रदायिक-निर्णय' की घोषणा कर दी । जिससे हिन्दू आपस में विभक्त हो जायं और स्वाधीनता की मांग कमजोर पड़ जाय ।[2] गांधी जी ने अंग्रेजों के उस राजनीतिक-कुचक्र पर तुषारापात करने के लिए 'आमरण-अनशन' की घोषणा भी की थी ।

हिन्दी-उपन्यासकारों में मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी एक रचना में 'साम्प्रदायिक निर्णय' का चित्रण ऐतिहासिक रूप में किया है । "रैम्जे मैकडोनाल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा कर दी, जिससे अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र रखे गये । - - - - इस पर महात्मा गांधी ने २० सितम्बर से आमरण अनशन की सूचना दे दी ।"[3] उक्त

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० १७०-७१.

२- जे०बी० कृपलानी, गांधी लिटरेचर०, पृ० २४८.

३- मन्मथनाथ गुप्त, अपराजित, पृ० २२६.

निर्णय के उद्देश्य को स्पष्ट भी किया गया है -- 'मैक्डोनल्ड की चाल यह थी कि राष्ट्रीय आन्दोलन की एक टांग तो पहले से ही तोड़ दी गई। मुसलमान उससे काफी हद तक अलग हैं, अब अछूत भी ऐसे ही हो जाएं। इसे रोकना जरूरी था।'[1]

एक ओर हिन्दू-मुसलमानों का अलगाव जारी था तो दूसरी ओर अंग्रेजों ने यह नया मोहरा खोल दिया था। विष्णुप्रभाकर ने उसी युगीन समस्या पर विचार किया है। जब निशिकान्त से पूछा जाता है कि 'हिन्दू-मुसलमानों को एक कर आयें' वह मुस्करा कर रह जाता और कहता है -- 'अभी नहीं, हिन्दू लोग पहले अपने में तो मेल करलें। ---- हम लोग अछूतों को किस प्रकार बुरी तरह दुत्कारते हैं। हम जब तक उनको नहीं अपनाते तब तक मुसलमानों की बात करना अपने को धोखा देना है। अपना घर ठीक करो। हिन्दुओं को एक स्तर पर लाओ।'[2] गांधी जी के आमरण-अनशन का चित्रण भी उपन्यास में संकेत के रूप में विद्यमान है। 'टेढ़े-मेढ़े-रास्ते' में भी उपर्युक्त समस्या पर विचार हुआ है। यथा -- 'अंग्रेज ही इन चमारों को भड़का रहे हैं ताकि हिन्दू मुसलमान की तरह उच्चवर्ण और अछूत का झगड़ा भी पैदा करके फायदा उठाया जाये।

'नहीं तिवारी जी', नीलकंठ अवस्थी ने कहा, 'यह आग कांग्रेस की भड़काई हुई है।'

'कांग्रेस की नहीं', राजा रामनाथ ने कहा, अंग्रेजों की चाल है। कांग्रेस तो महज बीच का खिलौना है। कांग्रेस समझती है कि वह इस सनातन परम्परा को बदल सकेगी। लेकिन अंग्रेज इसे बदलना नहीं चाहते। सिर्फ एक असंतोष पैदा कर देना चाहते हैं उनकी हिम्मत बढ़ा कर छोड़ देना चाहते हैं।'[3]

हरिजनोद्धार समस्या का अन्य जिन रचनाओं में प्रासंगिक रूप से चित्रण हुआ है उनमें 'कुल्लीभाट', 'हरिजन', 'हाथी के दांत', 'मुक्ति के बंधन', 'भूले-बिसरे चित्र', 'सीधा-सादा रास्ता', 'अमरबेल' आदि मुख्य हैं।

१- मन्मथनाथ गुप्त, अपराजित, पृ० २७७.
२- विष्णुप्रभाकर, निशिकान्त, पृ० १०६.
३- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े-रास्ते, पृ० २२७.

<u>हिन्दू-मुस्लिम एकता</u>

भारत में हिन्दू-मुस्लिम समस्या अंग्रेजी साम्राज्य की देन थी । द्वितीय अध्याय में इस समस्या पर विचार हो चुका है । 'असहयोग आन्दोलन' में हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो सशक्त स्वरूप उभर रहा था वह 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति से उभरने न पाया । धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्नों को लेकर हिन्दू और मुसलमानों में तना-तनी होने लगी । 'असहयोग आन्दोलन' का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को पंगु बनाना था ।[१] जिससे ध्वंसात्मकता के अवशेषों पर नव निर्माण किया जा सके । बापू का कहना था कि 'हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना स्वराज्य पाना संभव नहीं है ।'[२] क्योंकि आपसी लड़ाई से शत्रु का मुकाबला कर देश को स्वाधीन करना बच्चों का खेल नहीं है ।

दुर्गाप्रसाद खत्री ने 'प्रतिशोध' में बिखराव की ओर उन्मुख हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति सजग करते हुए कहलाया है —

'इस देश के निवासी इस समय शक्तिहीन हो रहे हैं । सबसे पहले उन्हें शक्ति प्राप्त करनी होगी, अगर वे चाहते हैं कि अपनी पराधीनता को दूर कर स्वाधीन बनें या अपने देश में अपना राज्य स्थापित करें तो उन्हें सबसे पहले शक्तिशाली बनना पड़ेगा ।'[३] जातीय एकता की बात 'उग्र' ने भी अजगरी के एक पत्र द्वारा कृष्णमुरारी को लिखते हुए कही है —'पहले हिन्दू और मुसलमान या यहूदी कोई नहीं था । सभी आदमी थे, सभी खुदा के प्यारे बच्चे थे ? फिर ? सब लोग मिलकर फिर से 'आदमी' क्यों नहीं बन जाते ?'[४]

'असहयोग-सत्याग्रह' के बाद प्राय: धार्मिक भावना को लेकर साम्प्रदायिक दंगे होते रहते थे । विभिन्न धार्मिक-दल अपनी स्वार्थ की पूर्ति धर्म की ओट में करते थे ।

१- एस०के०मजूमदार, जिन्ना एण्ड गांधी (कलकत्ता : १९६६), पृ० ८१.

२- महात्मा गांधी, कम्युनल यूनिटी सम्पा० डा० राजेन्द्रप्रसाद (अहमदाबाद : १९४९), पृ० २२९.

३- दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रतिशोध, पृ० ४.

४- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', चंद हसीनों के खतूत (कलकत्ता : ति०न०) पृ० ४९.

प्रेमचंद ने इसकी ही चुटकी लेते हुए कहलाया है -- 'हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध ये नहीं हैं, भिन्न-भिन्न स्वार्थों के दल हैं, जिनसे हानि के सिवा आज तक किसी को लाभ नहीं हुआ ।'[1] सोफिया और विनय का विवाह प्रसंग भी उस युग की धार्मिक कट्टरता की ओर संकेत करता है । धर्म ने दो दिलों को मिलाने की अपेक्षा उन्हें जुदा करने में ही सहयोग दिया है । धार्मिक-कट्टरता समाप्त करके मानवीय स्तर पर मानव का मानव से संबंध स्थापित होना चाहिए । यही 'मुंशी' जी का एकमात्र उद्देश्य है ।

साम्प्रदायिक-एकता का प्रश्न 'कायाकल्प' में और अधिक स्पष्ट हुआ है । ख्वाजा साहब पिछली हिन्दू-मुस्लिम एकता की यादें बटोरते हुए कहते हैं -- 'यह देखता हूं कि आपस में वह पहले की सी मुहब्बत नहीं है । दोनों कौमों में कुछ ऐसे लोग हैं जिनकी इज्जत और शान बस दोनों को लड़ाते रहने पर ही कायम है । ---- मेरा तो यह कौल है कि हिन्दू रहो चाहे मुसलमान रहो, खुदा के सच्चे बंदे रहो । ---- न सब मुसलमान पाकीजा हैं न सब हिन्दू देवता । इसी तरह न सब हिन्दू काफिर हैं, न सभी मुसलमान मोमिन । जो आदमी दूसरी कौम से जितनी नफरत करता है समझ लीजिए कि वह खुदा से उतनी दूर है ।'[2] एक ओर ख्वाजा साहब साम्प्रदायिक एकता के लिए लोगों को समझाते हैं तो दूसरी ओर वागीश्वरी का कथन है -- 'नित्य समझाती रही इन झगड़ों में न पड़ो । न मुसलमानों के लिए दुनिया में कोई दूसरा ठौर-ठिकाना है, न हिन्दुओं के लिए । दोनों इसी देश में रहेंगे और इसी देश में मरेंगे । फिर आपस में क्यों लड़ मरते हो ? ---- मिल जुल कर रहो ।'[3]

डा० अम्बेदकर ने असहयोग-सत्याग्रह के उपरान्त होने वाले हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों की समीक्षा करते हुए कहा है -- 'यह एक सत्य है कि हिन्दू और मुसलमान जो दो वर्ष

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ४०६-७.

२- प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ० २२६.

३- यथोपरि, पृ० २०८ .

पूर्व मित्रों की भांति मिलकर कार्य कर रहे थे, अब आपस में जानवरों की भांति लड़ रहे हैं।"[1] ये लड़ाई-झगड़े कभी गाय को लेकर तो कभी बाजे को लेकर प्राय: होने लगे थे।

महात्मा गांधी ने इन धार्मिक झगड़ों से दूर रहने की जनता को सलाह दी थी। जो झगड़े गाय की बलि को लेकर होते थे उस पर उनका कहना था कि "गाय तो प्राणिमात्र का एक प्रतीक है। गोरक्षा का अर्थ है, दुर्बलों, असहायों, गूंगों और बहरों की रक्षा करना।"[2] गाय को लेकर एक दूसरे का रक्त बहाना बापू उचित नहीं मानते थे। इसलिए उनकी मान्यता थी कि "गाय की रक्षा करने का एक ही उपाय है कि मुझे अपने मुसलमान भाई के सामने हाथ जोड़ने चाहिए। और उसे देश की खातिर गाय को बचाने के लिए समझाना चाहिए। अगर वह न समझे तो मुझे गाय को मरने देना चाहिए क्योंकि वह मेरे बस की बात नहीं। अगर मुझे गाय पर अत्यन्त दया आती हो तो अपनी जान दे देनी चाहिए लेकिन मुसलमान की जान नहीं लेनी चाहिए।"[3]

प्रेमचंद ने अपनी रचना 'कायाकल्प' में गांधी जी के इन्हीं दार्शनिक तत्वों के आधार पर गाय की बलि वाला प्रसंग चित्रित किया है। मुसलमान गाय की बलि देना चाहते हैं। यशोदानंदन व उनके साथी गाय की बलि का विरोध करते हैं। सामने-सामने अस्त्र-शस्त्र लिए दोनों कौमों के लोग एक दूसरे का रक्त पीने को खड़े हैं। इतने में ख्वाजा दोनों पक्षों में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करता है। आवाजें पड़ती जाती हैं कि "हम मर मिटेंगे पर गाय की कुरबानी न होने देंगे।" वह मुस्लिम-दल के लोगों को भी समझाता है और कहता है -- "अगर गाय की कुरबानी करना आप अपना मजहबी फर्ज समझते हों तो शौक से कीजिए - - - - इस्लाम ने कभी दूसरे मजहब वालों की दिलआजारी नहीं की। उसने हमेशा दूसरों के जज्बात का एहतराम किया है।"[4]

१- बी०आर० अम्बेडकर, पाकिस्तान ऑर दि पार्टीशन आव इंडिया (बम्बई : १९४६) पृ० १५१.

२- जवाहरलाल नेहरू, कुछ पुरानी चिट्ठियां (नई दिल्ली : १९६०), पृ० ८३.

३- महात्मा गांधी, हिन्दस्वराज्य, पृ० ३५.

४- प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ० ३२.

परन्तु लोगों के दिलो-दिमाग में धर्म का खुमार चढ़ा था । वे किसी की कब मानने वाले थे । तब पुन: क्रोध और कांपती हुई आवाज में वह कहता है --"मारयाँ । एक गरीब बेकस जानवर को मारना बहादुरी नहीं । खुदा बेकसों के खून से खुश नहीं होगा । - - - - जानवर की हिमायत में इन्सान का खून बहाना इन्सान को मुनासिब नहीं ।"[1] जब लोग नहीं माने तो चक्रधर ने फुर्ती से गाय की गर्दन पकड़ ली और कहा --"आज आपको इस गौ के साथ एक इंसान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी - - - - खुदा की यही मर्जी है कि आज गाय के साथ मेरी भी कुर्बानी हो ।"[2]

साम्प्रदायिक एकता का एक अन्य चित्र "गोदान" में भी चित्रित हुआ है -- गोबर ने सबको राम-राम किया । हिन्दू भी थे मुसलमान भी थे, सभी में मित्र भाव था । सब एक दूसरे दुख-दर्द के साथी । रोजा रखने वाले रोजा रखते थे । एकादशी रखने वाले एकादशी । कभी-कभी विनोद भाव से एक दूसरे पर छींटे भी उड़ा लेते थे । गोबर अलीउद्दीन की नमाज को उठाबैठी कहता, अलीउद्दीन पीपल के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे बड़े शिवलिंग को बटखरे बनाता, लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष का नाम भी न था । गोबर घर जा रहा था, सब उसे हंसी-खुशी विदा करना चाहते हैं ।"[3]

नूरुद्दीन पहलवान के अखाड़े में हिन्दू और मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं है । इस अखाड़े में हिन्दू-मुसलमान सभी लोग आते थे । एक बार शहर के कुछ मुसलमान वहां आये । नूरुद्दीन के घर ठहरे । अखाड़े का भी निरीक्षण किया । सिन्दूर से चित्रित हनुमान जी की तस्वीर एक आले में विराजमान थी ।"[4] परन्तु नूरुद्दीन के अखाड़े से उस मूर्ति का लोप कर दिया जाता है । भाई-भाई से लड़ा दिया जाता है ।

१- प्रेमचंद, कायाकल्प, पृ० ३४.

२- यथोपरि, पृ० ३४-३५.

३- प्रेमचंद, गोदान, पृ० १६३.

४- कामवरण जैन, भाई, पृ० ६५.

निशिकान्त, सुरैया के घर जाता है। वह कहती है -- "मुझे खुशी है कि मुसलमान के घर आज एक हिन्दू खाना खाने आया है। क्या आपको कुछ अटपटा नहीं लगता ?

"लगता तो है।" कान्त बोला "पर इसके बिना देश का कल्याण होने वाला नहीं है।"[१]

शर्मा और रियाज भी युगीन साम्प्रदायिकता की विषैली राजनीतिक गंध पर बातचीत करते हुए कहते हैं --

"आग दोनों ओर बराबर लगी हुई है।"

"जी हाँ", रियाज ने कहा, "जरूरत उसे बुझाने की है।"

"और मैं समझता हूँ" शर्मा ने दृढ़ता से कहा, "इस ओर हिन्दुओं को आगे बढ़ना चाहिए।"[२]

'बलिदान' की नायिका भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए चिन्तित होकर कहती है -- "भैया! न हिन्दू का बिगड़ता है, न मुसलमान का। दिल पर तो उसकी बीतती है जिसके घर का आदमी जाता है। फिर भी गोपा तुम किसी का खून मत करना क्योंकि इससे हमारे देश की स्वतंत्रता पीछे रह जायेगी।"[३]

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'राम-रहीम' में साम्प्रदायिक एकता के वर्णनात्मक चित्रों का सुन्दर संयोजन किया है। कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं --

"क्यों हम 'राम' के नाम पर सर झुकाते हैं और 'रहीम' के नाम पर फब्तियां चुस्त करते हैं ? बात यह है, चूंकि राम हमारा है, रहीम दूसरों का। राम और रहीम तो एक ही रहे, मगर हम और वे जो एक थे दो हो गये - - - - इस तोड़ फोड़ से हमारा और उनका सर टूटा, 'राम' या 'रहीम' का तो कुछ नहीं बिगड़ा -- न बना।"[४]

१- विष्णु प्रभाकर, निशिकान्त, पृ० १८६.

२- यथोपरि, पृ० १०८.

३- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० १४.

४- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, राम-रहीम (इलाहाबाद : १६३६), पृ० ५०२.

राम और रहीम दोनों एक ही हैं। बेला को समझाते हुए जियती कहती है -- "जिसे तुम संस्कृत जबान में राम कहती हो, उसे तुम अगर फारसी जुबान में रहमान कहोगी, तो उससे क्या वह राम हराम हो गया? आखिर दोनों में से कोई भी तुम्हारी अपनी जुबान नहीं। जो लकरार जुबान लेकर है, उसे जाहिल दुनिया ईमान लेकर -- राम-रहमान लेकर मान बैठी है। तुम अपने बाप को बाबा न कह कर अब्बा कहोगी, तो उससे तुम्हारे बाप कोई दूसरे हो गये।"[१] पूरा उपन्यास हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश देता है। राम और रहीम का मूल तत्व एक है। भगवान को मनुष्य ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए बांट रखा है। "तुम उसे राम कह कर भजो या रहमान कह कर सुमिरो, तुम्हारी जबान न दो हुई। खुद वह तो दो हुआ नहीं। तुम गीता के छन्दों में उसका यश गाओ या कुरान की आयतों में उसे याद करो, तुम्हारी किताब दो हुई, खुद वह तो दो हुआ नहीं।"[२] महात्मा गांधी भी "रघुपति राघव राजा राम, ईश्वर अल्ला तेरो नाम" कह-कह कर एकता का पाठ सबको सुनाते रहते थे।

महात्मा गांधी का कहना था कि "हम सब एक ही आलीशान पेड़ के पत्ते हैं। सभी धर्मों का मूल एक ही है। यद्यपि वे पेड़ के पत्तों की तरह एक दूसरे से अलग-अलग हैं।"[३] पथिक भी दोनों कौमों को एक मान कर कहता है -- "मैं तो हिन्दू-मुसलमानों को अलग नहीं मानता। यह फरक तो अंग्रेजों ने ही पैदा किया है।"[४] हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक नेताओं ने अपने अनुयायियों के मन में विद्वेष का विष घोला था।[५] "विसर्जन" में शुक्र अली और संतोष करते हुए कहता है -- "खबरदार जरा आपे से बाहर न हो ठाकुर। आपस में फूट डालना ठीक नहीं है। लड़ाई के मौके पर मेल मिलाप बढ़ाया जाता है या आपस में लड़ कर अपनी ताकत को बरबाद किया जाता है।"[६]

१- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, राम-रहीम, पृ० ६७६.
२- यथोपरि, पृ० ६७३.
३- महात्मा गांधी, ग्रामस्वराज्य, पृ० ४२.
४- गुरुदत्त, पथिक (नई दिल्ली : १९५७), पृ० २५७.
५- महात्मा गांधी, कम्युनल यूनिटी, पृष्ठ १०.
६- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ० ८२.

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अपने एक दूसरे उपन्यास में साम्प्रदायिकता को लक्ष्य बनाकर रमई गांव की गाथा उसमें चित्रित की है। एक ओर अनवर मुसलमानों का ओर दूसरी ओर जागेश्वर हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करता है। ताजियों को ले जाने के लिए हिन्दुओं का धार्मिक पीपल-वृक्ष मुसलमान काटना चाहते हैं। परन्तु दोनों ओर से तकरार की रार बढ़ जाती है और हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़कर ही स्वयं अपना विनाश करते हैं। रहीम और दिवाकर दोनों दलों को समझाते बुझाते हैं। "हिन्दू और मुसलमान उस गांव में भाई सा व्यवहार करते आ रहे हैं। एक दूसरे के दुख-सुख में शामिल होते हैं। दोनों की जमीन एक ही है।"[1]

रहीम अपनी जात-बिरादरी को शान्ति से समझाता है। उसका कथन है -- "अगर अपने पड़ोसी, अपने भाई के खून करने से, हलाक करने से, उसके घर में अग्नि लगाने से, उसका घर लूटने से कोई इन्सान मुसलमान बन सकता है तो बेशक मैं ऐसा मुसलमान बनने से बाज आया।"[2] - - - - वह पुन: कहता है -- "तुम मुसलमान पर वार कर सकते हो, लेकिन न मैं हिन्दू को मार सकता हूं और न मुसलमान को, क्योंकि दोनों मेरे भाई हैं। एक धर्म के नाते भाई है, और एक मुल्क के नाते। दोनों का रुतबा बराबर है और दोनों जिन्दगी के लिए जरूरी हैं।"[3] पीपल वृक्ष को काटने के लिए इंदू कुल्हाड़ी थामे खड़ा है रहीम पीपल के पेड़ को काटने का विरोध करते हुए कहता है -- "पीपल का तना काट डालने से पहले मेरा तन काटो। इंदू अगर तुम्हारे हाथों में ताकत है तो लो पहले अपने रहीम काका को मौत की नींद में सुला दो।"[4] अनिया भाइयों की इस प्रतिहिंसा को देखकर उन्हें समझाते हुए कहती है -- "हिन्दू-मुसलमान धर्म अल्लाह की दोनों बांहें हैं - एक दाहिनी और एक बाईं।"[5]

१- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २४.
२- यथोपरि, पृ० ११३.
३- यथोपरि, पृ० ११५.
४- यथोपरि, पृ० २००.
५- यथोपरि, पृ० २५५.

बशिया का उपर्युक्त कथन सरोजिनी नायडू के कथन की ही पुनरावृति है । उन्होंने कहा था कि हिन्दू और मुसलमान राष्ट्र की दो आंखें हैं ।[१]

'भूले-बिसरे चित्र' में ज्ञानप्रकाश, गंगाप्रसाद और फरहतुल्ला के आपसी वार्तालाप के द्वारा साम्प्रदायिक एकता पर प्रकाश डाला गया है । ज्ञानप्रकाश कहता है --"फरहतुल्ला साहेब, अगर हम मजहब को व्यक्तिगत चीज मानलें और समाज से उसे अलग करलें तो यह मसला आसानी से हल हो सकता है । यहां हिन्दुस्तान में न जाने कितने मजहब समय-समय पर आये और वे सब व्यक्तिगत होकर रह गये । यहां वैष्णव हैं, शैव हैं, शाक्त हैं, यहां बौद्ध हैं, जैन हैं, यहां लोग सांपों को पूजते हैं, यहां नास्तिक हैं, आस्तिक हैं ।"[२] वह पुन: फरहतुल्ला साहब की बात का प्रतिवाद करते हुए कहता है --"लेकिन महात्मा गांधी तो कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं और जब वह कहते हैं तब उनकी बात माननी ही पड़ती है । तो बरखुरदार इस भाई-भाई की आवाज से अगर हिन्दू-मुसलमानों में एका हो जाय तो क्या बुरा है ?"[३]

हिन्दू-मुस्लिम एकता की ध्वनि 'झूठा सच' में भी सुनाई पड़ती है । भारत-विभाजन से उत्पन्न समस्याओं पर विचार करने के बाद असद का कथन है --"अगर धर्म या सम्प्रदाय के विश्वासों की पृथकता के बावजूद हिन्दू-मुसलमानों के सामाजिक संबंध होते रहें तो झगड़ा कितना कम हो जाये ।"[४] तारा अपनी मां को साम्प्रदायिक सौहार्द के बारे में समझाते हुए कहती है --"आजकल हिन्दू-मुसलमानों के ब्याह हो रहे हैं । महात्मा गांधी

१- "The Hindus and Muslims are the two eyes of the nation and if both eyes were to be focussed together on the swaraj------- freedom would be theirs no long." - H.N. Mitra (ed) The Annual Register (Calcutta: 1940), Vol. I, P. 79.

२- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ८३.

३- यथोपरि, पृ० ४४६.

४- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० ८६.

के लड़के ने ब्राह्मण की लड़की से और पंडित जवाहरलाल की लड़की ने पारसी लड़के से शादी की है। हिन्दू-पारसी और मुसलमान में क्या फरक ? आदमी आदमी सब एक।"[1]

"मैला आंचल" में साम्प्रदायिक-एकता के उस गीत का स्मरण किया गया है जो तिवारी जी ने खिलाफत के जमाने में गाया था। गीत इस प्रकार है —

"अरे चमके मन्दिरवा में चांद
मसजिदवा में बंसी बजे।
मिली रहू हिन्दू मुसलमान
मान-अपमान तजो।"[2]

हिन्दू-मुस्लिम-एकता के सूत्र जो गांधी जी की भावना से आविष्ठित हैं — वे "पूरब और पश्चिम", "रैन अंधेरी", "आत्मदाह", "नई इमारत", "कर्मभूमि", "गांधी चबूतरा", "इन्दुमती" आदि में भी बिखरे पड़े हैं। किन्तु वे केवल सूत्र ही हैं। चित्रनहीं।

विदेशी-बहिष्कार एवं स्वदेशी भावना का चित्रण

लार्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी-आन्दोलन ने एक नये राजनीतिक युग की स्थापना की। यद्यपि उस आन्दोलन को एक प्रादेशिक-आन्दोलन कहा गया परन्तु स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास में आगामी संघर्ष के लिए उसने नींव के पत्थर का कार्य किया। महात्मा गांधी के विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार से पूर्व बंगाल की धरती में यह आन्दोलन अपना सिक्का जमा चुका था। बहिष्कार की इसी परम्परा के दर्शन असहयोग-आन्दोलन के युग में भी होते हैं।

जब असहयोग-युग का दौर-दौरा चल रहा था। उस समय "प्रिन्स आफ वेल्स" के भारत आगमन पर भारतीय राष्ट्रीय-कांग्रेस ने उनके बायकाट का प्रस्ताव पारित कर

१- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० २०१.
२- फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आंचल, पृ० २४७.

सम्पूर्ण देश में हड़ताल करने का आह्वान किया।[१] हड़ताल सफल रही। युवराज जहां-जहां गये वहां-वहां उन्हें हड़तालें और सूनी सड़कें ही मिली।[२] "पच्चीस दिसम्बर को युवराज कलकत्ता पहुंचे, लेकिन वहां जितनी बड़ी हड़ताल हुई तथा समस्त उत्तर भारत में जो हड़तालें हुईं और जो प्रदर्शन हुए उनसे हालत और भी चिन्ताजनक हो गये।"[३] एक दो अन्य उपन्यासों में भी युवराज का बहिष्कार चित्रित किया गया है।

स्वदेशी की भावना का चित्रण हिन्दी-उपन्यासों में तीन रूपों -- स्वदेश-प्रेम, स्वभाषा-प्रेम तथा स्वदेशी वस्तु के प्रति आस्था के रूप में प्रमुखत: उपलब्ध होता है।

स्वदेश-प्रेम

अपने देश के प्रति अनुराग की भावना के दर्शन प्राक् गांधी युगीन उपन्यासों में सांकेतिक रूप में चित्रित है। वनमाली अपनी भावना को प्रकट करते हुए कहता है -- "मेरे मन में परदेशीपन का जो भूत घुस गया था वह निकल गया।"[४] 'आरण्यबाला' में देश के उत्थान के लिए कल कारखाने खोलने की बात कही गई है -- "कल कांटे का जहां तहां कारखाना खोलो। तुम्हें कपड़ा, लोहा, चमड़ा आदि सब पदार्थों का कारखाना खोलना होगा। - - - - अपने नित्य के व्यवहार के आवश्यक पदार्थों के लिए यहां के रहने वालों को दूसरों का मुंह न ताकना पड़े।"[५]

'हिन्दू-गृहस्थ' का एक पात्र हरसहाय स्वदेशी भावना से अभिप्रेरित होकर भारत में दियासलाई का कारखाना खोलने के लिए प्रयत्न करता है। कारखाने के वित्तीय सहयोग

१- प्रोसीडिंग्ज : भारत सरकार, गृहविभाग, गोपनीय पत्रावली सं० ४५६ आफ १९२१.

२- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, पृ० १२१.

३- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५२१-२२.

४- मेहता लज्जाराम शर्मा, बिगड़े का सुधार अथवा - - - - (बम्बई : १९०७), पृ० ४५.

५- ब्रजनंदन सहाय, आरण्यबाला (काशी : १९२१), पृ० ३२५-२६.

हेतु वह अनेक संस्थाओं को पनपाता है। पन्नोधर के माध्यम से उपन्यासकार ने स्वदेशी भावना का चित्रण करते हुए कहलाया है -- "महाशय आपने भारतवर्ष में दियासलाई का जो कारखाना खोलना विचारा है उसको हमारी सभा अनुमोदन करती है। आप वास्तव में देश हितैषी हैं और आपका कार्य वस्तुतः भारतवर्ष का हित करने वाला है।"[1]

स्वदेश के प्रति प्रेम की भावना का चित्रण प्रेमचंद के वरदान में चित्रित हुआ है। सुवामा, देवी से ऐसे पुत्र की याचना करती है जो देश के लिए स्वप्राणों का उत्सर्ग कर सके। सुवामा से प्रसन्न होकर देवी पूछती है --

"सुवामा। मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूं। मांग क्या मांगती है? - - - -

"सपूत बेटा।"

"जो कुल का नाम रोशन करे?"

"नहीं।"

"जो विद्वान और बलवान हो?"

"नहीं।"

"फिर सपूत बेटा किसे कहते हैं?"

"जो अपने देश का उपकार करे।"[2]

देश को पराधीनता की कारा से मुक्त करने हेतु ऐसे ही सपूतों के लिए भारतीय नारियां कामनायें करती आई हैं। जिन्होंने तिलक, भगतसिंह, आजाद, सुभाष, गांधी, नेहरू आदि सपूतों को जन्म दिया है। "रक्त-मंडल" के क्रान्तिकारी भी "महाशक्ति की जय तथा जननी-जन्मभूमि की जय"[3] का गुणगान करते हुए हंसते-हंसते देशोद्धार का प्रयत्न करते हैं। "मेरा देश" में धिमल जब अपनी रुग्ण मां से मिलने के लिए जेल से माफी मांग

१- लज्जाराम शर्मा मेहता, हिन्दू गृहस्थ (बम्बई : १६०२), पृ० ६८.

२- प्रेमचंद, वरदान (दिल्ली : १६६६), पृ० ६-७.

३- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्त-मंडल, खंड दो, भाग तीन, पृ० १०.

कर मां के पास आता है तब मरणासन्न मां बेटे को उसका कर्तव्य बतलाते हुए कहती है -- "मेरा पुत्र होकर, अपने पिता का पुत्र होकर माफी मांग ली । मेरे जन्म ने में कलंक का टीका लगा दिया । जिसके पिता ने देश के लिए हंसते-हंसते प्राण अर्पण कर दिए - - - - वह कायर निकला, वह देशद्रोही निकला । - - - - हाय मैं पुत्र के होते हुए भी निपुत्री से बुरी हूं ।"[1] किशोर विमल रोने लगता है और पूछता है -- "मां की ममता छोड़ सकूंगा ?" कोशिश करो और अपना मंत्र बनाओ -- मेरा देश"[2]

आत्मानंद जेल में फांसी-याफ्ता चिदम्बरं से भेंट करने जाता है । चिदम्बरं क्रान्तिकारी आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश राज्य को समाप्त करने का अपराधी है । भेंट करने के लिए दिया गया समय पूरा होने से पूर्व ही आत्मानंद को जेलयक्ष हटाने लगा तो ब्रिटिश राजभक्त जेलर को, डांटते हुए चिदम्बरं कहता है -- "तुम तो भारतीय हो जेलर, क्या तुम्हारे मन में कोई ऐसा विचार नहीं उठता । - - - - मैं मर रहा हूं तुम्हारे लिए, तुम्हारी सन्तान के लिए क्या तुम इतने नामर्द हो कि मुझे बात भी नहीं करने देते ।"[3] देश के लिए मरने में चिदम्बरं को कितनी प्रसन्नता है -- "मैं प्रसन्न हूं । जाओ । प्रसन्न रहो । जो कुछ तुमसे हो सके देश की सेवा करो । देश आज बलिदान चाहता है । बलिदान, बलिदान।"[4]

प्रोफेसर शिवदयाल भी देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं । परतंत्र भारत में वह संसारी बनना नहीं चाहते । वह शपथ लेते हुए कहते हैं -- "मैं शपथ - - - - लेता हूं कि जब तक देश आजाद नहीं होता तब तक मेरे लिए संसार का कोई व्यवहार नहीं -- विवाह व्यापार या रोजगार । - - - - मैं तमाम तन-मन-धन माता के चरणों पर निछावर करता हूं ।"[5]

१- धनीराम 'प्रेम', मेरा देश, पृ० ५८.
२- यथोपरि, पृ० ६०.
३- उदयशंकर भट्ट, शेष-अशेष, पृ० २६१.
४- यथोपरि, पृ० २६३.
५- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० ३.

इसी प्रकार की भावना का चित्रण `धर्मपुत्र` में भी दिलीप के कथन में अभिव्यक्त हुआ है --`जब तक मेरा देश स्वतंत्र हो जाये - - - - तब तक ब्याह करके गुलाम सन्तान पैदा करने से क्या फायदा है मां । फिर कौन जाने हमें किस मुसीबत में फंसना पड़े - जेल जाना पड़े, फांसी लटकना पड़े, - - - - पहले हिन्दी - - - - हिन्दुस्तान है । पीछे ब्याह-शादी ।`[1]

स्वभाषा-प्रचार

महात्मा गांधी से पूर्व भी तिलक ने[2] स्वभाषा के प्रयोग पर विशेष बल दिया था । उन्होंने मराठी-भाषा के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया था । हिन्दी-भाषा की उन्नति तथा प्रयोग के प्रश्न पर भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में अंग्रेज प्रभुओं से प्रार्थना की गई थी । `प्रभुवर श्रीमान एन्टोनी मेकडानेल साहब बहादुर की न्यायशील और सच्चे प्रजा हितैषी समझ दीन हीन हिन्दी भी न्याय के लिए एक बार फिर पुकार मचाने के लिए साहस करने में सन्नद्ध हुई है ।`[3] महात्मा प्रेमानंद के निम्नोक्त कथन में उस युग की भाषाई समस्या का संकेत मिलता है । उसका कथन है --`मैं एक बात कहने को भूल गया कि शिक्षा तुम्हें अपने देश की भाषा में देनी होगी - - - - शिक्षा का माध्यम तुम्हें ज्ञान्यान गुणागरी नागरी ही को रखना पड़ेगा ।`[4]

भाषाई-जागरण का श्रेय भी महात्मा गांधी को ही जाता है । नरमदली-राजनीति के युग में उसके विकासार्थ कोई प्रयत्न विशेष नहीं किया गया । बापू `भाषा को माता के समान` मानते थे । उनका कहना था कि `विदेशी भाषा द्वारा आप को

१- आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र (दिल्ली : १९५०), पृ० ६६.

२- "Tilak made a thrilling speech in Marathi------------Gandhiji insisted on Jinnah also speaking in Gujrati, Jinnah agreed."
- Dwarika Das Kanji, Indias Fight For Freedom (Bombay: 1966), P. 66.

३- बालकृष्ण भट्ट (सं०)हिन्दी प्रदीप (मासिक) इलाहाबाद : १८९६ ई०,जिल्द सं० १९, पृ०२५.

४- ब्रजनंदन सहाय, आरण्यबाला, पृ० ३२७.

स्वातंत्र्य चाहते हैं वह नहीं मिल सकता - - - - अब हमें अपनी मातृभाषा को और नष्ट करके उसका खून नहीं करना चाहिए ।"[१] बापू ने ये शब्द सन् १९१८ में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर' के आठवें अधिवेशन में कहे थे । उन्होंने लोगों को स्मरण कराते हुए कहा था -- "मेरा क्षेत्र दक्षिण में प्रचार करना है । सन् १९१८ में जब आपका अधिवेशन यहां (इन्दौर में) हुआ था, तब से दक्षिण में हिन्दी प्रचार के कार्य का आरंभ हुआ है ।"[२]

'सेवा सदन' में सर्वप्रथम गांधी जी के स्व-भाषा प्रचार का प्रकारान्तर से उल्लेख मिलता है । प्रेमचंद विट्ठलदास के माध्यम से कहते हैं -- "यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामी से कहीं गई गुजरी है । आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं । गीता को जर्मन में । अर्जुन को अर्जुना, कृष्ण को कृष्णा कह कर अपने स्वभाषा ज्ञान का परिचय देते हैं ।"[3] राष्ट्रीय-कार्यों में विदेशी-भाषा का ही बोलबाला था । गांधी जी ने 'कांग्रेस कार्यकर्ताओं को हिन्दी के विषय में उपदेश दिया था । परन्तु उनके सिवाय कोई भी नेता स्वभाषा के प्रचार पर जोर नहीं देता था ।'[४] कुंवर अनिरुद्ध के द्वारा उसी भावना को व्यक्त कराया गया है । वह कहता है -- "मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में लोग क्यों अपना गौरव समझते हैं । मैंने भी अंग्रेजी पढ़ी है । दो साल विलायत रह आया हूं । - - - - पर मुझे उससे ऐसी घृणा होती है, जैसे किसी अंग्रेज के उतारे कपड़े पहनने से ।"[५]

१- महात्मा गांधी, राष्ट्र-भाषा-हिन्दुस्तानी (अहमदाबाद : १९४७), पृ० १०.

२- यथोपरि, पृ० ३८.

३- प्रेमचंद, सेवासदन, पृ० १७७.

४- प्रेमचंद, विविध प्रसंग, संकलन - अमृतराय (इलाहाबाद : १९६२) भाग तीन, पृ० १९४-९

५- प्रेमचंद, सेवासदन, पृ० १८०.

शेखर के मन में भी विदेशी भाषा के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। उसके मनोभावों का अंकन इस प्रकार किया गया है -- "उसने देखा कि हमारी नस-नस में विदेशी का प्रभुत्व ही नहीं आतंक भरा हुआ है - - - - उसे यह भी ध्यान हुआ कि पिता उसे घर में भाइयों से अंग्रेजी में बात करने को कहा करते हैं - - - - उसके आत्माभिमान को बहुत सख्त धक्का लगा। - - - - उसने उसी दिन से बड़ी लगन से हिन्दी पढ़ना आरंभ किया और चेष्टा से अपनी बातचीत में से अंग्रेजी शब्द निकालने लगा।"[१]

महात्मा गांधी भी अंग्रेजी के सख्त विरोधी थे। 'कराची कांग्रेस' में उन्होंने कहा था "जो लोग हिन्दुस्तानी नहीं समझते उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे कांग्रेस के प्रतिनिधित्व और भारतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता के लिए उम्मीदवार न खड़े हों।"[२]

निशिनाथ भी "किताबी पढ़ाई का, जो विदेशी हुकूमत की मशीन में काम आने वाले कल-पुर्जे ही गढ़ती है बहिष्कार" करता है। विश्वविद्यालय के फाटक पर धरना देता है।

भैया दुक्खू भाई से कहता है -- "हिन्दी पढ़ना खराब नहीं है" और संतोखी उसका समर्थन करती हुई कहती है -- "अपनी भाषा में पढ़ाई होगी तभी भैया, कोई मरद-औरत अनपढ़ नहीं रहेगा और सब किताब, अखबार पढ़ समझ लेंगे।"[४] एक मजदूर का स्व-भाषा के प्रति लगाव और अंग्रेजी भाषा के प्रति घृणा यशपाल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -- "एक मजदूर कामरेड, जो पार्टी का मराठी अखबार अपने पड़ोस में बेचता था, इस अंग्रेजी से उकता गया। हाथ के अखबार फर्श पर पटक वह क्रोध में चिल्ला उठा, "क्या देश का स्वराज्य लेगा तुम लोग। तुम्हारा तो दिमाग मांगे इंगरेजी, जुबान इंगरेजी, हर बात इंगरेजी।"[५]

१- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवन (प्रथम भाग), पृ० ११६.

२- जीतमल लूणिया, कराची की कांग्रेस, पृ० ६१.

३- श्रीकृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु', भंवरजाल, पृ० ३४.

४- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० ६६.

५- यशपाल, पार्टी कामरेड (लखनऊ : १९६३), पृ० २२.

प्रसूति-गृह का उद्घाटन होना है । उद्घाटन-भाषण किस भाषा में पढ़ा जाय, इस समस्या को लेकर प्राणनाथ और डा० शेफाली के मध्य जो वार्तालाप हुआ उसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार चित्रित है --

'मैंने स्वयं अंग्रेजी में लिखा है ।'

'नहीं मैं हिन्दी में ही बोलूंगी ।'

'तो मैं क्या करूं ? मैं हिन्दी में तो लिख नहीं सकता ?'

'तुम भी हिन्दी में लिखो, हम लोग क्या अंग्रेज हैं ?

मैं तो चाहती हूं विज्ञापन, साइनबोर्ड, कमरों के नाम सब हिन्दी में हों । यह हमारी दासता का चिह्न है जो हम अपनी भाषा को महत्व नहीं देते ।'[1]

स्वदेशी-वस्तु-प्रचार

महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्त्रों के उपयोग के प्रति जनता में एक नई प्रेम की भावना उत्पन्न की । स्वदेशी-वस्त्रों के लिए यह आवश्यक था कि पहले विदेशी-वस्त्रों का बहिष्कार किया जाय । क्योंकि परमुखापेक्षी राष्ट्र कभी भी दासता की बेड़ियों को तोड़ने में समर्थ नहीं होता है । स्वराज्य की प्राप्ति के लिए देश की जनता का स्वावलम्बी होना अत्यन्त आवश्यक था । इसके लिए महात्मा गांधी ने विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार की विधि को सर्वोत्तम माना । जिससे जनता विदेशी-वस्त्रों के अभाव में परम्परागत खादी को अपना सके । बापू ने अपने इस आन्दोलन में सभी विदेशी-वस्तुओं और उनकी दुकानों का बहिष्कार आरंभ किया । कलकत्ता में सर्वप्रथम विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई ।[2] विदेशी-वस्तु-बहिष्कार एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया ।[3]

१- उदयशंकर भट्ट, डा० शेफाली, पृ० २०३-४.

२- जे०बी० कृपलानी, गांधी : हिज लाइफ एन्ड थाट, पृ० ११६.

३- An oral Answer in 'House of Common's, Monday 4th May 1931 vide Progs. Govt. of India Home Deptt. Political Confidential file No. 33/6 of 1931.

बापू द्वारा आयोजित स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव सर्वप्रथम गबन में दिखाई देता है। देवीदीन स्वदेशी आन्दोलन का एक कर्मठ समर्थक है। जब उससे पूछा जाता है कि तुम विलायती कपड़े नहीं पहनते। वह कहता है --"दो जवान बेटे इसी सुदेसी की भेंट कर चुका हूं, भैया। ऐसे ऐसे पट्ठे कि तुमसे क्या कहूँ। दोनों विदेशी कपड़े की दुकान पर तैनात थे। क्या मजाल थी कि कोई ग्राहक दुकान पर आ जाये। हाथ जोड़कर, घिघियाकर धमकाकर, उजवाकर सबको फेर देते थे।"[१]

देवीदीन देश-भक्तों की कथनी और करनी के अन्तर पर व्यंग्य करते हुए कहता है --"बड़े बड़े देशभक्तों को बिना विलायती सराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो एक भी चीज देसी न मिलेगी। दिखाने को दस बीस कुरते गाढे के बनवा लिये, घर का सब सामान विलायती है। ---- उस पर दावा यह कि देश का उद्धार करोगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार करलो। ---- विलायती सराबें उड़ाओ, विलायती मोटरें दौड़ाओ, विलायती मुरब्बे और अचार चखो। ---- विलायती बरतनों में खाओ ---- पर देश के नाम पर रोये जाओ। मुदा इस रोने से कुछ न होगा।"[२]

शेखर ने भी स्वदेशी के रंग में रंग कर "विदेशी कपड़े उतार कर रख दिये। जो दो चार मोटे देसी कपड़े उसके पास थे वही पहनने लगा। बाहर घूमने-मिलने जाना उसने छोड़ दिया क्योंकि इतने देसी कपड़े उसके पास नहीं थे कि बाहर जा सके। ---- वह ऊपर की खिड़की के पास आकर खड़ा हो जाता और बाहर देखा करता।"[३] वह सभी अपने विदेशी कपड़ों की होली जला देता है। उसका चित्रण भी द्रष्टव्य है --"शेखर ने घर के सब कमरों में से विदेशी कपड़े बटोरे और नीचे एक खुली जगह ढेर लगा दिया। ---- उस पर मिट्टी का तेल उड़ेला ---- और आग लगादी। आग एक दम भभक उठी। ---- वह आग के चारों ओर नाचने लगा और गला खोलकर गाने लगा --

---

१- प्रेमचंद, गबन, पृ० १७०.

२- यथोपरि, पृ० १७१.

३- "अज्ञेय", शेखर : एक जीवनी (उत्थान), पृ० ११५.

"गांधी का बोलबाला । दुश्मन का मुंह हो काला ।"[1]

'राहुल' ने भैया के द्वारा विदेशी-वस्तु बहिष्कार पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। भैया दुखराम से कहता है -- "पुराने गांधी की परछाई से भी जोंके घबराती थीं। ---- लेकिन गांधी जी के "बिलायती माल न छुओ" कहने से हिन्दुस्तानी मिलों का माल खूब बिकने लगा। खूब नफा होने लगी, तो सेठ लोग भी गांधी जी की आरती उतारने लगे, जमींदार भी दंडवत करने लगे और अब गांधी जी ने भी बार-बार कहना शुरु किया, मैं सेठों-जमींदारों का धन छीनना नहीं चाहता ---- सेठ-जमींदार किसानों मजदूरों के मां-बाप बन जांय।"[2]

विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार-आन्दोलन में दुकानदारों में एक प्रकार का भय पैठ गया था। कोई भी विदेशी कपड़े को बेचने के लिए ग्राहकों को शीघ्र नहीं दिखाता था। न खरीदने ही वाले खरीदते थे। डिप्टी कलक्टर गंगाप्रसाद बिलायती सर्ज खरीदने के लिए बाजार आता है। बाजार का जो हाल था उसका चित्र देखिये --

"बजाजा उस समय प्रायः उजड़ा सा पड़ा था। दुकानदार हाथ पर हाथ धरे बैठे थे। गंगाप्रसाद एक ऊनी कपड़े की दुकान पर पहुंचा। 'कोई अच्छी सर्ज दिखाइये। ---- बिलायती सर्ज के थान निकालो, ---- बाबू साहेब, स्वदेशी का नारा सुन रहे हैं आप। ---- दिखाता इसलिए नहीं हूं कि लोग-बाग बिलायती कपड़ों की होली करने पर उतर आये हैं। भला इस बाजार में बिलायती सर्ज को कौन पूछेगा।"[3]

गांधी जी की प्रेरणा से आये दिन विदेशी वस्त्र अग्नि को समर्पित होते रहते थे। उसका भी एक चित्र इस प्रकार है -- "बीच चौराहे पर कपड़ों का ढेर लगाया गया, ---- व्याख्यानों के बाद उस विदेशी कपड़ों के ढेर में आग लगा दी गई। ----

---

१- 'अज्ञेय', शेखर : एक जीवनी (उत्थान), पृ० ११६.

२- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० २०६-१०.

३- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५१३-१४.

उस डपट के निकलते ही गोरों ने 'महात्मा गांधी की जय' और 'भारतमाता की जय' के नारे लगाये।'[1]

चर्खा तथा खादी प्रचार

अपने रचनात्मक कार्य-क्रम में गांधी जी ने अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा ग्राम्य जागरण के अतिरिक्त चर्खा तथा खादी कातना अनिवार्य अंग माना था। खादी उत्पादन तथा चर्खे के द्वारा शहर की ओर उन्मुख आर्थिक प्रवाह को रोक कर उसे ग्रामोन्मुख बनाना ही एकमात्र उद्देश्य था। गांधी जी ने चर्खे की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'उसके द्वारा हिन्दुस्तान की भूखों मरने वाली अर्ध बेकार स्त्रियों को काम दिया जा सकता है। उनका काता हुआ सूत बुनवाना और उसकी खादी लोगों को पहनाना, यही मेरा विचार है और यही मेरा आन्दोलन है।'[2]

बापू के उस आन्दोलन की गर्जना कृपाशंकर के इन शब्दों में समाई है। 'आप हाथ से कातें और बुने वस्त्र का व्यवसाय करें तो देश का जो धन विदेशों का जा रहा है, वह तो बचे ही, साथ ही देश के किसानों की बेकारी और गरीबी भी दूर हो जाय। - - - - किसानों को कपास बोने के लिए उत्साहित करें, उन्हें उधार चर्खे बनवा कर दें, और उनके काते सूत को खरीद लें - - - - इस प्रकार सारे देश में शुद्ध स्वदेशी वस्त्र के प्रचारक बनें।'[3] डा० राजेन्द्र बाबू कहते हैं -- 'चर्खा द्वारा ही हम मुल्कों को लाखों की संख्या में काम दे सकेंगे और जनता की धनवृद्धि में सहायक हो सकेंगे।'[4]

अमरकान्त (कर्मभूमि) चर्खे का महत्व बतलाते हुए कहता है -- 'चरखा रुपये के लिए नहीं चलाया जाता ? - - - - यह आत्म-शुद्धि का एक साधन है।'[5] गांधी जी

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५१३.
२- महात्मा गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ० ४२६.
३- श्रीनाथसिंह, जागरण, पृ० ३६
४- डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ० १६२.
५- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० १४.

भी चर्खे को आत्म-शुद्धि का ही एकमात्र साधन नहीं मानते थे अपितु वह तो राष्ट्र का प्राण भी कहते थे।[1] श्रीवास्तव चर्खा कातने को राष्ट्रीय आन्दोलन के संदर्भ में एक फैशन की संज्ञा देती हैं। उसका कथन है -- "अब देखती हूं भले घर की स्त्रियां भी उनमें शामिल हो गई हैं यहां तो हुल्लड़ की देर रहती है।"[2] उसकी उक्त भावना का उत्तर इन शब्दों में उसे मिलता है -- "हमारे देश के प्राण ही ठहरे, कृषि, तांत और चरखा। ---- ढाका की मलमल जगत विख्यात है। ---- आज भी वह प्रथा गांवों में दीखती है। इस मूवमेन्ट ने केवल हमें सोते से जगाकर चरखा हाथ पर धर दिया है।"[3] इतने में बाहर से सतीश की आवाज सुनाई पड़ती है --"मैं तो गर्व समझता हूं विनय। हमारी मां बहनों के हाथ की देश की बनी हुई वस्तु व्यवहार करने में गर्व तो है ही, इसके अतिरिक्त तृप्ति, सन्तोष, सान्त्वना भी है, ---- अपने आप पर निर्भर रहना गर्व है, सार्थकता है और है मनुष्यत्व का यथार्थ प्रकाश।"[4]

खद्दर के महत्व को स्वयं गांधी जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया था --"खादी देश में सबकी आर्थिक स्वतंत्रता और समानता के प्रारंभ का चिह्न है। ---- खादी को उसके सारे फलितार्थों सहित स्वीकार करना चाहिए। उसका अर्थ है सम्पूर्ण स्वदेशी मनोवृत्ति का रखना और जीवन की सारी आवश्यकतायें ---- ग्रामवासियों की मेहनत और बुद्धि से प्राप्त करना।"[5] खादी की उपादेयता का "गांधी टोपी" में भी चित्रित किया गया है --"भाई साहब, खद्दर के कुरते में भी जेब होती है। ---- आज खादी की चादर ही स्वाधीनता की पताका है - रामनाम की चादर नहीं। देश की शांति है और खादी की कसौटी ----।"[6]

१- "It is the hand maid of agriculture. It is the nations second lung." Progs. Govt. of India Home Deptt. Poll. F.No.4/27/ of 1936.

२- उषादेवी मित्रा, वचन का मोल (दिल्ली : १९५७) पृ० ५७.

३- यथोपरि, पृ० ५७.

४- यथोपरि, पृ० ६०.

५- महात्मा गांधी, ग्रामस्वराज्य, पृ० १३०.

६- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, गांधी टोपी, पृ० १२

'जब तक हम कातेंगे नहीं तब तक हमारी पराधीनता बनी रहेगी ।'[1] बापू के इन शब्दों की छाया यशपाल शर्मा के द्वारा उनके एक पात्र के कथन में स्पष्ट दिखाई देती है --'चर्खा और खद्दर में स्वराज्य है, भारत की स्वतंत्रता है ।'[2] महात्मा गांधी ने चर्खे के प्रचार और प्रसार के लिए 'अखिल भारतीय बुनकर संघ' की स्थापना की थी ।[3] उसी के आधार पर 'मुक्ति के बंधन' में कांग्रेस कार्यकर्ता विशालसिंह भी 'चरखा-मंडल' की स्थापना कर उसका घर-घर प्रचार करते हैं ।[4] ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार खादी प्रचारक किया करते थे ।[5] विशालसिंह जब खादी प्रचार पर जाते, 'तब उन्हें मार्गों और बटियों पर, चक्की और पनघटों पर घरों और खेतों पर दल के दल किसान ऊन कातते दिखाई देते । किसी के अंग में उसी के हाथ का कता और बुना स्वीटर था तो किसी के कंधे पर वैसा ही कम्बल । विशाल भी गद-गद हो जाते और कहते --'सूत के धागे में कैसे नहीं है स्वराज्य ।'

चर्खे का संदेश जब गांव-गांव पहुंच गया तो उसने गांव की काया-पलट कर दी । उसी का एक चित्र 'बयालीस' में द्रष्टव्य है --'गांव का रंग बदला हुआ पाया । चर्खों की भन-भनाहट से गांव गूंज रहा था और खद्दरधारी पुरुष और स्त्रियां दिखाई पड़ती थीं । हिन्दू-मुसलमान का भेद उठ गया था ।'[7]

राधा बाबू जेल से छूटने पर खादी प्रचारक बन गये थे । 'गांधी महात्मा के हुक्म से खद्दर और चरखा का प्रचार करते फिरते थे । - - - - आसपास के इलाकों में हजारों

१- महात्मा गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ० ४२२.

२- यशपाल शर्मा, दो पहलू, पृ० २६६.

३- सुभाषचन्द्र बोस, दि इंडियन स्ट्रगल, पृ० १०२.

४- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ६८.

५- कांग्रेस बुलेटिन १९४२, नं० ६, जनवरी ८, पृ० ३५-३६.

६- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० १००.

७- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २५३.

चरखा चलने लगे । - - - - काट काट करते हुए सूतों की लच्छियों का हिसाब लेते थे । बदले में कातने वाली औरतें पैसा भी पाती थीं ।[1] गांधी जी ने खादी स्वयंसेवकों के माध्यम से सम्पूर्ण देश में खादी के क्रय और विक्रय केन्द्रों की स्थापना की थी ।

'रेणु' ने 'मैला आंचल' में ग्राम्य-खादीकेन्द्र का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । ग्रामवासी प्रसन्न हैं कि 'चरखा सेन्टर खुल गया है । अब गांव में गरीबी नहीं रहेगी । पटना से दो मास्टर आये हैं -- चरखा मास्टर और करघा मास्टर । एक मास्टरनी भी आई है -- औरतों को चरखा सिखाने के लिए । औरतों से कहती है -- 'चरखा हमार भतार पूत, चरखा हमार नाती, चरखा के बदौलत मोरा दुवार झूले हाथी ।' चरखा की बदौलत हाथी ? ये - - - - गांधी जी की है ।'[2]

मद्यनिषेध

भारत जैसे निर्धन देश में मद्यपान जीवन की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है । भारतीय सांस्कृतिक विरासत में 'सादा जीवन और उच्च विचार' की भावना को हमेशा महत्व दिया गया है । भारत में जैन, मुस्लिम, सिक्ख तथा वैष्णव धर्मों में मद्यपान का निषेध है । यह एक सामाजिक अपराध है । महात्मा गांधी इस सामाजिक कुरीति को दूर करना चाहते थे जिससे देश का निर्धन वर्ग सबल होकर राष्ट्रीय-संग्राम में आगे लाया जा सके । अपितु वह मद्यपान के नशे में अपना अहितकारक तो होता ही है, देश का भी भला नहीं कर पाता । भारत के मद्यपान के बारे में एक विदेशी इतिहासकार का कहना है कि 'भारत में आप कहीं भी चले जाइये । सभी वर्गों के नेता यही कहते हुए मिलेंगे कि जब तक हमारी अपनी सरकार न होगी तब तक मद्यपान के शाप से भारत की मुक्ति संभव नहीं है ।'[3]

१- नागार्जुन, बलचनमा, पृ० ११८.

२- फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आंचल, पृ० १२५.

३- J.T. Sunderland, India In Bondage, P. 166.

ब्रिटिश-शासन को सम्पूर्ण राजस्व का एक तिहाई राजस्व-आय के रूप में इसी मद से प्राप्त होता था । महात्मा गांधी ने जननेताओं से कहा था कि "इस बुराई को समूल नष्ट करो । यदि लोग आनंद का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो उन्हें इस बुराई से दूर रहना चाहिए ।"[1] उन्होंने इस बुराई से दूर रहने का उपाय बताते हुए जनता को परामर्श दिया था कि वह "मद्यपान की दुकानों, उनके विक्रय कर्त्ताओं तथा उत्पादकों से पूर्ण अहिंसात्मक असहयोग करें ।"[2] मद्यपान निषेध का बहिष्कार असहयोग आन्दोलन से ही आरंभ हो गया था । इसे बाद में गांधी जी ने और अधिक प्रश्रय दिया ।

राष्ट्रीय-आन्दोलन में मद्य निषेध के प्रचार का प्रभाव "रक्तमंडल" में दृष्टिगोचर होता है । "रक्त-मंडल" संस्था यह निश्चय करती है कि "इस देश से सब तरह के नशे शराब, गांजा, अफीम आदि आदि का नाम निशान मिटा दिया जाय जिसने देशवासियों की आत्मा देह और मन को चौपट कर उन्हें गुलामी की बेड़ी पहिना रखी है ।"[3] औघड़ बाबा भी मद्यनिषेध का प्रचार करते हैं । जनता उनके आदेश का पालन करने का वचन देते हुए कहती है -- "तैयार हैं स्वामी जी । तैयार हैं बाबा जी ।। हम चोरी छोड़ देंगे राम दोहाई । हम शराब, गांजा, ताड़ी वगैरह भी न छुएंगे ।"[4]

गांधीवादी अमरकान्त ग्रामीणों के मध्य जाकर मद्यपान-निषेध का प्रचार करता है । ग्रामीणों पर उसका प्रभाव होने लगता है । उसकी बात लोगों के मन में बैठ जाती है कि, "जहां सौ में अस्सी आदमी भूखों मरते हों, वहां दारू पीना गरीबों का रक्त पीने के बराबर है ।"[5] "सविनय अवज्ञा-सत्याग्रह" के दिनों में "गांधी जी ने मद्यनिषेध तथा विदेशी

१- दि हिन्दुस्तान टाइम्स (देहली मार्च १६, १९२९), पृ० ३, कालम ८.

२- दि हिन्दुस्तान टाइम्स (देहली मार्च १८, १९२९), पृ० १, कालम ५.

३- दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्त-मंडल, खंड १, भाग १, पृ० २१.

४- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", "मनुष्यानंद", पृ० १४८.

५- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० १५७.

वस्त्र बहिष्कार को लाकर स्त्रियों का काम बताया, तो स्त्रियों में उत्साह की लहर दौड़ गयी ।[1] सुखदा (कर्मभूमि) के नेतृत्व में मद्यनिषेध-मंडली का निर्माण होता है । उसकी धर्म-लीन प्रेरणा से प्रक्रिया एक चित्र प्रस्तुत है -- 'मादक-वस्तु बहिष्कार-सभा वर्षों से बेजान पड़ी थी । न कुछ प्रचार होता था, न कोई संगठन । उसका मंत्री एक दिन सुखदा को खींच ले गया । दूसरे ही दिन उस सभा की एक भजन-मंडली बन गई । कई उपदेशक निकल आये, कई महिलायें घर-घर प्रचार करने के लिए तैयार हो गई और मुहल्ले-मुहल्ले पंचायतें बनने लगीं' ।[2]

'निर्जन' में कमला भी मद्यनिषेध का प्रचार मजदूर वर्ग में करती है । किसी भी प्रकार की हड़ताल आदि करने से पूर्व मद्यनिषेध आवश्यक बताते हुए वह कहती है -- 'आप लोगों को मादक वस्तुओं का बहिष्कार करना पड़ेगा । नशा आदमी को इंसान से हैवान बनाता है । जब तक नशाखोरी बंद न होगी तब तक आपका कोई काम सफल नहीं होगा - - - - पूंजीपति आपको नशे का आदी बना कर आपको गुलाम बनाये रखना चाहते हैं । -- -- - इसलिए हड़ताल शुरू करने की पहली शर्त है नशाखोरी को बंद करना ।'[3] मजदूर सम्मिलित स्वर में कहते हैं -- 'हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम नशीली वस्तुओं का सम्पूर्ण रूप से बहिष्कार करेंगे ।'[4] श्रीवास्तव जी ने 'बयालीस' उपन्यास में भी मद्यनिषेध पर चर्चा की है वहां भी इंदु सभी ग्रामवासियों के साथ नशाबन्दी की प्रतिज्ञा करता है ।[5]

देवराज (जीने के लिए) जब मद्यनिषेध के बारे में पूछता है तब उसे बताया जाता है कि 'हमारे जिले में जैसा लोगों ने सुराज को माना है - - - - वैसा कहीं और नहीं

१- डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ० ४३६.

२- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० २१५.

३- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, निर्जन, पृ० ८७.

४- यथोपरि, पृ० ८७-८८.

५- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २५७.

दिखाई पड़ा । भट्टी और ताड़ी की दुकान पर स्वयंसेवी (स्वयंसेवक) पहरा देते हैं - - - - यहां तो देवता पर भी चढ़ाने के लिए गांजा नहीं लेने देते । कहते हैं - देवता भी गांधी बाबा की बात मान गए हैं ।"[1]

उपन्यासों में "पिकेटिंग" का चित्रण

महात्मा गांधी ने विदेशी के बहिष्कार तथा मद्यनिषेध आन्दोलन को सफल बनाने के लिए दुकानों पर अहिंसात्मक-धरना देने के लिए जनता से कहा था । सत्याग्रही अनुनय और विनय के माध्यम से विदेशी-वस्त्र-क्रेताओं तथा मद्यपान कर्ताओं को समझाते और बुझाते थे । उन्हें दुकानों में जाने से आग्रह रोकते थे । "जहां जहां दुकानों पर पहरे का काम होता, स्त्रियां ही करतीं । दुकान पर उनके खड़ी हो जाते ही कोई खरीददार उस तरफ झांकने की हिम्मत न करता ।"[2] राष्ट्रीय-आन्दोलन के पिकेटिंग के विभिन्न चित्र उपन्यासों में संजोये गये हैं ।

विमल (मेरा देश) के नेतृत्व में "विदेशी कपड़े के व्यापारियों की दुकानों - --- तथा शराब और ताड़ी की दुकानों पर धरना दिया जा रहा था । - - - - विदेशी कपड़ों की होलियां जलाई जा रही थीं ।"[3] देवीदीन के दोनों पुत्र पिकेटिंग में भाग लेते हैं । उसका एक चित्र देखिये --"दोनों वीर डटे रहते थे । पर जगह से न हिलते थे । जब बड़ा भाई गिर पड़ा तो छोटा उसकी जगह पर आ खड़ा हुआ ।"[4]

"शराब की बड़े जोर से पिकेटिंग चल रही है । स्थान-स्थान पर शराब की दुकानों पर सत्याग्रहियों ने शराबियों के पैरों में अपने तन को बिछा दिया है । दुकानों

१- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २१६.

२- डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ० ४३६.

३- सीताराम प्रेम, मेरा देश, पृ० ३०.

४- प्रेमचंद, गबन, पृ० १७१.

के दरवाजों पर सत्याग्रही खड़े हुए हैं। पहले वालों से रोकने का प्रयत्न करते हैं फिर शराबी किसी भी तरह नहीं मानता तो उसके पैरों पर लेट जाते हैं।"[1] ललित मोहन (इन्दुमती) अपने राजभक्त पिता के विरुद्ध पिकेटिंग का नेतृत्व करता है। सरकार उसके पिता का सम्मान करने के लिए एक समारोह आयोजित करती है। सत्याग्रहियों के धरने का चित्रण उपन्यासकार ने इस प्रकार किया है -- "ज्यों ही पाहुनों का आना शुरू हुआ, त्यों ही पिकेटिंग भी शुरू हो गई। स्वयंसेवक पूर्ण शान्ति के साथ हाथ जोड़-जोड़ कर लोगों को पार्टी में जाने से रोकने लगे - - - - जनता भी 'महात्मा गांधी की जय। वंदे मातरम्।' इत्यादि नारों से स्वयं सेवकों का उत्साह बढ़ा रही थी।"[2]

दयानाथ उमानाथ को धरने का उद्देश्य समझाते हुए कहता है -- "धरने का मतलब दुकानदार को माल न बेचने देने का नहीं है। वह खरीददार से माल न खरीदने का आग्रह है। हम दुकानदार को समझाते हैं, जब दुकानदार नहीं समझता, तब हम ग्राहक को समझाते हैं। विलायती माल खरीदने से देश की हानि है - - - - इसलिए हम धरना देते हैं।"[3]

भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के दौरान स्वयंसेवक चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो धरना देते थे। उनका प्रयास प्रायः सफल होता था।[4] धरना का एक अन्य चित्रण वर्मा जी ने चित्रित किया है। "शराब की दुकान के सामने जनता उपेक्षित खड़ी थी और कुछ स्वयंसेवक जनता को शान्त कर रहे थे। बारह स्वयंसेवक दुकान के सामने जमीन

१- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० ६६.

२- गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० १५१-५२.

३- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० २११.

४- "The picketing of......shops.........by Volunteers is being carried on. These volunteers usually take their stand in front of the shops--------and resort to moral pursuation. Their appeals in most cases prove successful." Progs: Govt. of India, Ibme Doptt. Political file No. 170 of 1931.

पर बैठे थे ।"[1]

स्वदेशी आन्दोलन से परेशान दुकानदार से जब किसी ने पूछा कि —"विलायती कपड़ों की दुकान पर धरना तो नहीं दिया जा रहा है ?" मुंह बनाते हुए उस दुकानदार ने कहा, "जी अभी तो नहीं, लेकिन जल्दी ही यह काम भी शुरू होने वाला है । इसलिए विलायती माल यहां से धीरे-धीरे हटा रहे हैं ।"[2]

१- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० ३२२.

२- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५१४.

(घ) सविनय अवज्ञा आन्दोलन

नमक-सत्याग्रह आन्दोलन

महात्मा गांधी ने 'असहयोग आन्दोलन' में जो आह्वान किया था उसी कार्यक्रम की पूर्णाहुति का प्रयास सविनय अवज्ञा आन्दोलन में हुआ। ब्रिटिश सरकार ने नमक जैसी आवश्यक और सुगमतापूर्वक सुलभ वस्तु पर कर लगाकर उसे भारतवासियों के लिए एक कष्ट साध्य बोझ बना दिया था। ऐसे जनता-अहितैषी नमक-कानून को तोड़ने का कार्यक्रम सविनय-सत्याग्रह के रूप में पुनः बापू ने आरंभ किया।[1] 'सविनय-भंग का अर्थ किसी नियम को भंग करके उसके लिए गिरफ्तारी का हुक्म होने पर तुरन्त खुशी के साथ गिरफ्तार होना है।'[2]

'बारह मार्च १९३० ई० की प्रातःकाल को ६१ वर्ष की उम्र में हाथ में लाठी लिए ७८ आश्रमवासी सत्याग्रहियों के साथ बापू नमक कानून को भंग करने के लिए डांडी यात्रा पर पैदल चल दिए।'[3] जैसे-जैसे बापू नमक बनाते जाते और कानून को भंग करने के लिए सत्याग्रह करते जाते वैसे-वैसे उपन्यासकार भी उन ऐतिहासिक घटनाओं का अंकन अपनी कल्पना के मिश्रण से यथार्थ रूप में लेखनीबद्ध करता गया।

'साबरमती के गर्भ में फिर तूफान उठता है। तूफान की सन-सनी देश पर छा जाती है।. . . . महात्मा की समाधि टूट गई। गांधी ने अहिंसा के मंत्र पर सत्याग्रह के ब्रह्मास्त्र का फिर आह्वान किया। डंडी मार्च (डांडी-मार्च) की घोषणा वज्र-टंकार की तरह देश के घरें घरें पर कौंध गई।'[4] पंडित जवाहरलाल नेहरू नमक-सत्याग्रह के प्रभाव की समीक्षा में लिखते हैं कि ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई बटन दबा दिया

१- द्रष्टव्य है -- प्रस्तुत शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय.

२- महात्मा गांधी, सत्याग्रह (इलाहाबाद : १९५७), पृ० १४३.

३- ताराचंद, हिस्ट्री आव दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खण्ड-४, पृ० १२५.

४- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० ८७.

गया और अचानक सारे देश में, शहरों और गाँवों में जिधर देखो रोज नमक बनाने की धूम फैल गई।'[1] सुरेन्द्र के दिशा-निर्देशन में नमक-कानून गाँव में नमक बनाकर तोड़ा जाता है। गाँव वाले तालाब का खारा पानी लाकर कड़ाहों में उसे उबाल कर नमक तैयार करते हैं। पुलिस उन पर अपना दमनचक्र चलाती है। उपन्यासकार कहता है -- 'वाह रे! सत्याग्रही वीरो! एक भी टस से मस नहीं हुआ। सब अपने-अपने स्थानों पर कड़ाहे के कुन्दों को पकड़ कर बैठ गये। बराबर लाठी की मार खाने पर भी कड़ाहे के कुन्दों को जोर नहीं छोड़ रहे थे।'[2]

गुरुदत्त ने महात्मा गाँधी की 'डाँडी यात्रा' का चित्रण अपनी रचना में किया है। यथा -- 'अचानक एक दिन यह समाचार मिला कि महात्मा गाँधी. . . . साबरमती के आश्रम के साठ सत्याग्रहियों को लेकर नमक-कर के विरोध में सत्याग्रह करने के लिए डंडी चल पड़े हैं। . . . . . महात्मा गाँधी अहमदाबाद से पैदल वहाँ पहुँचे। . . . . वहाँ उन्होंने नमक बनाने का प्रयत्न किया. . . . उन पर मुकदमा चलाया गया और जेल भेज दिया गया।'[3] उपर्युक्त चित्रण पूर्ण ऐतिहासिक है। नमक सत्याग्रह तो मात्र एक साधन था। साध्य तो स्वराज्य की प्राप्ति था। उसके लिए घर-घर नगर-नगर तथा गाँव-गाँव में नमक बनाने का जो आन्दोलन चलाया गया उसका एक अन्य चित्रण इस प्रकार है -- 'कलकत्ते में भी नमक सत्याग्रह आरंभ किया गया। बारी-बारी से छोटे छोटे झुंडों में लोग नमक बनाने के लिए श्रद्धानंद-पार्क में एकत्रित होते थे।'[4]

बाबा बटेसरनाथ भी कहता है -- 'दस वर्ष बाद '३० में फिर कांग्रेस ने मोर्चा बंदी की। जन-विरोधी कानूनों से ऊबे हुए लाख-लाख लोग फिर मैदान में निकल आये।

१- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, पृ० ३०६.

२- यज्ञदत्त शर्मा, दो पहलू, पृ० २२.

३- गुरुदत्त, स्वाधीनता के पथ पर, पृ० ३१६-२०.

४- यथोपरि, पृ० ३२०.

. . . . इस बार महात्मा जी अपने आश्रमवासी चेलों के साथ नमक कानून तोड़ने लगे[1]। `नमक-भंग` का कार्य देखने के लिए जन-समूह उमड़ पड़ता था । क्योंकि `नमक-कानून तोड़ने का यज्ञ जिले में कहीं न कहीं आये दिन होता ही रहता था । . . . बूढ़े बच्चे और जवान सैकड़ों की तादाद में तमाशा देखने आते थे । काफी दूर पर उधर अलग खड़ी औरतें भी `गांधी बाबा` का यह यज्ञ देखने आई थीं[2]।`

मन्मथनाथ गुप्त के `बलि का बकरा` में `धरसना नमक गोदाम सत्याग्रह` का चित्र अंकित किया गया है --`अन्त में सरकार ने विवश होकर गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया । गांधी जी ने जब देखा कि समुद्र के पानी से नमक बनाने पर भी सरकार उन्हें गिरफ्तार नहीं कर रही है. . . तो उन्होंने नमक के सरकारी कारखाने पर धावा करके नमक ले लेने का कार्यक्रम बनाया । पन्द्रह हजार लोग एक साथ नमक के कारखाने पर धावा करने लगे[3]।` धरसना नमक सत्याग्रह` इतिहास में प्रसिद्ध है[4]। घटना तो ऐतिहासिक है परन्तु मन्तव्य उपन्यासकार ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है । नमक बनाने का एक अन्य चित्र भी प्रस्तुत है --`कस्बे के पूर्व में एक झील सी थी, जिसका पानी कुछ अधिक खारा था ।. . . . इसी का पानी बैल गाड़ियों पर बड़े-बड़े पड़ों पर लाया जाता था और कड़ाहे में डालकर नीचे से लकड़ी जलाकर नमक निकाला जाता था । . . .. इस प्रकार तैयार किया हुआ नमक पुड़ियों में बांधकर कस्बे भर में बिकता था[5]।`

भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यास में नमक सत्याग्रह का ऐतिहासिक अंकन किया है । यथा--बापू की मार्च में डांडी यात्रा, अप्रैल में नमक कानून तोड़ना, गिरफ्तार

१- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ , पृ० ६५.

२- यथोपरि, पृ० ६७.

३- मन्मथनाथ गुप्त, बलि का बकरा, पृ० ४२.

४- ताराचंद, हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, खण्ड-चार, पृ० १२६.

५- मन्मथनाथ गुप्त, `बलि का बकरा`, पृ० ४४-४५.

होना, देशभर में नमक का बनाया जाना आदि आदि । स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू ने भी अपने आनंदभवन में नमक बनाकर नमक सत्याग्रह चलाया था ।[1] उसका एक चित्र प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार लिखता है -- "आनंदभवन के सामने हजारों आदमियों की भीड़ खड़ी थी और 'भारत माता की जय' 'महात्मा गांधी की जय,' 'मोतीलाल नेहरू की जय,' 'जवाहरलाल की जय' के नारे लगा रही थी ।. . . अखबारों में यह खबर छप चुकी थी कि महात्मा गांधी अपने सत्याग्रहियों के साथ डांडी के नजदीक पहुंच चुके हैं । वे लोग परसों नमक बना कर सत्याग्रह करेंगे ।"[2]

गांव की हलचल 'झंडा-पताका' को देखकर एक व्यक्ति मामा से पूछता है -- "मामा बात क्या है ?" तो मामा बोले कि गांव के सभी लड़कों ने भोलंटियरों में नाम लिखा लिया है. . . कांग्रेसी तैयारी नीमक कानून तोड़ने वाले हैं । बड़े बड़े चूल्हों पर कड़ाहियों में चिकनी मिट्टी और पानी डालकर खौला रहे हैं ।. . . . पूछा कि यह क्या है भाई, तो कहा कि नीमक कानून बन रहा है ।"[3]

लगानबंदी आन्दोलन

नमक-सत्याग्रह की समाप्ति के बाद विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार मद्यनिषेध आन्दोलन के साथ-साथ लगानबंदी आन्दोलन प्रारंभ हुआ था । रायबरेली जिला (उत्तर प्रदेश) से यह आन्दोलन भारत के कोने में फैल गया ।[4] क्योंकि संसार में मंदी का प्रभाव छाया हुआ था । भारत भी उससे अछूता न रह सका । किसान की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी । अनाज के दाम गिरते चले आ रहे थे । किसान को लगान देना कठिन होने लगा[5] ।

१- द्रष्टव्य है इस संदर्भ में जवाहरलालनेहरू, 'मेरी कहानी' (सविनय आज्ञा भंग,अध्याय)

२- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ७३६.

३- फणीश्वर नाथ 'रेणु', मैला आंचल, पृ० ४०.

४- प्रोसीडिंग्स:भारत सरकार गृह-विभाग, राजनीतिक विभाग गोपनीय पत्रावली सं० ३३।११।१९३१.

५- "Low prices of grains had made it impossible for the tenants to pay the rents in full. As a matter of fact------the price of the total produce was insufficient to meet the cost of cultivation."
-- Rama Nand Chatterjee(Edi) The Modern Review (Calcutta:1931), Vol. 50, P. 234.

हिन्दी उपन्यास के विकास के इतिहास में सबसे पहले विश्वव्यापी मंदी के प्रभाव से विचलित कृषक की आर्थिक विपन्नता तथा उनके लगान न अदा कर पाने की विवशता के दर्शन 'कर्मभूमि' में होते हैं। 'सविनय सत्याग्रह' तक आते आते भारतीय कृषक ने 'चम्पारन सत्याग्रह', 'खेड़ा सत्याग्रह' तथा 'बारदोली सत्याग्रह' से अपने अनुभव और विश्वास में गुणात्मक वृद्धि करली थी। अवध प्रान्त के कृषकों के तो उस मंदी के के कारण घरबार ही उजड़ गये थे। प्रेमचंद ने इसी असहायावस्था का चित्रण 'कर्मभूमि' में अंकित किया है --"लेकिन इस साल अनायास ही जिन्सों का भाव गिर गया। इतना गिर गया कि जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाचकर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करे। कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तूरियाँ दे कहाँ से कर्ज चुकाये। विकट समस्या आ खड़ी हुई, और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मंदी थी।"[1]

लगानबंदी आन्दोलन से किसान और जमींदार के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होने लगा। पुरुषोत्तम दास टंडन ने अवध के जमींदारों के नाम अपने एक इश्तहार में कहा था --"आपके और किसानों के बीच जो इस समय खींचतान है मुझे बहुत खल रही है. . . . आप कृपाकर धीरज रखें -- नालिशें न करें और गैर कानूनी तरीकों से मार-पीट या जब्र कर लगान वसूल पाने की कोशिश न करें।"[2] किसान और जमींदार के हिंसात्मक सम्बन्धों का चित्रांकन प्रेमचंद ने स्वामी आत्मानंद के निम्नोक्त कथन में चित्रित किया है जो यह चुके जमींदार महंत के ठाकुर द्वारे को घेरकर अपनी माँग मनवाना चाहता है। उसका कथन है --

---

१- प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ० २०७.

२- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृह-विभाग राजनीतिक गोपनीय पत्रावली सं० ३३।११ ।१९३१ (बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन का हिन्दी इश्तहार)

'तो आओ, आज हम सब चलकर महन्त जी का मकान और ठाकुर-द्वारा घेर लें। जब तक वह लगान बिल्कुल न छोड़ दें, कोई उत्सव न होने दें।' बहुत सी आवाजें आईं -- हम लोग तैयार हैं।'[१]

अमरकान्त इस हिंसा का विरोध करता है और गांधी जी के स्वर में स्वर मिलाकर कहता है --'अगर धैर्य से काम लोगे तो सब कुछ हो जायेगा। हुल्लड़ मचाओगे तो कुछ न होगा। उल्टे मार हड्डी पड़ेगी।'[२] पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी किसानों को सलाह दी थी कि 'लगान के बारे में कांग्रेस ने आपसे कहा है कि जो किसान आसानी से दे सकते हैं वह समझौता करके दे दें।'[३] अमरकान्त भी समझौता तथा शान्ति के द्वारा उक्त प्रश्न को सुलझाना चाहता है। वायसराय से मिलने के बाद महात्मा गांधी ने भी कृषकों से कहा था कि वे धैर्य एवं शान्ति रखें। आकस्मिक विपत्ति-- आर्थिक मंदी का सामना हिम्मत से करें।'[४] सरकार, कांग्रेस और जमींदारों के एक आपसी समझौते के अनुसार यह मान लिया गया था कि किसान केवल आधा लगान इस समय अदा कर दें। इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख भी प्रेमचंद ने 'महन्त जी द्वारा चार आने की छूट की घोषणा' से किया है।

'अलका' में भोला चमार भी 'चमड़े का बाजार गिरने का हाल' सावित्री को बताता है जो युगीन मंदी के प्रभाव की ओर संकेत है।[५] लगानबंदी का एक चित्र भी

१- प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ० २९०.

२- यथोपरि, पृ० ३०२.

३- प्रोसीडिंग्ज : भारत सरकार गृह-विभाग राजनीतिक गोपनीय पत्रावली सं० ३३।११ ।१९३१(पं० नेहरू का हिन्दी हस्त०)

४- "Bad as you condition was even in normal times, the unprecedented fall this year in the prices of Crops usually grown by you made it indefinitely worse." - Mahatma Gandhi (ed). Young India (Ahemedabad: May 28th, 1931), Vol. XIII, No. 22, P. 127.

५- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अलका, पृ० ५०.

'अलका' में चित्रित किया गया है --

'डुबुआ ने डरते-डरते, पलकें झिलमिलाते हुए धीरे से पूछा -- 'ये कहां जायेंगे रे मन्नू ?'

'तू तो बात पूछता है और बात की जड़ पूछता है। . . . 'तो लगान फिर किसको दिया जायेगा ?' किसी को नहीं, लगान दिया गया तो सुराज कैसा ?'[1] 'अलका' में लगानबंदी के कई चित्र भी हैं। जो उस युग के किसान की दशा पर प्रकाश डालते हैं।

रांगेय राघव ने 'सीधा-सादा रास्ता' में लगानबंदी का चित्रण यत्र-तत्र किया है। जिसमें जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण उनका दमनचक्र, धांधली, मार-पीट -- गाली-गलौज, वायदाद की कुर्की आदि के प्रसंगों की संयोजना है। विस्तार में न जाकर लगानबंदी के बारे में भग्गू, गोवर्धन, बैजनाथ की आपसी बातचीत का एक चित्र प्रस्तुत है -- भग्गू जमींदार के अत्याचार को भाग्य की बात मानकर संतोष कर लेता है। गोवर्धन का कहना है -- 'अगर भाग्य ही सब कुछ होता तो महात्मा गांधी इतनी बड़ी लड़ाई क्यों लड़ते ?'

'कुछ पुरुषार्थ भी तो है ?' पंडित बैजनाथ बाजपेयी ने सिर हिलाकर कहा, 'पड़ोस के लोग लगानबंदी करेंगे तो हम बैठे नहीं रहेंगे ? . . . . गोवर्धन ने दृढ़ता से कहा -- जमींदार अंग्रेजों से मिलकर किसान को चूसते रहें सो अब नहीं होगा। लगान-बन्द कर दो। सरकार क्या करेगी ?' जब खंभा ही टूटेगा तो छत गिर कर ही रहेगी'।[2]

लगानबंदी आन्दोलन का संकेतात्मक चित्रण 'स्वतंत्र भारत', 'बाबा बटेसरनाथ' तथा 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि रचनाओं में भी चित्रित है।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अलका, पृ० ५६.

२- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० ३५६.

गोलमेज सम्मेलन तथा गांधी -इर्विन समझौता

भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष से भयभीत ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता के मनो-बल को तोड़ने और उसके उत्साह को कम करने के लिए कोई न कोई पैंतरेबाजी प्रायः किया करती थी । दमन-चक्र का चाबुक जब निरर्थक और संज्ञा-हीन हो जाता था तब किसी न किसी समझौते का नाटक किया जाता था । गोलमेज सम्मेलन के तीन दौर चलाये गये । पहली गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस ने प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया । द्वितीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए गांधी जी लन्दन गये । परन्तु उससे पूर्व 'सविनय-सत्याग्रह' को समाप्त करने के लिए वाइसराय और बापू के मध्य पत्र-व्यवहार होने लगा । अन्ततः बापू और लार्ड इर्विन में एक समझौता हुआ जिसे 'गांधी-इर्विन समझौता' कहा जाता है ।[1] जिसमें सत्याग्रहियों का छोड़ना जाना, शान्तिपूर्ण पिकेटिंग करना, संघीय-शासन-तंत्र का विचार तथा ब्रिटिश मिलों आदि पर सहमति हुई थी ।

गांधी जी बड़े विश्वास के साथ गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लन्दन पहुंचे । परन्तु उन्हें खाली हाथ भारत लौटना पड़ा ।[2] हिन्दी-उपन्यासों में बापू का लन्दन जाना वहां से भारत आना, लार्ड इर्विन के साथ समझौते का किया जाना तथा भारत आते ही कैद कर लिया जाना अनेक प्रसंगात्मक चित्रों का अंकन किया गया है ।

"महात्मा गांधी लन्दन से वैरंग वापस आये हैं -- लन्दन की सैर कर । नाम तो बना काम कुछ न बना । गोलमेज की मेज पर भारत का भाग्य सो गया । महात्मा गांधी ने भारत की भूमि पर कदम रखा और पैरों में जंजीर पड़ गई । . . . . दमन का बाजार फिर गर्म हुआ ।"[3]

१- एस० के० मजूमदार, जिन्ना एण्ड गांधी, पृ० १३५.

२- ए० बी० कुलकर्णी, इंडिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० २२६.

३- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी, पृ० १३२.

यह ऐतिहासिक सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने समझौते का निष्ठापूर्वक पालन नहीं किया और गांधी जी भारत लौटने भी न पाये थे कि उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बंगाल आदि प्रदेशों में पुनः अमानुषिक अत्याचार होने लगे थे।[१] इसी ब्रिटिश दमन की ओर 'राजा साहब' ने संकेत किया है। गांधी जी को द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भिजवाने का प्रयत्न भारतीय नरम पंथियों -- श्री सप्रू और श्री शास्त्री आदि ने किया था।[२] उसकी ओर गुरुदत्त ने भी संकेत करते हुए लिखा है-- 'अकस्मात समाचारपत्रों में कांग्रेस की सरकार से सुलह की चर्चा होने लगी। डा० तेजबहादुर सप्रू और मिस्टर जयकर इस काम में गहरी दिलचस्पी लेने लगे।..... कुछ दिन की भाग दौड़ के पश्चात् डा० सप्रू और श्री जयकर अपने प्रयत्न में सफल हो गये... महात्मागांधी ने गोलमेज परिषद में विलायत जाना स्वीकार कर लिया।'[३]

अंग्रेजों की एक कहावत की तरह ही गोलमेज-परिषद में केवल एक ही बात पर बार-बार विचार हुआ कि 'मौसम कैसा है'? फलतः उस सम्मेलन का परिणाम नकारात्मक रहा। 'स्वतंत्र भारत' में अयोध्याप्रसाद का कथन है कि -- विलायत में गोलमेज सभा होने की चर्चा तो हो रही है, किन्तु फल की पूर्ण आशा नहीं बैठती।'[४]

गांधी जी जब गोलमेज-सम्मेलन में भाग लेने के लिए गये थे तो उनके अर्धनग्न फकीराना वेश को लेकर ब्रिटिश नौकरशाही में बेचैनी फैल गई थी। गांधी जी ने फकीराना-वेश के अलावा किसी अन्य वेश में बादशाह से मिलने से स्पष्ट इनकार कर दिया था।[५] गांधी जी के उस व्यक्तित्व का चित्रांकन उपन्यासकार ने इस प्रकार किया

१- जे० बी० कृपलानी, गांधी : हिज लाइफ एण्ड थाट, पृ० १४०.

२- के० बी० कृष्णा, दि प्रोब्लम आव माइनारिटीज, (लन्दन : १९३९), पृ० २०१

३- गुरुदत्त, स्वाधीनता के पथ पर, पृ० ३८१.

४- 'मिश्र बन्धु,' स्वतंत्र भारत, पृ० २५.

५- जे० बी० कृपलानी, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० ३५.

है -- `गांधी जी नवम्बर में ब्रिटिश बादशाह से मिलाए गए, इस प्रकार तरह तरह का दबाव पड़ने पर भी उन्होंने अपने साधारण वस्त्रों के अलावा और कुछ पहनने से इन्कार किया ।`[1] यही नहीं `वह अजीब लिबास में आये । घुटनों तक धोती थी, ऊपर से सिल-सिले ढंग से एक चादर ओढ़ ली । जहाज के जो फोटो आये, उनमें तो यह भी दिखाई देता था कि कभी कभी वह उस चादर को भी उतार देते थे, लन्दन में एक सभा में भाषण करते हुए वह घुटनों तक धोती मात्र पहने रहे ।`[2]

यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि लन्दन जाते समय जहाज में `राइटर` के एक विशेष सम्वाददाता ने गांधी जी का साक्षात्कार किया था और उनके भावी कार्यक्रम के बारे में पूछा था ।[3] गांधी जी की वेश-भूषा पर रांगेय राघव ने एक चित्र अंकित किया है । श्यामनाथ से उसका नौकर पूछता है -- `क्यों मालिक ? गांधी महात्मा विलायत गये हैं ?`

`हां` श्यामनाथ ने कहा ।

`और वे सौर ओढ़ कर भी बादशाह से मिलेंगे ?` उसके स्वर में गर्व था । फिर वह कहने लगा, `मालिक । राजा साहब के लोग कहते हैं कि वे तो महात्मा हैं ।`[4]

गोलमेज-परिषद में भारत के सभी वर्गों के प्रतिनिधि थे । `बाबा बटेसरनाथ` में उसका चित्र द्रष्टव्य है -- `१९३१ में अंग्रेजों ने गोल-मेज कान्फ्रेन्स का नाटक रचा । इस देश के पचासों प्रतिनिधि उसमें शामिल हुए -- गांधी, जिन्ना, अम्बेदकर और दूसरे बड़े-बड़े आदमी, सेठों के नुमाइन्दे, रियासतों के नुमाइन्दे, जमींदारों के सबजी दीगर जमातों और जातियों के मुखिया. . . वह कान्फ्रेन्स क्या थी, शिवजी की बारात

१- मन्मथनाथ गुप्त, अपराजित, पृ० १४४.

२- यथोपरि, पृ० १४४.

३- जे० बी० कृपलानी, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० १३५.

४- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० ८२.

थी पूरी । जितने मुँह, उतनी बातें, विलायती राजनीतिज्ञों के मनोरंजन के लिए वह एक अच्छा अखाड़ा रहा । . . . . . समझौते का फल यही हुआ कि कुछ नहीं हुआ । गांधी जी सद्भावनाओं के गुब्बारे लटकाये हुए विलायत से वापस आये, खाली हाथ ।"[1] उपर्युक्त चित्रण में उपन्यासकार ने पूर्ण यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । गोल-मेज परिषद से भारत को क्या मिला यह सभी इतिहास प्रेमी भलीभाँति जानते हैं ।

'नमक-सत्याग्रह' तथा लगानबंदी आन्दोलन के पश्चात् जो गांधी-इर्विन समझौता सम्पन्न हुआ था उसका स्पष्ट प्रभाव 'कर्मभूमि' में दिखाई देता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि 'सविनय-सत्याग्रह के बाद लार्ड इर्विन ने गांधी जी को समझौते के लिए बुलाया था । दोनों के मध्य समझौता हुआ । इसी प्रकार का समझौता 'कर्मभूमि' में भी एक कमेटी बनाकर किया गया है । लार्ड इर्विन की भावना का अंकन निम्नांकित वाक्यांश से स्पष्ट हो जाता है --"साहब इस झगड़े को जल्द तय कर देना चाहते हैं । और इसलिए उनकी आज्ञा है कि सारे कैदी छोड़ दिए जाये और एक कमेटी करके निश्चय कर लिया जाय कि हमें क्या करना है ।"[2] 'साहब' से लार्ड इर्विन की ओर तथा 'इस झगड़े' से सविनय सत्याग्रह लगानबंदी की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है । गांधीवादी अमरकान्त 'साहब' के सुझाव का शीघ्र ही स्वागत करता है । सामयिक राजनीति के संदर्भ में उसका कथन है --"हम इसके सिवा और क्या चाहते हैं कि गरीब किसानों के साथ इन्साफ किया जाय और इस उद्देश्य कोपूरा करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है. . . . तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करें ।"[3]

सत्याग्रहियों को 'समझौते' के अनुसार छोड़ दिया गया था । 'अपराजित' में उसका चित्रांकन हुआ है । यथा --"गांधी-इर्विन समझौते के फलस्वरूप सारेराजनीति कैदी छूटे । जनता की यह पहली विजय थी जब किसी . . . रियासत . . . .

१- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० १०४.

२- प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ० ४००.

३- यथोपरि, पृ० ४०१.

था. . . .. आत्मसमर्पण के कारण नहीं बल्कि पैक्ट के फलस्वरूप लोग छूट रहे थे। लोगों में जोश था, सबके चेहरे खिले हुए थे जैसे स्वराज्य अभी नहीं आया था, पर उसके भिनसार की पहली किरणें दिखाई पड़ रही थीं।'[१]

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'गांधी-इर्विन समझौते' से अपनी असहमति व्यक्त की थी।[२] उसका एक सांकेतिक चित्र देखिये --'महात्मा जी से बड़े लाट इर्विन महोदय ने समझौता किया, जो पंडित जवाहरलाल को पसंद नहीं और फिर विलायत में १९३० तथा १९३१ में एक गोलमेज सभा स्थापित की गई।'[३]

उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त 'दो दुनिया', 'बलि का बकरा', 'निर्देश', 'जीने के लिए', 'जययात्रा', 'भूले-बिसरे चित्र', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि में भी 'गोलमेज-परिषद' तथा 'गांधी-इर्विन समझौता' का सांकेतिक चित्रांकन मिलता है।

१- मन्मथनाथ गुप्त, अपराजित, पृ० २३.

२- "Jawahar Lal's reaction was different. He took it as a surrender and opposed it." J.B. Kripalani, Op. Cit. P. 134.

३- 'मिस उमा', स्वतंत्र भारत, पृ० १६.

(च) स्वातंत्र्य-संघर्ष की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन

हिन्दी-उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष का चित्रण उस रत्नमय-सागर के समान है जिसमें जहां चाहे डुबकी लगाइये कोई न कोई घटनात्मक रत्न हाथ अवश्य लगेगा । संभव है कुछ रत्नों पर कुछ छिपटी हों या कुछ दब पड़े हों । परन्तु राजनीतिक-संदर्भ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चाहे या अनचाहे उपन्यासों में बहुधा देखने को मिलते हैं । इच्छा तो थी उन सभी उपलब्ध चित्रित घटनाओं पर प्रकाश डाला जाय परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कुछ सीमाएं होती हैं । इस तथ्य का ध्यान आते ही कुछ को छोड़ना पड़ रहा है और कुछ को समेटना । इसीलिए स्वातंत्र्य-संग्राम की प्रमुख-प्रमुख घटनाओं का ही विश्लेषण संभव है ।

'कांग्रेस' के विभिन्न अधिवेशन

सन् १८८५ ई० में 'कांग्रेस' की स्थापना हुई थी । इसी का वर्णन 'स्वतंत्र भारत' में इस प्रकार किया गया है -- "इधर देश में सन् १८८५ में कांग्रेस नाम्नी एक संस्था स्थापित हुई थी, जो विशेषतया राजनीतिक कार्य करती थी । स्थापना तो इसकी अंग्रेजी अफसरों की सम्मति से ह्यूम साहब द्वारा हुई थी ।"[1] 'कांग्रेस' की स्थापना का श्रेय भी लार्ड ह्यूम को ही जाता है । बुद्धराम के शंका प्रकट करने पर कि क्या "विलायती लोगों ने कांग्रेस को संस्थापित किया ?" भैया कहता है -- "हां, गोरे साहबों ने काले साहबों को बढ़ावा दिया । पच्चीस साल तक तो कांग्रेस में इन्हीं काले साहबों का जोर रहा । इनका काम था साल में एक बार किसी बड़े शहर में इकट्ठा होना और हाथ जोड़ कर अंग्रेजी सरकार से प्रार्थना करना ।"[2]

१- 'मिश्रबन्धु', स्वतंत्र भारत, पृ० ५.

२- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० २०६.

'सूरत कांग्रेस' का अपना एक इतिहास है। जिसने स्वातंत्र्य-संग्राम को एक नई दिशा प्रदान की थी। लोकमान्य तिलक की राजनीति उस अधिवेशन पर छा गई थी।[1] गरम और नरम दल का प्रारंभ यहीं हुआ था। उपन्यासकार उस घटना का वर्णन करते हुए कहता है -- '१९०७ में सूरत में जो कांग्रेस हुई, उस में गरम दल के केवल ३०० सज्जन थे तथा नरम दल के १०००। फिर भी लोकमान्य तिलक महोदय ने नरम दल की खुशामदी नीति का घोर प्रतिवाद किया। नरम दल वालों की कुछ थोड़ी सी मारपीट भी हुई और सभा भंग हो गई। - - - - गरम दल का प्रभाव दिनों दिन बढ़ता गया।'[2] 'मुक्ति के बंधन' का रचनाकार कहता है -- 'सम्राट के जयघोष पर अब तक कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त होता था। इस बार यह जयघोष - वंदे मातरम् के सुमधुर मंत्र में बदल गया।'[3]

'लखनऊ-समझौता' -- 'कांग्रेस' और 'लीग' का ही समझौता न था अपितु यह दो कौमों का समझौता था। '१९१६ का साल आधुनिक भारत के राजनीतिक इतिहास में एक सीमा चिह्न है।'[4] इस समझौते से उत्पन्न साम्प्रदायिक सद्भाव का आभास धूमिल रूप में 'प्रेमाश्रम' में इजादहुसेन के कथन में मिलता है -- 'दोस्तो, अब मजहब परवरी का जमाना नहीं रहा। पुरानी बातों को भूल जाइये। आप बारहा हमसे गले मिलने के लिए बढ़े लेकिन हम फिरदम तुअस्सुब के जोश में हमेशा आपसे दूर भागते रहे - - - - हमारी कजदिली को भूल जाइये। उसी बेगाना कौम का एक फर्द हकीर आज आपकी खिदमत में इत्तहाद का पैगाम लेकर हाजिर हुआ है - - - - हम इत्तहाद की सदा से इस पाक जमीन के एक-एक गोशों को भर देना चाहते हैं।'[5]

१- के०पी० करुणाकरण, माडर्न पालिटिकल ट्रेडीशन, पृ० १४२.

२- 'मिलाप', स्वतंत्र भारत, पृ० ६.

३- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ७२.

४- फ्रैंकमोरैस, जवाहरलाल नेहरू जीवनी, पृ० ४५.

५- प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, पृ० १६२.

'इरविन-समझौते' पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गंगाप्रसाद कहता है -- "इरविन का समझौता कागज पर हुआ है दिलों में नहीं हुआ है । यह समझौता सिद्धान्त है, कर्म नहीं है और फिर आप यह भूल जाते हैं कि यह केवल समझौता है ।"[1] 'स्वतंत्र भारत' और 'इन्दुमती' में भी 'इरविन-पैक्ट' का उल्लेख किया गया है ।

'लाहौर-कांग्रेस' में पूर्ण स्वराज्य की रूपरेखा बननी आरंभ हुई थी और पं० जवाहरलाल नेहरू उसके सभापति मनोनीत किए गये थे । सरकार मिन्टो पार्क में अधिवेशन किये जाने की आज्ञा टाल रही थी । उस घटना का अंकन एक पंजाबी गीत में व्यक्त किया गया है --

'मिन्टो पार्क नूं लै जावीं वई लन्दन चुक के ।
असां रावी ते झंडा झुलावांगे वई ।।'[2]

अर्थात् अरे अंग्रेजों मिन्टो पार्क को लन्दन उठाकर ले जाओ हम अपना झंडा रावी के किनारे फहरा लें ।

कांग्रेस अधिवेशन में मनोनीत सभापति की खूब सजधज के साथ सवारी तथा जलूस निकाला जाता है । यह परम्परा आज तक चली आ रही है । पं० जवाहरलाल नेहरू का जो भव्य जलूस निकाला गया था उसे देखने के लिए चेतन की विकलता और उत्सुकता का एक चित्रण द्रष्टव्य है --

"दिसम्बर का महीना था । कड़ा जाड़ा पड़ रहा था । प्रधान के जलूस से तीन चार दिन पहले वे वहां पहुंचे । ---- चेतन को पहली रात सर्दी लगती रही लेकिन कांग्रेस नगर पहुंच कर महज खुशी से ही वे पहली रात न सोये थे ---- प्रधान के जलूस में वे दोनों शामिल हुए । जलूस कांग्रेस नगर अथवा (लाजपतराय नगर) से जो रावी के तट पर बनाया गया था पैदल स्टेशन तक गया और पंडित जवाहरलाल नेहरू के आने पर फिर बाजारों में से होता हुआ चला ।"[3]

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४३६-४०.
२- उपेन्द्रनाथ 'अश्क', गिरती दीवारें, पृ० ७४.
३- यथोपरि, पृ० ४६८.

अमृतसर में भी कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था । उसका चित्रण ज्ञानप्रकाश और गंगाप्रसाद के कथोपकथनों द्वारा चित्रित किया गया है । ज्ञानप्रकाश गंगाप्रसाद से कहता है — "तो फिर चलते हो मेरे साथ अमृतसर ।" गंगाप्रसाद चौंक पड़ा, "होश में तो हो चचा । मुझे अमृतसर कांग्रेस में चलने को कहते हो ? सरकार तक अगर खबर पहुंच गई तो जो कुछ तरक्की वरक्की होने वाली है ---- सब समझ लो ---- रुक गई ।"[1] सरकारी नौकरी की परवाह न करते हुए गंगाप्रसाद ज्ञानप्रकाश के साथ अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में जाने की सूचना ज्वालाप्रसाद को देते हुए कहता है — "मैं कल अमृतसर के लिए रवाना हो रहा हूं । आज २२ दिसम्बर है, २६ दिसम्बर से वहां कांग्रेस हो रही है ।" "तो क्या तुम्हारा कांग्रेस में जाना जरूरी है ?" ज्वालाप्रसाद ने पूछा । "जरूरी तो इस दुनिया में कुछ भी नहीं है, लेकिन हमारे देश में जो नई चेतना आ रही है उसके दर्शन तो मैं करना ही चाहता हूं ।"[2]

सन् १९४२ में बम्बई में जो ऐतिहासिक कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था उसका प्रभावांकन ज्वालामुखी में स्पष्ट दिखाई देता है । उपन्यासकार द्वारा किया गया चित्रांकन विशुद्ध ऐतिहासिक है । जो तत्कालीन युगीन हलचलों की याद दिलाता है — "वर्धा के बाद बम्बई और ७ अगस्त १९४२ का दिन गोवालिया टैंक में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जिसमें वर्धा के प्रस्ताव पर मुहर लगानी थी । लोगों में एक अजीब हलचल थी । वातावरण में गंभीरता थी, पर विशिष्ट प्रकार का उत्साह भी था, दिलों में आशंका थी, उमंगें थीं ।"[3]

बम्बई अधिवेशन के बाद कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को अदालत में सजायें दी गई थीं । उनमें कामकुमार भी था । उसी का एक और चित्र प्रस्तुत है —

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४२५.

२- यथोपरि, पृ० ४२१.

३- [illegible], ज्वालामुखी, पृ० ३०.

'अदालत ने पूछा --'तुम बम्बई कांग्रेस के अधिवेशन में शरीक होने गये थे ?' 'जी हां' ।
'फिर ?' 'फिर क्या ?'
'यानी वहां के नेताओं के भाषण सुने ?'
'जी हां, उसी के लिए तो गया था ?'[1]

इसके अतिरिक्त अन्य अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशनों का चित्रण भी आंशिक रूप से अन्य उपन्यासों में किया गया है, यथा --'अहमदाबाद-कांग्रेस'[2], 'नागपुर-कांग्रेस'[3], 'गया-कांग्रेस'[4], 'मद्रास-कांग्रेस'[5], 'कानपुर-कांग्रेस'[6], 'कलकत्ता-कांग्रेस'[7] और 'हरिपुरा-कांग्रेस' आदि आदि ।

नरम-दली भावाभिव्यक्ति

'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना से लेकर लगभग सन् १९०५ ई० तक कांग्रेस का विश्वास पूर्णतः ब्रिटिश राज की राजभक्ति में था । उसकी न्यायप्रियता, उदारता पर नरमपंथियों को पूर्ण आस्था थी । वह ब्रिटिश-सरकार की शक्ति में वृद्धि की कामना किया करती थी उसे फूलता और फलता देखना चाहती थी । वैधानिक आन्दोलन द्वारा अंग्रेजों की कृपा से स्वराज्य पा लेना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था । सन् १८९३ ई० में सरदार दयालसिंह मजीठिया ने कांग्रेस अधिवेशन के स्वागत भाषण में कहा था --'भारत में ब्रिटिश शासन कीर्ति का कलश है, हम उस विधान के मातहत सुख से रहे हैं

१- अनन्तगोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० २४२.
२-(क) गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० १५५.
(ख) भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ५२२-२३.
३- (क) गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० १२.
(ख) राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २१२.
४- राहुल सांकृत्यायन, यथोपरि, पृ० २४७.
५- भगवतीप्रसाद वाजपेयी, निमंत्रण, पृ० ७-८.
६- गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० २३८-३६.
७- यथोपरि, पृ० १४१-४२.
८-(क) भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० १७४.
(ख) राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० ३२१.

जिसका विरुद्ध है आजादी और जिसका दावा है सहिष्णुता ।[1]

गांधी जी के राजनीति में प्रवेश तक गरम-दल के प्रादुर्भाव के बावजूद भी नरम दल की राजभक्ति राष्ट्रीय-संग्राम में आई नहीं । इसलिए हिन्दी के साहित्यकार का उस युगीन राजनीति से प्रभावित होना स्वाभाविक था । किन्तु उपन्यास साहित्य में राजभक्ति परक भावों का अंकन विपुल मात्रा में नहीं मिलता है । कुछ ही उपन्यासों में इसके विरल-बीज उगते हुए से दृष्टिगोचर होते हैं । उस काल में हिन्दी उपन्यास राजनीत्योन्मुख की अपेक्षा समाजोन्मुख अधिक था ।

मेहता लज्जाराम शर्मा द्वारा रचित 'आदर्श हिन्दू' में राजभक्ति का जो चित्रण उपलब्ध होता है उसका कारण युगीन प्रभाव है । अपनी राजभक्ति परक भावना की अभिव्यक्ति करते हुए उपन्यासकार ने कहा है --"परमेश्वर का लाख धन्यवाद है कि उसकी अपार दया से हम भारतवासियों को ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की उदार छाया में निवास करके हजारों वर्षों के अनन्तर सच्चे शान्ति-सुख को अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।"[2] उपर्युक्त ब्रिटिश राजभक्ति के गुणगान का कारण उस युग के जन नेताओं का ब्रिटिश-सरकार के प्रति आस्थावान होना है । दादा भाई नौरोजी को भी ब्रिटिश-शासन व्यवस्था में पूर्ण आस्था थी ।[3] नरमदली आस्था का चित्रांकन प्रियानाथ के इस कथन से और भी स्पष्ट हो जाता है । उनका कहना है --"जिन बातों को देने का सरकार ने वादा कर दिया है - - - - उन्हें सरकार से माँगें । जब माता-पिता भी बेटे-बेटी को रोने से रोटी देते हैं तब राजा से माँगने में कोई बुराई नहीं है । तुम ज्यों-ज्यों माँगते जाते हो त्यों-त्यों धीरे-धीरे वह देती भी जाती है - - - - इसलिए नियमबद्ध आन्दोलन करना

१- पट्टाभि सीता रामय्या, कांग्रेस का इतिहास, खंड एक, पृ० ५८.

२- लज्जाराम शर्मा मेहता, आदर्श हिन्दू (काशी : १९१४) भाग एक, पृ० २१.

३- "It has been the faith of my life and it is my faith still that the British people will do justice to India."
Dadabhai Naoroji, Poverty And Unbritish Rule In India (London: 1901), P. 346.

आवश्यक व अच्छा है ।"[१] कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए डी०ई०वाचा ने भी रायल कमीशन के समक्ष वैधानिक-नियमबद्ध आन्दोलन की बात कही थी ।[२] 'प्रतिशोध' में राजभक्ति का अंकन इन शब्दों में हुआ है — "आज का सुख आज की शान्ति, आज की स्वाधीनता, आज की उन्नति देख कर ही मैं चाहता हूं कि न्यायी अंग्रेजों का साया इस देश पर सदा बना रहे जिनके शासन में बाघ और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं ।"[३]

प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में उस युग की अनेक राजनीतिक पार्टियों का विश्लेषण मिस्टर क्लार्क के माध्यम से किया है । मि० क्लार्क कहता है — "अंग्रेज-जाति भारतवर्ष को अनन्त काल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाये रखना चाहती है । कंजरवेटिव हो या लिबरल, रेडिकल हो या लेबर, नेशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं ।"[४] मिस्टर जानसेवक और उनकी धर्मपत्नि के कथोपकथनों द्वारा भी प्रेमचंद ने समकालीन नरमदलीय राजनीतिक मनोवृत्ति का अंकन किया है । जानसेवक का कथन है — "मेरे विचार में हमारा कल्याण अंग्रेजों के साथ मेलजोल करने में है ।"[५] क्योंकि "राज्य के विरुद्ध आन्दोलन करना राज्य को निर्बल बना देता है और प्रजा को उद्दंड ।"[६] राजा महेन्द्रकुमार भी राजभक्त हैं । उनकी मान्यता है कि — "मैं एक राज्य का अधीश हूं और स्वभावतः मेरी सहानुभूति सरकार के साथ है ।"[७]

१- लज्जाराम शर्मा मेहता, आदर्श हिन्दू (काशी : १९१५), भाग तीन, पृ० २४०.

२- "The Association is established for the advocacy and promotion of the public interest of India by all legitimate and constitutional methods." Indian Expenditure Commission (Royal Commission) 1900, Minutes of Evidence, P. 173.

३- दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रतिशोध, पृ० ३५.

४- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ४२१.

५- यथोपरि, पृ० १५८.

६- यथोपरि, पृ० २८२.

७- यथोपरि, पृ० १८२.

भारत का मध्यम-वर्गी वर्ग विशेषकर उच्चवर्ग के लोग जिनका स्वार्थ ब्रिटिश सरकार से जुड़ा हुआ था, ऐसे परिवर्तन कभी नहीं चाहते थे जिनसे उनके स्वार्थों को चोट लगे ।[1] जानसेवक, राजा महेन्द्रकुमार आदि इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व 'रंगभूमि' में करते हैं । जो ब्रिटिश सरकार से अपने स्वार्थ के कारण नरमदल वालों की तरह जुड़े हुए हैं ।

'गोदान' में राजभक्ति का भी सुन्दर चित्रण किया गया है । माडरेटों को जब ब्रिटिश सरकार द्वारा पदवी तथा मान सम्मान दिया जाता था तो वे अपने को बड़ा ही सौभाग्यशाली समझते थे । इसी भावना का एक चित्र द्रष्टव्य है -- "सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि अबकी हिज मैजेस्टी के जन्मदिन के अवसर पर उन्हें राजा की पदवी मिल गई । अबकी उनकी महत्वाकांक्षा सम्पूर्ण रूप से संतुष्ट हो गई । उस दिन खूब जश्न मनाया गया और ऐसी शानदार दावत हुई कि पिछले सारे रिकार्ड टूट गये । जिस वक्त हिज एक्सेलेन्सी गवर्नर ने उन्हें पदवी प्रदान की गर्व के साथ राजभक्ति की ऐसी तरंग उनके मन में उठी कि उनका एक-एक रोम उससे प्लावित हो उठा । यह है जीवन । नहीं विद्रोहियों के फेर में पड़कर व्यर्थ बदनामी हो ।"[2]

रायसाहब की उपर्युक्त मनोभावना युगीन नरमदली-राजभक्तों की ही भावना है । 'बयालीस' का सर भगवानसिंह भी नरमदली-राजभक्ति का प्रतीक है जो ब्रिटिश सरकार के संकेत पर अपने सत्याग्रही-पुत्र के मारे जाने पर शोक प्रकट न करके प्रसन्नता व्यक्त करता है ।[3] पुत्र को वह बागी की संज्ञा देता है । पुत्र कृषकों के न्याय के लिए अपनी रियासती जनता

१- "The wealthy classes who are not likely to interested in any change of Government are therefore being approched with the tempting proposals."

- Report on Native News papers Bengal 1907, June to Sept., Confidential Report No. 36, P. 385.

२- प्रेमचंद, गोदान, पृ० ३००.

३- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २३६.

का साथ देता है । मुन्ना की एक गुंडे द्वारा मारे जाने के समाचार से उन्हें शान्ति मिलती है । राजभक्त सर भगवानसिंह गगन-भेदी हास्य में कहता है —"वाह अनवर यह तुमने बड़ा शुभ समाचार सुनाया । जी में आता है कि उस गुंडे को सोने से तोल दूं । - - - - वह शैतान नहीं फरिश्ता है । उसको मेरे पास लाना, मैं उसे इनाम दूंगा । - - - - इस कुलांगार, डोमड़ी पिल्ले की वजह से हमारे देश की मर्यादा की नाव डूबने वाली थी । - - - - इस फरिश्ते ने मुझे पुकाली होने से बचा लिया अनवर ।"[1]

पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह कथन कि "राजभक्तों को नरम कहते-कहते इतना पीछे को हटना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार और उनकी विचारधारा में अन्तर ढूंढना कठिन हो गया ।"[2] सर भगवानसिंह के संबंध में यह बात शत-प्रतिशत ठीक उतरती है । "मुक्ति के बंधन" में भी "नरम दल" के राजनीतिक दर्शन का वर्णन मिलता है । यथा —"उस समय की कांग्रेस के पास केवल "रोटी दो" की मांग थी । रोटी का युद्ध न था । वह सिर का टोप उतार घुटने टेक अंचल फैलाती और कुछ मिल जाने की आशा में हारमोनियम की धुकनी का साथ देकर "गाड सेव दी SSS किं SSS ग" का गीत गाती थी ।"[3] "अमृत बाजार पत्रिका" ने "नरम-पंथी" की राजनीति पर टीका-टिप्पणी करते हुए लिखा था कि "कांग्रेस क्या है ? यह भिखारियों की एक जमात है । प्रत्येक वर्ष भारतीय एक स्थान पर भिक्षा के लिए एकत्र होते हैं और फिर किसी उद्देश्य की प्राप्ति के बिना बिखर जाते हैं ।"[4]

जब खान बहादुर से "डोमीनियन स्टेटस" के बारे में पूछा जाता है तो उनका उत्तर है —"पागलपन की बात है मेरे अजीज, कतई पागलपन की बात है । हिन्दुस्तान को सुधार मिलने चाहिए लेकिन बहुत धीरे-धीरे । मैं कहता हूं अगर आज हिन्दुस्तान को स्वर

१- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २१७-१८.

२- जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, पृ० ५५४.

३- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ५६.

४- रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, बंगाल, १९०७ अक्तूबर-दिसम्बर, गोपनीय रिपोर्ट सं० ४०, पृ० ५१५.

मिल जाय तो यह मारकाट मच जायेगी, वह खून खराबा बरपा होगा कि पनाह खुदा की ।
ब्रिटिश हुकूमत ही इस पहली व कोठी मुल्क में अमन-आमान करा सकी है ।"[1] गंगाप्रसाद
भी ज्ञानप्रकाश को कांग्रेस से अलग रहने की सलाह देता है और कहता है -- "इसमें कुछ है
नहीं ।"[2]

प्रसंगवशात अन्य रचनाओं में भी नरमदल तथा राजभक्ति का चित्रण मिलता
है । यथा -- 'स्वतंत्र भारत', 'इन्दुमती', 'जीने के लिए', 'बलि का बकरा', 'सीधा-सादा
रास्ता', 'मा-बीवा', 'पार्टी कामरेड', 'निशिकान्त', 'शेष-अशेष' आदि आदि ।

रॉलट एक्ट एवं जलियांवाला बाग

पश्चिमी भारत की विप्लववादी राजनीतिक गतिविधियों से ब्रिटिश-शासन-तंत्र
परेशान हो उठा था । क्रान्तिकारी आन्दोलन - विशेषकर 'गदर' की पुनरावृत्ति को
रोकने के लिए ब्रिटिश न्यायविद् श्री रॉलट के सभापतित्व में 'रॉलट-कमेटी' की नियुक्ति
की गई थी ।[3] उस कमेटी के सुझावों के अनुसार भारतीयों से "वे नाममात्र के अधिकार भी
छीन लिए गये थे जो उन्हें प्राप्त थे ।"[4] भारत सरकार ने राष्ट्रीय-संग्राम के दमन हेतु
विशेष कानूनों द्वारा अधिकार पाने के लिए 'धारासभा' में दो बिल पेश किए । गांधी
जी के नेतृत्व में सारे भारत ने उन बिलों का जोरदार विरोध किया ।[5] पंजाब में भी
जलियांवाला बाग में विरोध-दिवस मनाया गया किन्तु निहत्थे शान्त जनसभा पर गोलियों
की बौछार करके ब्रिटिश सरकार ने अपनी अमानुषिकता का परिचय दिया ।

१- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४५८-५९.

२- यथोपरि, पृ० ४२४.

३- जान काटमेन, इंडिया : दि रोड टू सेल्फ गवर्नमेन्ट (लन्दन : १९४१), पृ० ४५.

४- कृष्णा हठीसिंह, इन्दु से प्रधानमंत्री (नई दिल्ली : १९५२), पृ० ३०.

५- रिपोर्ट आव दि साइमन कमीशन (कलकत्ता : १९३०), पार्ट ३, अध्याय ६, पृ० २९६.

'राहुल' ने देवराज पात्र के द्वारा रॉलट-रिपोर्ट की चर्चा की है। देवराज अपने साथी से पूछता है कि रॉलट-रिपोर्ट तो पढ़ी ही होगी। उसके इस प्रश्न का उत्तर उसे इन शब्दों में मिलता है -- "रौलट रिपोर्ट में चाहे कितनी ही गलत बयानियां हों लेकिन एक बात उससे स्पष्ट हो जाती है -- भारत में आतंकवाद अधिक संगठित और बलशाली होता जा रहा है।"[१] वह पुनः कहता है -- "लोगों के एक स्वर से विरोध करने पर भी भारत सरकार ने रॉलट-कानून बना दिया ? गांधी जी ने उसका विरोध, कोरी लफ्फाजी से नहीं, बल्कि ठोस तरीके से करना ते किया है।"[२]

गांधी जी ने रॉलट-एक्ट का जो विरोध किया था उसके बारे में वे कहते हैं -- "मुझे स्वप्नावस्था में यह विचार हुआ कि इस कानून के जवाब में हम सारे देश को हड़ताल करने की सूचना दें।"[३] गांधी जी के इसी विरोध को रांगेयराघव ने चन्द्रभान के कथन द्वारा व्यक्त किया है। उसका कथन है -- "गांधी जी स्वयं कहते हैं कि वे इस कानून को नहीं मानते। आजाद हिन्दुस्तान में सबसे पहले इस कानून को बदला जायेगा - - - - जो इससे असहयोग नहीं करता वह देश की स्वतंत्रता नहीं चाहता।"[४]

रॉलट-कानून का विरोध करने के लिए कांग्रेस में तिथि निश्चित की गई थी। आत्मदाह में -"बसंत के दिन थे, अमृतसर में बैसाखी का मेला था" के द्वारा विरोध-दिवस के समय की ओर संकेत किया गया है।[५] सभा होने की सूचना का भी अंकन उपन्यासकार ने किया है। "दोपहर ढलने लगी थी - - - - एक लड़का कनस्तर पीट-पीट कर जलियांवाला बाग में सभा होने की घोषणा कर रहा है। इससे कुछ पूर्व ही सैनिक अफसर

१- राहुल सांकृत्यायन - जीने के लिए, पृ० २०१.

२- यथोपरि, पृ० २०२-३.

३- महात्मा गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ० ३६८.

४- रांगेयराघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० ३७७.

५- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह, पृ० २८६.

नाकाबंदी की घोषणा कर गये थे।"[1]

'राहुल' ने जलियांवाला बाग का व्यापी अंकन किया है। मैया का कथन है -- "जलियांवाला बाग (अमृतसर) के एक हाते के भीतर सभा हो रही थी। जनरल डायर ने मशीन लगवा दी और डेढ़ हजार से ऊपर बच्चे और औरतों, मर्दों को भून डाला। - - - - हिन्दुस्तानी की जान का मोल एक गोली से ज्यादा नहीं था।"[2] उपन्यासकार ने स्थान, जनरल डायर, और मृतकों की संख्या का सत्यांकन किया है।[3] अमृतसर में जनता पर जो दमनात्मक कार्यवाहियां की गईं उनका चित्रण भगवतीचरण वर्मा करते हुए लिखते हैं -- "लोगों के कोड़े लगवाये गये, उनसे नाक रगड़वाई गई - - - - जनरल डायर ने या पंजाब के सैनिक अधिकारियों ने या पंजाब-सरकार ने जो किया उससे कहीं अधिक नादिरशाह कर गया है।[4]

'स्वराज्यदान' में वर्णित सन, माह, व्यक्ति तथा स्थान भी 'जलियांवाला बाग' के संदर्भ में ऐतिहासिक हैं। जलियांवाला बाग में निहत्थे लोगों को गोलियों से भून कर जो ढेर लगा दिया था उसका चित्रांकन गुरुदत्त ने भी किया है -- "अहाते के एक ओर एक दीवार थी और सबसे अधिक लाशें उसी दीवार के समीप थीं। एक स्थान पर लाशों का ढेर लगा था। - - - - उफ कितना भयंकर दृश्य था।"[5] लाशों के ढेर का यह दृश्य कल्पनात्मक नहीं है अपितु यथार्थतापूर्ण है। क्योंकि -- "ब्रिटिश सैनिकों की एक टुकड़ी ने निहत्थे लोगों के जन-समूह पर बिना पूर्व सूचना के लगातार तब तक गोली-बारी की जब तक सभी गोलियां समाप्त नहीं हो गईं।"[6]

१- आचार्य चतुरसेन, आत्मदाह, पृ० २८७.
२- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० १७६.
३- द्रष्टव्य है प्रस्तुत शोध प्रबंध का द्वितीय अध्याय.
४- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ४३२.
५- गुरुदत्त, स्वराज्य दान, पृ० ५.
६- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार, गृहविभाग, राजनीतिक (ए) गोपनीय पत्रावली सं० ३४७-३५८, फरवरी १६२०.

स्वराज्य-पार्टी

'भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस' के इतिहास में 'सूरत कांग्रेस' (१९०७) के बाद पुन: कांग्रेस का विभाजन थोड़े समय के लिए 'परिवर्तनवादी' और 'अपरिवर्तनवादी' वर्गों में हो गया । 'कौंसिल-प्रवेश' के प्रश्न पर कांग्रेस में खींचतान आरंभ हुई थी । चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू और हकीम अजमलखां ने स्वराज्य दल का निर्माण किया था जो कौंसिल में जाकर ब्रिटिश सरकार से असहयोग करना चाहते थे ।[१] 'स्वतंत्र-भारत' में स्वराज्य दल के निर्माण पर प्रकाश डाला गया है --'उधर महात्मा की सम्मति के प्रतिकूल पंडित मोती-लाल नेहरू तथा देशबन्धुदास के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी स्थापित हो गई थी ।'[२]

'रैन अंधेरी' के रचनाकार गुप्त जी ने 'स्वराज्य-दल' के निर्माण, उसके नेताओं की गतिविधि के बारे में उपन्यास के पात्रों द्वारा प्रकाश डाला है । रमादेवी राजेन्द्र से पूछती है कि 'तुमने राजनीति छोड़ दी ?'

'नहीं मैं सी० आर० दास की पार्टी में हो गया हूं ।

'ओह यानी अब तुम कौंसिल के मेम्बर बनोगे ?

वह बोला - मां जी । ---- आज यहां पं० मोतीलाल नेहरू और सी०आर०दास पधारने वाले हैं ।'[३]

पुन: रमादेवी, श्याम से कहती है -'देशबन्धु चितरंजनदास और मोतीलाल नेहरू स्वराज्य पार्टी बना रहे हैं । ---- तुम शौक से उसमें काम करो । तुम्हारे पिताजी स्वराज्य पार्टी से खुश हैं । कहते हैं अब उल्लू कुबे में आ जायेंगे ।'[४]

१- मौलाना अबुलकलाम आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम (कलकत्ता : १९५९), पृ० १०.

२- 'मिलाप', स्वतंत्र-भारत, पृ० १५.

३- मन्मथनाथ गुप्त, रैन अंधेरी, पृ० ३८.

४- यथोपरि, पृ० ४२.

स्वराज्य-पार्टी

`भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस` के इतिहास में `सूरत कांग्रेस` (१९०७) के बाद पुन: कांग्रेस का विभाजन थोड़े समय के लिए `परिवर्तनवादी` और `अपरिवर्तनवादी` वर्गों में हो गया । `कौंसिल-प्रवेश` के प्रश्न पर कांग्रेस में खींचतान आरंभ हुई थी । चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू और हकीम अजमलखां ने स्वराज्य दल का निर्माण किया था जो कौंसिल में जाकर ब्रिटिश सरकार से असहयोग करना चाहते थे ।[१] `स्वतंत्र-भारत` में स्वराज्य दल के निर्माण पर प्रकाश डाला गया है -- "इधर महात्मा की सम्मति के प्रतिकूल पंडित मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धुदास के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी स्थापित हो गई थी ।"[२]

"रैन अंधेरी" के रचनाकार गुप्त जी ने `स्वराज्य-दल` के निर्माण, उसके नेताओं की गतिविधि के बारे में उपन्यास के पात्रों द्वारा प्रकाश डाला है । रमादेवी राजेन्द्र से पूछती है कि `तुमने राजनीति छोड़ दी ?`

`नहीं मैं सी० आर० दास की पार्टी में हो गया हूं ।

`ओह यानी अब तुम कौंसिल के मेम्बर बनोगे ?

वह बोला - मां जी । - - - - आज यहां पं० मोतीलाल नेहरू और सी०आर०दास पधारने वाले हैं ।"[३]

पुन: रमादेवी, श्याम से कहती है - "देशबन्धु चितरंजनदास और मोतीलाल नेहरू स्वराज्य पार्टी बना रहे हैं । - - - - तुम शौक से उसमें काम करो । तुम्हारे पिताजी स्वराज्य पार्टी से खुश हैं । कहते हैं अब उल्लू कंधे में आ जायेंगे ।"[४]

१- मौलाना अबुलकलाम आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम (कलकत्ता : १९५९), पृ० १०.

२- `मित्रद्वय`, स्वतंत्र-भारत, पृ० १५.

३- मन्मथनाथ गुप्त, रैन अंधेरी, पृ० ३८.

४- यथोपरि, पृ० ४२.

गांधी जी तथा उनके अनुयायियों तथा 'स्वराज्य दल' में जो मतभेद चला तथा कौंसिलों को लेकर उत्पन्न हो गया था[1] उसका वर्णन श्यामा के शब्दों में इस प्रकार है — 'इस समय कांग्रेस में दो धारायें चल रही हैं — एक कह रही है कि कौंसिल प्रवेश करो और उन्हें सुधारो या खत्म करो, दूसरी कह रही है कि चर्खा-करघा आदि का रचनात्मक कार्य करो।'[2]

'देशबन्धु' स्वराज्य दल के जन्मदाता थे। देश की राजनीति में उनका सक्रिय सहयोग था। 'रंगभूमि' के डाक्टर गांगुली में देशबंधु चितरंजनदास की आत्मा हो सकती है ऐसा विचार अमृतराय ने व्यक्त किया है।[3] जो हो परन्तु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा ही जा सकता है कि देशबंधु की अन्तिम दिनों की चिन्ता तथा डाक्टर गांगुली की अन्तिम दिनों की चिन्ता में बहुत ही साम्य है। देशबंधु अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भारतीय राजनीतिक-गगन में छाये शून्य से बड़े चिन्तित और व्यथित एवं निराश थे। उन्होंने एक पत्र लगभग पांच पृष्ठों का पंडित मोतीलाल नेहरू को लिखा था जिसमें उनके मन की वेदना टपकती है।[4]

डाक्टर गांगुली का कथन है — 'आज मेरे दिल से वह विश्वास उठ गया, जो गत चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेन्ट हमारे ऊपर न्याय बल से शासन करना चाहती है। आज उस न्याय बल की कलई खुल गई, हमारी आंखों से पर्दा उठ गया और

१- पी०सी० रे, लाइफ एन्ड टाइम्स आफ सी०आर०दास (लन्दन : १९२७), पृ० १७७.

२- मन्मथनाथ गुप्त, रैन बसेरा, (दिल्ली : १९५६), पृ० ४७.

३- अमृतराय, प्रेमचंद कलम का सिपाही, पृ० ३४२.

४- "The most critical time in our history is coming. There must be solid work done at the end of the year and the beginning of the next. All our resources will be taxed but we are both of us ill. God knows what will happen." - H.D. Gupta, 'Deshbandhu' (Govt. of India Publication: 1960), P. 134.

हम गवर्नमेन्ट को उसके नग्न, आवरणहीन रूप में देख रहे हैं। अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पीस कर तेल निकालने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमारी सभ्यता और हमारे मनुष्यत्व की हत्या करने के लिए हमको अनन्तकाल तक चक्की का बैल बनाये रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।"[1] वह पुनः कहते हैं — "अब आपको विदित हुआ होगा कि हम क्यों सम्पत्ति-शाली पुरुषों पर भरोसा नहीं करता - - - - वे कभी सत्य के समर में नहीं आ सकते। जो सिपाही सोने की ईंट गर्दन में बांध कर लड़ने चले, वह कभी नहीं लड़ सकता। - - - - अभी हमको कुछ भ्रम था, पर वह भी मिट गया कि सम्पत्ति-शाली मनुष्य हमारी मदद करने के बदले उल्टा हमको नुकसान पहुंचायेगा।"[2]

स्वर्गीय श्री चितरंजनदास और डा० गांगुली में जहां तक अन्य समानताओं का प्रश्न है उनमें से कुछ बातों में समानता प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में स्थापित की है, यथा — डाक्टर गांगुली भी इंग्लैन्ड से बैरिस्टर होकर आया है। कई साल तक वकालत करता है।[3] देशबंधु तो वकील थे ही। डा० गांगुली भी काउन्सिल को संघटित करता है। वह कहता है — "मैंने काउन्सिल को ऐसा संघटित कर दिया था कि हमको इतना बड़ा मैजारिटी कभी नहीं मिला।"[4] स्वराज्य पार्टी को भी चुनाव में काफी संख्या में मत मिले थे। और देशबंधु तथा मोतीलाल भी उसके गणमान्य नेताओं में से थे। जहां देशबंधु बंगाली हैं वहीं डा० गांगुली भी बंगाली है। यह उसके हिन्दी उच्चारण से स्पष्ट हो जाता है। इन उपर्युक्त समानताओं से यह आभास होता है कि प्रेमचंद के मानस पटल पर कहीं न कहीं 'दास' का व्यक्तित्व विद्यमान था। 'दास' पर अनेक प्रशंसात्मक लेख भी प्रेमचंद ने लिखे हैं।[5]

१- प्रेमचंद, रंगभूमि, पृ० ५८१-८२.

२- यथोपरि, पृ० ५८२-८३.

३- यथोपरि, पृ० ४११.

४- यथोपरि, पृ० २८५.

५- द्रष्टव्य है — प्रेमचंद विविध प्रसंग (सम्पा०) अमृतराय.

साइमन कमीशन

भारत पर एक नया शासन विधान लादने के लिए सात सदस्यों का सर जान साइमन के नेतृत्व में एक कमीशन भारत आया। उसमें एक भी भारतीय न था। इसलिए "साइमन कमीशन का बहिष्कार भारत के सभी दलों ने किया। प्रदर्शनों में लाठियाँ चलीं। कई लोग घायल हुए।"[1] साइमन कमीशन की खबर दुखराम ने भी सुन रखी थी। वह भैया से पूछता है -- "साइमन कमीसन क्या है भैया।"
"भैया -- बिलायती गोरे बहुत चालाक हैं भाई। जब लोगों में ज्यादा असंतोष देखती है, तो पांच सात आदमियों की गुट को यह कह कर भेज देती है, कि यह लोग जाकर जांच पड़ताल करेंगे, फिर हम तुम्हारे लिए जरूर कुछ करेंगे, इसी को कमीसन कहते हैं। उस समय जो कमीसन आया था, उसका मुखिया था साइमन - गोरों का एक छोटा सरदार। इसलिए उस कमीसन को साइमन कमीसन कहा जाता है।"[2]

साइमन-कमीशन बहिष्कार को लेकर कामतानाथ और ज्ञानप्रकाश जिनमें एक पूंजीपति वर्ग का और दूसरा कांग्रेस पक्ष का कार्यकर्ता है, आपस में नोंक-झोंक होती है। उसका एक चित्र वर्मा जी ने अंकित किया है --

"जो वे स्वराज देने आएं, और ये उन लोगों से बात न करें, कितनी बड़ी हिमाकत है।" रायबहादुर कामतानाथ ने अपनी ऊंची आवाज में कहा, "हिन्दुस्तान को स्वराज्य क्या कद्दू मिलेगा।"

ज्ञानप्रकाश मुस्कराए, "रायबहादुर साहब, मिलने के नाम से तो कद्दू ही हाथ लगेगा। इसलिए हम लोगों ने साइमन-कमीशन का बहिष्कार किया। उन लोगों से मिलने से कोई फायदा होता तो हम लोग जरूर मिलते।"[3]

१- डा० राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ० ४१०.

२- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० २०६.

३- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० ६६५.

जब साइमन-कमीशन भारत का दौरा कर रहा था तो 'साइमन गो बैक' के नारों से सारे भारत में उसका विरोधात्मक-स्वागत किया जा रहा था। उसी समय का चित्रण गुरुदत्त ने अपनी लेखनी से किया है — "कमीशन भारतवर्ष में आया, परन्तु भारत-वासियों ने इस कमीशन को अपने माथे पर कलंक का टीका समझा। इस कमीशन का बहिष्कार किया गया। उसके स्थान-स्थान पर पहुंचने पर काले झंडे दिखाये गये। 'साइमन गो बैक' के नारे लगाये गये। - - - - जहां जहां कमीशन गया वहां ही पुलिस की लाठियों से फोड़े गये सिरों के रक्त से भूमि रंजित हो गई। लाहौर में जगत प्रसिद्ध पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय पर लाठियां चलीं - - - - लखनऊ में - - - - पंडित जवाहरलाल नेहरू पर डण्डे पड़े।"[1]

साइमन-कमीशन जब पंजाब में पहुंचा तो उसका बड़ा विरोध हुआ।[2] लाला लाजपतराय की छाती में पड़ी लाठियों के कारण उनकी मृत्यु हो गयी थी। 'साइमन-गो बैक' तो हर भारतीय की जबान पर था।

'स्वराज्य' की व्याख्या

भारतीय वेदों में ऋग्वेद में 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। यथा —

"नहि नुयादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि संदधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥" (१.८०.१५)

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि लेटिन भाषा के 'REGERE' जिससे 'REGIME' शब्द बना है संस्कृत भाषा के राज् और रग (REG) में अद्भुत साम्य है। वेदों में भी इस शब्द के विभिन्न प्रयोग — राजा,[3] स्वराजा, स्वराज, स्वराट्, स्वराज्, स्वराजे, स्वराजः आदि रूपों में मिलते हैं।

१- गुरुदत्त, स्वाधीनता के पथ पर, पृ० २४२.
२- द्वारिकानाथ कांबी, इंडियाज़ फाइट फार फ्रीडम (बम्बई : १९६६), पृ० ३३४.
३- रामानंद चटर्जी (सम्पा०) माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १९१९), खंड २५, पृ० २८२.

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद सन् १९०६ में 'कांग्रेस' के अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द की उद्घोषणा की थी। उन्होंने कहा था 'स्वराज्य' का अर्थ है -- 'अपना राज, अपना राष्ट्र'[1] तथा अपनी सरकार की स्थापना करना ही हमारी जनता का लक्ष्य है।'[2] सन् १९०६ से लेकर 'पूर्ण स्वराज्य की घोषणा' सन् १९२९ तक, 'स्वराज्य' शब्द के अर्थ को लेकर वाद-विवाद चलता रहा। क्योंकि 'स्वराज' की लोग तरह-तरह से व्याख्या करते थे।'[3] कभी 'होमरूल', कभी औपनिवेशिक-स्वराज्य और कभी पूर्ण स्वराज्य की गूंज राष्ट्रीय-संग्राम में छाई रही। भारतीय नेताओं द्वारा 'स्वराज्य' की समय-समय पर वैयक्तिक व्याख्या भी की गई। यथा -- गांधी जी के शब्दों में -- 'स्वराज्य का अर्थ है देश की बहुसंख्यक जनता का शासन।'[4] तथा पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार -- 'स्वराज्य का वास्तविक अर्थ है सम्पूर्ण भारतीय जनता - विशेषकर कृषकों की कठिनाइयों का विनाश करना।'[5] देशबंधु चितरंजनदास, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि ने भी स्वराज्य की व्याख्या अपने अनेक भाषणों में की थी।

'स्वराज' से जन सामान्य का क्या अभिप्राय था, इसका चित्रांकन भी उपन्यासों में उपलब्ध होता है। यथा -- सत्याग्रही विमल से, जेल के अन्य कैदी जो सत्याग्रही नहीं हैं, उससे स्वराज्य के बारे में पूछ कर अपनी शंका का निवारण करना चाहते हैं। एक कैदी पूछता है -- 'आप गांधी बाबा के चेले हैं।' 'हां'। - - - - अब स्वराज कब आयेगा यह ? तुम लोगों को क्यों जल्दी है ?
जब गांधी बाबा का राज होगा तो हम सब जेलखाने से छोड़ दिये जायेंगे।' -x-x-x-

---

१- विपिनचन्द्र पाल, स्वदेशी एन्ड स्वराज (कलकत्ता : १९५४), पृ० १६०.

२- यथोपरि, पृ० १४६.

३- पट्टाभि सीता रामय्या, महात्मा गांधी का समाजवाद, पृ० १२३.

४- महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, पृ० ४.

५- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार, गृहविभाग राजनीतिक-पत्रावली सं० ३३।२४।१९३१.

(चोर, और हत्या करने वाले) तो स्वराज में भी जेल में रखे जायेंगे ।'

'यह क्यों ?'

'तो क्या तुम लोग समझते हो कि स्वराज में चोरों और हत्यारों को दंड नहीं दिया जायेगा ? स्वराज्य में तो सबको यही शिक्षा दी जायेगी कि कोई अपराध न करो ।'
'परन्तु हम समझते थे कि स्वराज्य में सबको छुट्टा छोड़ दिया जायेगा, जिसकी जो इच्छा हो, सो करे ।'[१]

नौकरशाही के अत्याचारों से दुखी देवीदीन अपनी शंका प्रकट करते हुए पूछता है -- 'तो सुराज मिलने पर दस-दस पांच-पांच हजार के अफसर नहीं रहेंगे ? वकीलों की लूट नहीं रहेगी । पुलिस की लूट बन्द हो जायेगी ।'[२] बापू भी सत्य और अहिंसा तथा न्याय के बल पर स्वराज्य चाहते थे । 'मुख में राम-राम बगल में छुरी' रखने से स्वराज तो मात्र एक स्वप्न है । उसके लिए हृदय की पवित्रता आवश्यक है । प्रेमचंद समकालीन राजनीतिक नेताओं की द्विमुखी प्रवृत्ति पर धनिया के माध्यम से व्यंग्य करते हैं । धनिया का कथन है -- 'ये हमारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले । सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो । उस पर सुराज चाहिए । जेल जाने से सुराज न मिलेगा । सुराज मिलेगा धरम से न्याय से ।'[३]

गरीब किसान बुद्धू को स्वराज्य की आवश्यकता सबसे अधिक है । इसी लिए वह मन्नू से पूछता है -- 'सुराज क्या है रे ?' बुद्धू ने मन्नू से पूछा ।
'किसानों का राज ।' गंभीर होकर मन्नू ने कहा ।'[४]

१- फकीराम प्रेम, मेरा देश, पृ० ३९.

२- प्रेमचंद, गबन, पृ० १७२.

३- प्रेमचंद, गोदान, पृ० ११०.

४- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अलका, पृ० ५८.

[illegible] के निराश मन में विस्मात कौतूहल उठने लगता है । उसकी आँखों के सामने एक ओर कोड़ा लिये जमींदार का चित्र नाचने लगता है तो दूसरी ओर 'स्वराज' से मिलने वाली सुविधा की प्रसन्नता । क्योंकि 'अबके उसके खेत की तरफ डेढ़ हाथ से ज्यादा नहीं बढ़ी, पर भी काट-छाँट नहीं हुई । इसलिए उसे सुराज की सबसे ज्यादा खोज है कि दो-चार रोज में मिल जाय तो जमींदार के कोड़ों से पीठ का निकट (का) संबंध जाता रहे ।'[1]

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक कृषक-सभा में भाषण देते हुए कहा था कि 'वास्तविक स्वराज्य पंचायती-पद्धति में निहित है । पंचायती शासन के द्वारा ही उनकी समस्या का समाधान संभव है ।'[2] पंडित नेहरू के उसी भाव का अंकन 'राहुल' ने किया है । 'स्वराज का मतलब है, अपना राज, पंचायती राज । उसमें मेहनत करने वालों को भूखा नहीं मरना पड़ेगा ।'[3]

हिन्दू-मुस्लिम समस्या के कारण आसन्न स्वाधीनता देश के द्वार पर से बार-बार लौट जाती थी । 'स्वराज्य' मिलने के चिह्न धूमिल पड़ते जाते थे । गीता और भावरिया के वार्तालाप द्वारा यशपाल ने स्वराज्य के न मिलने के कारण पर प्रकाश डाला है । गीता कहती है —'तो फिर एकता कैसे होगी ? स्वराज्य कैसे मिलेगा ?' 'एकता हो कैसे सकती है ?' भावरिया ने आपत्ति की । 'हिन्दू पूरब की ओर मुख कर भजन करता है, मुसलमान पश्चिम की ओर मुँह करके नमाज पढ़ता है । हिन्दू सीधे तवे पर रोटी सेंकता है, मुसलमान उल्टे तवे पर ।'[4]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अलका, पृ० ६१-६२.

२- "Real Swaraj consisted in such system of Panchayat. x x x So this problem can be solved only when you establish a "Panchayati" rule in your country."

- Procs: Govt. of India, Home Deptt. Poll. Cofi. F.No. 4/7/19

३- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २३०-३१.

४- यशपाल, पार्टी कामरेड, पृ० ३६.

विशालसिंह के शब्दों में स्वराज्य का संबंध भौतिक जगत से न होकर आध्यात्मिक जगत से है। क्योंकि आध्यात्मिक स्वराज्य मिल जाने पर भौतिक जगत का स्वराज्य स्वत: ही उपलब्ध हो जाता है। उनका कथन है — "स्वराज्य-अपने में राज्य, अपने मन का आधिपत्य। इंद्रियां हमारी प्रजा हैं, किसी एक कर्म में उन्हें नियोजित कर देने से उन पर राज किया जा सकता है। यदि हम यह भीतरी स्वराज्य प्राप्त करलें तो बाहरी स्वराज्य स्वयं हमारे पास आकर उपस्थित हो जायेगा।"[1]

स्वराज्य के स्वरूप पर शंकर पंडित का कथन है — "स्वराज्य का क्या रूप होगा?" "प्रजातंत्र राज्य पद्धति प्रचलित होगी। परन्तु यह बात तो पीछे विचार करने की है। हमारी संस्था तो अभी विदेशी राज्य को हटाने का यत्न कर रही है।"[2]

सत्याग्रहियों के विशाल जुलूस को देखकर रामनाथ स्वयं से पूछते हैं — "आखिर ये सब के सब चाहते क्या हैं? स्वराज्य! यह स्वराज्य है क्या चीज? जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा जनता का शासन। और जनता? यह अनपढ़, मूर्ख और कंगाल जनता? किसी के भी बहकाने में यह जनता आ सकती है।"[3]

गांव-गांव में यही चर्चा है कि 'सुराज' कट कर मिल रहा है। अर्थात् देश का विभाजन कर स्वराज्य दिया जा रहा है। बावनदास स्वराज्य का अर्थ सबको समझाते हुए कहता है — "सुराज माने अपना राज, भारतवासी का राज। अब अंग्रेज लोग यहां राज नहीं कर सकते। - - - - ए अंग्रेजो! 'भारत छोड़ो' क्यों कहा था गांधी जी ने? इसीलिए।"[4]

१- गोविन्द वल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० १००.

२- गुरुदत्त, स्वराज्य-दान, पृ० २७७.

३- भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० ५०.

४- फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आंचल, पृ० २३२.

क्रिप्स-आगमन

द्वितीय-विश्व-युद्ध के कारण ब्रिटिश-साम्राज्य लड़खड़ाने लगा था । जर्मनी-जापान का प्रतिरोध बढ़ता ही जा रहा था । भारत में व्यक्तिगत-सत्याग्रह चल रहा था । युद्ध में भारत की सभी राजनीतिक पार्टियां केवल साम्यवादी दल को छोड़ कर ब्रिटिश-सरकार का कड़ा विरोध कर रहे थीं । चर्चिल और अमेरी बड़े परेशान थे । क्योंकि आगामी महीनों में जो कुछ विस्फोट होने जा रहा था उसकी गुप्त रिपोर्ट उन्हें मिल चुकी थी । फलत: अमेरी ने भारतीयों का सहयोग पाने की इच्छा से क्रिप्स महोदय को कुछ प्रस्तावों के साथ भारत भेजा । परन्तु क्रिप्स के फार्मूले में 'फूट डालो और राज्य करो' के अतिरिक्त कुछ न था । जो योजना लेकर वह भारत आये थे उसका पूर्ण रूप से विरोध हुआ । क्योंकि "क्रिप्स प्रस्ताव के अनुसार किसी भी प्रान्त को भारतीय संघ से अलग होने का पूरा अधिकार दे दिया गया था । प्रकारान्तर से जो मुस्लिम लीग की मांग का ही समर्थन था ।"[१]

'क्रिप्स-आगमन' की घटना का उल्लेख हिन्दी उपन्यासों में अंशत: ही मिलता है जो वर्णनात्मक रूप में है । इतिहासकार और उपन्यासकार के कथन में भेद निकलना कहीं-कहीं तो बड़ा ही कठिन हो जाता है । दोनों में समानता है । परन्तु कुछ ही ऐसे उपन्यास हैं जिनमें पात्रों के द्वारा उक्त घटना का अंकन किया गया है । गोविन्ददास लिखते हैं — "मार्च सन ४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारतीय राजनीतिक गुत्थी सुलझाने के लिए भारत भेजा । - - - - क्रिप्स ने आते ही बड़े-बड़े आशावादी वक्तव्य दिए - - - - क्रिप्स मिशन असफल हुआ ।"[२]

क्रिप्स मिशन की अखबारी रिपोर्ट 'ज्वालामुखी' में भी द्रष्टव्य है — "नौ अगस्त सन बयालीस के विस्फोट के पहले अंग्रेजों ने एक बार और की कोशिश की कि भारत के साथ

१- डा० राजेन्द्रप्रसाद, खंडित भारत (अगस्त : १९४७), पृ० २४३.

२- गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० ३८८.

समझौता हो जाय। समझौता भारत के नेतागण भी चाहते थे। इसलिए क्रिप्स मिशन आया। खूब भेंट मुलाकातें हुईं। लम्बी-लम्बी बहसें हुईं।"[1]

'क्रिप्स-मिशन' के भारत आगमन का उद्देश्य सोहनलाल और मैना की बातचीत में भी स्पष्ट किया गया है। सोहन जब क्रिप्स मिशन के आगमन के बारे में पूछता है तो मैना ने जैसे अन्य प्रश्नों का उत्तर दुक्खराम को दिया था वैसे ही वह सोहनलाल से भी कहता है -- "किरिप ने आते ही पहिले तो ऐसी बात कही, कि हिन्दुस्तान यह लड़ाई में पूरी और से मदद करे और लोग्हवों आना राज हम हिन्दुस्तानियों के हाथ में देने के लिए तैयार हैं। - - - - यो चार आदमियों के सामने नहीं बल्कि रेडियो बाजा में बोल दिया। - - - - पीछे अपनी पूरी कोशिश करते कि दुनिया समझे, हम बिल्कुल दूध के धुले हैं और अगर काम बिगड़ा तो हिन्दुस्तानियों की वजह से।"[2]

श्रीमती गुंथर (धर्मपत्नि- प्रसिद्ध लेखक गुंथर) ने क्रिप्स-मिशन की असफलता पर अपनी प्रतिक्रिया में कहा था कि "यह मिशन इसलिए असफल हुआ क्योंकि ब्रिटिश सरकार दुमुंही नीति से काम ले रही थी।"[3] इसी कारण "न केवल कांग्रेस अपितु मुस्लिम लीग के साथ-साथ सभी अन्य वर्गों ने भी क्रिप्स प्रस्तावों को ठुकरा दिया।"[4] उपन्यासों में प्रस्ताव को ठुकराये जाने तथा उसकी असफलता का अंकन मिलता है।

'बयालीस' के एक पात्र कुंवर का कथन है -- "क्रिप्स कोई समझौता करने में सफल नहीं हुए हैं, बल्कि यहां की समस्यायें और उलझ गई हैं। मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों उनसे असंतुष्ट हैं।"[5] यही तथ्य 'धर्मयुग' में भी अंकित किया गया है। "सर स्टेफोर्ड

१- अनन्तगोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृ० ५०.

२- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० १६६-७०.

३- रामानंद चटर्जी (सम्पा०) दि माडर्न रिव्यू (कलकत्ता : १९४४), खंड ७५, सं० १-६, पृ० २४६.

४- डा० राममनोहर लोहिया, दि मिस्ट्री आफ सर स्टेफोर्ड क्रिप्स (बम्बई : १९४२), पृ० ३ (भूमिका)

५- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २६५.

क्रिप्स की भानमती का पिटारा लाए थे उसे ठुकरा दिया गया था। यद्यपि सरकार की तिकड़मों का अन्त न था।[1] क्योंकि क्रिप्स प्रस्ताव में शायद कुछ तत्व नहीं था। कांग्रेस ने उन्हें मंजूर नहीं किया।[2] महात्मा गांधी पर क्रिप्स की चालबाजी का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। वे क्रिप्स से मिले तो बातों पर उनके दिल को बड़ा धक्का लगा।[3] कुछ सार उन प्रस्तावों में न देख कर कांग्रेस ने उन्हें अस्वीकृत कर दिया था।[4] क्रिप्स की असफलता से भारत में रोष व्याप्त हो गया। उसके आगामी परिणामों का संकेत करते हुए यशपाल कहते हैं --"कांग्रेस के नेताओं और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रतिनिधि सर क्रिप्स में कोई समझौता न हो सका। कांग्रेस के क्षेत्र में फिर से आन्दोलन आरंभ होने की सनसनी फैलने लगी। वर्धा में कांग्रेस की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति नये आन्दोलन के कार्यक्रम पर विचार कर रही थी।"[5]

अगस्त-आन्दोलन

क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद भारतीय जनता की आशाओं पर पानी फिर गया। क्रिप्स महोदय जिस चालाकी से काम ले रहे थे उससे भारतीय नेता बेखबर न थे। कांग्रेस का प्रान्तीय मंत्रिमंडलों में बहुमत था। बिना कांग्रेस और अन्य वर्गों की सलाह लिए भारत को युद्ध में सम्मिलित कर लिया गया था।[6] जो भारत का महान अपमान

१- आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र, पृ० ११३.

२- मन्मथनाथ गुप्त, विप्लव, पृ० ७४.

३- प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार गृहविभाग राजनीतिक गोपनीय पत्रावली संख्या ३३।२०।१ (आई०) एन्ड के० डब्लू०.

४- डा० राजेन्द्रप्रसाद, खंडित भारत, पृ० २४४.

५- यशपाल, देशद्रोही, पृ० २१२.

६- पट्टाभि सीता रामय्या, कांग्रेस का इतिहास, भाग २, पृ० १२ (भूमिका).

था । बापू अपनी दिव्य-दृष्टि विश्व के राजनीतिक मंच पर लगाये हुए थे । उन्होंने इस अपमान का बदला 'करो या मरो' तथा 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारे से लेने की तैयारी आरंभ कर दी । अगस्त १९४२ ई० में बापू ने अंग्रेजों के नाम एक अपील जारी की थी जिसमें उन्होंने भारतीय जनता से कहा था -- 'वह उन खतरों व मुसीबतों का साहस और सहिष्णुता के साथ सामना करे जो कि उनको उठानी पड़ेंगी - - - - इस आन्दोलन (भारत छोड़ो) का आधार अहिंसा है । एक ऐसा भी समय आ सकता है जबकि हिदायतों का जारी करना - - - - संभव न हो । - - - - प्रत्येक भारतीय को, जो स्वतंत्रता चाहता है और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है स्वयं अपना पथ-प्रदर्शक होना चाहिए और आगे बढ़ते रहना चाहिए ।'[1]

बम्बई प्रस्तावों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सभी बड़े-बड़े नेताओं को अंग्रेजी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया । 'बम्बई-प्रस्ताव' को दृष्टि में रखकर जनता स्वयं ही नेतृत्व करने लगी । देश एक महान क्रान्ति की लपट में झुलसने लगा । जनता का यह विश्वास दृढ़ हो चला कि स्वाधीनता उपहार की वस्तु नहीं, प्राप्त करने की वस्तु है । इस अगस्त क्रान्ति का स्वरूप सन् १८५७ की क्रान्ति से कम भयंकर न था । इसका प्रभाव हिन्दी के उपन्यासों -- 'नई इमारत', 'मशाल', 'ज्वालामुखी', 'चित्र' आदि में प्रमुख रूप से परिलक्षित हुआ है ।

'अंचल' ने 'नई इमारत' में अगस्त क्रान्ति के विभिन्न पहलुओं की विवेचना की है । भारती के माध्यम से गांधी जी के अगस्त प्रस्ताव की भावना को व्यक्त किया गया है । भारती कहती है -- 'हम मिट भी गये तो क्या होगा ? लोग आते हैं - - - - चले जाते हैं, पैदा होते हैं - - - - जीते हैं - - - - मरते हैं पर आजादी की लड़ाई तब तक जारी रहती है जब तक मुल्क से जुल्मी सरकार खत्म नहीं हो जाती ।'[2] गांधी जी के 'आगे बढ़ते

१- महात्मा गांधी, अंग्रेजों से मेरी अपील (नई दिल्ली : १९४२), पृ० ८४.

२- 'अंचल', नई इमारत, पृ० २५९.

लहरों की भावना की ध्वनि आरती के शब्दों में समाई है।

महात्मा गांधी जी ने अगस्त-प्रस्ताव का मसविदा तैयार किया था जिस पर दूसरे दिन कांग्रेस कार्य समिति में विचार हुआ। परन्तु उन प्रस्तावों को अन्तिम रूप से स्वीकृत न किया जा सका क्योंकि नेताओं को बंदी बना लिया गया था। कहा जाता है उस प्रस्ताव में बारह सूत्री कार्यक्रम था। यह क्या था कोई अन्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से नहीं जानता था। अगस्त प्रस्ताव को लेकर इतिहासकारों में काफी मतभेद भी है। क्योंकि प्रस्तावों की प्रतिलिपियों को जब्त कर लिया गया था।[1] उस समय स्पष्ट कार्यक्रम के अभाव में भी जन आन्दोलन चला उसका ब्यौरा भी 'बवंडर' उपन्यास में किया गया है। जनता को अगस्त क्रान्ति के बारे में समझाते हुए भगवतीसिंह कहता है —"आन्दोलन आरंभ हो जाने से पहले नीति और 'स्ट्रेटेजी' की बहुत सी बातों को सर्वसाधारण के सामने प्रकट कर देना उचित नहीं। यही कारण है हमें भी साफ-साफ यह पता नहीं क्या-क्या करना है। लेकिन वातावरण हमें तैयार कर लेना है। लोगों को यह मालूम हो जाना चाहिए हम एक भारी कदम उठाने जा रहे हैं। उन्हें कांग्रेस के प्रत्येक आदेश को समय आने पर जांबाजी और वीरता से पूरा करना है।"[2]

गांधी जी और 'कांग्रेस वर्किंग कमेटी' की गिरफ्तारी का वर्णन[3] तथा अगस्त क्रान्ति के कार्यकलाप का चित्रण भी 'बवंडर' ने किया है। यथा —"सारे कांग्रेसी नेता और कार्यकर्ता पकड़-पकड़ कर कोतवाली के 'लाकअप' में पहुंचाये जा रहे थे। कांग्रेस दफ्तरों पर पुलिस का पहरा हो गया था। कागज पत्र सरकार पहले ही उठा ले गई थी अब पुलिस का ताला पड़ा था। लोग धड़ा-धड़ गिरफ्तार हो रहे थे।"[4]

१- द्रष्टव्य है — प्रोसीडिंग्स : भारत सरकार, गृहविभाग, पत्रावली संख्या ३।२४।१९४२ (राजनीतिक) आई०.

२- 'बवंडर', नई ज्योत्स्ना, पृ० ५७.

३- यथोपरि, पृ० ९९.

४- यथोपरि, पृ० १०८.

'आंध्र-सर्क्यूलर' (गश्ती चिट्ठी) को भेजने वाले डा० पट्टाभि सीता रामय्या थे। जिसमें उन्होंने कांग्रेस जनों से तोड़फोड़ करने की बात कही थी।[1] बाद में डा० रामय्या ने कुछ संशोधनों के साथ उस गश्ती-पत्र को भेजने की बात स्वीकार करली थी।[2] यह गश्ती-पत्र गुप्त रूप से भेजा गया था। इसका 'संघर्ष' ने वास्तविक रूप में अंकन किया है -- समाचार पत्रों में कांग्रेस के प्रस्ताव या परिस्थिति के विषय में नेताओं के वक्तव्य छप न सकते थे। गुप्त रूप से छपे हुए पर्चे जहाँ-तहाँ दिखाई देने लगे। इन पर्चों और लीफलेटों में जनता को विद्रोह और क्रान्ति के लिए उकसाया जाता। 'करो या मरो' का नारा हवा में उछलता रहता।[3]

उपर्युक्त चित्रण में 'आंध्र-सर्क्यूलर' का स्पष्ट छायाभास विद्यमान है। कांग्रेस-नेताओं की गिरफ्तारी का वर्णन 'बयालीस' में भी किया है। जब रायटे जो ब्रिटिश शासन का एक मशीनी पुर्जा है, कहता है कि -- 'सरकार का आदेश प्राप्त हुआ है कि बम्बई अधिवेशन में ही कांग्रेस गैर कानूनी संस्था घोषित करदी जायेगी और उसके सब नेता एक साथ गिरफ्तार हो जायेंगे। अतएव इस प्रान्त की कांग्रेस तुरन्त ही गैरकानूनी घोषित कर दी जाय तथा प्रान्तीय नेता गिरफ्तार कर लिए जांय।'[4]

बापू के 'करो या मरो' मंत्र का चित्रण नरेन्द्र के शब्दों में किया गया है। उसका कथन है -- 'साथियो, जिस दिन की प्रतीक्षा हम बरसों से कर रहे थे, आज वह

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० ३५९.

२- " ------the recent controversy over the authorship of the 'Andhra Circular' - which was admitted by Dr. Pattabhi Sita Ramayya. (He) stated that the circular had Gandhi's approval - a statement which was later modified."
- [illegible] Govt. of India, Home Deptt. Poll. F.No. 3/34/45 Poll (I).

३- 'संघर्ष,' नई इमारत, पृ० १०२.

४- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृ० २८८.

युग करवट प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीय महासभा ने भी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी है। राष्ट्र के कर्णधारों ने भी मुक्तकंठ से स्वतंत्रता प्राप्त करने अथवा उसके प्रयास में मर जाने का आदेश दिया है।"[१]

ठीक इसी से मिलती जुलती बात सरदार पटेल ने 'अगस्त प्रस्ताव' पर कही थी।[२] सम्पूर्ण भारत में क्रान्ति की लपटें फैलने लगीं। सरकारी इमारतों, रेलवे स्टेशनों, पुलिस थानों, डाकखानों, करों तथा ट्रामों आदि पर आक्रमण होने लगा।[३] उपन्यासकार ने जनता के इस ऐतिहासिक कार्य का अंकन इस प्रकार किया है -- "स्वतंत्रता का आन्दोलन बड़े वेग से चलने लगा, शासकों के दुर्ग - पुलिस स्टेशनों पर जनता का अधिकार होने लगा। यातायात के साधनों पर भी उन्होंने कब्जा कर लिया। कचहरी डाकखानों पर राष्ट्रीय झंडा फहरा दिया गया।"[४] सर भगवानसिंह जो ब्रिटिश शासन के प्रतीक हैं, चिल्लाकर सत्याग्रहियों से कहते हैं -- "रास्ता छोड़ो" सत्याग्रहियों का प्रत्युत्तर था "भारत छोड़ो।"[५]

अगस्त आन्दोलन में जिन नेताओं को गिरफ्तार किया गया उसका चित्रण 'ज्वालामुखी' में इस प्रकार किया गया है -- "आठ अगस्त की उस अंधेरी रात्रि को पुलिस की मोटरों की घर्र-घर्र और फौजी बूटों की टापों से बम्बई की गलियां प्रतिध्वनित हो उठीं रात बेरात महात्मा गांधी जी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद और वर्किंग कमेटी के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए और स्पेशल गाड़ी से पूना और

१- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, ज्वालामुखी, पृ० ३०२-३.

२- "Every one of us shall feel and behave as a citizen of free India. No source is to be left untapped, no weapon un-tried."
- Progs: Govt. of India Home Deptt. F.No.3/7/43 - Poll(I).

३- P.D. Kaushik, 'The Congress Idiology and Programme'. P. 348.

४- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, ज्वालामुखी, पृ० ३१८.

५- यथोपरि, पृ० ३१७.

अहमदनगर किले की ओर रवाना कर दिये गये ।"[१]

अगस्त क्रान्ति के दौरान जो हिंसात्मक कार्यवाहियाँ जनता ने की उनके अनेक चित्र 'ज्वालामुखी' में चित्रित हैं । हिंसात्मक कार्यों के समर्थन की समाजवादी भावना का अंकन भी उपन्यास में है ।[२] जैसा कि गांधी जी ने कहा था कि 'एक समय ऐसा भी आ सकता है जब कोई नेता बाहर न मिले तब अपने विवेक से काम लेना ।' भोला अपने विवेक से काम करना चाहता है । उसका कथन है —"गांधी जी ने तो हुक्म दिया - करेंगे या मरेंगे । लो आप मरते रहें । हम तो करेंगे और करके रहेंगे ।"[३] स्वनेतृत्व के प्रश्न को '[illegible]' में भी अंकित किया गया है । उसके एक पात्र का कथन है —"ऐसे समय में गांधीवाद और समाजवाद का तर्क करने की किसे फुरसत थी । जो उन दिनों काम कर रहे थे वे न तो गांधीवादी थे न लेनिनवादी, वे व्यवहारवादी थे । जैसी जरूरत पड़ती वैसा ही हम लोग करते थे । जरूरत के तकाजे के अनुसार संग्राम की धारा तय होती थी और जरूरत क्या है उसको जनता तय करती थी ।"[४]

यशपाल ने भी अगस्त क्रान्ति का चित्रण अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र किया है । कालिंद जहाँ जाता है वहीं अगस्त क्रान्ति की याद सुनाई देती है । यथा —"गाड़ी में सुनी हुई बातें ही यहाँ भी थीं - सब लीडरों का पकड़ लिया जाना और जापान की जीत । - - - - 'इन्कलाब जिन्दाबाद ।' 'अंग्रेज सरकार का नाश हो' । 'महात्मा गांधी की जय' । - - - - तिरंगा झंडा लिए एक टोली घंटाघर की ओर बढ़ी आ रही थी । पुलिस ने तुरन्त जुलूस को घेर लिया । - - - - और भीड़ पर लाठियाँ पड़ने लगीं - - - - नारे लगाते रहे - - - - लीडर छोड़े जायं, फ़ौजी सरकार का नाश हो ।"[५]

१- कन्हैयालाल ओझा, ज्वालामुखी, पृ० ५८.

२- यथोपरि, पृ० ६२.

३- यथोपरि, पृ० १३६.

४- मन्मथनाथ गुप्त, [illegible], पृ० ५३.

५- यशपाल, मनुष्य के रूप, पृ० १२०.

महात्मा गांधी ने अगस्त-प्रस्ताव (बम्बई) पर जो अपना व्याख्यान दिया था उसको कथावस्तु रूप में किंचित परिवर्तन के साथ 'धर्मपुत्र' में चित्रित किया गया है।[1] अगस्त आन्दोलन की तैयारी पर गांधी जी ने कहा था कि वह किसी भी कीमत पर देश को स्वतंत्रता चाहते हैं। बम्बई प्रस्ताव पर जब उनका ध्यान आकर्षित किया गया कि उससे देश में अराजकता फैल सकती है। तब बापू ने स्वीकार किया था कि 'बम्बई-प्रस्ताव' प्रशासनिक-अराजकता की ही देन है।[2]

गांधी जी के उक्त प्रस्ताव का भावांकन यथार्थ रूप में किया गया है —"मैं अब ठहर नहीं सकता। हमारे खतरे स्पष्ट हैं परन्तु हमें उनसे डर नहीं है। भले ही देश में अराजकता व्याप जाये। मैं कहूंगा राष्ट्र के पास में जो कुछ है वह उसकी बाजी लगाने से भी न चूके। यह मेरे जीवन का अन्तिम संघर्ष है।"[3] पंडित नेहरू ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था "मैं परतंत्रता से इतना ऊब चुका हूं कि मैं अब अराजकता के लिए भी तैयार हूं।"[4]

अगस्त क्रान्ति में जो हिंसक वातावरण बन गया था उसमें पुलिस वालों से जनता का सीधा सामना होता था। अरुण भी क्रान्ति की मशाल हाथ में लेकर थाने पर कब्जा कर लेता है। अपनी प्रसन्नता को वह अपनी माँ से आकर कहता है —"अब हम आजाद हैं, अम्मा। हमने गुलामी के एक गढ़ को तोड़ दिया, अम्मा। जुल्मों के अड्डों, थानों, चौकियों और कचहरियों की चोटों में बड़े बड़े फाड़कर हमेशा के लिए उनका नामो-

---

1- आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र, पृ० ११३-१४.

2- Gandhi admits that acceptance of Bombay-resolution (August,1942) means administrative anarchy, rejection certainly means civil comotion." Progs: Govt. Home Deptt. Confidential file No. 3/11/42, Poll. (I).

3- आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र, पृ० ११४.

4- नेशनल हेराल्ड (लखनऊ) जून प्रथम, १९४२, पृ० ४.

निशान मिटा दिया। - - - - अँग्रेजी हुकूमत के एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब हम आजाद हो गए। जिले में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गई।"[1]

देश में जो अराजकता का वातावरण छा गया था। उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर डाला था। उसका उत्तर उपन्यासकार ने वनित के माध्यम से दिया है। वह कहता है --"तुम यकीन करो वनिता कि देश में जो कुछ उथल-पुथल हो रही है, उसका जिम्मा किसी भी पार्टी पर नहीं है। हां अगर सरकार कांग्रेस के नेताओं से मिलकर फैसला कर लेती तो कितना अच्छा होता।"[2]

भारत आन्दोलन पर जिन अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश चर्चा हुई है उनमें प्रमुख हैं --"[illegible] दान", "बेकारी", "नया सीधा", "बलिदान", "बीज", "हरिजन", "इन्दुमती" आदि।

बंगाल का अकाल

ब्रिटिश भारत में अकाल पड़ने की एक लम्बी परम्परा इतिहास में मिलती है। उस परम्परा की पुनरावृत्ति तो समय-समय पर हुई परन्तु जो भयानक और क्रूरता सन् १९४२-४३ के अकाल में देखने को मिली वह ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक कलंक है। "अकाल पड़ा भीषण, दहलाने वाला, ऐसा घोर कि बयान के बाहर - - - - आदमी औरतें नन्हें बच्चे हजारों की तादाद में, रोज खाना न मिलने के कारण मरने लगे। कलकत्ते के महलों के सामने लोग मर कर गिर पड़ते। उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गांवों की मिट्टी की झोंपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी।"[3]

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ६९.

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर, पृ० १४९.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० १८.

निशान मिटा दिया। ---- अंग्रेजी हुकूमत के एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब हम आजाद हैं अम्मा। जिले में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गई।"[1]

देश में जो अराजकता का वातावरण छा गया था। उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर डाला था। उसका उत्तर उपन्यासकार ने बनिता के माध्यम से दिया है। वह कहता है -- "तुम यकीन करो बनिता कि देश में जो कुछ उथल-पुथल हो रही है, इसका जिम्मा किसी भी पार्टी पर नहीं है। हां अगर सरकार कांग्रेस के नेताओं से मिलकर फैसला कर लेती तो कितना अच्छा होता।"[2]

अगस्त आन्दोलन पर लिखे अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश चर्चा हुई है उनमें प्रमुख हैं -- "अराजक प्राण", "देशद्रोही", "मां जीवा", "बलिदान", "बीजू" "हरिजन", "इन्दुमती" आदि।

बंगाल का अकाल

ब्रिटिश भारत में अकाल पड़ने की एक लम्बी परम्परा इतिहास में मिलती है। उस परम्परा की पुनरावृत्ति तो समय-समय पर हुई परन्तु जो भयानक और क्रूरता सन् १९४२-४३ के अकाल में देखने को मिली वह ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक कलंक है। "अकाल पड़ा भीषण, दहलाने वाला, ऐसा घोर कि बयान के बाहर ---- आदमी औरतें नन्हें बच्चे हजारों की तादाद में, रोज खाना न मिलने के कारण मरने लगे। कलकत्ते के महलों के सामने लोग मर कर गिर पड़े। उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गांवों की मिट्टी की झोंपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी।"[3]

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ६६.

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर, पृ० १४६.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० १८.

निज़ाम मिटा दिया। ---- अंग्रेजी हुकूमत के एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब [illegible] झण्डा। जिले में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गई।"[1]

देश में जो अराजकता का वातावरण छा गया था। उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर डाला था। उसका उत्तर उपन्यासकार ने अनिल के माध्यम से दिया है। वह कहता है -- "तुम यकीन करो वनिता कि देश में जो कुछ उथल-पुथल हो रही है, उसका जिम्मा किसी भी पार्टी पर नहीं है। हां अगर सरकार कांग्रेस के नेताओं से मिलकर फैसला कर लेती तो कितना अच्छा होता।"[2]

भारत आन्दोलन पर जिन अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश चर्चा हुई है उनमें प्रमुख हैं -- '[illegible]', 'बेकारी', '[illegible]', 'बलिदान', 'बीजू' 'हरियल', 'इन्दुमती' आदि।

बंगाल का अकाल

ब्रिटिश भारत में अकाल पड़ने की एक लम्बी परम्परा इतिहास में मिलती है। उस परम्परा की पुनरावृत्ति तो समय-समय पर हुई परन्तु जो भयानक और क्रूरता सन् १९४२-४३ के अकाल में देखने को मिली वह ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक कलंक है। "अकाल पड़ा भीषण, दहलाने वाला, ऐसा घोर कि बयान के बाहर ---- आदमी औरतें नन्हें बच्चे हजारों की तादाद में, रोज खाना न मिलने के कारण मरने लगे। कलकत्ते के महलों के सामने लोग मर कर गिर पड़ते। उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गांवों की मिट्टी की झोपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी।"[3]

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ६६.

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, [illegible] पर, पृ० १४६.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० १८.

निशान मिटा दिया। ----अंग्रेजी हुकूमत के एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब हम आज़ाद हैं अम्मा। जिले में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गई।"[1]

देश में जो अराजकता का वातावरण छा गया था। उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर डाला था। उसका उत्तर उपन्यासकार ने वनिता के माध्यम से दिया है। वह कहता है -- "तुम यकीन करो वनिता कि देश में जो कुछ उथल-पुथल हो रही है, उसका जिम्मा किसी भी पार्टी पर नहीं है। हाँ अगर सरकार कांग्रेस के नेताओं से मिलकर फैसला कर लेती तो कितना अच्छा होता।"[2]

अगस्त आन्दोलन पर जिन अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश चर्चा हुई है उनमें प्रमुख हैं -- 'अठावन साल', 'बेकारी', 'नया सीधा', 'बलिदान', 'बीज' 'हरिजन', 'इन्दुमती' आदि।

बंगाल का अकाल

ब्रिटिश भारत में अकाल पड़ने की एक लम्बी परम्परा इतिहास में मिलती है। उस परम्परा की पुनरावृत्ति तो समय-समय पर हुई परन्तु जो भयानक और क्रूरता सन् १९४२-४३ के अकाल में देखने को मिली वह ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक कलंक है। "अकाल पड़ा भीषण, दहलाने वाला, ऐसा जोर कि बयान के बाहर ----आदमी औरतें नन्हें बच्चे हज़ारों की तादाद में, रोज़ खाना न मिलने के कारण मरने लगे। कलकत्ते के महलों के सामने लोग मर कर गिर पड़ते। उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गांवों की मिट्टी की झोपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी।"[3]

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ६६.

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर, पृ० १४९.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० १८.

निशान मिटा दिया । - - - - कौमी हुकूमत के एक रेजीडेन्ट को कैद कर लिया । अब उस मकान में अम्मा । फिर में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गई ।"[1]

देश में जो अराजकता का वातावरण छा गया था । उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर डाला था । उसका उत्तर उपन्यासकार ने वनित के माध्यम से दिया है । वह कहता है -- "तुम यकीन करो वनिता कि देश में जो कुछ उथल-पुथल हो रही है, उसका जिम्मा किसी भी पार्टी पर नहीं है । हां अगर सरकार कांग्रेस के नेताओं से मिलकर फैसला कर लेती तो कितना अच्छा होता ।"[2]

अगस्त आन्दोलन पर जिन अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश चर्चा हुई है उनमें प्रमुख हैं -- "अराजक दान", "देशद्रोही", "मां गंगा", "बलिदान", "बीजू" "हरिजन", "इन्दुमती" आदि ।

बंगाल का अकाल

ब्रिटिश भारत में अकाल पड़ने की एक लम्बी परम्परा इतिहास में मिलती है । उस परम्परा की पुनरावृत्ति तो समय-समय पर हुई परन्तु जो भयानक और क्रूरता सन् १९४२-४३ के अकाल में देखने को मिली वह ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक कलंक है । "अकाल पड़ा भीषण, दहलाने वाला, ऐसा घोर कि बयान के बाहर - - - - आदमी औरतें नन्हें बच्चे हजारों की तादाद में, रोज खाना न मिलने के कारण मरने लगे । कलकत्ते के महलों के सामने लोग मर कर गिर पड़ते । उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गांवों की मिट्टी की झोपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी ।"[3]

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ६६.

२- प्रवेन्द्रनाथ गौड़, पैरोल पर, पृ० १४६.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० १८.

निशान मिटा दिया। ---- अंग्रेजी हुकूमत के एक एजेन्ट को कैद कर लिया। अब हम आज़ाद हैं अम्मा। जिले में अब हमारी अपनी हुकूमत कायम हो गई।"[1]

देश में जो अराजकता का वातावरण छा गया था। उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर डाला था। उसका उत्तर उपन्यासकार ने अनिल के माध्यम से दिया है। वह कहता है -- "तुम यकीन करो अमिता कि देश में जो कुछ उथल-पुथल हो रही है, उसका जिम्मा किसी भी पार्टी पर नहीं है। हां अगर सरकार कांग्रेस के नेताओं से मिलकर फैसला कर लेती तो कितना अच्छा होता।"[2]

अगस्त आन्दोलन पर जिन अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश चर्चा हुई है उनमें प्रमुख हैं -- "[illegible] दान", "बैकुंठी", "[illegible] जीवा", "बलिदान", "बीज" "हरितिमा", "इन्दुमती" आदि।

बंगाल का अकाल

ब्रिटिश भारत में अकाल पड़ने की एक लम्बी परम्परा इतिहास में मिलती है। उस परम्परा की पुनरावृत्ति तो समय-समय पर हुई परन्तु जो भयानक और क्रूरता सन् १९४२-४३ के अकाल में देखने को मिली वह ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक कलंक है। "अकाल पड़ा भीषण, दहलाने वाला, ऐसा घोर कि बयान के बाहर ---- आदमी औरतें नन्हें बच्चे हजारों की तादाद में, रोज खाना न मिलने के कारण मरने लगे। कलकत्ते के महलों के सामने दम तोड़ कर गिर पड़ते। उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गांवों की मिट्टी की झोपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी।"[3]

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ५६.

२- ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, पैरों पर, पृ० १४६.

३- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० १८.

प्रोफेसर के०पी० चट्टोपाध्याय तथा मणिलाल नानावती ने एक कमीशन के सामने अपने बयान में बताया था कि अकाल से मरने वालों की संख्या लगभग ३५ लाख थी। परन्तु सरकारी वकील ने केवल २२ लाख ही मृतकों की संख्या मानी थी।[१]

बंगाल के अकाल का कुछ ही उपन्यासों में चित्रण हुआ है। मुख्यतः 'विषाद मठ' और 'महाकाल' में उसका यथार्थ अंकन मिलता है। परन्तु 'भिक्षु' ने 'संक्रान्ति' में उस अकाल के कारण पर प्रकाश डाला है। "न सूखा पड़ा न पाला पड़ा। न कहीं बाढ़ आई न और कुछ। फिर भी बंगाल की हरी-भरी भूमि बंजर हो गई। धान के खेत आग पैदा करने लगे। अनाज के नाम पर पत्थर बरसने लगे और चंद दिनों में ही तीस लाख मासूम जिन्दगियां मौत में बदल गईं, बिना किसी जलजले और कहर के फना हो गईं।"[२]

बाबा बटेसरनाथ का कहना है — "उसी अकाल में मेरा पड़ोसी मर गया — अरे, वही ठेंगना और कुबड़ा भूधर था न? चल बसा बेचारा। यों उसकी आयु कम नहीं थी। लेकिन अकाल की आग उस बार उतनी न भड़की होती तो अभी कुछ वर्ष वह और जिन्दा रहता रे।"[३]

गांवों में, देहातों में जब कुछ न मिलता तब भीड़ की भीड़ शहरों की तरफ भागती। भैया उसका जिक्र करते हुए कह रहा है — "कलकत्ता में भी सबको कहां खाने को मिलता? लड़के और सयाने भी कूड़ों पर से बीन कर दाना खाते थे। सड़क पर फेंके टुकड़ों को भी कुत्तों के मुख से छीन लेते थे।"[४]

'विषाद मठ' के माध्यम से 'राघव' ने पूंजीवादी और नौकरशाही के शोषण का पर्दाफाश करने तथा समाजवादी चेतना को उभारने के लिए 'विषाद मठ' में बंगाल के अकाल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

१- मणिलाल नानावती प्राइवेट पेपर्स (बंगाल का अकाल) पृ० २३६१,
(भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, १९४४-४५) खंड, पंचम.

२- श्री कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्षु', संक्रान्ति, पृ० १८५,

३- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ४८,

४- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० ३.

बंगाल के अकाल का कारण पूंजीपति वर्ग ही था। अनाज गोदामों में बंद था और जनता भूखों मर रही थी। वरुण और एकबाल की बातचीत के द्वारा उसके कारण को स्पष्ट किया गया है।

'बंगाल में अकाल पड़ा है, एकबाल भैया?'

तभी वरुण चीख उठा, 'पूछती हो कौन ले गया? हिन्दुस्तान को गुलाम किसने बना रखा है, यह मैं पूछता हूं। किसने जहाज बनाये हैं? किसने उनमें बोरे लादे हैं? पूछो मीरजाफरों से, क्यों उन्होंने देश के साथ गद्दारी करके ये बोरे लादे हैं।'[1]

देश में अकाल पड़ा हुआ था और चावल गोदामों में बंद था।[2] भूख से तड़पती हुई जनता का यह हाल था कि 'बाहर किसी ने जूठन फेंकी। इमारत के बाहर एकदम अनेक भूखे टूट पड़े और गुत्थम-गुत्था करने लगे।'[3]

भूखे-प्यासे किसान उदर की आग शान्त करने के लिए अपनी जमीन रेहन रखने लगे। किसानों में से ३० प्रतिशत ने अपनी जमीन ही बेच दी थी।[4] उसका यथार्थ अंकन उपन्यास में अंकित किया गया है। जमीन भी रेहन लेने को कोई तैयार नहीं है। श्यामपद की मिन्नत और गिड़गिड़ाने का कोई असर मालिक पर नहीं होता।

'आज सारे किसान अपनी अपनी जमीन मुझे लाकर देना चाहते हैं। कहां तक खरीदूं?' 'मालिक' श्यामपद ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'रेहन। रेहन ही रखलें तो

१- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० ४६.

२- "When the hundreds were dying ——— the huge stocks of rice lay piled up in the godowns of the rice merchants." - Manilal Nanawati Private Papers (Famine in India - 1942), P. 1368. (Available in National Archive of India New Delhi.).

३- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० ५१.

४- मणिलाल नानावती, लाक० पिट०, पृ० १३६८.

रजामन्द । रेहन में नहीं रख सकता । व्योपार साफ होना चाहिए । इधर या उधर ।'[१]

ज़मीन जायदाद बेचने पर भी भूख का कोई अन्त नहीं । क्योंकि फिर भी 'घर घर लोग मर रहे हैं औरतें इज्जत बेच रही हैं । लाशों से राहें घिरी रहती हैं । सारे सांझ गीदड़ चिल्लाते हैं ।'[२] भूखा भिखारी कह रहा है -- 'मैं भूखा हूं बाबू, मेरे घर के सब मेरे सामने तड़प तड़प कर मरे हैं - - - - कौन है वह पिशाच जो हमें दाने दाने के लिए तरसा रहा है ।'[३]

अमृतलाल नागर ने बंगाल के अकाल का हृदय-विदारक चित्रण 'महाकाल' में चित्रित किया है । अकाल ने मानव को मानव न रखकर सूखी हड्डियों का मात्र एक नर-कंकाल बना दिया था । यथा -- 'सूखी टांगें बड़ा पेट, बरसी बरस के बूढ़ों की तरह झुर्रियां लटकी हुई गालों के गुलगुले नाक की हद तक जबड़ों के भीतर धंसे हुए, हंसने पर दांत उस रोशनी में तलवार की धार की तरह चमकते थे -- चार-पांच से लेकर दस बारह बरस तक के बच्चे, नौजवान, जवान, अधेड़ बूढ़े, खाज-गर्मी वगैरह चर्म रोगों से सड़े हुए शरीर वाले, छोटे, बड़े, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान -- मानव बीभत्स कंकालों का मेला लगा था ।'[४]

दाने-दाने चावल के लिए मानव और पशु में कोई अन्तर नहीं रह गया था । उसका एक चित्र द्रष्टव्य है -- 'फ़कीर की लाश के आस-पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिए लोग गिद्धों की तरह टूट पड़े थे । उन्हें इस बात का कोई ख्याल न था कि उनके पास ही एक आदमी की उनके ही एक साथी की लाश पड़ी हुई है ।'[५]

१- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० ५४.

२- यथोपरि, पृ० ६३.

३- यथोपरि, पृ० ८६.

४- अमृतलाल नागर, महाकाल (इलाहाबाद : १९४७), पृ० १६६.

५- यथोपरि, पृ० ६७.

अकाल के सताये मानव के द्वारा मानव का परिहास इससे अधिक और क्या हो सकता है कि भूखे, नंगे, रूखे बालों वाले, अंगूठा चूसते जूठी पत्तलों पर जानवरों की तरह झपट रहे थे या झपटने के लिए मजबूर कर दिये गये थे। मानवता मौत की ठंडी चादर लपेटे पड़ी हुई थी। 'पत्तलों पर पत्तलें बाहर आ-आकर पड़ती थीं। ऊपर आसमान पर चीलें मंडराती थीं। कौवे झुंड के झुंड आ-आकर मंदिर की मुंडेरों पर बैठते ---- कांव की घात में कांव-कांव करते थे। जमीन पर आदमियों और कुत्तों में बाजी लगी थी। चीलों की चोंच कभी कभी जूठी पत्तलों से चूक कर झुके हुए आदमियों की खोपड़ियों पर अपनी पूरी शक्ति के साथ पड़ती थी। कुत्तों के पंजे और जबड़े अपने हक के लिए जान लड़ा रहे थे। और भूखा मानव उन सबसे लड़कर तथा स्वार्थ के लिए अपने से भी लड़कर एक मुट्ठी जूठा अन्न पाने के लिए भी जान से भिड़ा हुआ था।'[१]

मान लिया उपन्यासकार ने कल्पना के द्वारा अपनी कूंची के रंग से चित्र को उभारने का प्रयास किया हो। परन्तु यह वास्तविकता है कि अकाल में लाखों लोग भूखों मर जांय वहां जानवरों की तरह पत्तलों पर झपटना असंभव नहीं है। स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू अकाल के प्रारंभिक महीनों के बारे में कहते हैं -- 'इस बीच दस लाख या बीस लाख आदमी मर चुके थे। ---- कोई नहीं जानता कि उन भयानक महीनों में भूख के मारे या रोग से कितने लोग मरे।'[२] वास्तव में बापू का विश्लेषण कितना यथार्थवादी है। उनका कहना है कि 'मेरे हृदय में कोई दुविधा नहीं है कि बंगाल का अकाल भी भारत के अन्य भागों के अकाल की तरह दैव-कृत न होकर मानवकृत ही था।'[३]

आजाद हिन्द फौज का चित्रण

भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष में आजाद हिन्द सेना की भूमिका का ऐतिहासिक महत्व है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारत की स्वाधीनता के लिए 'तुम मुझे खून दो

१- अमृतलाल नागर, महाकाल, पृ० १०६.
२- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० २०.
३- दि पायनियर (दैनिक), लखनऊ, जुलाई १४, १९४४, पृ० ३.

प्रोफेसर के०पी० चट्टोपाध्याय तथा मणिलाल नानावती ने एक कमीशन के सामने अपने बयान में बताया था कि अकाल से मरने वालों की संख्या लगभग ३५ लाख थी।[१] परन्तु सरकारी वकील ने केवल २२ लाख ही मृतकों की संख्या मानी थी।

बंगाल के अकाल का कुछ ही उपन्यासों में चित्रण हुआ है। मुख्यतः 'विषाद मठ' और 'महाकाल' में उसका यथार्थ अंकन मिलता है। परन्तु 'भिक्षु' ने 'भंवरजाल' में उस अकाल के कारण पर प्रकाश डाला है। "न सूखा पड़ा न पाला पड़ा। न कहीं बाढ़ आई न और कुछ। फिर भी बंगाल की हरी-भरी भूमि बंजर हो गई। धान के खेत आग पैदा करने लगे। अनाज के नाम पर पत्थर बरसने लगे और चंद दिनों में ही तीस लाख मासूम जिन्दगियां मौत में बदल गईं, बिना किसी जनाजे और कब्र के फना हो गईं।"[२]

बाबा बटेसरनाथ का कहना है — "उसी अकाल में मेरा पड़ोसी मर गया — अरे, वही भोंदा और कुबड़ा मूरख था न? सूख गया बेचारा। यों उसकी आयु कम नहीं थी। लेकिन अकाल की आग उस बार उतनी न बरसी होती तो अभी कुछ वर्ष वह और जिन्दा रहता रे।"[३]

गांवों में, देहातों में जब कुछ न मिलता तब भीड़ की भीड़ शहरों की तरफ भागती। भैया उसका जिक्र करते हुए कह रहा है — "कलकत्ता में भी सबको कहां खाने को मिलता? लड़के और सयाने भी कूड़ों पर से बीन कर दाना खाते थे। सड़क पर फेंके टुकड़े भी कुत्तों के मुख से छीन लेते थे।"[४]

'विषाद मठ' के माध्यम से 'राघव' ने पूंजीवादी और नौकरशाही के शोषण का पर्दाफाश करने तथा समाजवादी चेतना को उभारने के लिए 'विषाद मठ' में बंगाल के अकाल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

१- मणिलाल नानावती प्राइवेट पेपर्स (बंगाल का अकाल) पृ० १२६१, (भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, १९४३-४४) खंड, पंचम.
२- श्री कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्षु', भंवरजाल, पृ० १८५.
३- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ५६.
४- राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो, पृ० ३.

बंगाल के अकाल का कारण पूंजीपति वर्ग ही था । अनाज गोदामों में बंद था और जनता भूखों मर रही थी । वरुण और इकबाल की बातचीत के द्वारा उसके कारण को स्पष्ट किया गया है ।

'बंगाल में अकाल पड़ा है, इकबाल भैया ?'

जबकि वरुण चीख उठा, 'पूछती हो कौन ले गया ? हिन्दुस्तान को गुलाम किसने बना रखा है, यह मैं पूछता हूं । किसने जहाज बनाये हैं ? किसने उनमें बोरे लादे हैं ? पूछो मीरजाफरों से, क्यों उन्होंने देश के साथ गद्दारी करके ये बोरे लादे हैं ।'[1]

देश में अकाल पड़ा हुआ था और चावल गोदामों में बंद था ।[2] भूख से तड़पती हुई जनता का यह हाल था कि 'बाहर किसी ने जूठन फेंकी । इमारत के बाहर एकदम अनेक भूखे टूट पड़े और गुत्थम-गुत्था करने लगे ।'[3]

भूखे-प्यासे किसान उदर की आग शान्त करने के लिए अपनी जमीन रेहन रखने लगे । किसानों में से ३० प्रतिशत ने अपनी जमीन ही बेच दी थी ।[4] उसका यथार्थ अंकन उपन्यास में अंकित किया गया है । जमीन भी रेहन लेने को कोई तैयार नहीं है । श्यामपद की मिन्नत और गिड़गिड़ाने का कोई असर मालिक पर नहीं होता ।

'आज सारे किसान अपनी अपनी जमीन मुझे लाकर देना चाहते हैं । कहां तक खरीदूं ?' 'मालिक' श्यामपद ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'रेहन । रेहन की कहते हो

१- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० ४६.

२- "When the hundreds were dying ——— the huge stocks of rice lay piled up in the godowns of the rice merchants." — Manilal Nanavati Private Papers (Famine in India - 1943), P. 1368. (Available in National Archive of India New Delhi.).

३- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० ५१.

४- मणिलाल नानावती, उक्त कृति, पृ० १३६८.

ईमानदार। रैकेट में नहीं रह सकता। व्यौहार साफ होना चाहिए। इधर या उधर।"[1]

ईमान मान्यवाद बेचने पर भी भूख का कोई अन्त नहीं। क्योंकि फिर भी "घर घर लोग मर रहे हैं औरतें इज्जत बेच रही हैं। लाशों से राहें घिरी रहती हैं। सारे सांझ गीदड़ चिल्लाते हैं।"[2] भूखा भिखारी कह रहा है -- "मैं भूखा हूं बाबू, मेरे घर के सब मेरे सामने तड़प तड़प कर मरे हैं - - - - कौन है वह पिशाच जो हमें दाने दाने के लिए तरसा रहा है।"[3]

अमृतलाल नागर ने बंगाल के अकाल का हृदय-विदारक चित्रण 'महाकाल' में चित्रित किया है। अकाल ने मानव को मानव न रखकर सूखी हड्डियों का मात्र एक नर-कंकाल बना दिया था। यथा -- "सूखी टांगें बढ़ा पेट, बरसों बरस के बूढ़ों की तरह झुर्रियां लटकी हुई गालों के गुलगुले नाक की हद तक जबड़ों के भीतर धंसे हुए, हंसने पर दांत उस रोशनी में तलवार की धार की तरह चमकते थे -- चार-पांच से लेकर दस बारह बरस तक के बच्चे, नौजवान, जवान, अधेड़ बूढ़े, खाज-गर्मी वगैरह चर्म रोगों से सड़े हुए शरीर वाले, छोटे, बड़े, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू, मुसलमान -- मानव जीवित कंकालों का मेला लगा था।"[4]

दाने-दाने चावल के लिए मानव और पशु में कोई अन्तर नहीं रह गया था। उसका एक चित्र द्रष्टव्य है -- "मुनीर की लाश के आस-पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिए लोग गिद्धों की तरह टूट पड़े थे। उन्हें इस बात का कोई ख्याल न था कि उनके पास ही एक आदमी की उनके ही एक साथी की लाश पड़ी हुई है।"[5]

१- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० ५४.

२- यथोपरि, पृ० ६३.

३- यथोपरि, पृ० ८६.

४- अमृतलाल नागर, महाकाल (इलाहाबाद : १९४७), पृ० १६६.

५- यथोपरि, पृ० ६७.

अकाल के सताये मानव के द्वारा मानव का परिहास इससे अधिक और क्या हो सकता है कि भूखे, नंगे, धंसी आँखों वाले, अंगूठा चूसते जूठी पत्तलों पर जानवरों की तरह झपट रहे थे या झपटने के लिए मजबूर कर दिये गये थे। मानवता मौत की ठंडी चादर लपेटे पड़ी हुई थी। 'पत्तलों पर पत्तलें बाहर आ-आकर पड़ती थीं। ऊपर आसमान पर चीलें मंडराती थीं। कौवे झुंड के झुंड आ-आकर मंदिर की मुंडेरों पर बैठते ---- दांव की घात में कांव-कांव करते थे। जमीन पर आदमियों और कुत्तों में बाजी लगी थी। चीलों की चोंच कभी कभी जूठी पत्तलों से चूक कर झुके हुए आदमियों की खोपड़ियों पर अपनी पूरी शक्ति के साथ पड़ती थी। कुत्तों के पंजे और जबड़े अपने हक के लिए जान लड़ा रहे थे। और भूखा मानव इन सबसे लड़कर तथा स्वार्थ के लिए अपने से भी लड़कर एक मुट्ठी जूठा अन्न पाने के लिए भी जान से भिड़ा हुआ था।'[1]

मान लिया उपन्यासकार ने कल्पना के द्वारा अपनी कूँची के रंग से चित्र को उभारने का प्रयास किया हो। परन्तु यह वास्तविकता है जिस अकाल में लाखों लोग भूखों मर जायं वहां जानवरों की तरह पत्तलों पर झपटना असंभव नहीं है। स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू अकाल के प्रारंभिक महीनों के बारे में कहते हैं -- 'इस बीच दस लाख या बीस लाख आदमी मर चुके थे। ---- कोई नहीं जानता कि उन भयानक महीनों में भूख के मारे या रोग से कितने लोग मरे।'[2] वास्तव में बापू का विश्लेषण कितना यथार्थवादी है। उनका कहना है कि 'मेरे हृदय में कोई दुविधा नहीं है कि बंगाल का अकाल भी भारत के अन्य भागों के अकाल की तरह दैव-कृत न होकर मानवकृत ही था।'[3]

आजाद हिन्द फौज का चित्रण

भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष में आजाद हिन्द सेना की भूमिका का ऐतिहासिक महत्व है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारत की स्वाधीनता के लिए 'तुम मुझे खून दो

१- अमृतलाल नागर, महाकाल, पृ० १०६.
२- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० २०.
३- दि पायोनियर (दैनिक), लखनऊ, जुलाई १४, १९४४, पृ० ३.

में तुम्हें स्वाधीनता दूंगा' की हुंकार से न केवल भारतीय जनमानस में नवीन चेतना का प्रचार किया अपितु ब्रिटिश साम्राज्यवाद के गढ़ों को ढहाते हुए प्रथम बार राष्ट्रीय तिरंगा भारत की भूमि पर फहरा भी दिया।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस का वैचारिक मतभेद कांग्रेस और गांधी जी से हो गया था। 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना का कारण भारत को समाजवादी तरीकों से पराधीनता के पाश से मुक्त करना था उनकी लोकप्रियता से भयभीत होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नजरबंद कर दिया था। वह ब्रिटिश सरकार के गुप्तचरों की आंख में धूल झोंककर जेल से निकल भागे और रूस होते हुए जर्मनी पहुंच गये। इस इतिहास प्रसिद्ध रोमांचकारी घटना का विवरण 'बलिदान' में चित्रित हुआ है। नलिन और रागिनी बंगाल के दौरे पर गये हुए हैं। नलिन ज्यों ही अखबार के पन्ने उलटता है वह खुशी से उछल कर रागिनी से कहता है --"रागिनी शेखर रूस में है। रागिनी दौड़ी हुई आई और ज़ोर-ज़ोर से अखबार की सुर्खी पढ़ने लगी -- होनहार क्रान्तिकारी शेखर रूस में। सुर्खी के नीचे शेखर की तस्वीर थी, जिसके नीचे लिखा था - नेपाल जेल से गायब होकर शेखर रूस में प्रकट। फौजी दस्तों से भारत को मुक्त कराने की तैयारी में।"[1]

रघुवीरशरण मित्र ने 'शेखर' के रूप में नेताजी सुभाषचंद्र की कल्पना की है। क्योंकि पूरा विवरण नेताजी के जीवन की घटना से साम्य रखता है। भारत का प्रत्येक व्यक्ति उनके जीवन की घटना से परिचित है। स्वयं लेखक ने पात्र का परिचय नेताजी के रूप में स्पष्ट भी कर दिया है। जब शेखर से पूछा जाता है आप कौन हैं ? तब शेखर कहता है -- मैं हिन्दुस्तानी हूं सरदार। भारत राष्ट्र को स्वाधीन कराने के उद्देश्य से खाक छानता फिर रहा हूं - - - - और यदि मैं पहिचानने में गलती नहीं कर रहा हूं तो आप नेताजी - - - -।[2]

१- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० २२.

२- यथोपरि, पृ० ४४.

शेखर के सभी कार्यकलापों में 'नेताजी' के कार्यों की छाया स्पष्ट अंकित हुई है। जनता के बीच में रहना, सफलता के लिए प्रयत्न करना आदि आदि।[1] इम्फाल पर पहुँचे हुए नेताजी को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण वापस होना पड़ा और नेताजी भूमिगत हो गये। अनेकानेक कहानियां उनके जीवित रहने, मरने या छिपे होने के बारे में चल पड़ीं। उन्हीं का आधार लेकर 'बलिदान' के नेताजी रूपी शेखर का कथन है --

'सरदार - मेरी अन्तरात्मा मुझे प्रकट होने की स्वीकृति अभी नहीं देती। इम्फाल के मोर्चे की असफलता से मेरा हृदय बहुत दुखी हुआ है ---- लेकिन जब तक समय नहीं आता तब तक कुछ नहीं होता ---- इतने बलिदान हुए, पर गुलामी न गई। मैं उसी दिन प्रकट हो जाऊंगा जिस दिन गुलामी जायेगी।'[2]
उपन्यासकार ने युगीन किंवदंतियों के आधार पर यह काल्पनिक चित्र उकेरा है। किन्तु इम्फाल की असफलता ऐतिहासिक सत्य है।[3]

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने हथियार डाल दिए थे और आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर दिल्ली के लालकिले में मुकदमा चलाया गया था। उस मुकदमें का चित्रण अनेक उपन्यासों में हुआ है। 'बलिदान' में चित्रित चित्रण इस प्रकार है -- 'लालकिले के दरवाजे पर भारी भीड़ को चीरता हुआ नलिन आगे निकल कर खड़ा हो गया। आज 'आजाद हिन्द फौज' का मुकदमा है। बड़े बड़े वकीलों और नेताओं की कारें शान से दुर्ग में आ रही हैं। ---- मुकदमे की पैरवी करने के लिए नेहरू और भूलाभाई देसाई भी चोगा पहिन कर किले में घुसे। जयघोष से दुर्ग का दरवाजा गूंजने लगा। 'सेनानी सुभाष की जय' 'पंडित नेहरू की जय' 'आजाद हिन्द फौज के वीरों की जय' ---- मुकदमें की बहस शुरू हुई। भूला भाई देसाई ने जबरदस्त दलील रखी कि हर गुलाम को

१- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० ३६-४०.

२- यथोपरि, पृ० २०२.

३- द्रष्टव्य है प्रस्तुत शोध प्रबंध का द्वितीय अध्याय.

स्वतंत्रता के लिए लड़ने का अधिकार है ।"[१]

उपर्युक्त चित्रण में कल्पना तथा यथार्थ का मिश्रण हुआ है और कल्पना ने यथार्थ घटनाओं को उभरने का पूर्ण अवसर प्रदान किया है । यशपाल ने भी लालकिले के मुकदमें का अंकन अपनी एक रचना में किया है -- "देहली में आजाद हिन्द सेना के नेताओं का मुकदमा चल रहा था । सम्पूर्ण देश और आजाद हिन्द सेना के कैदी उत्सुकता से मुकदमें के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे । जनता की प्रबल मांग के सामने अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा ।"[२]

अन्ततः ब्रिटिश सरकार ने 'आजाद हिन्द सेना' के सभी अभियुक्तों को छोड़ दिया था । धनसिंह (मनुष्य के रूप) आजाद हिन्द सेना में भर्ती हो जाता है । नेताजी ने बर्लिन रेडियो से जो भाषण भारतवासियों के नाम प्रसारित किया था उसका अंकन करना यशपाल नहीं भूले हैं । यथा -- "एक रात बसुलाल और धनसिंह ने बहुत धीमे स्वर में बोलता आजाद हिन्द रेडियो सुना । रेडियो पर समाजवादी नेताओं को सलाह दी, जैसे भी हो अगस्त ४२ की क्रान्ति को जारी रखा जाये । जापान आ रहा है । वह अंग्रेजों के पांव उखाड़ देगा ।"[३] यह सत्य है कि नेताजी ने 'आजाद-हिन्द-रेडियो जर्मनी' से ३१ अगस्त १९४२ को देशवासियों के नाम एक सन्देश प्रसारित किया था ।[४] यशपाल ने 'आजाद हिन्द फौज के' वर्णन में इस बात को ध्यान में रखा है कि द्वितीय महासमर में

१- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० २४-२५.

२- यशपाल, मनुष्य के रूप, पृ० २९२.

३- यथोपरि, पृ० १२९.

४- "There is no cause to be depressed because the leaders are imprisoned. x x x Moreover, those who are now away from the field of action have given you that plan that has to be excuted by you now." S.A. Ayer, Selected Speeches Of Subhas Chandra Bose (Govt. of India Publication: 1965), P. 149.

'भारतीय कम्युनिस्ट दल' जापान-जर्मनी आदि का विरोध और ब्रिटिश सरकार का समर्थन कर रहा था। इस तथ्य के अनेक चित्रों की संगति भी उपन्यास में सहज खोजी जा सकती है।[१]

'आजाद हिन्द सैनिक' जब काक्सबाजार में पहुंचे उसका चित्रण भी फासीवाद के विरोध के रूप में ही उपन्यासकार ने किया है -- "पहाड़ी चटगांव में चारों ओर सेना दिखाई दे रही है। फौजी सामान, फौजी कठोरता और दृढ़ता या चंचलता। इस रम्य स्थान में मनुष्य निश्चिन्त रहा होगा, किन्तु वहां एक सनसनी और विक्षोभ है। एक ओर अराकान दूसरी ओर काक्सबाजार और स्वयं चटगांव एक भयद आशंका से आप्लुत है।"[२]

'विसर्जन' में 'आजाद हिन्द सेना' की अमरगाथा को उपन्यास के कथानक के रूप में ग्रहण किया गया है। कमांडर के रूप में नेताजी सुभाष बोस की कल्पना का स्पष्ट आभास दिखाई देता है। जिस प्रकार नेताजी देश के सैनिकों में आजादी के लिए बलिदान होने की भावना भरते थे उसी प्रकार 'विसर्जन' का कमांडर भी नेताजी का अनुसरण करता हुआ दिखाई देता है। वह सैनिकों को संबोधित करते हुए कहता है -- "मेरे बहादुर जवानो! तुम्हारी सेना का नाम है आजादी सेना। तुमको इस झंडे के नीचे एकत्रित करने वाला, तुम्हारा देशप्रेम है। तुमको जीवन उत्सर्ग करने की प्रेरणा देने वाला तुम्हारा कर्तव्य ज्ञान है ---- तुम इतिहास बनाने जा रहे हो।"[३]

आजाद हिन्द सेना बर्मा, थाईलैन्ड, मलाया को जीतते हुए भारत की तरफ बढ़ रही थी। जहां-जहां नेताजी ने सैनिकों के सामने भाषण दिये उनका संकेत 'विसर्जन' में उपलब्ध है। नेताजी का नारा था 'दिल्ली चलो।'[४] 'विसर्जन' का कमांडर अपने उद्देश्य

१- यशपाल, मनुष्य के रूप, पृ० २८७, २८९.

२- रांगेय राघव, विषाद मठ, पृ० १७.

३- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ० २७९.

४- ताराचन्द, हिस्ट्री आव दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, खंड चार, पृ० ४१८.

को स्पष्ट करते हुए पुनः कहता है -- "तुम्हारा नारा है दिल्ली चलो और तुम्हारा ध्येय है भारत को आजाद करो ।"[1] सैनिक गगनभेदी नाद में एक स्वर से कहते हैं -- "दिल्ली चलो, भारत को आजाद करो ।"[2] अन्डमान निकोबार को 'आजाद हिन्द सेना' ने जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था । उस ऐतिहासिक प्रसिद्ध घटना का अंकन भी प्रतापनारायण जी ने किया है । नेताजी के सहायकों में कैप्टन शाहनवाज, कैप्टन ढिल्लन तथा रासबिहारी, कैप्टन मोहनसिंह, राघवन तथा मेनन आदि थे ।[3] इन्हीं नेताओं के नेतृत्व में अंडमान पर चढ़ाई की गई थी । उसका चित्रण करते हुए उपन्यासकार कहता है -- "चार घंटे तक बराबर युद्ध होता रहा । अन्त में विजय जापानियों के हाथ रही । उनकी सेना ने अन्डमान की शहीद भूमि पर अपने चरण रखे । सबसे पहले उतरने वालों में लेफ्टिनेन्ट कर्नल बलवन्तसिंह और उनके तीनों साथी मानसिंह और हरनामसिंह थे । उन्हें आशा न थी कि इतनी शीघ्रता से युद्ध समाप्त हो जायेगा । उन्होंने उतरते ही भारत माता की जय-जयकार की, जिसको सभी सैनिकों ने दोहराया ।"[4]

कर्नल बलवन्तसिंह, मानसिंह और हरनामसिंह की कल्पना में ऐसा लगता है नेताजी के सैनिक अफसरों -- श्रीयुत मेनन, ढिल्लन, शाहनवाज, राघवन, मोहनसिंह आदि में से ही कोई न कोई व्यक्ति है ।

एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध और दूसरी ओर 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' चल रहा था । भैरवप्रसाद गुप्त ने 'मशाल' में दोनों ही घटनाओं के अंकन का संयोजन अपनी रचना में किया है । 'आजाद हिन्द सेना' का अधिकांशतः विवरणात्मक अंकन 'मशाल' में किया गया है । यथा -- "नेताजी ने खून मांगा और बदले में देश की आजादी दिलाने

१- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ० २८१-८२.

२- यथोपरि, पृ० २८१-८२.

३- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० ५१२.

४- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ० ३६३.

की प्रतिज्ञा की। फौजियों ने खून नहीं बल्कि उसके साथ शरीर, प्राण, आत्मा सब कुछ देश के लिए नेताजी के चरणों पर न्यौछावर करने की सौगंध खून की बूंदों से प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके की।"[१]

भारत के सभी वर्ग 'आजाद हिन्द फौज' के सैनिकों की रिहाई को लेकर आन्दोलन कर रहे थे। जनता में एक नवीन उत्साह था। 'कांग्रेस दल' आजाद हिन्द सैनिकों को छुड़ाने के लिए आन्दोलन कर रहा था।[२] "सैनिकों छुड़ाने के लिए 'कांग्रेस' ने पैरवी की तैयारी की। देश के नामी गरामी वकील, एडवोकेटों और बैरिस्टरों ने जुटकर सहयोग दिया। आजाद फौज के तीन प्रमुख अफसरों से मुकदमे का नाटक सरकार ने शुरू किया। ---- इधर मुकदमा चल रहा था उधर जनता का आन्दोलन चल रहा था। ---- यही जनता की आवाज ---- बच्चा बच्चा रहे पुकार, सहगल ढिल्लन, शाहनवाज।"[३]

अन्य उपन्यासों में यथा 'बुझते दीप' में भी प्रसंगवशात आजाद हिन्द सेना के प्रसंग को उठाया गया है।[४] इसी प्रकार 'बीज' में भी नेताजी के भारत से भागने का प्रसंग, सैनिकों पर मुकदमें की बात, जनता द्वारा आजाद हिन्द सेना के समर्थन में हड़ताल तथा सभाओं के आयोजन का विवरण मिलता है।[५] यह सब विवरण ऐतिहासिक भावभूमि पर चित्रित है। 'धर्मयुद्ध' में भी लालकिले के मुकदमें का वर्णन है। 'मुक्ति के बंधन', 'बलि का बकरा', 'गांधी चबूतरा', 'स्वतंत्र भारत', 'पथिक', 'स्वराज्य दान' आदि में 'आजाद हिन्द सेना' के विविध प्रसंग चित्रित किए गए हैं।

१- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ५८.

२- "Congressmen have been busy, however in holding meetings allover ——— in support of the Indian National Army." Progs: Govt. of India Home Deptt. Secret F. No. 21/3/45 Poll. (I).

३- भैरवप्रसाद गुप्त, मशाल, पृ० ५२.

४- दयाशंकर मिश्र, बुझते दीप, पृ० २४-२५.

५- अमृतराय, बीज, पृ० १५८.

नाविक-विद्रोह

'आजाद-हिन्द-सेना' के कार्यों से भारतीय जनता में उमंग की एक नई लहर आ गई थी। उस उमंग का प्रभाव भारतीय नौ सेना पर पड़ा। जिसके फलस्वरूप फोर्ट बैरक, कैसल बैरक, बम्बर, पीता के सभी नौ सैनिकों, कोलम्बा, मद्रास, मछलीमार तथा जमना नामक जहाज के सैनिकों ने हड़ताल कर दी।[1] भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति में नाविक-विद्रोह का योगदान विशेष महत्वपूर्ण रहा है।[2]

भारतीय-फौज की विशेष भूमिका के संदर्भ में हिन्दी उपन्यासों में केवल यशपाल ने प्रकाश डाला है। एक दो प्रसंग अन्य उपन्यासों में उपलब्ध हो जाते हैं, यथा -- दयाशंकर मिश्र के 'बुझते दीप' में।[3]

नाविक-विद्रोह का समर्थन करने के लिए गीता देशवासियों से हड़ताल करने का आह्वान करती हुई कहती है -- "ये हिन्दुस्तानी जहाजी सिपाही आपके ही भाई और बेटे हैं। - - - - भूख और अपमान से तंग कर उन्होंने न्याय की मांग की है। उनका अपमान देश का अपमान है। उनकी भूख देश की भूख है। आज ये गुलामी की जंजीरें तोड़कर आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए आपकी ओर मिलाप और सहायता का हाथ बढ़ा रहे हैं।"[4] जनता द्वारा नाविक विद्रोह का पूर्ण समर्थन, हड़ताल के अतिरिक्त जहाजी सिपाहियों के गीले कालर, सफेद वर्दियां, फौजी ढंग का मार्च, फौजी लारियों पर कांग्रेसी झण्डे आदि के चित्र भी उपन्यास में अंकित हैं।[5]

नाविक विद्रोह का आंशिक विवरण 'झूठा सच' में भी दिया गया है।[6]

१- मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ० ५३१.

२- जयप्रकाश नारायण, टू वर्ड्स स्ट्रगल, पृ० २१४-१५.

३- दयाशंकर मिश्र, बुझते दीप, पृ० १५१.

४- यशपाल, पार्टी कामरेड, पृ० ८१-८२.

५- यथोपरि, पृ० ७९.

६- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश) (लखनऊ : १९५८), पृ० ५६.

शुद्धि आन्दोलन

अंग्रेजों की कूटनीति का प्रभाव भारतीय-स्वातंत्र्य-संग्राम में साम्प्रदायिकता के रूप में परिलक्षित हुआ। साम्प्रदायिकता के कारण ही अंग्रेजी शासन भारत की धरती में अंगद का पांव बनने का प्रयत्न करता रहा। क्योंकि हिन्दू-मुसलमान एक ही धरती के दो अंकुर होते हुए भी आपस में धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर लड़ते रहे। चतुर अंग्रेज हमारी धार्मिकता का लाभ बंदर बांट के रूप बटोरता रहा।

पं० मदनमोहन मालवीय ने 'अखिल भारतीय हिन्दू महासभा' का संगठन किया।[1] जिसका उद्देश्य गाय की रक्षा करना था।[2] परन्तु धीरे-धीरे यह संगठन धार्मिकता के रंग में रंगने लगा। इतिहासकारों का मत है कि 'खिलाफत संगठन' के जन्म का कारण हिन्दू सभा का जन्म था। क्योंकि 'हिन्दू-महासभा' कट्टरता की पोषक थी।[3] 'शुद्धि आन्दोलन' का चित्रण हिन्दी के कुछ उपन्यासों में मिलता है जिनमें 'भाई', 'मुंह-बिसारे किम', 'निष्क्रान्त', 'कुल्लीभाट', 'बयालीस' आदि प्रमुख हैं।

ऋषभचरण जैन ने शुद्धि आन्दोलन का वर्णन पात्रों के वार्तालाप में चित्रित किया है, बुद्धू कहता है -- 'यहां भी आरिया समाज खुलने वाली है?
और मुसलमानों को हिन्दू बनायेंगे?'
बुद्धू -- 'अजी, ऐसे तो कौन भाई का लाल आता है इधर से, और जारी करता है बछड़ा।
मारे लाठियों के एक एक का भेजा खोल दूं।'[4]

१- एस०एन०मित्रा (सम्पा०), दि इंडियन एनुअल रजिस्टर (कलकत्ता : १९२३) खंड २ पृ० ६९

२- यथोपरि, पृ० १३४-३५.

३- "It is an agressive organisation which aims at closing up the ranks of Hinduism in order to present a united front against its rivals - particularly Islam." -
Clifford Manshardt, The Hindu Muslim Problem In India (London: 1936), P. 50.

४- ऋषभचरण जैन, भाई, पृ० ४४.

'ओफ्फ़ो । बेचारे मुसलमानों पर ये हिन्दू लोग कैसा जुल्म करते हैं ।'

'अजी, यहीं तक थोड़ा ही है । यह आरिया समाज है न - - - - ?'

'हां ।'

'इस आरिया समाज के गुर्गे गली गली में घूमते हैं । जहां किसी मजलूम मुसलमान को देखा, फुसलाकर अपने साथ ले आये । नौकरी दिलाने का लालच दिया - - - - और हिन्दू बना लिया ।'[1]

जहां एक ओर मुसलमानों को शुद्ध किया जा रहा था उनकी देखा देखी 'तबलीग' भी आरंभ हो गया ।

'इस्लाम का नाम निशान इस हिन्दू मुल्क में दांतों के बीच जबान की तरह मौजूद है ।'

'तो आप यहां क्या तबलीग का काम शुरू करना चाहते हैं ।'

'हां । उधर देहातों में तबलीग का काम खूब जोर के साथ शुरू होने की उम्मीद है । - - - - उस तरफ हजारों चमार और भंगी पाक इस्लाम के झण्डे के नीचे आने को तैयार हैं ।'[2]

'निशिकान्त' में शुद्धि आन्दोलन का चित्रण किया गया है । निशिकान्त अपने पास बैठे व्यक्ति से पूछता है यह कौन है ? उसे उत्तर दिया जाता है कि - 'मुसलमान को आर्य बना रहे हैं ।'
कान्त अचरज से मुस्कराया — 'मुसलमान आर्य बन रहा है, उसने एक बार फिर उस युवक को देखा, पंडित जी को देखा, स्वामी दयानंद के चित्र को देखा, फिर सुना पंडित जी उस युवक से कह रहे हैं, तुम अब आर्य हो, नित्यप्रति गायत्री का जाप करो - - - - शुद्ध कार्य करो, अब तुम्हारा नाम धर्मपाल है ।'[3]

१- ऋषभचरण जैन, भाई, पृ० ६२.

२- यथोपरि, पृ० ८८.

३- विष्णु प्रभाकर, निशिकान्त, पृ० ६०.

रांगेय राघव ने भी शुद्धि आन्दोलन पर एक पात्र से कहलाया है — "हिन्दुओं ने इसके बदले में जहां आर्यसमाज के अन्तर्गत शुद्धि आन्दोलन भी चलाया । मैं कहता हूं । ठीक है । सब ठीक है । पर क्या इससे हिन्दुस्तान में कुछ फर्क आया ?"[1]

'भूले-बिसरे चित्र' में शुद्धि आन्दोलन पर चर्चा की गई है । "यह पाजी यूरोपियन आपको अपने क्लब में किसी भी हालत में न घुसने देंगे, जोनाथन साहेब । अगर आप मेरी बात मानिये तो शुद्ध हो जाइये । हम लोगों ने पिटाई के डर से जो हिन्दू मुसलमान बन गये थे और अकाल की वजह से जो हिन्दू क्रिस्तान बन गये थे, उन सब लोगों को शुद्ध करने का बीड़ा उठा लिया है । तो डेविड साहेब, इस मौके से फायदा उठाइये ।"[2]

हिन्दू-मुस्लिम धर्म के इन्हीं झगड़ों ने देश का विभाजन कराया था । देश विभाजन की समस्या को लेकर भारत की सड़कों, गलियों पर जो रक्त बहाया गया उससे समस्त मानव सिहर उठा ।

भारत का विभाजन एवं साम्प्रदायिकता

हिन्दुओं की प्रबल कट्टरता तथा मुसलमानों के उससे भी अधिक कठोर हो जाने से भारत को बड़ी हानि उठानी पड़ी । एक ओर 'मुस्लिमलीग' तथा दूसरी ओर 'हिन्दू महासभा' 'तू डाल डाल मैं पात पात' वाली कहावत चरितार्थ कर रही थी । अंग्रेज दोनों दलों के हाथ में डंडे थमा रहे थे । महात्मा गांधी की एकता का प्रयत्न असफल होता जा रहा था ।

मुस्लिमलीग ने विधिवत २३ मार्च १९४० ई० को पाकिस्तान की मांग प्रस्तुत करदी । दूसरी ओर हिन्दू महासभा ने वी०डी० सावरकर के सभापतित्व में अहमदाबाद

१- रांगेय राघव, सीधा-सादा रास्ता, पृ० २२९.
२- भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, पृ० २४०.

में १९३७ ई० में ही द्विराष्ट्र के सिद्धान्त की बात मानती थी ।[1] यही कारण है राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन के इतिहास में सन् १९४० के बाद राजनीतिक-साम्प्रदायिकता का रंग दिन-ब-दिन गहरा होता गया । साम्प्रदायिकता के भड़कीले-चमकीले चित्रों को हिन्दी उपन्यासकारों ने भी यथार्थ रूप में अपनी रचनाओं में चित्रित किया है ।

हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़ों का विश्लेषण करते हुए गजनवी का कहना है -- 'गलत तवारीखें पढ़ पढ़ कर दोनों फिरके एक दूसरे के दुश्मन हो गये हैं । - - - - इस बीसवीं सदी में हिन्दुओं जैसी पढ़ी लिखी जमाअत मजहबी गरोहबन्दी की पनाह नहीं ले सकती ।'[2] सकीना की मां का कहना है 'नाम के मुसलमान और नाम के हिन्दू रह गये हैं । न कहीं सच्चा मुसलमान नजर आता है, न सच्चा हिन्दू ।'[3]

आपसी लड़ाई से 'निशिकान्त' के रवीन्द्र साहब भी चिन्तित हैं । उनका विचार है -- 'मेरी समझ में तो आज के सभी हिन्दू सभाई, आर्य समाजी और कांग्रेसी अपना राज्य देखना चाहते हैं । इसी प्रकार मुसलमान मुसलमानों की हुकूमत स्थापित करना चाहते हैं । मजहब और धर्म वैर का कारण नहीं है । कारण यह प्रतिस्पर्धा है ।'[4]

मुस्लिमलीग के नेता मोहम्मदअली जिन्ना ने स्पष्ट कहा था कि 'भारत के विभाजन के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है । मुसलमानों को उनका पाकिस्तान तथा हिन्दुओं को हिन्दुस्तान दे दीजिये ।'[5] पाकिस्तान की मांग का चित्र 'बलिदान' में चित्रित किया गया है --

'यह क्या किया अन्यायी । अपनी मां की छाती पर मोटर चला दी ।' उसने लापरवाही से उत्तर दिया -- 'मैं पाकिस्तान बनाने जा रहा हूं । प्रतिध्वनि -- 'मगर कैसे

१- अशोक मेहता एन्ड अच्युतपटवर्धन, दि कम्युनल ट्रायंगल इन इंडिया (इलाहाबाद : १९४२) पृ० १५४.

२- प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ० ११२.

३- यथोपरि, पृ० ४२.

४- विष्णु प्रभाकर, निशिकान्त, पृ० १०४.

५- Hector Bolitho, Jinnah: The Creator of Pakistan, P. 173.

होने से टक्कर खा जाओगे। तुम इन कीड़ों की मुट्ठी में खेल रहे हो।' ---- जिन्ना -- 'मुझे स्वतंत्रता नहीं, पाकिस्तान चाहिए।'[1]

यशपाल ने पाकिस्तान के निर्माण पर ज्ञानदेवी के कथन द्वारा युगीन मुस्लिमलीग की भावना का अंकन किया है। उसका कहना है -- 'बम्बई में मुस्लिमलीग ने १६ अगस्त (१९४६) से हिन्दुओं से लड़ाई छेड़ दी है। मर गये कहते हैं, हम पाकिस्तान बनायेंगे। हम आधा हिन्दुस्तान लेंगे।'[2] महात्मा गांधी ने पाकिस्तान की मांग का विरोध किया था।[3] असद भी देश के बटवारे का विरोध करते हुए कहता है -- 'हम मुल्क के बटवारे का विरोध करते हैं। पाकिस्तान का मतलब क्या है, हिन्दुस्तान के एक सूबे में कांग्रेस की मिनिस्ट्री हो सकती है, दूसरे में लीग मिनिस्ट्री हो सकती है।'[4]

भारत और पाकिस्तान के विभाजन को लेकर उपन्यासों में प्रत्येक राजनीतिक घटना का कल्पना मिश्रित चित्रण 'धर्मपुत्र', 'देश की हत्या', 'बलिदान', 'निशिकान्त' आदि में किया गया है। पाकिस्तान की मांग का कहीं समर्थन है तो कहीं उसका विरोध। ठीक उसी तरह जिस तरह राजनीतिक-मंच पर चल रहा था। घटना इतिहास की है भाव और अनुभूत उपन्यासकारों के हैं।

देश की राजनीतिक-परिस्थितियां बड़ी तीव्रता से परिवर्तित हो रही थीं। मुस्लिम लीग के मन में अविश्वास घर कर रहा था। फलतः अपनी मांग पर जोर डालने के लिए उन्होंने 'काला-दिवस' (डायरेक्ट एक्शन डे) मनाया। जिसके कारण देश में

१- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० ७८,

२- यशपाल, झूठा सच (वतन व देश), पृ० ७०,

३- Mr. Gandhi said that the partition of India was a "sin" to him. x x x I have had firm faith in the unity of India." The Dawn, Delhi July 13th, 1944, P. Ist.

४- यशपाल, झूठा सच (वतन व देश), पृ० ८७,

भयंकर रक्तपात हुआ ।[१] जिन्ना का कहना था कि "जब तक मुसलमानों का सामूहिक आन्दोलन नहीं होता पाकिस्तान गायब हो जायेगा । वह अंग्रेजों और कांग्रेस को "रक्त-पात" और "गृहयुद्ध" का प्रदर्शन कर दोनों को धमकी से पाकिस्तान मनवा लेंगे ।"[२] जिन्ना का तो कांग्रेस पर यह आरोप ही था कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है ।[३] मन्मथनाथ गुप्त ने 'जयमात्रा' में उसी का चित्रण इस प्रकार किया है -- "कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है । वे हिन्दुओं से उत्साह पाते हैं । गांधी आदि नेता हिन्दू-राज चाहते हैं । स्वराज के माने हिन्दूराज ।"[४]

मुस्लिमलीग के नेता जिन्ना ने यह दुहराया था कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग कौम हैं । राष्ट्र की किसी भी व्याख्या में मुसलमान और हिन्दू दो प्रमुख राष्ट्र हैं ।[५] जिन्ना के उन्हीं भावों का चित्रण 'पथिक' में मिलता है --

"मुल्क । कौन मुल्क ?,

"हिन्दुस्तान ।"

"हिन्दुस्तान एक मुल्क नहीं है ।"

"कैसे ?"

"उसमें बीसियों कौमें बसती हैं । बीसियों जबानें हैं और बीसियों किस्म के ख्यालात के लोग हैं ।"[६]

देश विभाजन के समर्थन में मुस्लिमलीग द्वारा जो "काला दिवस" मनाया गया था उसका चित्रण भी उपन्यासों में किया गया है । कुछ विवरणात्मक वर्णन प्रस्तुत हैं --

---

१- एन०एन०मित्रा (सम्पा०) दि इन्डियन रजिस्टर (कलकत्ता : १९४६) खंड २, पृ० ६७.

२- फ्रैंकमोरेस, जवाहरलाल नेहरू जीवनी, पृ० २६३.

३- रिपोर्ट आन लेजिस्लेटिव एसेम्बली डिबेट, १९ नवम्बर १९४०, खंड ५ सं० १, पृ० ८२३.

४. मन्मथनाथ गुप्त, जयमात्रा, पृ० ७४.

५- फ्रैंकमोरेस, जवाहरलाल नेहरू जीवनी, पृ० २८२.

६- गुरुदत्त, पथिक, पृ० २९९.

"विभाजन की बातें चल रही थी, तभी जिन्ना का डायरेक्ट ऐक्शन दिल्ली में बड़ी तैयारी कर रहा था। बन्दूक, गोली, तोपें, पिस्तौल, बम, ट्रान्समीटर सब कुछ दिल्ली की गुप्त हवेलियों में तैयार था।"[1]

"बलिदान" में "लीग" की सीधी कार्यवाही का वर्णन करते हुए कहा गया है -- "उधर लीग ने सीधी कार्यवाही की घोषणा करदी। दो सितम्बर सन् १९४६ को अन्तरकालीन सरकार की प्रथम बैठक होने से पहले ही १६ अगस्त सन् १९४६ को हत्याकांड शुरू हो गये।"[2] तथा "१६ अगस्त सन् १९४६ को कलकत्ते में मुस्लिमलीग के लोमहर्षक हत्याकांड हुए। इस गुंडागर्दी को कोई भी सीधी कार्यवाही कैसे कहेगा।"[3]

यशपाल ने "झूठा सच" में मुस्लिमलीग के जलूस का अंकन किया है "सिर्फ हमारा भाई है। अल्ला हो अकबर। मुस्लिमलीग जिन्दाबाद। पाकिस्तान लेके रहेंगे। लीग की वजारत कायम हो। कैदेआजम जिन्दाबाद।"[4]

उपर्युक्त वर्णनात्मक चित्रों में ऐतिहासिकता अधिक है कल्पना कम। कहीं-कहीं तो घटनाओं का वर्णन यथावत रूप में है।

"हिन्दू महासभा" 'पाकिस्तान मुर्दाबाद' और मुस्लिमलीग 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाती थी। इस कारण हिन्दू-मुस्लिम तनाव बढ़ता ही गया। १५ अगस्त सन् १९४७ को देश के स्वाधीन होते ही पहले से चले आये साम्प्रदायिक-दंगों की रक्त-पूर्ण होली अपनी सीमा का अतिक्रमण कर खेली गई। जिसका सबसे अधिक प्रभाव नोआखाली, कलकत्ता, बिहार तथा पश्चिमी भारत-- पंजाब में पड़ा।

१- आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र, पृ० १६४.

२- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० २६.

३- यथोपरि, पृ० २६.

४- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० ११२.

आचार्य चतुरसेन ने `धर्मपुत्र` में उन्हीं दंगों का चित्रण प्रस्तुत किया है -- "देखते ही देखते पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल में मारकाट, लूट, आग, बलात्कार, हत्या का बाजार गर्म हो गया। ---- निरीह औरतों, बच्चों, बूढ़ों, जवानों के आर्तनाद, घरों, कूचों, बाजारों, अस्पतालों में दम तोड़ने वालों की हिचकियाँ सुनाई पड़ी। कलकत्ता से आग की भयंकर लपटें नोआखाली, बिहार, इलाहाबाद, बम्बई और दिल्ली आ पहुंची।"[१] उपन्यासकार द्वारा साम्प्रदायिकता का चित्रित चित्र यथार्थवादी है। उपर्युक्त वर्णित घटना के स्थानों का नाम भी इतिहासानुसार है।[२] नोआखाली में जो अमानुषिक दंगे हुए उनका संकेत `झूठा सच` में किया गया है -- "इन बंगाल के बेइमानों ने गांवों में हिन्दुओं को ऐसे लूट लिया है कि औरतों के कपड़े उतार कर ले गये हैं। बहू-बेटियाँ शरीर पर कपड़ा-धोती न होने के कारण घड़ा भर पानी ला सकने के लिए घर से नहीं निकल सकीं और भूखी प्यासी मर गईं। कई बहनों ने तो इसी लज्जा में कुएं में कूद कर प्राण दे दिए हैं।"[३]

नोआखाली की साम्प्रदायिक आग कलकत्ता से बिहार की ओर बढ़ने लगी। "बंगाल का जो बदला हिन्दू बंगाल में न ले सके वह बिहार में लिया जाने लगा। तब भी नेता चिल्लाये बेवकूफी मत करो।"[४]

नेहरू जी तथा अन्य नेता दंगों को शान्त करने के लिए बिहार गये थे।[५] उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है कि -- "पंडित नेहरू इस आग को दबाने खुद बिहार

१- आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र, पृ० १६३-६४.

२- एस०पी०सेन, डिक्शनरी आव नेशनल बायोग्राफी, खंड २, पृ० १६.

३- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० ६७.

४- कृष्णचन्द्र शर्मा `भिक्खु`, संक्रान्ति, पृ० १८८.

५- "If you want to kill a Muslim you must kill no first and proceed to do whatever you choose after marching over my dead body." N.N. Mitra (ed). The Indian Annual Register, (Calcutta: 1946), Vol. II, P. 201.

में आ पहुंचे। पर जिस हिन्दुस्तान के जवाहर को खुंखार कबाइली भी निहत्था अपने मुल्क में पाकर मार न सके उसी जवाहर को राज्य-शक्ति से मंडित होने पर भी हिन्दुस्तान के हिन्दुओं ने बिहार में मारने से कम कोई कोशिश नहीं की - - - - पर जवाहर ने उन सबको फूल की तरह अंगीकार करके सिर्फ अपने लोगों की बेवकूफी के लिए दुख ही प्रकट किया।"[१]

साम्प्रदायिक-दंगे सम्पूर्ण भारत में छुटपुट रूप से होने लगे। उसका वर्णन 'बलिदान' में किया गया है। "बंगाल के ज़ख्म अभी सूखे नहीं कि बिहार में खून बहने लगा। बम्बई में छुरे चले, सरहद में सर फूटे - - - - हर तरफ कत्लेआम मच गया और आज पंजाब में आग के भयानक शोले धधक रहे हैं।"[२]

गांधी जी साम्प्रदायिकता की ज्वाला को शान्त करने के लिए नोआखाली गये।[३] उनकी उस यात्रा का अंकन भी 'बलिदान' में चित्रित है -- "साबरमती के सन्त महात्मा गांधी के हृदय में सिहरन हुई। आसन से उठकर वे नोआखाली चल दिए। फुंके हुए घरों में रामनाम का कीर्तन कर उन्होंने उजड़े घरों को फिर से बसाना शुरू किया।"[४] गुरुदत्त ने बापू की नोआखाली की यात्रा का वर्णन किया है परन्तु उनका दृष्टिकोण रघुवीरशरण मित्र से भिन्न है -- "महात्माजी नोआखाली गये। वहां मुसलमानों ने उनके साथ भी बुरा व्यवहार किया। - - - - मुसलमान महात्मा जी का 'रघुपति राघव राजाराम' भी सुनने को तैयार नहीं होते थे।"[५]

१- कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु', संक्रान्ति, पृ० १६०.

२- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० १३६.

३- के०बी० कृपलानी, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २५६.

४- रघुवीरशरण मित्र, बलिदान, पृ० ३१.

५- गुरुदत्त, देश की हत्या, पृ० १५.

दिल्ली और पश्चिमी भारत भी इन दंगों से अपने को मुक्त न रख सके। 'देश की हत्या' में इनका वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। यथा -- "दिल्ली एक भारी हत्या क्षेत्र बन गया। मुसलमानों की दुकानें और मकान लूटे गये और कहीं-कहीं औरतों का भी अपहरण हुआ। - - - - फौज और पुलिस सहायता से झगड़े को शान्त करने का यत्न होने लगा।"[१]

देश का विभाजन होते ही ज्यों ही शरणार्थी दिल्ली पहुंचे दंगों का आरंभ शुरू हो गया।[२] गुरुदत्त ने दिल्ली के अतिरिक्त लाहौर के दंगों का भी चित्रण अपनी इसी रचना में किया है। लाहौर भी भयंकर दौर से गुजर रहा था। उसका एक चित्र 'दंतान' में यज्ञदत्त शर्मा ने प्रस्तुत किया है -- "लाहौर की गली-गली और बाजार-बाजार में मानव रक्त से होली खेली जा रही थी। इन्सान जानवर बन गये थे। हिन्दुत्व और मुसल्मानियत के नाम पर 'हर-हर महादेव' और 'अल्ला हो अकबर' के पवित्र नारे मानवता से गिरे हुए व्यक्ति स्वार्थ और अंग्रेजी शासन के फूटपूर्ण जाल में फंसकर इतने ऊंचे स्वरों से लगा रहे थे कि जितने संभवत: महमूद गजनवी और नादिरशाह के समय में भी न लगे हों।"[३]

भारत विभाजन से उत्पन्न साम्प्रदायिकता के कारण शरणार्थियों का काफिला पूर्व से पश्चिम तथा पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा। लोग अपनी जान हथेली पर लेकर पनाह मांगने लगे। इन करुणाजनक दृश्यों का जो यथार्थ थे, उनका यथार्थ अंकन अनेक रचनाओं में हुआ है। ऐसे उपन्यासकारों में यशपाल ने शरणार्थी-समस्या का चित्रांकन स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। 'झूठा सच' उपन्यास भारत-पाक विभाजन उसकी विभिन्न समस्याओं को लेकर ही रचा गया है। शरणार्थियों पर जो बीती उसका वर्णन

१- गुरुदत्त, देश की हत्या, पृ० २६४.

२- के०बी० कृपलानी, पूर्वोल्लिखित ग्रंथ, पृ० २६२.

३- यज्ञदत्त शर्मा, दंतान, पृ० १.

करते हुए ड्राइवर कहता है कि --"बहन जी, हिन्दुओं के काफिले भी देखे होंगे आपने, उनको भी देख लीजिये। हिन्दू मारे गये, लूटे गये, उनकी औरतें छीनी गईं, उनकी औरतों पर जुल्म हुआ पर जो आये हैं अक्सर सवारियों पर, गांवों से किसान बैलगाड़ियों पर। बल्लों की छेड़ के रास्ते हिन्दू-सिखों का बैलगाड़ियों, घोड़ों और ऊंटों पर पचास मील लम्बा काफिला आया है। ---- हिन्दू-सिख लाया है बक्से संदूक, नगदी, जेवर और बांह। यह लोग मिट्टी के हुक्के, टूटी चारपाइयां, चक्की, मुर्गियां लिए चल रहे हैं ---- ठीक ही कहते थे - होने का नाम हिन्दू, मुसलमान की मुफलिसी।"[1]

मुस्लिम शरणार्थियों के उपर्युक्त चित्रण के अतिरिक्त यशपाल ने एक अन्य चित्र शरणार्थी-काफिले का अंकित किया है --"मोटरों के दोनों ओर लंगड़ाती, लड़खड़ाती भीड़ बढ़ती आ रही थी। बिखरी और उलझी हुई दाढ़ियां, दबी हुई टोपियां, रस्सी की तरह लपेटी मैली पगड़ियों में से झांकते हुए मुंडे हुए सिर, काले-नीले चीथड़े कपड़े, स्त्री-पुरुषों के चेहरे आंसू और पसीने से जमी गर्द से ढके हुए, कमरें झुकी हुई, घिसटते लंगड़ाते हुए कदम। ---- बहुत सी स्त्रियों की कमर या पीठ पर पुरुषों के कंधों पर रोये हुए, भूखे से मारे, घिनौने बच्चे चिपके हुए थे। किसी की पीठ पर बोरी, किसी के सिर पर कनस्तर काटकर बनाया हुआ बक्सा, किसी के कंधे पर गठरी, कोई सिर पर रखी उल्टी खाट पर अपनी गृहस्थी उठाये लिए आ रहा था।"[2]

इसके अतिरिक्त यशपाल ने शरणार्थी-कैम्पों में भारतीय नेताओं द्वारा भ्रमण तथा उनकी समस्याओं की पूछताछ आदि पर भी प्रकाश डाला है। नेहरू, गांधी, पटेल आदि नेता दिल्ली के शरणार्थी-शिविरों में प्राय: आया करते थे। उनकी ओर संकेत 'झूठा सच' में यत्र-तत्र किया गया है।[3]

१- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० ५३४.

२- यथोपरि, पृ० ५३२.

३- यथोपरि, पृ० ६१ तथा २७१.

मन्मथनाथ गुप्त ने 'दो दुनिया' में शरणार्थी-शिविरों उनकी मनोभावनाओं का अंकन किया है। वीरेन्द्र नामक पात्र जब दिल्ली शरणार्थी-कैम्प में जाता है तब उसे शरणार्थियों की नफरत का सामना करना पड़ता है।[1] शिविरों में शरणार्थी दुखी जीवन बिता रहे थे। एक शरणार्थी की उसी भावना का चित्रण गुप्त जी ने किया है। एक शरणार्थी का कथन है -- "हम लोग राजा रईस नहीं थे पर अपने घर के सब राजा थे। मिनटों में सब उजड़ गया। कितने तो मारे गये कितने राह में रह गये। हमारी इज्जत खराब हुई और अब हम यहां भिख-मंगों की तरह पड़े हुए हैं। कड़ाके की सर्दी है पर न कुछ ओढ़ने को है न बिछाने को। एक-एक रजाई मिलने वाली है, पर पता नहीं कब मिले।"[2]

देश-विभाजन से खिन्न एक अन्य शरणार्थी का मनोभाव भी द्रष्टव्य है। उसका कहना है -- "मैं यह थोड़े ही मालूम था कि गांधी हमारे साथ गद्दारी करेगा, हम तो उसे महात्मा समझते थे। इससे तो स्वराज्य न होता तो अच्छा था। हमको स्वराज्य से क्या मिला। हम तो सब कुछ खोकर यहां भिखमंगों की तरह पड़े हुए हैं। पता नहीं कितने दिन और पड़े रहेंगे। दुकान गई, घर गया, बाल बच्चे मारे गये। अकेला किसी तरह जान बच कर भाग आया।"[3]

उपर्युक्त वर्णित शरणार्थी-मनोभावों की साक्षी के लिए ऐतिहासिक प्रमाण जुटाने की आवश्यकता इस लिए विशेष नहीं है क्योंकि भारत-पाक विभाजन एक सच्चाई है। उससे जो लोग प्रभावित हुए उनके साथ सब कुछ होना संभव था। और हुआ। देश-विभाजन के बाद दोनों ओर रक्त की सरिता बही थी। बदले की भावना ने प्रचंड रूप

१- मन्मथनाथ गुप्त, दो दुनिया, पृ० ३०.

२- यथोपरि, पृ० ३३.

३- यथोपरि, पृ० ३४.

धारण कर लिया था ।[1] यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त के अलावा गुरुदत्त, प्रताप, 'मित्रद्वय' ने भी शरणार्थी-समस्या का अंकन अपने उपन्यासों में किया है ।

गांधी-हत्या

भारत-पाकिस्तान की समस्या, शरणार्थी समस्या आदि के कारण देश का वातावरण विषैला होता गया । पाकिस्तान के 'पावने' को लेकर भारत का एक वर्ग विशेष गांधी जी से प्रसन्न नहीं था । गांधी जी पर बम्ब भी फेंका गया था परन्तु अन्ततः जनवरी १९४८ ई० को उन्हें गोली से उड़ा दिया गया ।[2] अपने लोगों के दुख-सुख के लिए जीने वाले महात्मा को अपने ही लोगों की घृणा का शिकार बनना पड़ा ।

हिन्दी-उपन्यासों में महात्मा गांधी की नृशंस हत्या का वर्णनात्मक चित्रण किया गया है । यह एक काल्पनिक-संयोग ही कहा जायेगा कि ऋषभचरण जैन ने 'सत्याग्रह' (१९३०) में महात्मा गांधी की हत्या का संकेत एक पात्र के माध्यम से दिया है । उसका चित्र देखिए -- "दुरात्मा जारल स्मटस ने कमरे में इधर उधर घूमते हुए मूछों पर ताव देकर कहा -- "शैतान । मसीह का अवतार बना फिरता है । हमसे युद्ध करेगा - मिलेगा - - - - । - - - - याद रख बेवकूफ, तेरा खात्मा तेरे बेइमान भाई-बहन ही करेंगे ।"[3]

उपन्यासकार का यह काल्पनिक तथ्य लगभग अठारह वर्ष बाद सत्य हो गया । 'राहुल' ने 'जीने के लिए' (१९४०) में इसी भाव का परोक्ष रूप में अंकन किया है ।[4] 'मित्रद्वय'

१- "The rivers of blood which flowed after partition on both sides of the new frontier grew out of this sentiment of hostages and retaliation." - Moulana Abulkalam Azad, "India Winds Freedom," P. 198.

२- J.B. Kripalani, Gandhi: Op. Cit. P. 301.

३- ऋषभचरण जैन, सत्याग्रह, पृ० ६०.

४- राहुल सांकृत्यायन, जीने के लिए, पृ० २००.

ने गांधी जी की हत्या का वर्णन सीधे-सीधे इस प्रकार किया है -- "३० जनवरी १९४८ को उनके सामने आकर एक मनुष्य ने पिस्तौल से उन पर तीन चार गोलियां दाग दीं, और बेचारे शान्तिप्रिय अहिंसावादी महात्मा का प्राण पखेरू उड़ गया । सारे भारत में हाहाकार मच गया ।"[1]

गांधी जी को लेकर जो विषाक्त वातावरण बन गया था उसका संकेत "संन्यासी" के बलदेव के कथन में आभासित होता है । "बलदेव ठठाकर हंस पड़ा । उसने कहा -- "आप ठीक कहते हैं । गांधी जी को साधारण "ईडियट" नहीं, बल्कि मैकाले की भाषा में "इन्स्पायर्ड ईडियट" कहना बेहतर होगा ।"[2] भारत-पाक विभाजन से परेशान व्यक्ति के मन की छिपी हुई भावना का जो उसके मन में बापूजी के प्रति थी का अंकन "दो दुनिया" में हुआ है । क्रोधी व्यक्ति का कथन है -- मैंने प्रतिज्ञा करली है कि कुछ दिन बाल बच्चों को खोजूंगा और यदि वे नहीं मिले तो उसका सारा बदला उस ढोंगी बूढ़े से चुकाऊंगा जिसके कारण आज आदमियों की यह दुर्गति हुई है ।"[3]

गांधी जी तो अन्त तक पाकिस्तान का विरोध करते रहे परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय तथा भारतीय अन्तर्देशीय राजनीतिक परिस्थितियों ने वह सब कराया जो वह नहीं चाहते थे । काज़िमी मौलाना फिरके वाराना फसादों से परेशान होकर कहते हैं -- "भाई जान, यह फिरकावाराना तअस्सुब मुल्क और कौम को तबाह किये दे रहा है। - - - - बापू ने तो अपनी जिन्दगी ही इसी के लिए कुरबान करदी है ।"[4]

यशपाल ने गांधी जी की हत्या के मूल्यांकन में "राष्ट्रीय-स्वयं-सेवक-संघ" की खूब खबर ली है । प्रगतिवादी लेखक को प्रतिक्रियावादी तत्वों का पर्दाफाश करने का अच्छा

१- 'मित्रदत्त', स्वतंत्र भारत, पृ० ८०.

२- इलाचंद्र जोशी, संन्यासी, पृ० १६१.

३- मन्मथनाथ गुप्त, दो दुनिया, पृ० ३६.

४- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० ५८.

अवसर उपन्यास में मिला है। बापू की हत्या को लेकर जो वार्तालाप पात्रों में हुआ है उसका चित्रण इस प्रकार है --"आर०एस०एस० के प्रति आपकी सहानुभूति है ? गांधीजी की हत्या के बाद भी ?" - - - - आर०एस०एस० के हर एक आदमी ने तो गांधीजी की हत्या में भाग नहीं लिया होगा और यह अधिकार तो गोडसे का भी है कि उसके साथ न्याय हो।"[1]

गांधी जी पर जो बम फेंका गया था उसका वर्णन भी यशपाल ने किया है।[2] इसके अतिरिक्त गुरुदत्त ने भी `बम-कांड` का चित्रण करते हुए लिखा है --"बीस जनवरी को महात्मा जी के प्रार्थना-स्थान से कुछ अन्तर पर प्रार्थना के समय एक बम फट गया। बम से कोई हानि नहीं हुई और बम फेंकने वाला पकड़ा गया। महात्मा जी ने अगले दिन प्रार्थना के समय बम फेंकने वाले पर दया करने के लिए कहा।"[3]

महात्मा गांधी की हत्या का चित्रांकन भी यशपाल ने इस प्रकार अंकित किया है --"आज संध्या सवा पांच बजे कुछ पूर्व, जिस समय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी बिड़ला भवन में प्रार्थना-स्थल की ओर जा रहे थे, एक हिन्दू युवक ने पिस्तौल से तीन गोलियां चला कर गांधी जी की हत्या कर दी है। महात्मा जी का देहान्त गोलियां लगते ही हो गया। अन्तिम समय उन्होंने `राम-राम` उच्चारण किया।"[4]

यशपाल के उपन्यासों के संदर्भ में जहां तक भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष का घटनांकन है वह किसी भी इतिहासकार द्वारा लिखित स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास से यथावत रूप में केवल शब्दों के साधारण परिवर्तन से मिलाया जा सकता है। यथा - श्री रामगोपाल का इतिहास, पट्टाभि सीता रामय्या का इतिहास आदि आदि। इसलिए यशपाल द्वारा

१- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० २३६,

२- यथोपरि, पृ० २२१,

३- गुरुदत्त, देश की हत्या, पृ० ३१६,

४- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृ० २२४,

वर्णित तिथियां, स्थान, घटनायें प्राय: सत्य हैं। इसका कारण वह स्वयं भी स्वातंत्र्य सेनानी रहे हैं।

गांधी हत्याकांड का चित्रण 'रेणु' ने भी किया है। गांधी जी के मारे जाने की सूचना ज्योंही गांव में पहुंचती है, एक हलचली सी वहां मच जाती है। "बाबा! --- गांधी जी मारे गये।" कमला अन्दर हवेली से ही पगली की तरह चिल्लाती है -- गांधी जी ----! ---- एक पागल ने बापू की हत्या कर डाली। जाहिर है, पागल के सिवा कोई ऐसा काम नहीं कर सकता।"[१]

स्वाधीनता का आलोक

राजाराम मोहनराय ने 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' का जो बीज भारत की वसुधा पर बोया था वह लगभग डेढ़ शताब्दी के बाद अनेक घात-प्रतिघात, झंझावात आदि का सामना करते हुए उन्मुक्त रूप से पंद्रह अगस्त सन् १९४७ को दासता की कुहासा को चीरता हुआ प्रस्फुटित हो उठा। स्वाधीनता के बालरवि की उषाकालीन रक्तिम किरणों ने उसका अभिषेक किया। लालकिले पर तिरंगा लहरा-लहरा कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को विदाई दे रहा था। भारतीय जनमानस अपार हर्ष से फूला नहीं समा रहा था। सर्वत्र नवीन भारत का स्वागत हो रहा था। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में नये आयाम अपना विस्तार खोज रहे थे। उपन्यासकार भी उस पावन बेला की मादकता का अंकन अपनी लेखनी से करने में तल्लीन था। उसी पावन बेला की मादकता को उपन्यासों में नाना प्रकार से चित्रित किया गया है।

"१५ अगस्त को कांग्रेस की आज्ञा से सारे देश में अपूर्व उत्सव मनाया गया। युग-युग की गुलामी की जंजीर जिस दिन झनझना कर टूट गई, उस दिन उत्सव होना कुछ स्वाभाविक था। रात को ऐसी रोशनी हुई कि दिवाली भी उसके सामने मात हो गई।"[२]

१- फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आंचल, पृ० ३०४-५.

२- मन्मथनाथ गुप्त, बहि का कारा, पृ० ७७.

गोविन्द बल्लभ पन्त के 'मुक्ति के बंधन' का एक पात्र का कहना है --"परसों पंद्रह अगस्त है । हमारा चिरवांछित स्वतंत्रता दिवस सारे देश में असाधारण उत्साह से यह उत्सव मनाया जाने वाला है । देश के समस्त दुर्गों, न्यायालयों, विधान-भवनों, राजकीय भवनों तथा झोपड़ियों से लेकर प्रजा की अट्टालिकाओं तक हमारा तिरंगा झंडा फहराया जायेगा।'

'और वह यूनियन जैक ?'

'वह कल दिन भर का ही अतिथि है केवल हमारे आकाश में । कल संध्या समय वह अंतिम बार उतर जायेगा ।"[१]

बाबा बटेसरनाथ पंद्रह अगस्त के समारोह का वर्णन सुनाते हुए कहता है "१५ अगस्त १९४७ के दिन जीवनाथ ने अपने घर के सामने लम्बे बांस की ध्वजा गाड़ी थी और तिरंगा झंडा फहराया था । लोगों में दो सेर बताशे बांटे थे । ---- दिन भर आजादी का त्यौहार मनाया था । रात को दीप जलाये थे, सेर भर तीसी का तेल खर्च किया था ।"[२]

अंग्रेजों ने जब सत्ता हस्तांतरित की तो उसका आंखों-देखा हाल गुरुदत्त ने इस प्रकार चित्रित किया है --

"रात के साढ़े बारह बज रहे हैं । पार्लियामेन्ट के हाल के बाहर दिल्ली के लोगों का अपार जनसमूह हर्ष और उल्लास से भरा हुआ नवजात स्वतंत्रता का स्वागत करने के लिए ठाठें मार रहा है । इस समय जिधर भी दृष्टि जाती है लोगों के सिर ही सिर दिखाई देते हैं । ---- लोग खुशी से फूले नहीं समाते ।"[३]

अमृतराय ने स्वाधीनता दिवस की प्रशस्ति में कहा है --"ऐतिहासिक दिन १५ अगस्त १९४७ । न जाने कब से इन्तजार था इस दिन का । ---- यह नीले समुद्र सा अपारनिरभ्र आकाश उस पर किसी देवदूत शिल्पी के हाथों सोने के अक्षरों से अंकित १५ अगस्त १९४७ । स्वाधीनता दिवस ---- ।"[४]

१- गोविन्द बल्लभ पन्त, मुक्ति के बंधन, पृ० ३४०-४१.
२- नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ० ११६.
३- गुरुदत्त, देश की हत्या, पृ० ३३०.
४- अमृतराय, बीज, पृ० २५६.

पंचम अध्याय

उपसंहार

"आज का इतिहास कल राजनीति था । इसी तरह आज की राजनीति संयुक्त और ठोस बनकर कल का इतिहास बन जायेगी । राजनीति तो इतिहास का अग्रदूत है ।"

-- डा० पट्टाभिसीता रामय्या

उपसंहार

पीड़ित एवं शोषित मानवात्मा का विद्रोह जीवन की एक अनिवार्यता है । दमन एवं अन्याय के सम्मुख कभी भी वह नतमस्तक नहीं होता । अपमान की ठोकरें खा-खा कर स्वराष्ट्राभिमानी पुन: उस अन्याय के विरुद्ध उठ खड़ा होता है । जब वह जागने लगता है तो राष्ट्र के जीवन में एक नवस्पंदन दृष्टिगोचर होता है । भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास की कहानी, मानव-इतिहास में अध्ययन के सबसे अधिक आकर्षक विषयों में से एक है । राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप जब देशवासियों का आत्मसम्मान वापस आया तब देश स्वत: स्वतंत्र हो गया ।

जब किसी राष्ट्र अथवा समाज के विचार सामूहिक रूप से प्रस्फुटित होने लगते हैं तब एक प्रबल जन आन्दोलन का जन्म होता है । देश की जनभाषा का माध्यम उसकी व्यापकता का वाहक बन जाता है । वह फूलता और फलता है और अन्तत: जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाता है ।

'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' से उद्बुद्ध होकर राष्ट्रोत्थान की नवचेतना ने भारतीय राष्ट्रीय-कांग्रेस की स्थापना के बीज का वपन किया था । 'बंग-भंग' के व्यापक आत्म-विद्रोह ने कालान्तर में राष्ट्र व्यापी जन-आन्दोलन का रूप धारण कर लिया था । बालकृष्ण गोखले तथा लोकमान्य तिलक अपने-अपने फंडों के तले राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम को आगे बढ़ाते रहे । परन्तु सफलता किसी को न मिली । गंगा-यमुना रूपी उपरत-द्वय के साथ सरस्वती के रूप में महात्मा गांधी का संगम हुआ । जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रवाह को तीव्र से तीव्रतर कर 'असहयोग आन्दोलन' से लेकर 'अगस्त-क्रान्ति' तक ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को झकझोर कर खोखला कर दिया था । फलत: स्वाधीनता के सूर्य का उदय हुआ और दासता की तमनिशा समाप्त हुई ।

महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश से पूर्व लिखित हिन्दी उपन्यासों में सक्रिय स्वातंत्र्य-संघर्ष की भावना का नितान्त अभाव है । कुछ उपन्यासों यथा -- `आदर्श हिन्दू`, `जिले का सुधार अथवा सती सुखदेवी`, `हिन्दू गृहस्थ`, `आरण्यबाला` में जो राजनीतिक प्रसंग उपलब्ध हैं उनका स्वर युगीन नरमदली राजनीति के स्वर से भिन्न नहीं है । नरमदली नेताओं की भांति `ब्रिटिशराज` का गुणगान सूक्ष्म रूप में उनमें उपलब्ध होता है । शेष लगभग सन् १९१८ तक उपन्यास-साहित्य में राजनीतिक-संघर्ष के चित्रण का मौन तथा उसके प्रति उपेक्षा-भाव दृष्टिगोचर होता है ।

बंग-भंग के कारण `स्वदेशी आन्दोलन` का जो सूत्रपात बंगाल में हुआ था जिसकी चर्चा भारत के कोने-कोने में रही उससे भी हिन्दी का उपन्यासकार अपना साक्षात्कार न कर सका । प्रस्तुत शोध-अध्येता को `स्वदेशी आन्दोलन`(१९०५ ई०) पर रचित कोई भी रचना उपलब्ध न हो पाई ।

महात्मा गांधी ने जिस प्रकार भारतीय स्वातंत्र्य-संघर्ष को एक नई दिशा की ओर मोड़ा उसी प्रकार हिन्दी-उपन्यास साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद ने निश्चय ही उपन्यास साहित्य को सर्वप्रथम राजनीति से सम्बद्ध कर उसे नये आयाम प्रदान किये । उपन्यास को जन-आन्दोलन का अभिन्न अंग बना दिया । राजनीति में गांधी जी और हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचन्द स्वातंत्र्य-संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे ।

विश्व की परिस्थितियाँ परिवर्तित हो रही थीं । ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से समाप्त करने के लिए विभिन्न आन्दोलन भारत में चलाये जा रहे थे, उन्हीं आन्दोलनों के राजनीतिक दर्शन को कथा में उपन्यास के माध्यम से प्रचारित किया जाने लगा । क्योंकि उपन्यास साहित्य की एक लोकप्रिय विधा होने के कारण जन सामान्य में खूब प्रचलित रहा है । उसका प्रभाव भी अपेक्षाकृत होता है ।

महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश से हिन्दी-उपन्यास के शिल्प में एक नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। स्वातंत्र्य-संघर्ष के विविध पक्षों को लेकर राजनीतिक उपन्यासों की नई परम्परा यहीं से आरंभ होती है। गांधीवाद के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्षों को उपन्यास का प्रमुख कथ्य बनाया गया है। राष्ट्रीय संग्राम की कोई न कोई घटना किसी न किसी रूप में उपन्यासों में चित्रित की गयी है।

सन् १९३० तक के हिन्दी उपन्यासों में गांधीवाद प्रमुख रूप से उपन्यासों में चित्रित हुआ है। उसकी आलोचना प्राय: नहीं मिलती है। `प्रेमाश्रम`, `रंगभूमि`, `कायाकल्प`, `जागरण`, `मेरा देश`, `सत्याग्रह` आदि रचनाएं इसका प्रमाण हैं परन्तु `सविनय अवज्ञा-आन्दोलन` के उपरान्त लिखित उपन्यासों में गांधीवाद की आलोचना तथा समाजवाद की स्थापना के दर्शन प्रमुख रूप से होते हैं। क्योंकि राष्ट्रीय संग्राम में समाजवाद का प्रचार प्रबल रूप में हो गया था। समाजवादी चिन्तन को लेकर विरचित उपन्यासों में -- यशपाल, अंचल, राहुल, नागार्जुन, अमृतराय आदि की रचनायें प्रमुख हैं।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रतीक के रूप में चित्रण दुर्गादास खत्री के उपन्यासों में हुआ है। कहीं कहीं जैनेन्द्र कुमार ने भी गांधीवाद के साथ क्रान्तिवाद को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। किन्तु उसका स्वरूप धूमिल है। समाजवादी उपन्यासकारों ने सन् १९४० के बाद पुन: क्रान्तिकारी आन्दोलन को कथानक के रूप में ग्रहण किया है।

देश के साम्प्रदायिक वातावरण का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों में प्रबल रूप में मिलता है। `दो भाई`, `राम रहीम`, `प्रत्यागत`, `झूठा सच`, `देश की हत्या`, `धर्मपुत्र` आदि में साम्प्रदायिक समस्या ही उपर्युक्त उपन्यासों की प्रमुख कथा है।

शोध-प्रबंध के आलोच्य काल (१८८५ से १९६० ई०) तक उपन्यासों के विवेचन के उपरान्त यह स्पष्ट हुआ है कि स्वातंत्र्य-संघर्ष के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ उपन्यासकार

भी उसी रूप में प्रभावित होता आया है । इसीलिए तीन प्रकार के उपन्यासों की रचना उपन्यास साहित्य में उपलब्ध होती है -- (१) 'वाद' सापेक्ष (२) 'वाद' निरपेक्ष तथा (३) तटस्थ । तटस्थ उपन्यासों का विषय केवल राष्ट्रीय-संग्राम की प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालना तथा उसके लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का अंकन करना है । ऐसे तटस्थ उपन्यासों में मन्मथनाथ गुप्त के कुछ उपन्यास, इलाचंद्र जोशी के उपन्यास, 'मिलिन्द' का 'स्वतंत्रभारत', गोविन्ददास का 'इन्दुमति' आदि प्रमुख हैं ।

स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील विभिन्न राजनीतिक विचारों के प्रभाव से उपन्यास साहित्य अपने को अलग-थलग न रख पाया । साहित्य में उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । जिसका परिणाम यह हुआ कि गांधीवादी, समाजवादी, साम्यवादी तथा आतंकवादी विचारों को लेकर विभिन्न उपन्यासों की रचना हुई है ।

जिस प्रकार भारतीय राजनीति में गांधी जी छाये रहे उसी प्रकार 'गांधीवाद' भी उपन्यास साहित्य में छाया हुआ है । प्रत्येक राजनीतिक उपन्यास में गांधीवाद तथा उससे संबंधित कोई न कोई प्रसंग अवश्य मिल जायेगा । सन् १९२० के बाद की ऐसी कोई भी स्वातंत्र्य-संघर्ष की घटना नहीं है जिसे उपन्यासों में स्थान न मिला हो । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में स्वातंत्र्य संघर्ष का अंकन पूर्ण यथार्थ रूप में किया गया है । कहीं-कहीं उपन्यास ऐतिहासिक ग्रंथ का आभास देने लगता है । सर्वाधिक उपन्यासों की रचना क्रमानुसार गांधीवाद, देश की साम्प्रदायिक समस्या, समाजवाद तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन और अन्य विविध घटनाओं को लेकर की गई है ।

अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त है कि यदि राष्ट्रीय नेता जनमंच से जनता को संबोधित करके स्वातंत्र्य-संघर्ष चला रहे थे तो उपन्यासकार भी अपनी लेखनी से उन्हीं घटनाओं का अंकन कर जनता के मनोबल को बढ़ा कर राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थे । दोनों का साध्य एक था, साधन भिन्न-भिन्न थे । वास्तु

1]

BIBLIOGRAPHIC REFERENCES

(A) ENGLISH

1. Aiyar, C.P. Ramaswami. Annie Besant. Govt. of India: I. & B. Ministry 1965 Reprint.
2. Ambedkar, B.R. (i) Pakistan or The Partition Of India. Bombay: Thakur and Co. 1946. ed. III.
3. Ambedkar, B.R. (ii) What Congress And Gandhi have Done To The untouchables. Bombay. Thakur & Co. 1946. ed. II.
4. Amba Prasad. The Indian Revolt of 1942. Delhi: Chand & Co. 1958 N. ed.
5. Andrews, C.F. And G. Mukherjee. The Rise And Growth Of Congress In India. Calcutta: Meenakshi Prakashan, 1967.
6. Argov, Daniel. Moderates And Extremists. Bombay: Asia Publishing House. 1967. ed. Ist.
7. 'Aurbindo', Ghose. The Renaissance In India. Chandranagar: Prabartak Publishing House. September, 1920. N.ed.
8. Ayer, S.A. Selected Speeches Of Subhas Chandra Bose. Govt. of India: Publication Divi. 1965. Reprint.
9. Azad, Maulana Abulkalam. India Wins Freedom Calcutta: Orient Longmans Private Ltd., January, 1959. ed. Ist.
10. Banerjee, S.N. A Nation In Making. Calcutta: Oxford University Press. 1963. Reprinted.
11. Besant, Annie. How India Wrought For Freedom. Adyar(Madras): Theosophical Publishing House. 1915. N.ed.
12. Besant, Annie. An Autobiography. London: The Theosophical Publishing Society. 1908. ed. III.
13. Bevan, Edwyn. Indian Nationalism. London: Macmillion And Co. 1914. Reprint.

14. Bhatia, B.M. Famines In India (1860 - 1945) Bombay: Asia Publishing House. 1963. N.ed.

15. Bolitho, Hector. Jinnah: The creator of Pakistan London: John Murry Albmarle Street. 1954. ed. Ist.

16. Bose, S.C. The Indian Struggle. (1920 - 1942) Calcutta: Asia Publishing House. 1964. ed. Ist.

17. Bright, J.S. Important Speeches And Writings of Subhas Bose. (1927 - 1945). Lahore: Indian Publishing Works. 1947. ed. II.

18. Buchan, John. Lord Minto - New York. Thomas Nelson & Sons. 1924. ed. Ist.

19. Chaudhuri, Nirad. C. The Autobiography of Unknown Indian. London: Macmillan & Co. 1951. N.ed.

20. Chirol, Valentine. Indian Unrest. London: Macmillan & Co. 1910. ed. Ist.

21. Coatman, Johan. India: The Road Toself Government. London: George Allen & Unwin Ltd., 1941. ed. Ist.

22. Cotton, Henry. New India. London: Kegan Paul T. Trubner & Co. 1904, Revised.

23. Desai, A.R. Social Backgroud Of Indian Nationalism. Bombay: G.C. Oxford University Press. 1948. ed. Ist.

24. Desai, Mahadev. The Story Of Bardoli Ahmedabad: Navjevan Press 1929. N.ed.

25. Desai, N.S. (Pub.) The Communist Reply (Meerut) Conspiracy Case) Bombay: Workers Literature Publishing Co. N.D. N. ed. (approximate year 1931)

26. Digby. William. India For the Indians London: Talbot Bros. E.C. 1885. N. ed.

27. Dua, R.P. The Impact of The Russo - Japanese(1905) War on Indi-an Politics. Delhi: S. Chand & Co. 1966. N.ed.

28. Dutt, N.I. Congress Cyclopaedia, Vol. I - New Delhi. 10/13 W.E.A. Karol Bagh. 1973.

29. Dutt, Romesh. The Economic History of India (1837 to the twentieth Century). London: Kegan Paul Tr. Trubner & Co. 1906, Sixth, Second edi.

30. Fast, Howard. Literature And Reality. London: Bodley Head. 1955. N.ed.

31. Fox, Ralf. The Novel And The People. New Delhi: P.P. House. 1957. N. ed.

32. Gandhi, M.K. Communal Unity - Ahmedabad: Navjevan Publishing House. 1949. ed. Ist.

33. Garratt, G.T. An Indian Commentary. London: Jonathan Cape, Bedford Sqr. 1928. ed. Ist.

34. Ghose, Sankar. The Renaissance To Militant Nationalism In India. Bombay Allied Publishers Ltd., 1969. ed. Ist.

35. Gupta, H. Das. Deshbandhu Chitranjan Das. Govt. of India: Publication Division. 1960. N. ed.

36. Hardas, Shri Balshastri. Armed Struggle For Freedom(1857-Subhas). Poona: Kal Prakashan. 1958. N. ed.

37. Hertz, Frederick. Nationality. In History And Politics. London: Routledge & Kegan Paul Ltd., 1951. ed. III.

38. Howe, Irving. Politics And The Novel. London: Stevens & Sons Ltd. 1961. N. ed.

39. Hudson, W.H. An Introduction To The Study of Literature. London: George G. Harra p. & Co. 1949. Reprinted.

40. Kanji, Dwarkadas. Indias Fight For Freedom. (1913-1937). Bombay: Popular Prakashan. 1966. ed. Ist.

41. Karan Singh (Dr.) Prophet of Indian Nationalism. Bombay: Bhartiya Vidya Bhawan. 1967. ed. Ist (Indian).

42. Karunakaran, K.P. Continuity And Change In Indian Politics. N. Delhi: Peoples Publishing House. 1964, ed. Ist.

43. Karunakaran, K.P. Modern Indian Political Tradition. New Delhi: Allied Publishers. 1962. ed. Ist.

44. Kaur, Manmohan. Role of Women In The Freedom Movement. Delhi: Sterling Publishers Private Ltd. 1968, ed. Ist.

45. Kaushik, P.D. The Congress Ideology And Programme (1920-47). Bombay: Allied Publishers Private Ltd., 1964. ed. Ist.

46. Kohn, Hans. The Idea Of Nationalism. New York: The Macmillan Co. 1951. ed. 5th.

47. Kriplani, J.B. Gandhi: His Life And Thought. Govt. of India: Govt. Publication Division. Sept., 1971. Reprinted.

48. Krisna, K.B. The Problem of Minorities. London: George Allen And Unwin Ltd., 1930. ed. Ist.

49. Kulkarni, V.B. India And Pakistan. Bombay: Jaico. Publishing House. 1973. N. ed.

50. Lajpat Rai. Young India. Govt. Of India: Publication Division. March, 1968. Second Reprint.

51. Lohiya, Ram Manohar. The Mistery Of Sir Stafford Cripps. Bombay: Padma Publication Ltd. Sept., 1942. ed. Ist.

52. Majumdar, A.C. Indian National Evolution. Madras: Natesan & Co. 1917. ed. II.

53. Majumdar, B.B. Indian Political Associations And Reform Of Legislature (1818-1917) Calcutta: Firma K.L. Mukhopadhyay Nov, 1965. ed. Ist.

54. Majumdar, Bimanbehari, History of Indian Social And Political Ideas. Calcutta: Bookland Pri. Ltd., 1967.

55. Majumdar, R.C. An Advanced History of India. Part III. London: Macmillan & Co. 1949. Reprint.

56. Majumdar, R.C. British Paramountcy And Indian Renaissance. Part I Vol. IX. Bombay: Bhartiya Vidya Bhawan. 1970. ed. II.

57. Majumdar, R.C. Struggle For Freedom. Bombay: Bhartiya Vidya Bhawan. 1969. N. ed.

58. Majumdar, S.K. Jinnah And Gandhi. Calcutta: Firma K.L. Mukhopadhyay. 1966. ed. Ist.

59. Manshardt, Clifford. The Hindu - Muslim Problum In India. London: George Allen & Unwin Ltd., 1936. ed. Ist.

60. Mansergh, Nicholas. The Transfer Of Power. Vol. II & III. London: Her Majesty's Stationary Office. 1971. ed. Ist.

61. Marx, Karl. Capital Vol. I & III. Moscow: Progressive Publishers. 1971. ed. IV.

62. Marx, Karl And Frederick Engels. Manifesto of The Communist Party. Moscow: Progressive Publishers. 1971. N. ed.

63. Mehta, Ashok And Achyut Patwardhan. The Communal Triangle In India. Allahabad: Kitabistan. 1942. ed. II.

64. Moore, R.J. The Crisis of Indian Unity. Delhi: Oxford University Press. 1974. ed. Ist.

65. Mukharjee, Haridas And Uma. (i) The Growth of Nationalism In India. Calcutta: Presidency Library. 1957. ed. Ist.

66. Mukharjee, Haridas And Uma. (ii) Indias Fight For Freedom. Calcutta : Firma K.L. M.D. N. Ed.

67. Mukerjee, Hiren. India's Struggle For Freedom. Calcutta: National Book Agency Pri. Ltd. 1962. ed. III.

68. Nanda, B.R. Socialism In India. Delhi: Vikas Publication. 1972. N.ed.

69. Narayan, J.P. Towards Struggle. (ed) Y. Meherally. Bombay: Padma Publication Ltd., 1946. ed. Ist.

70. Narayana, Shriman. Principles Of Gandhi Planning. Allahabad: Kitab Mahal. 1960. ed. Ist.

71. Natesan. (i) Congress Presidential Addresses (From the Silver to the Golden Jubli). Madras: G.A. Natesan & Co. 1934. Second Series.

72. Naoroji, Dadabhai. Poverty And Unbritish Rule In India. London: Sonnen Schein & Co. 1901. N. ed.

73. Naravane. V. Modern Indian Thought. Bombay: Asia Publishing House. 1964. N. ed.

74. Nehru, Jawahar Lal. India On The March. Lahore: The Indian Publishing Works. 1946. ed. Ist.

75. Nehru, J.L. Unity of India. London: Lindsay Drummond W.C. 1941. ed. Ist.

76. Nizami, K.A. Sayyid Ahmad Khan. Govt. of India: Publication Division. 1966. ed. Ist.

77. Pal, Bipin Chandra. Swadeshi And Swaraj. Calcutta: Yugantar Prakashak Ltd., 1954. N. ed.

78. Palit, Ram Chandra. Speeches Of Surendra Nath Banerjee. (1876 - 80) Vol, I. Calcutta: S.K. Lahiri & Co. 1894.III

79. Panikkar, K.M. The Foundation Of New India. London: George Allen & Unwin Ltd. 1963. ed. Ist.

80. Payne, Robert. The Life And Death of Mahatma Gandhi. London: The Budley Head Ltd., 1969. N. ed.

81. Prasad, Bisheshwar. Changing Modes Of Indian National Movement. New Delhi. People's Publishing House. 1963. ed. Ist.

82. Raja Ram. The Jallian Walla Bagh Massacre.Chandigarh: Punjab University Press. 1969. ed. Ist.

83. Rao. B. Shiva. Indias Freedom Movement., New Delhi: Orient Longman Ltd. 1972. ed. Ist.

84. Rawlinson, H.G. India A Short Cultural History. London: The Cresset Press. May, 1962. ed. IV.

85. Ray, P.C. Life And Times Of C.R. Das. London: Oxford University Press. 1927. N. ed.

86. Ronaldshay, E. The Life of Lord Curzon, Vol. II. London: Ernest Benn Ltd., 1928. ed. Ist.

87. Sen, S.P. Dictionary of National Biography. Vol. I & II. Calcutta: Institute of Historical Studies. 1973. ed. Ist.

88. Shyam Sunder And Savitri Shyam. Political Life Of Pandit Govind Ballabh Pant. Lucknow: Shailamil, 5 Darul Safa 1960. ed. Ist.

89. Smith, Vincent. A. The Oxford History Of India. Oxford (London): The clarendon Press. 1923. ed. Second.

90. Snyder, Louis. L. The Meaning of Nationalism. New Jersey: Rutgers University Press. 1954. N. ed.

91. Speer, Percival. Modern India (The Oxford History Of India Part III). London: Oxford University Press. 1965. N. ed.

92. Sunderland, J.T. India In Bondage: Her Right to Freedom. Calcutta: R. Chatterjee Upper Circular Rd. 1929 ed. II.

93. Subrahmanyam, M. Why Cripps Failed. New Delhi: The Hindustan Times Press. Dec., 1942. N. ed.

94. Tara Chand. History Of the Freedom Movement in India. Vol. IV. Govt. Of India: Publication Division. Nov., 1972. N. ed.

95. Tara Chand. Influence Of Islam On Indian Culture. Allahabad: The Indian Press. 1963. ed. II.

96. Tendulkar, D.G. Mahatma. Vol. II. Bombay: Vithalbhai & D.G. Tendulkar. 1951. N. ed.

97. Wedderburn, William (Sir). Allan Octavian Hume; London: Fisher Unwin. 1913. ed. Ist.

98. Winslow, Jack. C. The Dawn Of Indian Freedom London: George Allen & Unwin Ltd. 1932. ed. II.

96. Tendulkar, D.G. Mahatma. Vol. II. Bombay: Vithalbhai &
D.G. Tendulkar. 1951. N. ed.

97. Wedderburn, William (Sir). Allan Octavian Hume; London:
Fisher Unwin. 1913. ed. Ist.

98. Winslow, Jack. C. The Dawn Of Indian Freedom London: George
Allen & Unwin Ltd. 1932. ed. II.

Proceedings of Government of India

Home Political Deptt. (1905-1945)

D.

No.						
1.	Political	(A)	Confidential	File	Nos.	160-185, June, 1906.
2.	"	(B)	"	"	"	30-117 of 1907.
3.	"	-	"	"	"	2-9 Dec., 1907.
4.	"	(B)	"	"	"	63-70 Nov., 1908.
5.	"	"	"	"	"	115-124 June, 1909.
6.	"	"	"	"	"	100-117 Oct., 1909.
7.	"	"	"	"	"	150-159 Feb., 1919.
8.	"	"	"	"	"	347-358 Feb., 1920.
9.	"	"	"	"	"	317-318 April, 1920.
10.	"	-	"	"	"	109 July, 1920.
11.	"	-	"	"	No.	45 of 1921.
12.	"	-	"	"	"	111 of 1921.
13.	"	-	"	"	"	170 of 1921.
14.	"	-	"	"	"	178 of 1921.
15.	"	-	"	"	"	489 of 1921.
16.	"		Secret	"	"	18 of 1922.
17.	"		Confidential	"	"	29 of 1922.
18.	"		Secret	"	"	115/IV/ of 1922.
19.	"		"	"	"	327/IV/ 1922.
20.	"		Confidential	"	"	583/III/1932.
21.	"		"	"	"	130 of 1929.
22.	"		-	"	"	23/39 of 1930.
23.	"		Secret	"	"	122 of 1930
24.	"		Confidential	"	"	14/21/1931.
25.	"		-	"	"	24 of 1931.
26.	"		Confidential	"	"	33/6/1931.
27.	"		"	"	"	33/11/1931.
28.	"		"	"	"	33/12/1931.

29. Political Confidential File No. 33/24/1931.
30. " " " " 4/40/1932.
31. " " " " 31/113/1932.
32. " " " " 4/7/1936.
33. " - " " 4/27/1936.
34. " Confidential " " 4/40/1936 & K.W.
35. " " " " 33/9/1936.
36. " " " " 4/7/1937.
37. " Top Secret " " 7/6/1937.
38. " - Secret " " 7/7/1937.
39. " - - " " 37/43 of 1939.
40. " - - " " 3/2/1941 & K.W. (9).
41. " Confidential " " 3/11/1942 Poll. (9).
42. " Secret " " 30/23/1942.
43. " Confidential " " 33/20/1942 & K.W. (9).
44. " Secret " " 222 of 1942. (9).
45. " - " " 3/7/1943 Poll (9).
46. " Confidential " " 22/100/1944 (9).
47. " - " " 3/24/1945 (9).
48. " Secret " " 24/3/1945 Poll (9).
49. Proceedings of 33rd Session Of Indian National Congress, Delhi, December 1918.
50. Hansard's Parliamentary Debate (London) Session 1890 - 91, Vol. CCCL VI. Series III.

(C) Reports:-

Reports On Native News Papers:-

1. Bengal 1905, Sept. to Dec., Confidential Report No. 40.
2. " 1907 Oct., to Dec., " " " 51.
3. " 1907 June, to Sept., " " " 36.

4. Bengal 1907 Oct., to Dec., confidential Report No. 50.

5. " 1909 May to July " " " 23.

6. Report: Census Of India, 1921. Govt. of India: 1924.

7. Report on Legislative Assembly Debate, November, 1940, Vol. V No. I, Govt. of India, Delhi.

8. Report of the Royal Commission (Indian Expenditure Comission), London: 1900.

9. Report of the Royal Commission on Agriculture In India, 1928, Govt. of India, Bombay.

10. Report of the Sedition Committee, 1918, Govt. of India, Calcutta.

11. Report of the Simon (Indian Statuary) Commission, (Interim Report) 1929, London.

12. Report of the Indian Statuary Commission (Final Report) 1930, Calcutta.

13. Private Papers of Shri Manilal Nanawati (Famines of 1942)[1], Calcutta: 1943-44 (Not published).

(D) Magazines:

1. The Modern Review (Calcutta), (i) 1919 Vol. 25.
(ii) 1922 Vol. 31.
(iii) 1928 Vol. 44.
(iv) 1931 Vol. 50.
(v) 1936 Vol. 59.
(vi) 1942 Vol. 71
(vii) 1944 Vol. 75.

2. The Indian Annual Register (Calcutta), (i)
(i) " 1923 Vol. II
(ii) " 1927 " II
(iii) " 1930 " I
(IV) " 1940 " I
(V) " 1946 " II
Quarterly (VI) " 1928 " II

1. Available in National Archives of India, N. Delhi.

3. The 'Harijan' ed. Mahadev Desai (Poona: March 18th, 1933) Vol. I, No. VI.

4. The 'Young India', ed. Mahatma Gandhi (Ahmedabad: May 28th 1931), Vol. XIII, No. 22.

5. The Indian Review (ed: G.A. Natesan) Madras Oct., 1913 Vol. XIV. No. 10.

6. Congress Bulletin, Allahabad,

(i) 8 Jan 1942, No. VI.

(ii) Jan. 8, 1936. No. V.

(E) News papers:-

1. The Bombay Cronical (Bombay) 17th Oct., 1934.
2. The Dawn, (Delhi) July 12, 1944.
3. The Hindustan Times (Delhi) March, 16 & 18, 1929.
4. The National Herald (Luck) June Ist, 1942.
5. The Pioneer (Allahabad), 8, July 1931.
6. The Pioneer (Luck) July, 14, 1944.
7. The Statesman, (Delhi) July 11, 1936.
8. The Tribune, (Lohore) March 22, & 28, 1929.

(F) Encyclopaedia And Dictionary:-

1. Encyclopaedia of Brittanica Vol. XVI.
2. Webster's Third New International Dictionary. (L-Z)

[2]

सहायक ग्रंथ-सूची

(क) हिन्दी

१- अमृतराय; नयी समीक्षा, बनारस, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, २००० सं०, प्रथम संस्करण.

२- ,, , प्रेमचंद कलम का सिपाही, इलाहाबाद : हंस प्रकाशन, १९६२, प्रथम संस्क०.

३- ,, प्रेमचंद विविध प्रसंग, इलाहाबाद : हंस प्रकाशन, १९६२, प्रथम संस्करण.

४- आदर्श, ब्रजभूषण सिंह; हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, इलाहाबाद : रचना प्रकाशन, १९७०, प्रथम संस्करण.

५- उपाध्याय, हरिभाऊ; स्वतंत्रता की ओर, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९५८, परिवर्धित संस्करण.

६- कैलाश प्रकाश, प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, तिथि नहीं.

७- कोठारी, कोमल; प्रेमचंद के पात्र, जोधपुर : प्रेरणा प्रकाशन, १९५४, प्रथम बार.

८- कृष्णा हठीसिंग, इन्दु से प्रधानमंत्री, नई दिल्ली : सस्तासाहित्य मंडल, १९५२, प्रथम संस्करण

९- कन्हैयालाल; कांग्रेस के प्रस्ताव (१८८५-१९३१), बनारस : नवयुग प्रकाशन मंदिर, १९३१.

१०- गांधी, महात्मा; अमृतवाणी, इलाहाबाद : साधना सदन, १९५४.

११- गांधी, मो० क०; अंग्रेजों से मेरी अपील, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९४२, प्रथम संस्करण.

१२- गांधी, महात्मा; ग्राम-स्वराज्य, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, १९६३, प्रथम संस्करण.

१३- गांधी, महात्मा; बापू के हरिजन, लखनऊ : गंगा ग्रंथागार, २००६ संवत्.

१४- गांधी, महात्मा; मेरे सपनों का भारत, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, १९६०, प्रथम संस्करण.

१५- गांधी, मो० क०; राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, १९४७, प्रथम बार.

१६- गांधी, मो० क०; सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, १९५७, तीसरा पुनर्मुद्रण.

१७- गांधी, महात्मा; सत्याग्रह, इलाहाबाद : गांधी साहित्य प्रकाशन, मार्च १९५७.

१८- गांधी, महात्मा; हिन्द स्वराज, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर, १९६८, प्रथम आवृत्ति.

१९- गुर्द, ल्योरानी; प्रेमचंद और गोर्की, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९५५.

२०- गुप्त, मन्मथनाथ; भगतसिंह और उनका युग, दिल्ली : लिपि प्रकाशन, १९७२.

२१- ,, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, आगरा : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्प०, १९६२, द्वितीय संस्करण.

२२- ,, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स, १९६०, द्वितीय संस्करण.

२३- गुप्त, रामदीन; प्रेमचंद और गांधीवाद, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, १९६१, प्रथम संस्करण.

२४- गुप्त, सरोज; यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व, अजमेर : अनुराग प्रकाशन, १९७०, प्रथम संस्करण.

२५- गुप्त, राजेश्वर; प्रेमचंद : एक अध्ययन, भोपाल : मध्यप्रदेशीय प्रकाशक समिति, १९५८.

२६- गुलाबराय ; काव्य के रूप, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स, १९५८, चतुर्थ संस्क०.

२७- ,, मेरे निबंध, आगरा : गयाप्रसाद एण्ड सन्स, १९५५, प्रथमावृत्ति.

२८- गोपालराय; हिन्दी उपन्यास कोष, खण्ड प्रथम, द्वितीय, पटना : ग्रंथनिकेतन, १९६८, प्रथम संस्करण.

२९- चौहान, शिवदान सिंह; हिन्दी गद्य-साहित्य, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९५४, द्वितीय संस्करण.

३०- जैन, नेमिचन्द्र ; अधूरे साक्षात्कार, दिल्ली : अक्षर प्रकाशन, १९६६.

३१- जैनेन्द्र कुमार; प्रस्तुत प्रश्न, दिल्ली : पूर्वोदय प्रकाशन, १९५३, द्वितीय संस्करण.

३२- ,, साहित्य का श्रेय और प्रेय, दिल्ली : पूर्वोदय प्रकाशन, १९५३, प्रथम संस्क०.

३३- जोशी, चंडीप्रसाद; हिन्दी उपन्यास : समाज शास्त्रीय विवेचन, कानपुर : अनुसंधान प्रकाशन, १९६२.

३४- जोशी, बाबूराव; भारतीय नव-जागरण का इतिहास, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९५४, प्रथम संस्करण.

३५- मबलानी, रघुनाथसरन; जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९५९.

३६- टंडन, प्रतापनारायण; प्रेमचंद, दिल्ली : सामयिक प्रकाशन, १९६९, प्रथम संस्क०.

३७- ,, हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना, लखनऊ: लखनऊ विश्वविद्यालय, १९५९, प्रथम संस्क०.

३८- ताराचंद; भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, प्रथम खण्ड, भारत सरकार प्रकाशन विभाग, १९६५, प्रथम संस्करण.

३९- तिवारी, सुरेन्द्र; यशपाल और हिन्दी कथासाहित्य, बनारस : सरस्वती प्रेस, १९५९, प्रथम संस्करण.

४०- त्रिभुवनसिंह; हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, बनारस : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, २०१२ वि०, प्रथम संस्करण.

४१- दामोदरन, के० भारतीय चिन्तन परम्परा, नई दिल्ली : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, ति० न०, सं० न०

४२- नगेन्द्र (डा०); विचार और विवेचन, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ति० न०, सं० न०.

४३- नरेन्द्र देव (आचार्य); राष्ट्रीयता और समाजवाद, बनारस : ज्ञानमंडल लिमि०, २००६ सं०, प्रथम संस्करण.

४४- नामवर सिंह; इतिहास और आलोचना, वाराणसी : प्रत साहित्य प्रकाशन,
१९५६.

४५- निहालसिंह, गुरुमुख; भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, दिल्ली : आत्मा-
राम एण्ड सन्स, १९६७, तीसरा संस्करण.

४६- नेहरू, जवाहरलाल ; कुछ पुरानी चिट्ठियां, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल
१९६०, प्रथम संस्करण.

४७- ,, मेरी कहानी, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल १९६१, दसवां संस्क०.

४८- ,, हिन्दुस्तान की कहानी, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९६०,
दूसरा संस्करण.

४९- पामदत्त, रजनी; आज का भारत अनु० रामविलास शर्मा, बम्बई : प्रगति प्रकाशन
१९४८, सं० न०.

५०- प्रेमचंद; कुछ विचार, इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, १९६५, वर्तमान संस्करण.

५१- प्रेमचंद, शिवरानी देवी; प्रेमचंद -- घर में, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स, १९५६.

५२- पंछी, प्रीतम सिंह; गदरपार्टी का इतिहास, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स,
१९६१, प्रथम संस्करण.

५३- मैठ्य, शंकरलाल तिवारी; भारत सन् ५७ के बाद, बनारस : चौधरी एण्ड सन्स,
१९३९, प्रथम संस्करण.

५४- मदान, इन्द्रनाथ ; प्रेमचंद एक विवेचन, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, ति० न०
सं० न०.

५५- मार्क्स, कार्ल तथा फ्रे० एंगेल्स; भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम (अनु० रमेश सिन्हा),
नई दिल्ली : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, १९७२, द्वितीय संस्क०.

५६- मानव, विश्वम्भर; उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार, इलाहाबाद : स्मृति
प्रकाशन, १९७०, प्रथम संस्करण.

५७- मोरेस, फ्रैंक०; जवाहरलाल नेहरू : जीवनी (अनु० कमलाशंकर), इलाहाबाद : सर-
स्वतीप्रेस, ति० न०, सं० न०.

५८- यशपाल; बात-बात में बात, लखनऊ : विप्लव कार्यालय, १९५४, द्वितीय संस्क०.

५९- ,, मार्क्सवाद, लखनऊ : विप्लव कार्यालय, १९५४, संशोधित संस्करण.

६०- ,, सिंहावलोकन - भाग १, लखनऊ : विप्लव कार्यालय, १९६४, चतुर्थ संस्क०.

६१- ,, सिंहावलोकन - भाग २, लखनऊ : विप्लव कार्यालय, १९६६, तृतीय संस्क०.

६२- ,, सिंहावलोकन - भाग ३, लखनऊ : विप्लव कार्यालय, १९५५, प्रथम संस्क०.

६३- रहबर, हंसराज; प्रेमचंद : जीवन और कृतित्व, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स, १९५१.

६४- राजेन्द्र प्रसाद (डा०); आत्मकथा, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९६२, तृतीय संस्करण.

६५- ,, खंडित भारत, बनारस, ज्ञानमंडल पुस्तक भंडार, १९४७, द्वितीय संस्क०.

६६- लाल, श्रीकृष्ण (डा०); आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, प्रयाग : विश्व-विद्यालय हिन्दी परिषद, १९६५, चतुर्थ संस्करण.

६७- लुणियां, ओसमल (सम्पा०); कराची की कांग्रेस, अजमेर : हिन्दी साहित्य मंदिर, १९३१.

६८- वात्स्यायन, सच्चिदानंद हीरानंद; त्रिशंकु, बीकानेर : सूर्यप्रकाशन मंदिर, १९७३.

६९- वाजपेयी, नन्द दुलारे, आधुनिक हिन्दी साहित्य, इलाहाबाद : भारती भंडार, २००७ वि० प्रथम संस्करण.

७०- ,, (सम्पा०) साहित्यकार पं० भगवती प्रसाद वाजपेयी, (अभिनंदन ग्रंथ), कानपुर : सरस्वती सेवा सदन, ५५ वीं वर्षगांठ (दिसम्बर १९५३)

७१- ,, प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन , इलाहाबाद : हिन्दी भवन, २०१६ ई०.

७२- वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर ; आधुनिक हिन्दी साहित्य, इलाहाबाद : हिन्दी परि-षद (विश्वविद्यालय), १९४८ संशोधित संस्करण.

७३- ,, परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएं, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाउस, १९७२, प्रथम संस्करण.

७४- ,, बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : नये संदर्भ, इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य भवन, १९६६, प्रथम संस्करण.

७५- वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर; हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९७०.

७६- व्यास, गोपालप्रसाद (सम्पा०); स्वतंत्रता रजत जयन्ती अभिनंदन ग्रंथ (हिन्दी के २५ वर्ष) दिल्ली : प्रा० हि० सा० सम्मेलन १९७३, प्रथम सं०.

७७- विद्यालंकार, सत्यदेव (भूमिका महात्मा भगवानदीन); जयहिन्द, नई दिल्ली : मार-वाड़ी पब्लिकेशन, १९४५, द्वितीय सं०.

७८- 'बिस्मिल', पं० रामप्रसाद; काकोरी के शहीद, देहली : पथिक एण्ड कम्पनी, १९३२ से पूर्व इम्पिरियल रिकार्डस के आधार पर)

७९- शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद; साहित्य की वर्तमान धारा, बाँकीपुर (पटना) : ग्रंथमाला कार्यालय, ति० न०, सं० न०.

८०- शर्मा, मक्खनलाल ; हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, १९६५, प्रथम संस्करण.

८१- शर्मा, रामविलास; प्रेमचंद और उनका युग, दिल्ली : मेहरचन्द और मुंशीराम प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता, १९५२, प्रथम संस्करण.

८२- शर्मा, रामविलास; स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, बनारस : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ज्ञानवापी १९५६, प्रथम सं०.

८३- शर्मा, रामेश्वर; राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, नई दिल्ली : मानव भारती प्रकाशन, १९५३.

८४- शर्मा, हरिदत्त; लेनिन भारत के संदर्भ में, दिल्ली : आत्मा राम एण्ड सन्स, १९७० प्रथम संस्करण.

८५- शुक्ल, रामचंद्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी : नागरी प्रचारिणी, सम्वत् २००६, पाँचवा संस्करण.

८६- सत्येन्द्र (डा०); हिन्दी उपन्यास विवेचन, जयपुर : कल्याणमल एण्ड सन्स, १९६८, प्रथम संस्करण.

८७- सान्याल, भूपेन्द्रनाथ; साम्यवाद की ओर , इलाहाबाद : श्री सेवाप्रेस १९३१ से पूर्व (इम्पिरियल रिकार्डस के आधार पर)

८८- सान्याल, शचीन्द्रनाथ; बंदी जीवन (तीनों भाग) सम्पा० बनारसीदास चतुर्वेदी, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स, १९६३.

८९- सिंहल, शशिभूषण; उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, १९६०, प्रथम संस्करण.

९०- सिन्हा, लक्ष्मीकान्त; हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास, कानपुर : ग्रंथ भारती, १९६६, प्रथम संस्करण.

९१- सिन्हा, सुरेश; हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, दिल्ली : अशोक प्रकाशन, १९६५, प्रथम संस्करण.

९२- सीतारामय्या; पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास प्रथम खण्ड, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९४८, पंचम संस्करण.

९३- ,, कांग्रेस का इतिहास द्वितीय खण्ड, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल, १९४८, प्रथम संस्करण.

९४- ,, महात्मा गांधी का समाजवाद, प्रयाग : मातृभाषा मंदिर, १९४९, तृतीय बार.

९५- श्रीवास्तव, शिवनारायण; हिन्दी उपन्यास, वाराणसी : सरस्वती मंदिर, सं० २०१९.

९६- सुधीन्द्र (प्रो०); हिन्दी कविता में युगान्तर, दिल्ली : आत्माराम एण्ड सन्स, १९५०, प्रथम संस्करण.

९७- सुषमा धवन; हिन्दी उपन्यास, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९६१, प्रथम संस्क०.

९८- सुषमा नारायण; भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, १९६६.

(ख) हिन्दी पत्रिकाएं एवं कोष

(१) अभ्युदय (साप्ताहिक) किसान अंक (प्रयाग : १९३१).

(२) ,, ,, भगतसिंह अंक ,, ,,

(३) ,, ,, साम्यवाद अंक ,, १९३६

(४) ,, ,, सप्तम अंक ,, १९३७.

(५) आलोचना उपन्यास विशेषांक (नई दिल्ली : १९५४)

(६) चांद फांसी अंक (इलाहाबाद : १९२८)

(७) हिन्दी प्रदीप सम्पा० बालकृष्ण भट्ट इलाहाबाद : १८८६, जिल्द १९ अंक ५-८ (माइक्रो फिल्म)

(८) हिन्दी विश्वभारती (लखनऊ : १९६४) खण्ड १०.

(९) हिन्दी साहित्यकोश सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी : २०२० वि०

(१०) हिन्दी उपन्यास कोश सम्पा० गोपालराय (पटना : १९६८) दोनों भाग

(११) हिन्दी विश्वकोश खण्ड सात तथा ग्यारह (वाराणसी, १९६९).

(ग) विवेचित उपन्यास

१- 'अज्ञेय' शेखर : एक जीवनी (उत्थान), बनारस, १९६१, सप्तम संस्करण.

२- ,, ,, (संघर्ष) ,, ,, पञ्चम ,,

३- अमृतराय : बीज, इलाहाबाद, १९६७, तृतीय संस्करण.

४- 'अश्क' उपेन्द्रनाथ; गिरती दीवारें, प्रयाग, १९५७, तृतीय संस्करण.

५- 'अंचल' रामेश्वर शुक्ल ; नई इमारत, वाराणसी, १९६५

६- ,, उल्का, इलाहाबाद, ति० न०, सं० न०.

७- ,, चढ़ती धूप, इलाहाबाद, १९५५, वर्तमान संस्करण.

८- 'उग्र' पाण्डेय बेचन शर्मा; मनुष्यानंद (बुधुआ की बेटी), दिल्ली - १९५८, तृतीय संस्क०

९- ,, सरकार तुम्हारी आँखों में, लखनऊ, २०१७ वि० चतुर्थ संस्कर०.

१०- ,, चंद हसीनों के खुतूत, कलकत्ता, ति० न० पंचम संस्करण.

११- उमाशंकर; भारत जाग उठा, बम्बई, १९५९, प्रथम संस्करण.

१२- खत्री, दुर्गाप्रसाद; प्रतिशोध, वाराणसी, १९६५, नया संस्करण.

१३- ,, रक्तमंडल खण्ड एक, १९७०, बारहवां संस्करण.

१४- ,, ,, दो, १९६८, ग्यारहवां ,,

१५- ,, सुफेद शैतान, खण्ड १ व २, १९५७, चतुर्थ संस्करण.

१६- गुप्त, भैरव प्रसाद; मशाल, इलाहाबाद, १९५७, द्वितीय संस्करण.

१७- ,, सत्ती मैया का चौरा, इलाहाबाद, १९५९, प्रथम संस्करण.

१८- गुप्त मन्मथनाथ; अपराजित, दिल्ली, १९६०, प्रथम संस्करण.

१९- ,, जिव, इलाहाबाद, २००३ वि०, प्रथम संस्करण.

२०- ,, जययात्रा, वाराणसी, १९५६, प्रथम संस्करण

२१- ,, दो दुनिया, दिल्ली, १९५३ द्वितीय संस्करण.

२२- ,, बलि का बकरा, वाराणसी, १९६१, द्वितीय संस्करण.

२३- ,, रैन अंधेरी, दिल्ली, १९५९, प्रथम संस्करण.

२४- ,, रंगमंच, दिल्ली १९६०, सं० न०.

२५- गुरुदत्त ; पथिक, नई दिल्ली १९५७, चौथा संस्करण.

२६- ,, स्वराज्यदान, दिल्ली, १९५६, प्रथम संस्करण.

२७- ,, स्वाधीनता के पथ पर, नई दिल्ली १९५५, चतुर्थ संस्करण.

२८- ,, देश की हत्या, नई दिल्ली १९६६, चतुर्थ संस्करण.

२९- गोविन्ददास; इन्दुमती, दिल्ली, १९५९, सं० न०.

३०- गौड़, ब्रजेन्द्रनाथ; पैरोल पर, लखनऊ, १९४३, प्रथम संस्करण.

३१- चतुरसेन, आचार्य; आत्मदाह, बनारस, ति० न०, सं० न०.

३२- ,, धर्मपुत्र, दिल्ली, १९६०, तृतीय संस्करण.

३३- जैनेन्द्र कुमार; कल्याणी, दिल्ली, १९३२, सं० न०.

३४- ,, जयवर्धन, दिल्ली, १९७३, द्वितीय संस्करण.

३५- ,, त्यागपत्र, दिल्ली, १९७०, तेरहवाँ संस्करण.

३६- ,, विवर्त, दिल्ली, १९६७, तृतीय संस्करण.

३७- ,, सुखदा, दिल्ली, १९६८, तृतीय संस्करण.

३८- ,, सुनीता, बम्बई, १९४१, द्वितीय संस्करण.

३९- जैन, ऋषभचरण; भाई, लखनऊ, २००७ वि०, तृतीय बार

४०- ,, हर हाइनैस, दिल्ली १९६२, षष्ठ संस्करण

४१- ,, सत्याग्रह, दिल्ली १९५३, सं० न०.

४२- जोशी, इलाचन्द्र; निर्वासित प्रयाग वि० २०१५ सं०, सं० न०.

४३- ,, मुक्तिपथ, इलाहाबाद, १९५१, सं० न०.

४४- ,, लज्जा, इलाहाबाद, २०२० वि०, पंचम संस्करण.

४५- ,, संन्यासी, इलाहाबाद, २०१६ वि०, छटवाँ संस्करण.

४६- दीक्षित सीताचरण; हृदयमंथन, दिल्ली, १९५५, द्वितीय संस्करण.

४७- नागार्जुन; बलचनमा, इलाहाबाद, १९५६, द्वितीय संस्करण.

४८- ,, बाबा बटेसरनाथ, दिल्ली १९६०, द्वितीय संस्करण.

४९- नागर, अमृतलाल; महाकाल, इलाहाबाद, १९४७, सं० न० -.

५०- 'निराला,' सूर्यकान्त त्रिपाठी; अप्सरा, लखनऊ, १९६२, आठवीं बार.

५१- 'निराला', सूर्यकान्त त्रिपाठी; अलका, लखनऊ, १९६४, ग्यारहवीं बार.

५२- ,, कुल्लीभाट, लखनऊ, १९६४, षष्ठमावृत्ति.

५३- नौटियाल, सन्तोषनारायण; हरिजन, दिल्ली, १९५६, प्रथम संस्करण.

५४- 'पहाड़ी' निर्देश, इलाहाबाद, १९५५, तृतीय संस्करण.

५५- प्रताप; गांधी चबूतरा, वाराणसी, १९५७, प्रथम संस्करण.

५६- 'प्रेम' धनीराम; मेरा देश, बम्बई, १९३६, प्रथम संस्करण.

५७- प्रेमचंद ; कर्मभूमि, इलाहाबाद, १९६२, चतुर्थ संस्करण.

५८- ,, कायाकल्प, ,, १९७३, वर्तमान संस्करण.

५९- ,, गबन ,, १९६३, २९ वां संस्करण.

६०- ,, गोदान ,, १९७२ वर्तमान संस्करण.

६१- ,, प्रेमाश्रम ,, ति० न० सं० नु० न०.

६२- ,, मंगल सूत्र व अन्य रचनाएं, इलाहाबाद, ति० न० सं० न०

६३- ,, रंगभूमि, इलाहाबाद, १९७१, वर्तमान संस्करण.

६४- ,, वरदान, दिल्ली, १९६६, प्रथम संस्करण.

६५- ,, सेवासदन, इलाहाबाद, १९७३, वर्तमान संस्करण.

६६- पन्त, गोविन्दवल्लभ; मुक्ति के बंधन, प्रयाग, २००७ वि० प्रथम संस्करण.

६७- भट्ट, उदयशंकर; डा० शेफाली, दिल्ली, १९६०, सं० न०.

६८- ,, शेष-अशेष, दिल्ली, १९६०, सं० न०.

६९- 'भिक्षु' कृष्णचन्द्र शर्मा; भंवरजाल, दिल्ली, १९५४, प्रथम संस्करण.

७०- ,, संक्रान्ति, आगरा, १९५१, जुलाई संस्करण.

७१- मिश्र, दयाशंकर; बुझते दीप, दिल्ली १९५५, सं० न०.

७२- मिश्र द्वय, शुकदेव बिहारी मिश्र. प्रतापनारायण मिश्र. स्वतंत्र भारत, लखनऊ, २००७ वि० प्रथम संस्क०.

७३- मिश्र रघुवीर शरण; बलिदान, मेरठ, १९७२, पंचम संस्करण.

७४- मित्रा, उषादेवी; वचन का मोल, दिल्ली, १९५७, सं० न०.

७५- मेहता, दुर्गाशंकर; बापूकी प्यास, इलाहाबाद, १९५०, सं० न०.

७६- मेहता, लज्जाराम शर्मा; आदर्श हिन्दू, भाग-१, काशी, १९१४, सं० न०.

७७- ,, आदर्श हिन्दू, भाग-३, काशी, १९१५, सं० न०.

७८- ,, बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी, बम्बई, १९०७, सं० न०.

७९- ,, हिन्दू गृहस्थ, बम्बई, १९०३, सं० न०.

८०- यशपाल; झूठा सच (देश का भविष्य) लखनऊ १९६३, द्वितीय संस्करण.

८१- ,, झूठा सच (वतन और देश), ,, १९५९, द्वितीय संस्करण.

८२- ,, दादा कामरेड, लखनऊ, १९४४, द्वितीय संस्करण.

८३- ,, देशद्रोही, लखनऊ, १९६७, सप्तम संस्करण.

८४- ,, पार्टी कामरेड, लखनऊ, १९६३, पंचम संस्करण.

८५- ,, मनुष्य के रूप, इलाहाबाद, १९७२, षष्टम संस्करण.

८६- 'राजा', राधिकारमण प्रसाद सिंह; गांधी-टोपी, शाहाबाद, १९५१, तृतीय सं०.

८७- ,, पुरुष और नारी, शाहाबाद, १९३९, द्वितीय संस्करण.

८८- ,, पूरब और पश्चिम, शाहाबाद, १९५१, प्रथम संस्करण.

८९- ,, राम-रहीम , शाहाबाद, १९३६, सं० न०.

९०- राहुल,सांकृत्यायन; जीने के लिए, इलाहाबाद, १९५९, सं० न०.

९१- राहुल, सांकितायन; भागो नहीं (दुनिया को) बदलो, इलाहाबाद,१९४८,तृतीय सं

९२- रांगेय राघव, विषादमठ, दिल्ली, १९७३, २रा पा० संस्करण.

९३- ,, हुजूर, इलाहाबाद, १९५७, प्रथम संस्करण.

९४- ,, सीधा-सादा रास्ता, इलाहाबाद, १९५५, सं० न०.

९५-'रेणु' फणीश्वरनाथ; मैला आंचल, दिल्ली, १९५४, प्रथम संस्करण.

९६- लाल, लक्ष्मीनारायण; रूपाजीवा, दिल्ली, १९७३, द्वितीय संस्करण.

९७- वर्मा, भगवतीचरण; टेढ़े-मेढ़े रास्ते, इलाहाबाद, २०११ सं०, सं० न०.

९८- ,, भूले-बिसरे चित्र, दिल्ली, १९५९, (बा) संस्करण.

९९- वर्मा, वृन्दावन लाल; अचल मेरा कोई, झांसी, १९७१, ग्यारहवां संस्करण.

१००- ,, अमरबेल, झांसी, १९५३, प्रथम संस्करण.

१०१- ,, प्रत्यागत, लखनऊ, २०१९ वि० चतुर्थ संस्करण.

१०२- बाजपेयी, भगवतीप्रसाद; चलते-चलते, दिल्ली १९६५, नवीन संस्करण.

१०३- ,, पतवार, दिल्ली १९५२, प्रथम संस्करण.

१०४- ,, निमंत्रण, दिल्ली १९६७, (का) संस्करण.

१०५- विष्णु प्रभाकर; निशिकान्त, दिल्ली १९५८, तृतीय संस्करण.

१०६- 'वियोगी', मोहनलाल महतो; विसर्जन, प्रयाग, १९५६, सं० न०.

१०७- शर्मा, यज्ञदत्त; इन्सान, दिल्ली १९६१, द्वितीय संस्करण.

१०८- ,, दो पहलू, कलकत्ता, १९५०, प्रथम संस्करण.

१०९- शेवड़े, अनन्त गोपाल; ज्वालामुखी, प्रयाग, १९५६, प्रथम संस्करण.

११०- सहाय, व्रजनंदन; आरण्य बाला, काशी, १९२१, द्वितीय संस्करण.

१११- शिवनाथ सिंह; जागरण, लखनऊ, २०१२ वि० पाँचवाँ संस्करण.

११२- श्रीवास्तव, प्रतापनारायण; बयालीस, कानपुर, ति० न० सं० न०.

११३- ,, बयालीस के बाद(विसर्जन) दिल्ली, ति० न०, प्रथम संस्करण.

११४- ,, विदा, लखनऊ, १९७२, आठवाँ संस्करण.